भूगोल
(Geography)

कक्षा – 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – भूगोल

कक्षा – 11

संयोजक एवं लेखक

डॉ. अजय कुमार शर्मा
सह आचार्य – भूगोल
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

लेखकगण

वी.सी.शर्मा
सेवानिवृत्त सह आचार्य
1226/28, बिहारीगंज, अजमेर

डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी
सह आचार्य –भूगोल
एम.एल.वी. राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा

डॉ. शिवानी स्वर्णकार
सह आचार्य ––भूगोल
मीरा कन्या राजकीय महाविद्यालय, उदयपुर

डॉ. पप्पूलाल गुप्ता
सह आचार्य –भूगोल
राजकीय महाविद्यालय, जयपुर

डॉ. रामस्वरूप मीणा
सह आचार्य –भूगोल
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टोंक

गुमानसिंह जादौन
प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, लोहरबाड़ा, नसीराबाद

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक – भूगोल

कक्षा – 11

संयोजक :– डॉ. ओ.पी.देवासी
राजकीय महाविद्यालय, जोधुपर

सदस्यगण :–

1. डॉ. नरपत सिंह राठौड़, प्राचार्य
गुरुनानक कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

2. डॉ. मिलन यादव, सह आचार्य
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

3. डॉ. प्रमोद शर्मा, सह आचार्य
ज.रा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

4. डॉ. पंकज दीक्षित, प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा. विद्यालय, मानसर खेड़ी, जयपुर

5. ओमप्रकाश शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा. विद्यालय, लबानिया, सांगोद, कोटा

4. पन्नालाल शर्मा, व्याख्याता
आदर्श राजकीय उ.मा. विद्यालय, लबानिया, सांगोद, कोटा

दो शब्द

विद्यार्थी के लिए पाठ्यपुस्तक क्रमबद्ध अध्ययन, पुष्टिकरण, समीक्षा और आगामी अध्ययन का आधार होती है। विषय–वस्तु और शिक्षण–विधि की दृष्टि से विद्यालयीय पाठ्यपुस्तक का स्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। पाठ्य पुस्तकों को कभी जड़ या महिमामण्डित करने वाली नहीं बनने दी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तक आज भी शिक्षण–अधिगम–प्रक्रिया का एक अनिवार्य उपकरण बनी हुई है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों का प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा–9 से 12 के विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा अपना पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016–17 से कक्षा–9 व 11 की पाठ्यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर ही तैयार कराई गई हैं। आशा है कि ये पुस्तकें विद्यार्थियों में मौलिक सोच, चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करेंगी।

प्रो. बी.एल. चौधरी
अध्यक्ष
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

प्राक्कथन

भूगोल का प्रभाव मानव, पेड–पौधों और जीव–जन्तुओं पर जन्म से मृत्युपर्यन्त बना रहता है। हमारे जीवन का प्रत्येक पहलू भौगोलिक घटकों से जुड़ा होता है। बहुआयामी ब्रह्माण्ड अनेकानेक रहस्यों से भरा है, जिनका अध्ययन भूगोल रूपी विज्ञान में किया जाता है। पृथ्वी 'मानव गृह' है, जिसके तल, नभ, जल, भूगर्भ, जैव एवं अजैव पहलूओं के विविधतारूपी लक्षणों का वैज्ञानिक अध्ययन इस विषय के अन्तर्गत किया जाता है। इसमें मानव एवं प्रकृति तथा उनके पारस्परिक संबंधों के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। इसके फलस्वरूप भूगोल में 'भौतिक भूगोल' एवं 'मानव भूगोल' दो प्रमुख शाखाएँ तथा कालान्तर में इनकी अनेक विशेषीकृत उपशाखाएँ विकसित हुई।

प्राचीन काल से भारत, यूनान, रोम, अरब एवं चीन में भूगोल का अध्ययन–अध्यापन किया जा रहा है। वर्तमान का भूगोल दूरस्थ–संवेदन तकनीक, भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS), भूमण्डलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली (GPS), डिजिटल मानचित्रकला आदि आधुनिक तकनीकों से सुसज्जित हैं। इनकी सहायता से मानव कल्याण में भूगोल अग्रणी भूमिका अदा कर सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में भौतिक भूगोल एवं भारत–राजस्थान के भौतिक एवं प्राकृतिक पहलूओं पर सभी प्रत्ययों को यथा सम्भव प्रथम बार रंगीन चित्रों, मानचित्रों एवं सारणियों आदि के माध्यम से समझाया गया है। छात्रहित में वैज्ञानिक शब्दावली का उपयोग सरल एवं बोधगम्य भाषा के रूप में किया गया है। मैं सभी सन्दर्भ पुस्तकों, वेवसाईट्स, एटलस एवं सभी सहयोगी लेखकों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी सहायता से यह कार्य सुगम बन पाया। सभी अध्यापक बन्धुओं एवं विद्यार्थियों के सुझाव पुस्तक को परिमार्जित करने हेतु आमंत्रित हैं।

संयोजक

पाठ्यक्रम

भूगोल

विषय कोड–14

समय– 3.15 घण्टे | पूर्णांक–70

इकाई–1 05

1. भूगोल एक विषय के रुप में
   (अर्थ एवं परिभाषा, विषय क्षेत्र, मुख्य शाखाएं)
2. पृथ्वी एक ग्रह के रुप में
   (सौर मण्डल, ग्रह, पृथ्वी की आकृति, पृथ्वी की गतियाँ)
3. पृथ्वी का स्वरूप, गतियाँ, स्थिति एवं समय की गणना
   (अक्षांश, देशान्तर, विषुव, अयनांत, अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा)

इकाई–2 05

4. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना
   (ताप, दाब, घनत्व, ज्वालामुखी एवं भूकम्पीय तरंगों के आधार पर एवं स्वेस एवं वाण्डर डी ग्रांट के अनुसार)
5. महाद्वीप एवं महासागरों की उत्पत्ति
   (वेगनर एवं प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त)
6. शैलें
7. भूकम्प एवं ज्वालामुखी
   (उत्पत्ति के कारण, प्रकार, विश्व वितरण) प्रभाव– लाभ हानि

इकाई–3 05

8. प्रमुख स्थलाकृतिक स्वरुप
   (पर्वत, पठार, मैदान, घाटियां, स्थलरुप विकास की संकल्पना)
9. अनाच्छादन
   (अपक्षय के प्रकार, अपरदन, परिवहन, निक्षेपण, डेविस एवं पेंक का अपरदन चक्र)
10. अपरदन के कारक
    (बहता हुआ जल, भूमिगत जल, समुद्री लहरें, हिमानी, पवनें)

इकाई–4 10

11. वायुमण्डलः संघटन एवं संरचना
12. सूर्याताप एवं उष्मा बजट (व्ययक)
13. वायुदाब की पेटियाँ एवं पवने
    (तापमान का वितरण एवं प्रभावित करने वाले कारक, ऊष्मा बजट)
14. वायु राशियाँ, वाताग्र, चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात
    (वाताग्र, चक्रवातों एवं प्रतिचक्रवातों के प्रकार एवं प्रभाव)
15. संघनन एवं वर्षा
16. जलवायु का वर्गीकरण

इकाई–5	05
17. जलीय चक्र एवं जल राशियों का वितरण	
18. महासागरीय जल की गतियां	
19. महासागर : उच्चावच, तापमान एवं लवणता	
20. महासागरीय संसाधन	
इकाई–6	05
21. जैव विविधता	
22. पारिस्थितिकीय तन्त्र की संकल्पना	
23. गंगा नदी के पारिस्थितिक तन्त्र का अध्ययन	

खण्ड – ब भारत का भूगोल

इकाई–7	05
1. भारतः स्थिति, विस्तार व अवस्थिति	
2. भारत की विविधाताओं में एकता	
3. भारतः भौगोलिक विविधता में सांस्कृतिक एकता	
इकाई–8	10
4. भारतः संरचना, उच्चावच एवं स्थलाकृतिक प्रदेश	
5. भारत का जल प्रवाह तंत्र	
6. भारत की जलवायु	
7. भारत का मानसून तंत्र	
इकाई–9	05
8. भारत की प्राकृतिक वनस्पति	
9. भारत में मृदा	
इकाई–10	05
10. प्राकृतिक आपदाएं व प्रबन्धन (भूकम्प एवं भूस्खलन)	
11. प्राकृतिक आपदाएं व प्रबन्धन (बाढ़, सूखा, व समुद्री तूफान)	
इकाई–11	08
12. राजस्थानः परिचय, भौतिक स्वरूप एवं अपवाह तंत्र	
13. राजस्थानः जलवायु, वनस्पति व मृदा	
इकाई–12	
नोटः– भारत एवं राजस्थान के अध्यायों के अंत में दिए गए आंकिक प्रश्नों को मानचित्र में भरना।	02

प्रायोगिक भूगोल

	30
प्रायोगिक परीक्षाओं में अंक विभाजन	
1. प्रायोगिक प्रश्न पत्र	12
2. प्रायोगिक अभिलेख एवं मौखिक परीक्षा	6+3=9
3. जरीब एवं फीता सर्वेक्षण एवं मौखिक परीक्षा	6+3=9 1.

मापनी अर्थ एवं प्रकार, रुपान्तरण

2. मानचित्र प्रक्षेप – आवश्यकता, वर्गीकरण, बेलनाकार, शंक्वाकार एवं खमध्य।

3. उच्चावच प्रदर्शन की विधियां एवं विशेषताएं : रंग, छाया, हैश्यूर, स्थानिक ऊंचाई, बैंच मार्क, फार्मलाइन्य एवं समोच्च रेखाएं, समोच्च रेखाओं द्वारा भू आकारों का प्रदर्शन (शंक्वाकार पहाड़ी, पठार, तीव्र व मन्द ढाल, उत्तल एवं अवत्तल ढाल, V और U आकार की घाटी, झील, जल प्रपात)

4. स्थलाकृतिक मानचित्रों का अध्ययन– वर्गीकरण एवं महत्व 1 : 50,000 भू आकृतिक मानचित्र का अध्ययन।

5. मौसम मानचित्र का अध्ययन एवं मौसम यंत्र (साधारण तापमापी, वर्षा मापी, वायु दिशासूचक यंत्र, वायुदाब मापी यंत्र) मौसम मानचित्रों में प्रदर्शित संकेत चिन्हों का अध्ययन।

6. जरीब एवं फीता सर्वेक्षण

निर्धारित पुस्तकें –

1. भूगोल – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।
2. प्रायोगिक भूगोल – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।

अनुक्रमणिका

खण्ड–अ : भौतिक भूगोल

इकाई व अध्याय	अध्याय का नाम	पृष्ठ सं.
इकाई –1		
अध्याय–1	भूगोल एक विषय के रूप में	1
अध्याय–2	पृथ्वी एक ग्रह के रूप में	8
अध्याय–3	पृथ्वी का स्वरूप, गतियाँ, स्थिति एवं समय की गणना	15
इकाई–2		
अध्याय–4	पृथ्वी की आन्तरिक संरचना	22
अध्याय–5	महाद्वीप व महासागरों की उत्पत्ति	27
अध्याय–6	शैलें	34
अध्याय–7	भूकंप एवं ज्वालामुखी	38
इकाई–3		
अध्याय–8	प्रमुख स्थलाकृति स्वरूप	45
अध्याय–9	अनाच्छादन	53
अध्याय–10	अपरदन के कारक	58
इकाई–4		
अध्याय–11	वायुमण्डल : संघटन एवं संरचना	65
अध्याय–12	सूर्यातप एवं उष्मा बजट (व्ययक)	70
अध्याय–13	वायुदाब की पेटियाँ एवं पवनें	75
अध्याय–14	वायुराशियाँ, वाताग्र, चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात	85
अध्याय–15	संघनन एवं वर्षा	93
अध्याय–16	जलवायु का वर्गीकरण	99
इकाई–5		
अध्याय–17	जलीय चक्र एवं जलराशियों का वितरण	105
अध्याय–18	महासागरीय जल की गतियाँ	110
अध्याय–19	महासागर : उच्चावच, तापमान एवं लवणता	117
अध्याय–20	महासागरीय संसाधन	125
इकाई–6		
अध्याय–21	जैव विविधता	129
अध्याय–22	पारिस्थितिकीय तंत्र की संकल्पना	138
अध्याय–23	गंगा नदी के पारिस्थितिक तंत्र का अध्ययन	147

खण्ड–ब : भारत का भूगोल

इकाई व अध्याय	अध्याय का नाम	पृष्ठ सं.
इकाई –1		
अध्याय–1	भारतः स्थिति, विस्तार व अवस्थिति	152
अध्याय–2	भारत की विविधताओं में एकता	159
अध्याय–3	भारत : भौगोलिक विविधता में सांस्कृतिक एकता	167
इकाई–2		
अध्याय–4	भारत : संरचना, उच्चावच एवं स्थलाकृतिक प्रदेश	174
अध्याय–5	भारत का जल प्रवाह तंत्र	188
अध्याय–6	भारत की जलवायु	192
अध्याय–7	भारत का मानसून तंत्र	199
इकाई–3		
अध्याय–8	भारत की प्राकृतिक वनस्पति	204
अध्याय–9	भारत में मृदा	211
इकाई–4		
अध्याय–10	प्राकृतिक आपदाएँ व प्रबन्धन (भूकम्प एवं भूस्खलन)	217
अध्याय–11	प्राकृतिक आपदाएँ व प्रबन्धन (बाढ़, सूखा व समुद्री तूफान)	223
इकाई–5		
अध्याय–12	राजस्थान : परिचय, भौतिक स्वरूप एवं अपवाह तंत्र	232
अध्याय–13	राजस्थान : जलवायु, वनस्पति व मृदा	242
इकाई–6		

नोट : भारत एवं राजस्थान के अध्यायों के अंत में दिये गये आंकिक प्रश्नों को मानचित्रों में भरना।

शब्दावली 252

खण्ड—ब

भारत का भूगोल

अध्याय – 1

भूगोल एक विषय के रूप में
(Geography as a Subject)

हम पर जन्म से मृत्युपर्यन्त भूगोल का प्रभाव बना रहता है। हमारे जीवन का प्रत्येक पहलू भूगोल एवं उसके विभिन्न घटकों से जुड़ा है। ब्रह्माण्ड बहुआयामी रूप से अनेकानेक रहस्यों से भरा है। ब्रह्माण्ड जो सम्पूर्णता का द्योतक है, जिसका मानव को प्रारम्भिक ज्ञान भी सही रूप में प्राप्त नहीं हो पाया है। ब्रह्माण्ड में अरबों आकाशगंगाएँ और निहारिकाएँ, उनमें अरबों तारे और तारों से जुड़े अरबों ग्रह, धूल कण एवं गैस के बादल, गुरूत्वाकर्षण एवं अन्य बलों का प्रभाव एक रहस्यमय चित्र प्रस्तुत करता है। ये ब्रह्माण्ड रूपी रहस्यमयी चित्र कब, कैसे और किसके द्वारा निर्मित किया गया है। इसका रूप, स्वरूप, आकार और विस्तार कितना है, इन प्रश्नों के उत्तर मनुष्य प्रारम्भ से ढूँढता रहा हैं। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में हमारी आकाश गंगा या मंदाकिनी सर्पिलाकार 'दुग्ध मेखला' (Milky way) है, जिसमें असंख्य तारा समूह हैं। उनमें से एक हमारा 'सौर परिवार' (Solar System) है, जिसमें सूर्य कुछ ग्रह, उपग्रह, उल्कापिण्ड, क्षुद्रग्रह, धूमकेतू आदि स्थित हैं। वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर ब्रह्माण्ड की आयु लगभग 14 अरब वर्ष, सौर मण्डल की आयु 10 अरब वर्ष एवं हमारी पृथ्वी की आयु 4.6 अरब वर्ष बतायी गई है। पृथ्वी पर पहले जल में सूक्ष्म वनस्पति एवं जीवों ने जन्म लिया, उसके पश्चात वायुमण्डल संगठित होता गया और जीवनदायिनी ऑक्सीजन गैस बढ़ती हुई 21% तक पहुँची, तत्पश्चात शनै–शनै पूरी पृथ्वी पर वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं का विस्तार हुआ।

पृथ्वी पर मानव का आगमन सबसे बाद में हुआ, मानव का जन्म पृथ्वी पर लगभग 20 लाख वर्ष पूर्व हुआ। जंगलों में रहता हुआ मानव सभ्यता की दहलीज पार कर, विकास के पथ पर बढ़ता हुआ वर्तमान स्थिति में पहुँचा है। इस दौर में मानव ने अग्नि एवं पहिये के प्रारम्भिक आविष्कार किये, जो मानव विकास में मील का पत्थर सिद्ध हुए। विकास के प्रत्येक दौर में प्रकृति ने मानव को एक मित्र एवं माँ की तरह स्नेह दिया और आगे बढ़ने का मार्ग भी बताया। इससे मानव एवं प्रकृति के मध्य पारस्परिक सम्बंध प्रगाढ़ बने। मानव ने प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये संसाधनों का उपयोग अपनी आवश्यकता, पसन्द और क्षमता अनुसार किया। प्रकृति में रूपान्तरण कर मनुष्य ने अपने सबसे बुद्धिमान प्राणी होने की बात भी सिद्ध की।

प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बंधों के फलस्वरूप, आकाश के नीचे पृथ्वी तल पर होने वाली समस्त घटनाएँ एवं अतः क्रियाऐं भूगोल में अध्ययन की जाती हैं। पृथ्वी तल भूगोल का आधार स्थल है, जिस पर अनेकानेक प्रकार की विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। विभिन्नतारूपी लक्षणों वाले पृथ्वीतल का शुद्ध, व्यवस्थित एवं तार्किक विश्लेषण तथा वर्णनात्मक व्याख्या ही वैज्ञानिक भूगोल है। आधुनिक भूगोल अन्तरा–अनुशासनिक विषय के रूप में विकसित हुआ है, जिसमें भौतिक, मानवीय एवं सामाजिक विज्ञानों का समाकलित अध्ययन किया जाता है। ये सभी विज्ञान आपस में विषय–सामग्री की अदला–बदली करते हैं और एक–दूसरे को बहुत गहराई से प्रभावित भी करते हैं।

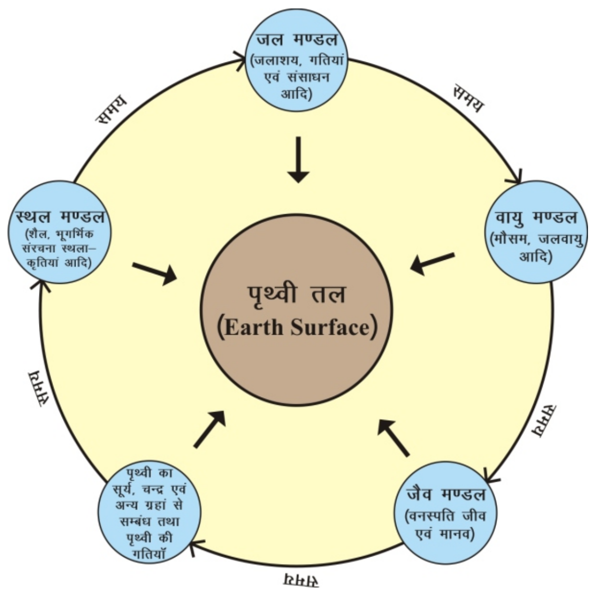

चित्र – 1.1
भूगोल–अन्तरा–अनुशासनिक एवं समाकलित विज्ञान के रूप में

अर्थ एवं परिभाषा :

'ज्योग्राफी' (Geography) अंग्रेजी भाषा का शब्द है, जो ग्रीक (यूनानी) भाषा में 'ज्योग्राफिया' (Geographia) शब्दावली से प्रेरित है। इसका शाब्दिक अर्थ 'पृथ्वी का वर्णन' करना है। 'ज्योग्राफिया' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनानी विद्वान 'इरैटॉस्थनीज' (Eratosthenes 276–194 ई. पू.) ने किया था, इसके पश्चात विश्व स्तर पर इस 'पृथ्वी के विज्ञान' विषय को 'ज्योग्राफी' (भूगोल) नाम से जाना जाने लगा। यूनानी एवं रोमन अधिकांश विज्ञानों ने पृथ्वी को 'चपटा' या 'तस्तरीनुमा' माना, जबकि भारतीय साहित्य में पृथ्वी एवं अन्य आकाशीय पिण्डों को हमेशा 'गोलाकार' मान कर वर्णन किया। इसलिए इस विज्ञान को 'भूगोल' के नाम से जाना जाता है।

भूगोल 'पृथ्वी तल' या भू तल (Earth surface) का विज्ञान है। इसमें 'स्थान' (Space) व उसके 'विविध लक्षणों' (Variable Characters), वितरणों (Distributions) तथा 'स्थानिक सम्बंधों' (Spatial Relations) का 'मानवीय संसार' (World of man) के रूप में अध्ययन किया जाता हैं। 'पृथ्वी तल' भूगोल की आधारशिला है, जिस पर सभी भौतिक मानवीय घटनाएँ एवं अन्तः कियाएँ सम्पन्न होती रही हैं। ये सभी क्रियाएँ 'समय' एवं 'स्थान' के परिवर्तनशील सम्बन्ध में घटित हो रही है। 'पृथ्वी तल' का भौगोलिक शब्दार्थ बहुत व्यापक है, जिसमें स्थल मण्डल, जल मण्डल, वायुमण्डल, जैव मण्डल, पृथ्वी पर सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रभाव एवं पृथ्वी की गतियों का वैज्ञानिक आंकलन किया जाता है (चित्र नं.1)।

भूगोल विषय का 'कैन्वस' (चित्रपटल) बहुत विस्तृत है। आदिकाल से वर्तमान तक के विकास काल में इस विषय की परिभाषा, प्रकृति एवं दर्शन में समयानुसार परिवर्तन होते रहे हैं। इसका विस्तार मानव के पारस्परिक सम्बंधों के साथ विविधता रूपी स्थानिक लक्षणों, वितरण, प्रादेशिक, व्यवहारिक एवं समाज कल्याणकारी विज्ञान के रूप में उभर कर आया हैं। इतने विस्तृत विज्ञान को कुछ शब्दों में सीमांकित कर परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, फिर भी अनेक भूगोलवेत्ताओं ने ये सराहनीय कार्य किया है। इनमें से कुछ उत्तम परिभाषाएँ जो अपने विकसित एवं समाज के लिए अधिक अर्थपूर्ण स्वरूप को प्रतिबिम्बित करती हैं, यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। शब्दकोष में मिलने वाली साधारण परिभाषा ''भूगोल पृथ्वी तल और मानव के पारस्परिक सम्बंधों का विज्ञान है।''

मध्यकालीन, भूगोलवेत्ताओं वारेनियस, इमेनुएल कान्ट तथा जॉन एवं जार्ज फॉर्स्टर (पिता एवं पुत्र) ने भूगोल को आनुभविक एवं वैज्ञानिकता का जामा पहनाया। जिसमें भौगोलिक ज्ञान प्राप्ति का मार्ग पर्यवेक्षणों, प्रयोगों, नवीनतम यन्त्रों और तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित बनाया गया। इन्होंने पृथ्वी का अध्ययन 'मानव गृह' के रूप में किये जाने पर जोर दिया।

इसी क्रम को जर्मन भूगोलवेत्ताओं हम्बोल्ट एवं रिटर ने 19वीं शताब्दी में जारी रखा और तेजी से 'नवीन भूगोल' के रूप में आगे बढ़ाया। दोनों ने 'पृथ्वी की एकता' (पार्थिव एकता) पर बल दिया। जिसमें पृथ्वी को एक 'भौगोलिक इकाई' माना गया तथा समन्वय पर अधिक जोर दिया गया। हम्बोल्ट ने भूगोल में 'क्रमबद्ध' एवं रिटर ने 'प्रादेशिक' अध्ययन की वकालत की तथा पृथ्वी की एकरूपता को स्वीकार करते हुए इसे 'मानव का घर' बताया। इसी सदी में जर्मन भूगोलवेत्ताओं रिक्थोफेन और हेटनर ने भूगोल को विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों के विषम लक्षणों वाला विज्ञान बताया तथा 'स्थानिक सम्बंधों' पर भी बल दिया।

संयुक्त राज्य अमरीका के भूगोलवेत्ता रिचर्ड हार्टशॉर्न ने 1959 में भूगोल को परिभाषित करते हुए कहा, ''भूगोल पृथ्वी सतह के विविधतारूपी लक्षणों का शुद्ध, व्यवस्थित एवं तार्किक वर्णन एवं व्याख्या का अध्ययन है।'' यह परिभाषा भूगोल को अधिक वैज्ञानिकता प्रदान कराती है तथा पृथ्वी के विविध लक्षणों की विवरणात्मक व्याख्या प्रस्तुत करती है।

ब्रिटिश भूगोलवेत्ता पीटर हैगेट ने 1975 में भूगोल को ''पृथ्वी तल पर मानव–वातावरण एवं प्रदेशों के स्थानिक तथा पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन'' बताया। भूगोल पृथ्वी तल के विविध लक्षणों का संगठित एवं संवेदनशील वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में उभरकर आया। इसके पश्चात भूगोल में मानववादी दृष्टिकोण लगातार विकसित होता गया और इसे 'मानव–उन्मुख भौगोलिक व्याख्याओं' का विज्ञान बनाया गया। 1990 के बाद से सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों एवं सार्वजनिक नीतियों के क्रियान्वयन में भौगोलिक ज्ञान अधिकतम उपयोग होने लगा। इससे भूगोल अधिक व्यवहारिक एवं समाज उपयोगी बनता गया और वर्तमान में इसे 'मानव कल्याणकारी' विज्ञान के रूप में देखा जाता है। जिसमें मानव की सभी समस्याओं का हल 'भौगोलिक ज्ञान' में निहित एवं देखा जा रहा है। इस प्रकार ''भूगोल पृथ्वीतल सम्बन्धित विविध लक्षणों का स्थानिक, संगठित, कल्याणकारी एवं संवेदी विज्ञान है।'' यह विज्ञान मानव की जिज्ञासाओं को शान्त कर भविष्य की राह प्रसस्त करता है।

भूगोल का विषय क्षेत्र एवं विषय सामग्री इतना व्यापक एवं आकर्षक है कि इसे सम्पूर्ण जीवन का विज्ञान समझा गया है। इस क्षेत्र में भौतिक एवं मानवीय पहलुओं का अद्भुत समायोजन हैं भौगोलिक अध्ययन में जलवायु, उच्चावच्च, भूआकृति, मिट्टी, महासागर, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु आदि प्राकृतिक विषय क्षेत्र से तथा मानव एवं उसकी सभी क्रियाएँ जैसे– प्रदेश, ऐतिहासिक पहलू, जनसंख्या सम्बन्धित घटनाएँ, अधिवास, राजनैतिक, कृषि, खनन, आर्थिकी, विपणन, मनोरंजन, परिवहन, चिकित्सा, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलू, सैन्य आदि गतिविधियाँ सम्मिलित की जाती हैं। सम्पूर्ण आकाश के नीचे घटित होने वाली समस्त पारस्परिक क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ एवं गतिविधियाँ भूगोल के विषय क्षेत्र तथा विषय सामग्री से सम्बंधित है। इनके अध्ययन में प्राचीन एवं आधुनिक तकनीकों तथा विधियों का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में आधुनिक तकनीकों एवं विधियों जैसे हवाई सर्वेक्षण, दूरस्थ संवेदन तकनीक संचार क्रान्ति, आधुनिक कम्प्यूटर आधारित मानचित्रकला आदि का उपयोग बढ़ जाने से विकास की परिभाषा ही बदल गयी है। आधुनिकता एवं प्रौद्योगिकी के प्रसार ने पृथ्वी की सतह का व्यापक एवं गहन 'मानवीकरण' हुआ है। जिससे भूगोल में आधुनिक शोध एवं

अनुसन्धान बढ़े, और मानव के लिए पृथ्वी पर बेहतर अस्तित्व के प्रयास भी विषय से गहनता से जुड़े हैं। भूगोल विषय का अधिक ''मानव केन्द्रित'' होने से मानव भूगोल सम्बंधित शाखाओं का प्रसार अधिकाधिक हुआ है, जिससे भौतिक भूगोल थोड़ा पृष्ठभूमि में चला गया है।

भूगोल में भौतिक एवं मानवीय पहलूओं और उनमें पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन किया जाता है। इसलिए प्रारम्भ से ही भूगोल विषय की दो प्रमुख शाखाएँ उभर कर आयी (i) भौतिक भूगोल, (ii) मानव भूगोल; कालान्तर में विशिष्टीकरण (1950 के पश्चात) बढ़ने से इन दो शाखाओं की अनेक उप शाखाएँ विकसित होती गयी, जिससे विषय सामग्री एवं विषय क्षेत्र में समृद्धि आती गई। भूगोल की प्रमुख शाखाएँ एवं उप शाखाएँ निम्नलिखित हैं –

सारणी–1.1

भूगोल की शाखाऐं (Branches of Geography)

भौतिक भूगोल (Physical Geography)

1. भू गणित (Geodesy)
2. भू भौतिकी (Geophysics)
3. खगोलीय भूगोल (Astronomical Geog.)
4. भू आकृति विज्ञान (Geomorphology)
5. जलवायु विज्ञान (Climatology)
6. समुद्र विज्ञान (Oceanography)
7. जल विज्ञान (Hydrology)
8. हिमनद विज्ञान (Glaciology)
9. मृदा विज्ञान (Soil-Geography)
10. जैव विज्ञान (Bio-Geography)
11. चिकित्सा भूगोल (Medical Geography)
12. पारिस्थितिकी / पर्यावरण भूगोल (Ecology/ Environment Geography)
13. मानचित्र कला (Cartography)

मानव भूगोल (Human Geography)

1. आर्थिक भूगोल (Economic Geography)
2. कृषि भूगोल (Agricultural Geography)
3. संसाधन भूगोल (Resource Geography)
4. औद्योगिक भूगोल (Industrial Geography)
5. परिवहन भूगोल (Transport Geography)
6. जनसंख्या भूगोल (Population Geography)
7. अधिवास भूगोल (Settlement Geography)
   (i) नगरीय भूगोल (Urban Geography)
   (ii) ग्रामीण भूगोल (Rural Geography)
8. राजनीतिक भूगोल (Political Geography)
9. सैन्य भूगोल (Military Geography)
10. ऐतिहासिक भूगोल (Historical Geography)
11. सामाजिक भूगोल (Social Geography)
12. सांस्कृतिक भूगोल (Cultural Geography)
13. प्रादेशिक नियोजन (Regional Planning)
14. दूरस्थ संवेदन व जी.आई.एस. (Remote Sensing and G.I.S.)

उल्लेखनीय है कि मानचित्रकला, सांख्यिकीय, सर्वेक्षण, गणितीय भूगोल, व्यावहारिक भूगोल तथा दूरस्थ संवेदन व जी. आई.एस. का उपयोग भूगोल की प्रत्येक शाखा व उपशाखा में होता है। संसाधन उपयोग व संरक्षण तथा प्रादेशिक व राष्ट्रीय विकास योजनाओं के लिए इन शाखाओं व उपशाखाओं का संयुक्त रूप से उपयोग किया जाता है। भूगोल का मुख्य उद्देश्य मानव विकास व उन्नति है। अमेरिकन भूगोलवेत्ता रिचर्ड हार्टशार्न ने भूगोल के उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है – ''पृथ्वी का मानवीय संसार के रूप में वैज्ञानिक रीति से वर्णन तथा विकास में योगदान करना ही भूगोल का उद्देश्य है।''

भौतिक भूगोल – एक परिचय
(अर्थ, परिभाषा, विषय–वस्तु एवं विषय क्षेत्र)
Physical Geography - An Introduction
(Meaning, Definition, Subject matter & Scope)

भौतिक भूगोल को भूगोल की मुख्य शाखा के रूप में माना जाता है। भौतिक भूगोल के तथ्य एवम् सिद्धांत सम्पूर्ण भूगोल विज्ञान के अध्ययन के सारभूत है। भूगोल एक सतत प्रगतिशील विज्ञान है। पिछली अर्द्ध शताब्दी में भौतिक भूगोल के विभिन्न क्षेत्रों में अनेकानेक अनुसंधानों, अन्वेषणों तथा शोधों के कारण नवीन जानकारियाँ तथा नवीन तथ्य प्राप्त हुए हैं, जिनसे भूगोल के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई है। उदाहरणार्थ भूआकृति विज्ञान (Geomorphology) के क्षेत्र में पृथ्वी की उत्पत्ति, भूपटल के निर्माण, स्थलरूपों तथा स्थलाकृतियों की उत्पत्ति तथा भू–आकृतिक उपक्रमों के रूप में प्रतिस्थापित हो चुकी है, जिसके माध्यम से पृथ्वी के आन्तरिक भाग की संरचना, महाद्वीपों एवम् महासागरों की उत्पत्ति, पर्वत निर्माण की प्रक्रिया, ज्वालामुखी, भूकम्प आदि अनेक भौगोलिक परिघटनाओं सम्बंधी अनुत्तरित प्रश्नों का समाधान एवम् रहस्यों पर से पर्दा उठना सम्भव हो सका है। बाह्य वायुमण्डल एवम् अन्तरिक्ष के विषय में भी नये–नये तथ्य तथा जानकारियाँ प्रकाश में आ रहीं हैं।

भूगोल के दो मुख्य पक्ष हैं– भौतिक अथवा प्राकृतिक वातावरण तथा मानव। किसी भी विज्ञान की उन्नति का एक प्रमाण इसके उपक्षेत्रों तथा विशेष अध्ययनों का विकास भी होता है। इस दृष्टि से आधुनिक भूगोल भी इसका अपवाद नहीं है। अध्ययन की सुविधा तथा विषय के विस्तार को ध्यान में रखते हुए भूगोल के दो स्पष्ट उपक्षेत्र या शाखाएँ विकसित हुई जो वर्तमान में भौतिक भूगोल एवम् मानव भूगोल के रूप में जानी जाती है। एक ओर भौतिक वातावरण के तत्व मानव को प्रभावित करते हैं, तो दूसरी ओर मनुष्य स्वयं एक भौगोलिक कारक के रूप में वातावरण में परिवर्तन करता रहता है। पृथ्वी एवम् मानव दोनों ही गतिमान एवम् परिवर्तनशील हैं। मानवीय क्रिया–कलापों तथा उससे उत्पन्न सांस्कृतिक वातावरण के तत्वों का अध्ययन मानव

भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है। लोबैक के अनुसार जीव और उसके भौतिक वातावरण के सम्बंधों का अध्ययन भूगोल की विषय वस्तु है तथा भौतिक वातावरण का अध्ययन भौतिक भूगोल है।

"The subject matter of geography may be defined as the study of the relationship existing between life and physical environment. The study of physical environment alone constitutes physiography." - Lobeck

भौतिक भूगोल का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Physical Geography)–

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भौतिक भूगोल, भूगोल रूपी वृहद् विज्ञान की एक महत्वपूर्ण एवम् आधारभूत शाखा है। विद्वान फिलिप (Philip) के शब्दों में 'भूगोल एक वृक्ष है जिसकी जड़ें भौतिक भूगोल की मिट्टी में स्थित है तथा इसकी शाखाएँ मानवीय, क्रिया–कलाप के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन करती है (The tree of geography has its roots in the soil of physical geography. Its branches cover every phase of human activity.)

अन्य विद्वानों ने भी भौतिक वातावरण के अध्ययन को भौतिक भूगोल की संज्ञा देते हुए पृथ्वीतल के धरातलीय स्वरूपों, सागरों एवम् महासागरों, जैव मण्डल तथा वायुमण्डल के अध्ययन को भौतिक भूगोल के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। यद्यपि वर्तमान में मानवीय क्रिया–कलापों के पक्षों के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है, किन्तु इससे भौतिक भूगोल के अध्ययन का महत्व कम नहीं हो जाता है। इसी कारण भौतिक भूगोल का प्रारंभिक एवम् सारभूत ज्ञान, भूगोल की किसी भी शाखा के अध्ययन में आवश्यक है। प्रसिद्ध विद्वान स्ट्रालर (Strahler) के अनुसार भौतिक भूगोल अनेक भूमि विज्ञानों (Earth Sciences) का समन्वित अध्ययन है, जो मानव के वातावरण का अध्ययन करते हैं।

पृथ्वी सतह पर धरातल एवम् स्थलाकृतियाँ सर्वत्र समान नहीं है तथा स्थलमण्डल का विस्तार भी सर्वत्र नहीं है। जलमण्डल का विस्तार स्थलमण्डल से लगभग ढाई गुना अधिक होने के साथ ही वायुमण्डल का आवरण भी पृथ्वी के चारों ओर है। उक्त तीनों मण्डल प्राकृतिक वातावरण के अभिन्न अंग होने के साथ ही परस्पर एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। यह प्राकृतिक वातावरण जैव मण्डल को प्रभावित करते हुए उसके साथ अन्तर्क्रिया करता है तथा इसका अध्ययन भौतिक भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है। यद्यपि सभी भूगोलवेत्ता भौतिक भूगोल के अध्ययन में जैवमण्डल को सम्मिलित करने के सम्बंध में एकमत नहीं हैं, किन्तु अब अधिकांश भूगोलवेत्ता भौतिक भूगोल की एक प्रमुख शाखा के रूप में वातावरण के तत्वों के स्थानिक प्रतिरूपों के प्रादेशिक प्रारूपों के कारणों की व्याख्या भी करता है, इसी के साथ स्थान तथा समय परिवेश में पर्यावरणीय तत्वों के परिवर्तनों की व्याख्या तथा उसके कारणों का अध्ययन करता है। अतः स्पष्ट है कि पृथ्वी पर स्थित जैव मण्डल भौतिक भूगोल के अध्ययन का मूल केन्द्र है जिसमें वायु, स्थल तथा जल का आवरण है, जिसके अन्तर्गत वनस्पति तथा प्राणी जगत का जीवन संभव हो पाता है (चित्र – 1.1)।

सही अर्थों में भौतिक भूगोल का जन्म पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ ही हो गया था जबकि मानव भूगोल की शाखा का जन्म मानव के उद्भव के बाद ही हुआ। अतः कहा जा सकता है कि भौतिक भूगोल का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं भूगोल विषय का है। भूगोल तथा भौतिक भूगोल दोनों एक दूसरे के पूरक है, क्योंकि भौतिक भूगोल में मुख्यतः पृथ्वी का ही अध्ययन किया जाता है तथा भूगोल का सम्बंध भी पृथ्वी से ही है। फिंच और ट्रिवार्था ने भूगोल को भूतल का विज्ञान (Science of Earth Surface) कहा है, जबकि आर्थर होम्स ने मानव के निवास–स्थल का अध्ययन (Study of man's Habitat) कहा है। अतः स्पष्ट है कि भौतिक भूगोल का सम्बंध विस्तृत और व्यापक है। वर्तमान समय में भौतिक भूगोल के अन्तर्गत भौतिक वातावरण के क्रमबद्ध अध्ययन के साथ ही साथ भौतिक वातावरण तथा मानव के मध्य पारस्परिक क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाने लगा है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि स्थलमण्डल, जल मण्डल, वायुमण्डल एवम् जैवमण्डल के क्रमबद्ध अध्ययन तथा इनके मध्य पारस्परिक क्रियाओं एवम् अन्तर्सम्बंधों को भौतिक भूगोल के अध्ययन के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है (चित्र – 1.2)।

भौतिक भूगोल के अन्तर्गत स्थलमण्डल, जलमण्डल एवम् वायुमण्डल तीनों अंगों के प्राकृतिक स्वरूपों के अन्तर्सम्बंधों एवम् उनसे उत्पन्न भूतल की प्राकृतिक भिन्नताओं की व्याख्या की जाती है। यद्यपि कुछ भूगोलवेत्ता भौतिक भूगोल को केवल प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन मानते हैं। कुछ भूगोलवेत्ताओं ने भौतिक भूगोल को इस प्रकार परिभाषित किया है–

कान्ट के अनुसार – ''भौतिक भूगोल विश्व के ज्ञान का प्रथम भाग है एवम् निश्चित ही विश्व का वस्तुबोध को समझने के लिये एक प्राथमिक आवश्यकता है।''

"Physical Geography is the first part of knowledge of world, indeed it is essential preliminary for understanding our perceptions of the world."

पियरे बाइरट के अनुसार – ''मानव सभ्यता से अप्रभावित पृथ्वी के दृश्य प्राकृतिक धरातल का अध्ययन भौतिक भूगोल है।''

"Physical Geography is the study of visible natural surface.....before the intervention of mankind......" Pierre Byrot."

आर्थर होम्स के अनुसार – ''भौतिक पर्यावरण का अध्ययन ही स्वयं में भौतिक भूगोल है, जिसके अन्तर्गत स्थलाकृति (भू–आकृति विज्ञान), सागरों व महासागरों (समुद्र विज्ञान) एवम् वायुमण्डल (मौसम व जलवायु विज्ञान) का अध्ययन सम्मिलित है।

"The study of the physical environment by itself is physical geography, which includes consideration of the surface relief of the globe (Geomorphology), of the seas and oceans (Oceanography) and of the air (Meteorology and Climatology)." A. Holmes

आर्थर होम्स ने उपरोक्त परिभाषा द्वारा मोटे रूप में भौतिक भूगोल के तीन घटक माने हैं, जो स्थलमण्डल, जलमण्डल एवम् वायुमण्डल के रूप में है।

लोबैक के अनुसार – ''भौतिक वातावरण एवम् जीवन के अन्तर्सम्बंध का अध्ययन भौतिक भूगोल है।

"Physical Geography is the study of the interrelationship of the physical environment and life." A.K. Lobeck

केन के अनुसार – ''भौतिक वातावरण का अध्ययन ही भौतिक भूगोल है।''

"The study of the physical environment is called Physical Geography." H.R. Cain

हैमण्ड व हॉर्न के अनुसार – ''भौतिक भूगोल प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन से सम्बंधित है।

"The study of physical Geography deals with natural phenomena." Hammond & Horn.

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भौतिक एवं जैविक वातावरण के वितरण प्रारूपों एवम् अन्तर्सम्बंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन भौतिक भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है और इन भौतिक एवम् जैविक वातावरण के विभिन्न अवयवों एवम् उनकी अन्तर्क्रिया को भूतल भौतिक भूगोल के अन्तर्गत आधार प्रदान करता है। स्ट्रालर का मत है कि भौतिक भूगोल के अन्तर्गत विभिन्न प्राकृतिक विज्ञानों की विषय–वस्तु का उपयोग भौतिक एवम् जैविक वातावरण के अन्तर्सम्बंध को भली भांति समझने के लिये किया जाता है (चित्र 1.2)।

उनके मतानुसार एक अत्यन्त सीमित परत जिसे उन्होंने जैविक परत (Life Layer) कहा है, के अन्तर्गत मानव एवम् उसके भौतिक वातावरण की अन्तर्क्रिया होती है। वायुमण्डल–स्थलमण्डल एवम् वायुमण्डल–जलमण्डल के मिलन की पतली परत का यह सम्पर्क क्षेत्र (Contact Zone) है। उनके इस सम्पर्क क्षेत्र को अन्तरापृष्ठ (Interfaces) भी कहा जा सकता है। विभिन्न भौतिक शक्तियों की गहन क्रियाऐं एवम् प्रतिक्रियाऐं उक्त सम्पर्क क्षेत्र में होती रहती हैं तथा इन क्रिया–प्रतिक्रियाओं का एवम् उनके परिणामों का वितरण अत्यन्त असमान पाया जाता है, जैविक परत की स्थानिक भिन्नता का वितरण अत्यन्त असमान पाया जाता है। उनका मानना है कि जैविक परत की स्थानिक भिन्नता का अध्ययन भौतिक भूगोल में किया जाता है। मानव भूतल पर निवास करता है तथा भौतिक वातावरण से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अतः उसकी जिज्ञासा अपने भौतिक वातावरण एवम् उसकी स्थानिक भिन्नताओं को अधिकाधिक समझने की प्रारम्भ से ही स्वाभाविक रूप से रही है। (चित्र 1.2)

भौतिक भूगोल की प्रकृति एवम् अध्ययन क्षेत्र (Nature & Scope of Physical Geography)–

भूतल, भौतिक भूगोल के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है। भौतिक भूगोल का प्रारम्भिक ज्ञान भूगोल की किसी भी शाखा के अध्ययन से अधिक आवश्यक है। भौतिक वातावरण से न केवल मानव का प्रत्येक क्रिया–कलाप अपितु पृथ्वी का कोई भी घटक अप्रभावित नहीं है। वायु, जल तथा स्थल तीनों भागों में भौतिक तथ्यों का समावेश मिलता है तथा तीनों परस्पर में सम्बंधित है।

भौतिक वातावरण का प्रमुख गुण परिवर्तन है, अतः भौतिक परिस्थितियों के वितरण के ज्ञान के साथ ही परिवर्तनशीलता का भी अध्ययन भौतिक भूगोल में समाहित है। इस परिवर्तनशीलता के समायोजन से ही विभिन्न भौतिक परिस्थितियों की उत्पत्ति होती है। भौतिक भूगोल के अन्तर्गत निम्न चार प्रमुख अंगों यथा स्थलमण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल एवम् जैवमण्डल का विशद् अध्ययन किया जाता है।

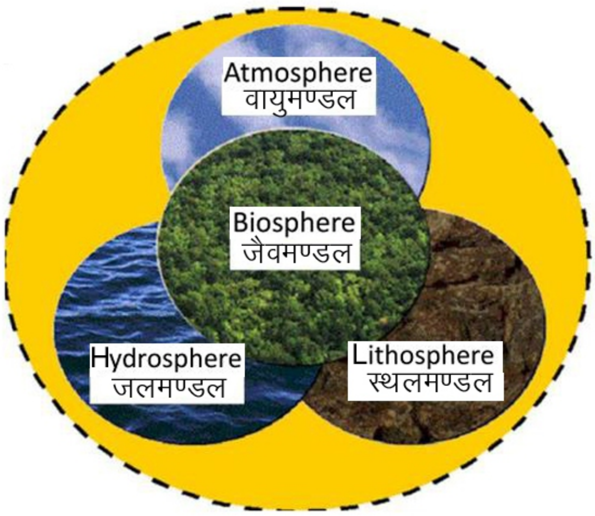

चित्र 1.2
भौतिक भूगोल के घटकों की अन्तर्क्रिया

1. स्थलमण्डल (Lithosphere) – पृथ्वीतल पर स्थित समस्त स्थलखण्डों तथा उनके विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन मुख्य रूप से स्थलमण्डल के अन्तर्गत किया जाता है। जिन अवस्थाओं एवम् प्रक्रियाओं के फलस्वरूप भूतल वर्तमान दशा में पहुँचा है उस पर भी विचार करके अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में मुख्यतः पृथ्वी का भू–वैज्ञानिक इतिहास, भूगर्भ की रचना शैलों के प्रकार, ढाल, अन्तर्जात एवम् बर्हिजात बल, संरचना, प्रक्रम, अवस्था आदि सम्मिलित है। भूआकृति–विज्ञान (Geomorphology) के अन्तर्गत स्थलमण्डल की विभिन्न आकृतियों का अध्ययन किया जाता है। स्थलमण्डल के अन्तर्गत जिस भाग पर हम विचरण करते हैं तथा जिस गहराई तक हम इसका उपयोग करते हैं, सम्मिलित है। पृथ्वी का धरातल सर्वत्र समतल नहीं होकर अत्यन्त असमान है। इस धरातल पर कहीं विशाल मैदान है, तो कहीं पर गहरी–गहरी घाटियाँ, या विशाल पर्वत शिखर अथवा कहीं–कहीं पर छोटे–छोटे द्वीप स्थित है। विभिन्न भूगर्भिक शक्तियों व प्रक्रियाओं का महाद्वीपों के निर्माण से लेकर धरातल के विभिन्न स्वरूपों के निर्माण में योगदान रहा है। विभिन्न प्रकार की शैलों का निर्माण इन्हीं भूगर्भिक शक्तियों के परिणामस्वरूप ही होता है। अतः ये सभी तथ्य स्थल मण्डल के अंग है।

2. वायुमण्डल (Atmosphere) – वायु के आवरण द्वारा धरातल चारों ओर से घिरा हुआ है। धरातल पर समस्त वायुमण्डलीय दशाओं तथा जीवधारियों के लिए यही वायुमण्डल आवश्यक है। जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत इसका अध्ययन किया जाता है। वायुमण्डल की गैसें हमारे लिए महत्वपूर्ण, अद्भूत एवम् आधारभूत संसाधन है। वायुमण्डल भी भौतिक भूगोल के अन्य घटकों की भांति अत्यन्त परिवर्तनशील घटक है। मौसम के अन्तर्गत वायुमण्डलीय अल्पकालिक परिस्थितियों को तथा जलवायु के अन्तर्गत दीर्घकालिक परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है। इन वायुमण्डलीय परिघटनाओं के अन्तर्गत वायुमण्डल की संरचना, संगठन, ऊँचाई, तापमान, वायुदाब, पवनों की गति, दिशा, उत्पत्ति एवम् प्रकार, आर्द्रता के रूप, वायुराशियाँ एवम् विक्षोभ, विश्व की जलवायु, मेघाच्छादन, वृष्टि आदि सम्मिलित है।

3. जलमण्डल (Hydrosphere) – पृथ्वी का दो–तिहाई से अधिक क्षेत्र जल द्वारा घिरा है। जलमण्डल में पृथ्वीतल पर विस्तृत समुद्रों एवम् महासागरों से सम्बंध रखने वाले विभिन्न तथ्यों का अध्ययन होता है। जल का संघटन छोटे अथवा बड़े जलाशयों में भिन्न–भिन्न पाया जाता है। गहराई के साथ भी जल में व्यापक भिन्नताएँ पाई जाती है। जलमण्डल में सागरों एवम् महासागरों की उत्पत्ति एवम् वितरण, समुद्री नितल, जल के भौतिक एवम् रसायनिक गुण एवम् संरचना, जल संचार, महासागरीय निक्षेप, महासागरों में तापमान, लवणता, घनत्व, ज्वारभाटा, प्रवाल–भित्तियाँ, लहरें, धाराएँ आदि का अध्ययन किया जाता है। जल मण्डल में विभिन्न प्रकार की गतियाँ पाई जाती है। जैविक एवम् अजैविक संसाधनों का अतुल भण्डार भी जलमण्डल में पाया जाता है। उपरोक्त सभी तथ्यों का अध्ययन जल मण्डल के अंग के रूप में किया जाता है।

4. जैवमण्डल (Biosphere) – धरातल एवम् वायुमण्डल के मध्य मिट्टी, वनस्पति एवम् जीव–जन्तुओं की परत के रूप में विस्तृत एक संकीर्ण पेटी जैवमण्डल कहलाती है। जैवमण्डल के अन्तर्गत समस्त प्रकार के जीवों, जिसमें मानव, जन्तु एवम् वनस्पति सम्मिलित है, की उत्पत्ति, विकास, वितरण, आवास, जीवन चक्र को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्व, सजीवों तथा पर्यावरण के मध्य पारस्परिक सम्बंध आदि विविध पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

भूमंडल (भू–आकृतियाँ, प्रवाह, उच्चावच), वायुमंडल (इसकी बनावट, संरचना, तत्त्व एवं मौसम तथा जलवायु, तापक्रम, वायुदाब, वायु, वर्षा, जलवायु के प्रकार इत्यादि) जलमंडल (समुद्र, सागर, झीलें तथा जल परिमंडल से संबद्ध तत्त्व) जैव मंडल (जीव के स्वरूप–मानव तथा वृहद् जीव एवं उनके पोषक प्रक्रम, जैसे– खाद्य श्रृंखला, पारिस्थैतिक प्राचल (Ecological parametres) एवं पारिस्थैतिक संतुलन) का अध्ययन सम्मिलित होता है। मिट्टियाँ मृदा–निर्माण प्रक्रिया के माध्यम से निर्मित होती है तथा वे मूल चट्टान, जलवायु, जैविक प्रक्रिया एवं कालावधि पर निर्भर करती है। कालावधि मिट्टियों को परिपक्वता प्रदान करती है तथा मृदा पार्श्विका (Profile) के विकास में सहायक होती है। मानव के लिए प्रत्येक तत्त्व महत्वपूर्ण है। भू–आकृतियाँ आधार प्रस्तुत करती है जिस पर मानव क्रियाएँ संपन्न होती हैं। मैदानों का प्रयोग कृषि कार्य के लिए किया जाता है, जबकि पठारों पर वन तथा खनिज संपदा की प्रचुरता होती है। पर्वत, चरागाहों, वनों, पर्यटक स्थलों के आधार तथा निम्न क्षेत्रों को जल प्रदान करने वाली नदियों के स्रोत होते हैं। जलवायु हमारे घरों के प्रकार, वस्त्र, भोजन को प्रभावित करती है। जलवायु का वनस्पति, शस्य प्रतिरूप, पशुपालन एवं (कुछ) उद्योगों आदि पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

भौतिक भूगोल प्राकृतिक संसाधनों के मूल्यांकन एवं प्रबंधन से संबंधित विषय के रूप में विकसित हो रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भौतिक पर्यावरण एवं मानव के मध्य संबंधों को समझना आवश्यक है। भौतिक पर्यावरण संसाधन प्रदान करता है एवं मानव इन संसाधनों का उपयोग करते हुए अपना आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास सुनिश्चित करता है, तकनीकी सहायता से संसाधनों के बढ़ते उपयोग ने विश्व में पारिस्थैतिक असंतुलन उत्पन्न कर दिया है। अतएव सतत् विकास (Sustainable development) के लिए भौतिक वातावरण का ज्ञान नितांत आवश्यक है जो भौतिक भूगोल के महत्व को रेखांकित करता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भूगोल विषय की मुख्य शाखा भौतिक भूगोल है। भूगोल के दो मुख्य पक्ष–भौतिक अथवा प्राकृतिक वातावरण तथा मानव।
2. जीव और उसके भौतिक वातावरण के सम्बंधों का अध्ययन भूगोल की विषय–वस्तु तथा भौतिक वातावरण का अध्ययन भौतिक भूगोल। भौतिक भूगोल से सम्बंधित कुछ परिभाषाओं में केवल भौतिक वातावरण के अध्ययन तो कुछ अन्य में जैविक वातावरण को भी सम्मिलित करने पर बल। इसकी विषय–वस्तु के मुख्य अंग–स्थलमण्डल, जल मण्डल, वायुमण्डल, जैवमण्डल, नवमण्डल सम्पर्क क्षेत्र या अन्तरापृष्ठ। भौतिक भूगोल के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु भूतल या पृथ्वी तल है।
3. भूगोल के अध्ययन में विशिष्टीकरण बढ़ने के साथ भौतिक भूगोल से बहुत सी शाखाएँ प्रस्फुटित हुई। भौतिक भूगोल की मुख्य शाखाएँ–भू–आकृति विज्ञान, खगोलीय भूगोल, जलवायु विज्ञान, मौसम विज्ञान, मृदा भूगोल, समुद्र विज्ञान, जल विज्ञान, हिमानी विज्ञान, भूगणित, भूभौतिकी, पारिस्थितिकी, जैव भूगोल आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. भौतिक भूगोल की जिस शाखा में तापमान, वायुदाब, पवनों की दिशा एवम् गति, आर्द्रता, वायुराशियाँ, विक्षोभ आदि के विषय में अध्ययन किया जाता है, वह है–
   (अ) खगोलीय भूगोल (ब) समुद्र विज्ञान
   (स) मृदा भूगोल (द) जलवायु विज्ञान

2. वह घटक जो भौतिक भूगोल के अंग के रूप में विवादस्पद है, वह है–
   (अ) वायुमण्डल
   (ब) जलमण्डल
   (स) स्थलमण्डल
   (द) जैव मण्डल
3. भूगोल की दो प्रमुख शाखाएँ हैं–
   (अ) कृषि भूगोल एवं आर्थिक भूगोल
   (ब) भौतिक भूगोलएवं मानव भूगोल
   (स) पादप भूगोल एवं जीव भूगोल
   (द) मौसम भूगोलएवं जलवायु भूगोल
4. किस भूगोलवेत्ता ने 'भूगोल' (Geography) शब्दावली का सर्वप्रथम उपयोग किया ?
   (अ) इरेटॉस्थेनीज
   (ब) हेरेडोइस
   (स) स्ट्रैबो
   (द) टॉलमी
5. पृथ्वी की आयु मानी जाती है–
   (अ) 4.8 अरब वर्ष
   (ब) 5.0 अरब वर्ष
   (स) 4.6 अरब वर्ष
   (द) 3.9 अरब वर्ष

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. ब्रह्माण्ड (Universe) से क्या तात्पर्य है?
7. सौर मण्डल (Solar System) से तात्पर्य है?
8. दुग्ध मेखला (Milky way) क्या है?
9. 'पृथ्वी तल' (Earth Surface) से तात्पर्य है?
10. जैव मण्डल (Biosphere) से तात्पर्य है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

11. भूगोल को परिभाषित कीजिए।
12. भूगोल का उद्देश्य बताइये।
13. 'प्रादेशिक विभिन्नता' से क्या तात्पर्य है?
14. भौतिक भूगोल और मानव भूगोल में क्या अन्तर है?
15. 'अन्तरा–अनुशासनिक' विज्ञान से क्या तात्पर्य है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. 'भूगोल एक वृक्ष है, जिसकी जड़ें भौतिक भूगोल में है।' इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
17. भौतिक भूगोल के विषय क्षेत्र (Scope) एवं विषय सामग्री (Subject matter) को समझाइए।
18. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि 'वर्तमान का भूगोल अधिक 'मानव केन्द्रित' हो गया है।' आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तरमाला – 1. द 2. द 3. ब 4. अ 5. स

अध्याय – 2

पृथ्वी एक ग्रह के रूप में
(Earth as a Planet)

पृथ्वी सौर परिवार में सूर्य से तीसरा, भौगोलिक एवं भूगर्भिक रूप से एक जीवन्त ग्रह है जहाँ अन्य ग्रहों की अपेक्षा जीवन का संगीत सुनाई व दिखाई देता है। इतने विशाल ब्रह्माण्ड में ऐसा नहीं हो सकता कि पृथ्वी के अतिरिक्त कहीं ओर जीवन न हो। लेकिन वर्तमान के वैज्ञानिक साक्ष्य एवं प्रमाण पृथ्वी पर ही जीवन होने के संकेत करते हैं। पृथ्वी पर जीवन सूर्य से एक निश्चित दूरी तथा आदर्श सौर्य ताप होने के कारण सम्भव हो पाया है। इस प्रकार की अवस्था को 'गोल्डीलाक्स पेटी' (Goldilocks Zone) के नाम से जाना जाता है। जिसमें सूर्य से एक निश्चित दूरी होने पर ग्रह पर जल द्रव्य अवस्था में पाया जाता है, जैसे पृथ्वी। इसी अवस्था वाले ग्रहों की खोज वैज्ञानिक कर रहे हैं, और कुछ ग्रह पृथ्वी जैसे वातावरण वाले प्राप्त भी हुए हैं जहाँ भविष्य में पृथ्वी जैसे जीवन का परिष्करण (Refinement) हो पायेगा, और मानव प्रजाति 'बहु ग्रहीय प्रजाति' बन जायेगी। वह दिन पृथ्वी एवं मानवता के लिए संक्रान्ति काल होगा।

पृथ्वी की उत्पत्ति

पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न दर्शनिकों व वैज्ञानिकों ने अनेक परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की है। इनमें से एक प्रारंभिक एवं लोकप्रिय मत जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कान्ट (Immanuel Kant) का है। 1796 ई. मे गणितज्ञ लाप्लेस (Laplace) ने इसमें संशोधन प्रस्तुत किया जो नीहारिका परिकल्पना (Nebular hypothesis) के नाम से जाना जाता है। इस परिकल्पना के अनुसार ग्रहों के निर्माण धीमी गति से घूमते हुए पदार्थों के बादल से हुआ जो कि सूर्य की युवा अवस्था से संबद्ध थे। बाद में 1900 ई. में चेम्बरलेन और मोल्टन (Chamberlain & Moulton) ने कहा कि ब्रह्मांड में एक अन्य भ्रमणशील तारा सूर्य के नजदीक से गुजरा। इसके परिणाम स्वरूप तारे के गुरूत्वाकर्षण से सूर्य सतह से सिगार के आकार का कुछ पदार्थ निकलकर अलग हो गया। यह तारा जब सूर्य से दूर चला गया तो सूर्य सतह से बाहर निकला हुआ यह पदार्थ सूर्य के चारों तरफ घूमने लगा और यही धीरे–धीरे संघनित होकर ग्रहों के रूप में परिवर्तित हो गया। पहले सर जेम्स जींस (Sir James Jeans) और बाद में सर हॅरोल्ड जैफरी (Sir Harold Jeffrey) ने इस मत का समर्थन किया। यद्यपि कुछ समय बाद के तर्क सूर्य के साथ एक और साथी तारे के होने की बात मानते हैं। ये तर्क ''द्वैतारक सिद्धांत'' (Binary theories) के नाम से जाने जाते हैं। 1950 ई. में रूस के ऑटो शिमिड (Otto Schemid) व जर्मनी के कार्ल वाइजास्कर (Carl Welzascar) ने नीहारिका परिकल्पना (Nebular hypothesis) में कुछ संशोधन किया। उनके विचार से सूर्य एक सौर नीहारिका से घिरा हुआ था जो मुख्यतः हाइड्रोजन, हीलियम और धूलिकणों की बनी थी। इन कणों के घर्षण व टकराने (Collision) से एक चपटी तश्तरी की आकृति के बादल का निर्माण हुआ और अभिवृद्धि (Accretion) प्रक्रम द्वारा ही ग्रहों का निर्माण हुआ। इसके पश्चात्, वैज्ञानिकों ने पृथ्वी या अन्य ग्रहों की ही नहीं वरन् पूरे ब्रह्मांड की उत्पत्ति संबंधी समस्याओं को समझने का प्रयास किया।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति

आधुनिक समय में ब्रह्मांड की उत्पत्ति संबंधी सर्वमान्य सिद्धांत 'बिग बैंग सिद्धांत' (Big Bang Theory) है। इसे विस्तरित ब्रह्मांड परिकल्पना (Expanding Universe Hypothesis) भी कहा जाता है। 1929 ई. में एडविन हब्बल (Edwin Hubble) ने प्रमाण दिये कि ब्रह्मांड का विस्तार हो रहा है। समय गुजरने के साथ आकाशगंगाएँ एक दूसरे से दूर हो रही हैं। आप प्रयोग कर जान सकते हैं कि ब्रह्मांड विस्तार का क्या अर्थ है। एक गुब्बारा लें और उस पर कुछ निशान लगाएँ जिनको आकाशगंगायें मान लें। जब आप इस गुब्बारे को फुलाएँगे, तब गुब्बारे पर लगे ये निशान गुब्बारे के फैलने के साथ एक दूसरे से दूर जाते प्रतीत होंगे। इसी प्रकार आकाशगंगाओं के बीच की दूरी भी बढ़ रही है और परिणामस्वरूप ब्रह्मांड विस्तारित हो रहा है। यद्यपि आप यह पाएँगे कि गुब्बारे पर लगे चिह्नों के बीच की दूरी के अतिरिक्त, चिह्न स्वयं भी बढ़ रहे हैं। जबकि यह तथ्य के अनुरूप नहीं हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि आकाशगंगाओं के बीच

की दूरी बढ़ रही है, परंतु प्रेक्षण आकाशगंगाओं के विस्तार को नहीं सिद्ध करते। अतः गुब्बारे का उदाहरण आंशिक रूप से ही मान्य है। बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड का विस्तार निम्न अवस्थाओं में हुआ है :

(i) आरम्भ में वे सभी पदार्थ, जिनसे ब्रह्मांड बना है, अति छोटे गोलक (एकाकी परमाणु) के रूप में एक ही स्थान पर स्थित थे। जिसका आयतन अत्यधिक सूक्ष्म एवं तापमान तथा घनत्व अनंत था।

(ii) बिग बैंग की प्रक्रिया में इस अति छोटे गोलक में भीषण विस्फोट हुआ। इस प्रकार की विस्फोट प्रक्रिया से वृहत् विस्तार हुआ। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि बिग बैंग की घटना आज से 14 अरब वर्षों पहले हुई थी। ब्रह्मांड का विस्तार आज भी जारी है। विस्तार के कारण कुछ ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित हो गई। विस्फोट (Bang) के बाद एक सैंकेंड के अल्पांश के अंतर्गत ही वृहत् विस्तार हुआ। इसके बाद विस्तार की गति धीमी पड़ गई। बिग बैंग होने के आरंभिक तीन मिनट के अंतर्गत ही पहले परमाणु का निर्माण हुआ।

(iii) बिग बैंक से 3 लाख वर्षों के दौरान, तापमान लगभग 4200 डिग्री सेन्टीगेड तक गिर गया और परमाणुवीय पदार्थ का निर्माण हुआ। ब्रह्मांड पारदर्शी हो गया।

ब्रह्मांड के विस्तार का अर्थ है आकाशगंगाओं के बीच की दूरी में विस्तार का होना। हॉयल (Hoyle) ने इसका विकल्प 'स्थिर अवस्था संकल्पना' (Steady State Concept) के नाम से प्रस्तुत किया। इस संकल्पना के अनुसार ब्रह्मांड किसी भी समय में एक ही जैसा रहा है। यद्यपि ब्रह्मांड के विस्तार संबंधी अनेक प्रमाणों के मिलने पर वैज्ञानिक समुदाय अब ब्रह्मांड विस्तार सिद्धांत के ही पक्षधर हैं।

तारों का निर्माण

प्रारंभिक ब्रह्मांड में ऊर्जा व पदार्थ का वितरण समान नहीं था। घनत्व में आरंभिक भिन्नता से गुरूत्वाकर्षण बलों में भिन्नता आई, जिसके परिणामस्वरूप पदार्थ का एकत्रण हुआ। यही एकत्रण आकाशगंगाओं के विकास का आधार बना। एक आकाशगंगा असंख्य तारों का समूह है। आकाशगंगाओं का विस्तार इतना अधिक होता है कि उनकी दूरी हजारों प्रकाश वर्ष में (Light years) मापी जाती है। एक अकेली आकाशगंगा का व्यास 80 हजार से 1 लाख 50 हजार प्रकाश वर्ष के बीच हो सकता है। एक आकाशंगंगा के निर्माण की शुरूआत हाइड्रोजन गैस से बने विशाल बादल के संचयन से होती है जिसे नीहारिका (Nebula) कहा गया। क्रमशः इस बढ़ती हुई नीहारिका में गैस के झुंड विकसित हुए। ये झुंड बढ़ते–बढ़ते घने गैसीय पिंड बने, जिनसे तारों का निर्माण आरंभ हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता है कि तारों का निर्माण लगभग 5 से 6 अरब वर्ष पहले हुआ।

> प्रकाश वर्ष (Light year) समय का नहीं वरन् दूरी का माप है। प्रकाश की गति 3 लाख कि.मी. प्रति सैकंड है। एक साल में प्रकाश 9.5 खरब कि.मी. की दूरी तय करेगा, वह एक प्रकाश वर्ष होगा। पृथ्वी व सूर्य की औसत दूरी 14 करोड़ 98 हजार किलोमीटर है। प्रकाश वर्ष के संदर्भ में यह प्रकाश वर्ष का केवल 8 मिनिट है।

ग्रहों का निर्माण

ग्रहों के विकास की निम्नलिखित अवस्थाएँ मानी जाती हैं :

(i) तारे नीहारिका के अंदर गैस के गुंथित झुंड है। इन गुंथित झुंडों में गुरूत्वाकर्षण बल से गैसीय बादल में क्रोड का निर्माण हुआ और इस गैसीय क्रोड के चारों तरफ गैस व धूलकणों की घूमती हुई तश्तरी (Rotating disc) विकसित हुई।

(ii) अगली अवस्था में गैसीय बादल का संघनन आरंभ हुआ और क्रोड को ढकने वाला पदार्थ गोले संसंजन (अणुओं में पारस्परिक आकर्षण) प्रक्रिया द्वारा ग्रहाणुओं (Planetesimals) में विकसित हुए। संघटन (Collision) की क्रिया द्वारा बड़े पिंड बनने शुरू हुए और गुरूत्वाकर्षण बल के परिणामस्वरूप ये आपस में जुड़ गए। छोटे पिंडों की अधिक संख्या ही ग्रहाणु है।

(iii) अंतिम अवस्था में इन अनेक छोटे ग्रहाणुओं के सहवर्धित होने पर कुछ बड़े पिंड ग्रहों के रूप में बने।

सौरमंडल

हमारे सौरमंडल में आठ ग्रह हैं। नीहारिका को सौरमण्डल का जनक माना जाता है उसके ध्वस्त होने व क्रोड के बनने की शुरूआत लगभग 5 से 5.6 अरब वर्षों पहले हुई एवं ग्रह लगभग 4.6 से 4.56 अरब वर्षों पहले बने। हमारे सौरमंडल में सूर्य (तारा), 8 ग्रह, 183 उपग्रह, लाखों छोटे पिंड जैसे– क्षुद्र ग्रह (ग्रहों के टुकड़े) (Asteroids), धूमकेतु (Comets) एवं वृहद् मात्रा में धूलिकण व गैस हैं।

इन आठ ग्रहों में बुध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल भीतरी ग्रह (Inner planets) कहलाते हैं, क्योंकि ये सूर्य व क्षुद्रग्रहों की पट्टी के बीच स्थित है। अन्य चार ग्रह बाहरी ग्रह (Outer planets) कहलाते हैं। पहले चार ग्रह पार्थिव (Terrestrial) ग्रह भी कहे जाते हैं। इसका अर्थ है कि ये ग्रह पृथ्वी की भाँति ही शैलों और धातुओं से बने हैं और अपेक्षाकृत अधिक घनत्व वाले ग्रह हैं। अन्य चार ग्रह गैस से बने विशाल ग्रह या जोवियन (Jovian) ग्रह कहलाते हैं। जोवियन का अर्थ है बृहस्पति (Jupiter) की तरह। इनमें से अधिकतर पार्थिव ग्रहों से विशाल है और हाइड्रोजन व हीलीयम से बना सघन वायुमंडल है। सभी ग्रहों का निर्माण लगभग 4.6–4.56 अरब वर्षों पहले एक साथ में हुआ।

सारणी 2.1
सौरमंडल

ग्रह	बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	बृहस्पति	शनि	अरूण	वरूण
दूरी '	0.387	0.723	1.000	1.524	5.203	9.539	19.182	30.058
घनत्व @	5.44	5.245	5.517	3.945	1.33	0.70	1.17	1.66
अर्धव्यास #	0.383	0.949	1.000	0.533	11.19	9.460	4.11	3.88
उपग्रह	0	0	1	2	67	62	27	14

* सूर्य से दूरी खगोलीय एकक में है। अर्थात् अगर पृथ्वी की मध्यमान दूरी 14 करोड़ 95 लाख 98 हजार कि.मी. एक एकक के बराबर है।
@ घनत्व ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर (gm/cm^3)
# अर्धव्यास : अगर भूमध्यरेखीय अर्धव्यास 6378.137 कि.मी. = 1 है।

(i) पार्थिव ग्रह जनक तारे के बहुत बहुत समीप बनें जहाँ अत्यधिक तापमान के कारण गैसें संघनित नहीं हो पाई और घनीभूत भी न हो सकीं। जोवियन ग्रहों की रचना अपेक्षाकृत अधिक दूरी पर हुई।
(ii) सौर वायु सूर्य के नजदीक ज्यादा शक्तिशाली थी। अतः पार्थिव ग्रहों से ज्यादा मात्रा में गैस व धूलकण उड़ा ले गई। सौर पवन इतनी शक्तिशाली न होने के कारण जोवियन ग्रहों से गैसों को नहीं हटा पाई।
(iii) पार्थिव ग्रहों के छोटे होने से इनकी गुरूत्वाकर्षण शक्ति भी कम रही जिसके परिणामस्वरूप इनसे निकली हुई गैस इन पर रूकी नहीं रह सकी।

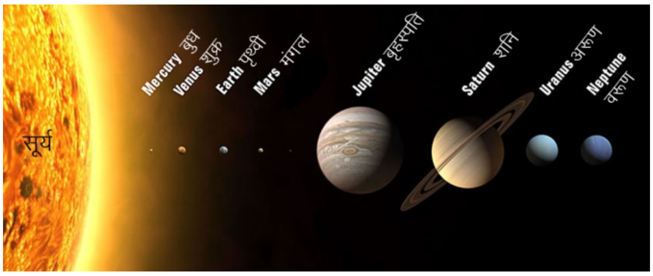

चित्र 2.1
सौरमण्डल एवं ग्रह

अभी तक प्लूटो को भी एक ग्रह माना जाता था। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय खगोलिकी संगठन ने अपनी बैठक (अगस्त 2006) में प्लूटो को 'बोने ग्रह' (Dwaft planet) के रूप में माना। 'प्लूटो' वामन ग्रह के कुल 05 प्राकृतिक उपग्रह हैं। हमारे सौरमंडल से संबंधित कुछ तथ्य सारणी 2.1 में दिए गए हैं।

चंद्रमा

चंद्रमा पृथ्वी का एकमात्र प्राकृतिक उपग्रह है। पृथ्वी की तरह चंद्रमा की उत्पत्ति संबंधी मत प्रस्तुत किए गए हैं। सन् 1838 ई. में सर जार्ज डार्विन (Sir George Darwin) ने सुझाया कि प्रारंभ में पृथ्वी व चंद्रमा तेजी से घूमते एक ही पिंड थे। यह पूरा पिंड डंबल (बीच से पतला व किनारों से मोटा) की आकृति में परिवर्तित हुआ और फिर टूट गया। उनके अनुसार चंद्रमा का निर्माण उसी पदार्थ से हुआ है जहाँ आज प्रशांत महासागर एक गर्त के रूप में मौजूद है।

ऊष्मा उ ... ताप से
पदार्थ पि ... के दौरान
और उत्प ... रण, पृथ्वी
आंशिक ... मान की
अधिकता ... श्रण वाले
पदार्थ घ ... ए। इसी
अलगाव ... चले गए
और हल् ... तरफ आ
गए। सम ... परिवर्तित
होकर छो ... पपड़ी के
रूप में वि ... दार्थों के
पृथक हो ... on) कहा
जाता है। ... (Giant Impact) के कारण, पृथ्वी का तापमान पुनः बढ़ा था फिर ऊर्जा उत्पन्न हुई और यह विभेदन का दूसरा चरण था। विभेदन की इस प्रक्रिया द्वारा पृथ्वी का पदार्थ अनेक परतों में अलग हो गया। पृथ्वी के धरातल में क्रोड तक कई परतें पाई जाती है। जैसे पर्पटी (Crust), प्रावार (Mantle), बाह्य क्रोड (Outer core) और आंतरिक क्रोड (Inner core)। पृथ्वी के ऊपरी भाग से आंतरिक भाग तक पदार्थ का घनत्व बढ़ता है।

पुच्छल तारा (Comets) –

पुच्छल तारा (कॉमेट) हमारे सौरमण्डल के सबसे आकर्षक आकाशीय पिण्ड होते हैं। ये सूर्य के चारों ओर अपनी निश्चित अण्डाकार कक्षा में परिक्रमण करते हैं। इनके नाभिकीय भाग ठोस, चट्टानी होते हैं, जिसमें खनिज, हिमकण क्रिस्टल, धूलकण, कार्बन डाई ऑक्साइड, मोनो ऑक्साइड, मिथेन आदि गैसों का

आवरण होता है। इनमें से कुछ की कक्षा लाखों कि.मी. लम्बी होती है, जिससे सूर्य के पास आने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं।

ये जब सूर्य के निकट आते हैं तो उष्मा के कारण इनमें पाये जाने वाले पदार्थ एवं गैसें सूर्य के विपरित दिशा में फैल कर विकिरण और सौर हवाओं के प्रभाव से 'पुच्छ' (Tail) का निर्माण करती है। इनकी लम्बाई लाखों कि.मी. भी हो सकती है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर जल एवं जीवन 'कॉमेट' के माध्यम से प्राप्त हुआ है।

उल्का (Meteor) –

मंगल एवं बृहस्पति ग्रहों के मध्य असंख्य छोटे–बड़े चट्टानों के पिण्ड पाये जाते हैं, जो 'क्षुद्रग्रह' (Asteroid) कहलाते हैं। जब ये पिण्ड पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण में आते हैं तो वायुमण्डल से गुजरते हुए। घर्षण के कारण ये ज्वाला (अग्नि) पकड़ लेते हैं। आकाश से

सारणी–2.2
भूगर्भिक समय मापनी
(Geological Time Scale)

इयान (Eons)	महाकल्प (Era)	कल्प (Period)	युग (Epoch)	आयु / आधुनिक वर्ष पहले (Age/Years before present)	जीवन / मुख्य घटनाएँ (Life/ Major Events)
		चतुर्थ कल्प (Quatemary)	अभिमत अत्यन्त नूतन	0 से 10.000 10.000 से 20 लाख वर्ष	आधुनिक मानव आदिमानव (Homosapiens)
	नवजीवन (Cenzoic) (आज से 6.3 करोड़ वर्ष पहले)	तृतीय कल्प (Tertiary)	अतिनूतन अल्पनूतन अधिनूतन अदिनूतन पुरानूतन	20 लाख से 50 करोड़ 50 लाख से 2.4 करोड़ 2.4 लाख से 3.7 करोड 3.7 करोड़ से 5.8 करोड़ 5.8 करोड़ से 6.5 करोड़	आरंभिक मनुष्य के पूर्वज वनमानुष, फूल वाले पौधे और वृक्ष मनुष्य से मिलता–जुलता वनमानुष जंतु खरगोश (Rabbits and hare) छोटे स्तनपायीःचूहे आदि।
	मध्यजीवी (Mesozoic) 6.5 करोड़ से 24.5 करोड़ वर्ष पहले स्तनपायी	क्रोटोशियम जुरेसिक ट्रियासिक		6.5 करोड़ से 14.4 करोड़ 14.4 से 20.8 करोड़ 20.8 से 24.5 करोड़ वर्ष	डायनासोर का विलुप्त होना। डायनासोर का युग। मेंढ़क व समुद्री कछुआ।
	पुराजीव (24.5 करोड़ वर्ष से 57.0 करोड़ वर्ष पहले)	परमियन कार्बोनिफेरस डवोनियन प्रवालवदि / सिलरियन ऑडोविसयन कैम्ब्रियन		24.5 करोड़ से 28.6 वर्ष 36.0 से 40.8 करोड़ वर्ष 36.0 से 40.8 करोड़ 40.8 करोड़ से 43.8 करोड़ 43.8 से 50.5 करोड 50.5 से 57.0 करोड़ वर्ष	रेंगने वाले जीवों की अधिकता पहले रेंगने वाले जंतु–रीढ़ की स्थल व जल पर रहने वाले जीव हड्डी वाले पहले जीव पहली मछली स्थल पर कोई जीवन नहीं, जल में बिना रीढ़ की हड्डी वाले जीव।
प्रागजीव (Proterezoic) आद्य महाकल्प हेडियन	57 करोड़ से 4 अरब 80 करोड़ वर्ष पहले			57 करोड़ से अरब 50 करोड़ वर्ष 2.5 अरब से 3.8 अरब वर्ष पहले 3.8 अरब से 4.8 अरब वर्ष पहले	कई जोड़ों वाले जीव ब्लू–ग्रीन शैवालः एक कोशीय जीवाणु महाद्वीप व महासागरों का निर्माण महासागरों व वायुमंडल में कार्बनडाई आक्साइड की अधिकता
तारों की उत्पत्ति सुपरनोवा बिग बैग	5 अरब से 13.7 वर्ष पहले			5 अरब वर्ष पहले 12 अरब वर्ष पहले 13.7 अरब वर्ष पहले	सूर्य की उत्पत्ति ब्रह्मांड की उत्पत्ति

* अन्तिम तीन पंक्तियाँ बिग बैंग (Big Bang) से तारे की उत्पत्ति–संबंध

अग्नि के शोलों (Meteors) के रूप में पृथ्वी धरातल की तरफ आते हैं, इन्हें 'टूटते या गिरते तारों' (Shooting stars) के नाम से भी पुकारा जाता है। पृथ्वी पर इनकी राख ही पहुँच पाती है। जब ये पिण्ड आकार में बड़े होते हैं तथा वायुमण्डलीय घर्षण इन्हें राख में नहीं बदल पाता, तब पृथ्वी तल पर पहुँच कर 'बम्ब' की तरह टकराते हैं तथा भारी जन–धन की हानि होती है। ये 'उल्का पिण्ड' (Meteorite) कई खनिजों के बने होते हैं। जिनका अध्ययन कर हमारे वैज्ञानिक सौरमण्डल की रहस्यमयी गुत्थी सुलझाने का प्रयास करते हैं। अमेरिका के ऐरिजोना प्रान्त तथा साईबेरिया (रूस) में 'उल्का पिण्ड' गिरने से बड़े खड्डों या गर्तों (Creaters) का निर्माण हुआ जिसने कई कि.मी. क्षेत्रफल को प्रभावित किया।

वायुमण्डल एवं जलमण्डल का विकास

पृथ्वी के वायुमंडल की वर्तमान संरचना में नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन का प्रमुख योगदान है। वर्तमान वायुमंडल के विकास की तीन अवस्थाएँ हैं। इसकी पहली अवस्था में आदिकालिक वायुमंडलीय गैसों का ह्रास है। दूसरी अवस्था में, पृथ्वी के भीतर से निकली भाप एवं जलवाष्प ने वायुमंडल के विकास में सहयोग किया। अंत में वायुमंडल की संरचना को जैव मंडल के प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया (Photosynthesis) ने संशोधित किया।

प्रारंभिक वायुमंडल जिसमें हाइड्रोजन व हीलियम की अधिकता थी, सौर पवन के कारण पृथ्वी से दूर हो गया। ऐसा केवल पृथ्वी पर ही नहीं, वरन् सभी पार्थिव ग्रहों पर हुआ। अर्थात् सभी पार्थिव ग्रहों से, सौर पवन के प्रभाव के कारण, आदिकालिक वायुमंडल या तो दूर धकेल दिया गया या समाप्त हो गया। यह वायुमंडल के विकास की पहली अवस्था थी।

पृथ्वी के ठंडा होने और विभेदन के दौरान, पृथ्वी के अंदरूनी भाग से बहुत सी गैसें व जलवाष्प बाहर निकले। इसी से आज के वायुमंडल का उद्भव हुआ। आरंभ में वायुमंडल में जलवाष्प, नाइट्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन व अमोनिया अधिक मात्रा में, और स्वतंत्र ऑक्सीजन बहुत कम थी। वह प्रक्रिया जिससे पृथ्वी के भीतरी भाग से गैसें धरती पर आईं, इसे गैस उत्सर्जन (Degassing) कहा जाता है। लगातार ज्वालामुखी विस्फोट से वायुमंडल में जलवाष्प व गैस बढ़ने लगी। पृथ्वी के ठंडा होने के साथ–साथ जलवाष्प का संघनन शुरू हो गया। वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइ ऑक्साइड के वर्षा के पानी में घुलने से तापमान में और अधिक गिरावट आई। फलस्वरूप अधिक संघनन व अत्यधिक वर्षा हुई। पृथ्वी के धरातल पर वर्षा का जल गर्तों में इकट्ठा होने लगा, जिससे महासागर बनें। पृथ्वी पर उपस्थित महासागर पृथ्वी की उत्पत्ति से लगभग 50 करोड़ वर्षों में बनें। इससे हमें पता चलता है कि महासागर 400 करोड़ साल पुराने हैं। लगभग 380 करोड़ सालों पहले जीवन का विकास आरंभ हुआ। यद्यपि लगभग 250 से 300 करोड़ सालों पहले प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। लंबे समय तक जीवन केवल महासागरों तक सीमित रहा। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा ऑक्सीजन में बढ़ोतरी महासागरों की देन है। धीरे–धीरे महासागर ऑक्सीजन से संतृप्त हो गए और वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा 200 करोड़ वर्ष पूर्व पूर्णरूप से भर गई।

जीवन की उत्पत्ति

पृथ्वी की उत्पत्ति का अंतिम चरण जीवन की उत्पत्ति व विकास में संबंधित है। निःसंदेह पृथ्वी का आरंभिक वायुमंडल जीवन के विकास के लिए अनुकूल नहीं था। आधुनिक वैज्ञानिक, जीवन की उत्पत्ति को एक तरह की रासायनिक प्रतिक्रिया बताते हैं, जिससे पहले जटिल जैव (कार्बनिक) अणु (Complex organic molecules) बने और उनका समूहन हुआ। यह समूहन ऐसा था जो अपने आपको दोहराता था। (पुनः बनने में सक्षम था), और निजीर्व पदार्थ को जीवित तत्व में परिवर्तित कर सका। हमारे ग्रह पर जीवन के चिह्न अलग–अलग समय की चट्टानों में पाए जाने वाले जीवाश्म के रूप में हैं। 300 करोड़ साल पुरानी भूगर्भिक शैलों में पाई जाने वाली सूक्ष्मदर्शी संरचना आज की शैवाल (Blue gren algae) की संरचना से मिलती जुलती है। यह कल्पना की जा सकती है कि इससे पहले समय में साधारण संरचना वाली शैवाल रही होगी। यह माना जाता है कि जीवन का विकास लगभग 380 करोड़ वर्षों पहले आरंभ हुआ। एक कोशीय जीवाणु से आज के मनुष्य तक जीवन के विकास का सार भूवैज्ञानिक काल मापनी से प्राप्त किया जा सकता है। जो भूगर्भिक समय मापनी में दर्शाया गया है। (सारणी 2.2)

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. सौर्य परिवार में ग्रहों के दो वर्ग होते हैं–
   (अ) आन्तरिक ग्रह (बुध, शुक्र, पृथ्वी एवं मंगल)
   (ब) बाह्य ग्रह (बृहस्पति, शनि, अरूण, वरूण)
2. तारे से एक निश्चित दूरी तथा अनुकूलतम सौर्य ताप होने से किसी भी ग्रह पर पानी द्रव्य अवस्था में प्राप्त होता है, जिससे वहाँ जीवन पाये जाने की सम्भावना सर्वाधिक रहती है। ऐसी सीमा को 'गोल्डीलॉक्स पेटी' (Goldilocks zone) के नाम से जाना जाता है। पृथ्वी की सूर्य से स्थिति इसी सीमा में आने से यहाँ जीवन सम्भव हो पाया है।
3. पृथ्वी जैसे वातावरण वाले अनेक ग्रहों की खोज की गई है, जहाँ भविष्य में मानव, पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओं का संवर्धन कर नई पृथ्वी बनायी जा सकेगी। यह कार्य मानवता के लिए संक्रान्ति काल माना जायेगा।
4. आधुनिक मत से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति 'महा विस्फोट सिद्धान्त' (Big bang theory) से मानी जाती है। इसके प्रारम्भ में सभी शक्ति या ऊर्जा एक स्थान पर संकेन्द्रित थी। जिसमें अज्ञात कारणों से महा विस्फोट हुआ और वह ऊर्जा (धूल, वाष्प बादल, पदार्थ आदि) चारों ओर फैल गया। इसके पश्चात गुरूत्व के प्रभाव स्वरूप तथा ब्रह्म कणों के जुड़ाव से तारों, ग्रहों, निहारिकाओं आकाश गंगाओं आदि का निर्माण हुआ। इसी प्रक्रिया के अन्तिम चरणों में हमारे सौर परिवार की भी रचना हुई।

5. पृथ्वी के सम्पूर्ण इतिहास को चार बड़े महाकाल्पों में बाँटा गया है। जिसके अन्तिम महाकल्प 'सिनेजॉइक' (Conzoic) में मानव या मानव जैसे प्राणी की उपस्थिति पृथ्वी पर दर्ज हुई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. सूर्य से पृथ्वी की स्थिति है?
   (अ) चौथे स्थान पर
   (ब) दूसरे स्थान पर
   (स) तीसरे स्थान पर
   (द) पहले स्थान पर
2. आन्तरिक ग्रहों की सही स्थिति होती है?
   (अ) बृहस्पति के पश्चात
   (ब) बृहस्पति से अरूण तक
   (स) शनि से वरूण तक
   (द) बुध से मंगल तक
3. पृथ्वी का प्राकृतिक उपग्रह है–
   (अ) चन्द्रमा
   (ब) टाइटन
   (स) आर्यभट्ट
   (द) चन्द्रयान
4. प्रकाश की गति प्रति सैकेन्ड होती है?
   (अ) 4 लाख कि.मी.
   (ब) 3 लाख कि.मी.
   (स) 3.6 लाख कि.मी.
   (द) 4.3 लाख कि.मी.
5. पृथ्वी पर सर्वाधिक तापमान, घनत्व और दबाव पाया जाता है?
   (अ) पृथ्वी धरातल के निकट
   (ब) पृथ्वी के मध्य में
   (स) पृथ्वी के ऊपर वायुमण्डल में
   (द) पृथ्वी केन्द्र में

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. चट्टानी मण्डल का दूसरा नाम है?
7. 'ब्रह्माण्ड विस्तार' की खोज किस खगोल वैज्ञानिक ने की?
8. 'नीहारिका' (Nebula) क्या है?
9. 'क्षुद्रग्रह' (Asteroids) किसे कहते हैं?
10. 'बोने ग्रह' (Dwarf planet) क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

11. 'ब्रह्माण्ड विस्तारित परिकल्पना' क्या है?
12. खगोल विज्ञानी 'फ्रेड हायल' का योगदान है?
13. 'पार्थिव एवं जोवियन' ग्रहों में अन्तर समझाइये।
14. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना किन पदार्थों से हुई है?
15. 'गोल्डीलॉक्स पेटी' (Goldilock zone) क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. 'महा विस्फोट सिद्धान्त' (Big Bang Theory) का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
17. 'सौरमण्डल' (Solar system) को समझाइये।
18. भूगर्भिक समय सारणी (Geological time scale) की व्याख्या कीजिये।

उत्तरमाला – 1. स 2. द 3. अ 4. ब 5. द

अध्याय – 3

पृथ्वी का स्वरूप, गतियाँ, स्थिति एवं समय की गणना

(Earth : Form, Motions, Location and Calculation of Time)

मानव प्रारम्भ से ही जिज्ञासु प्राणी रहा है। सभ्यता के विकास के साथ मानव ने आस–पास के पर्यावरण, पृथ्वी और आकाश के बारे में अधिक जानने का प्रयास शुरू कर दिया। प्राचीन काल में समस्त ब्रह्माण्ड को 'पृथ्वी केन्द्रित' माना जाता था तथा पृथ्वी को स्थिर, चपटा या तस्तरीनुमा बताया गया। भारतीय ग्रंथों जैसे वेदों, 'आर्यभटीय' (आर्यभट द्वारा लिखित ग्रंथ) में पृथ्वी को गोलाकार (खगोल, भूगोल) बताया गया। महान भारतीय खगोल वैज्ञानिक आर्यभट ने पृथ्वी को गेंद की तरह गोल तथा अपने 'अक्ष' पर पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा में भ्रमण करता बताया है। जिससे दिन–रात का निर्माण होता है। आर्यभट एवं भास्कराचार्य (द्वितीय) ने सूर्य एवं चन्द्र ग्रहणों तथा गुरूत्वाकर्षण के बारे में वैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत किये जिनका ज्ञान यूरोपियन को 15–16 शताब्दी में जाकर हुआ था। हालाँकि यूरोपीय विद्वानों पाइथोगोरस और अरस्तू ने पृथ्वी को गोलाकार बताया, परन्तु बाद के विद्वानों ने इस तथ्य को भुला दिया। इसके पश्चात 16वीं शताब्दी में कॉपरनिक्स और गैलीलियो नामक खगोल वैज्ञानिकों ने सूर्य को सौर्य मण्डल के मध्य में बताते हुए, पृथ्वी एवं अन्य सभी आकाशीय पिण्डों को गोल बताया तथा ग्रहों की दैनिक एवं वार्षिक गति पश्चिम से पूर्व दिशा में बताई।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि पृथ्वी गोलाकार (Spherical in shape) है, जिसे कई प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, जैसे– ग्रहण के समय हमेशा गोल छाया का उभरना, सभी आकाशीय पिण्डों का विभिन्न कोणों से गोल दिखना, सभी आकाशीय पिण्डों का क्षितिज अवस्था (Horizon) में वक्र रेखा में आना, 'अपोलो' एवं अन्य मानव निर्मित उपग्रहों के अध्ययन पश्चात यह सिद्ध हो गया है कि पृथ्वी 'गोलाकार' है परन्तु ध्रुवों पर चपटी होने के कारण इसे 'चपटा या लध्वक्ष गोलाभ' (Oblate spheroid) रूप में माना जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी की परिधि 256 ई.पू. में यूनानी विद्वान इरैटॉस्थनीज ने बड़ी आसान तकनीक अपनाते हुए वर्तमान वैज्ञानिक गणना के बराबर बताई। भारतीय विद्वानों ने भी पृथ्वी की आयु, परिधि, व्यास एवं अर्द्धव्यास आदि भूगणितीय पहलूओं पर अपनी गणनाएँ प्रस्तुत की, जो वर्तमान वैज्ञानिक गणनाओं से बहुत समानता रखती है। वैज्ञानिक गणनाओं के आधार पृथ्वी के तथ्यों को सारणी संख्या–3.1 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी – 3.1

पृथ्वी के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

भूमध्य रेखीय व्यास	–	12,756 कि.मी.
ध्रुवीय व्यास	–	12,713 कि.मी.
भूमध्य रेखीय परिधि	–	40,077 कि.मी.
ध्रुवीय परिधि	–	40,000 कि.मी.
कुल क्षेत्रफल	–	510 मिलियन वर्ग कि.मी.
(i) स्थलीय क्षेत्रफल	–	149 मि. वर्ग कि.मी. (29.22%)
(ii) महासागरीय क्षेत्रफल	–	361 मि. वर्ग कि.मी. (70.78%)
पृथ्वी का आयतन	–	416 मिलियन क्यूबिक कि.मी.
पृथ्वी का घनत्व	–	5,517
पृथ्वी का द्रव्यमान	–	5.882×10^{21} टन
पृथ्वी का भार	–	6,600 खरब टन
धरातल पर वक्रता	–	7.98'' प्रति मील

पृथ्वी की गतियाँ – (The Motions of the Earth)

पृथ्वी की दो महत्वपूर्ण गतियाँ हैं जिनसे पृथ्वी पर दिन–रात तथा ऋतुऐं बनती हैं (चित्र – 3.1)।

1. **दैनिक या धूर्णन गति (Rotation)** – पृथ्वी 24 घण्टों में अपने अक्ष पर घूमती है, जिससे दिन–रात बनते हैं। पृथ्वी के सूर्य के सम्मुख वाले भाग पर दिन तथा पिछले भाग पर रात होती है। यह गति पश्चिम से पूर्व दिशा में होती है जिसके कारण सूर्य पूर्व से उदय एवं पश्चिम में अस्त होता है। पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व दिशा में धुर्णन के कारण ही सभी नक्षत्रों एवं तारों की भ्रमण दिशा भी पूर्व से पश्चिम दिशा में रहती है। पृथ्वी की इस गति के कारण भूमध्य

रेखीय क्षेत्र में अधिक 'उभार' एवं ध्रुवों पर 'चपटापन' पैदा हुआ है (केन्द्रापसारी बल)। इसके अतिरिक्त इस गति के कारण हवाओं और धाराओं की दिशा में बदलाव भी आता है। दैनिक गति या परिभ्रमण की भूमध्य रेखा पर सर्वाधिक गति (1600 कि.मी. प्रति घण्टा) 45° उत्तर एवं दक्षिण अक्षांशों पर (दोनों गोलार्द्धों में) में गति कम हो जाती है (1,120 कि.मी. प्रति घण्टा) तथा ध्रुवों पर जाकर लगभग शून्य हो जाती है।

पृथ्वी का 'अक्ष' पृथ्वी की 'कक्षा' पथ पर समकोण न बना कर 23½° झुकाव लिए हुए है। यह 23½° का झुकाव सूर्य की परिक्रमा के समय एक ही दिशा में बना रहता है। पृथ्वी के इस झुकाव के फलस्वरूप उत्तर एवं दक्षिण ध्रुव बारी–बारी से सूर्य के सामने आते हैं, जिससे दोनों गोलार्द्धों में अलग–अलग ऋतुओं का आनन्द प्राप्त होता है। अगर यह 'अक्षीय झुकाव' नहीं होता तो पृथ्वी पर रात–दिन बराबर होते तथा विभिन्न ऋतुओं का बनना भी असम्भव होता।

2. **परिक्रमण (Revolution)**– पृथ्वी की दूसरी महत्वपूर्ण गति सूर्य के चारों ओर पश्चिम से पूर्व दिशा में अपनी 'कक्षा' में वार्षिक यात्रा करना है। पृथ्वी की कक्षा लगभग 965 मिलियन कि.मी. लम्बी है जो लगभग 365¼ दिनों में 29.6 कि.मी. प्रति सैकेण्ड की गति से सम्पन्न होती है। पृथ्वी की कक्षा वृत्ताकार न होकर अण्डाकार है जिससे सूर्य और पृथ्वी की दूरी परिक्रमण के दौरान बदलती रहती है। पृथ्वी और सूर्य के मध्य औसत दूरी 150 मिलियन कि. मी. है। जब पृथ्वी सूर्य से सर्वाधिक दूरी (152 मिलियन कि. मी.) पर होती है इसे 'अपसौर' (Aphelion) और जब निकटतम दूरी (147 मिलियन कि.मी.) पर हो तो इसे 'उपसौर' कहा जाता है। 'उपसौर' (Perihelion) की स्थिति में पृथ्वी की यात्रा तुलनात्मक रूप से जल्दी सम्पन्न होती है। इसके विपरित 'अपसौर' की स्थिति में परिक्रमण में अधिक समय लगता है। इससे सूर्य–दिवस की अवधि घटती–बढ़ती रहती है। पृथ्वी के परिक्रमण के फलस्वरूप विभिन्न ऋतुओं का बनना सम्भव हो पाता है। पृथ्वी की दोनों गतियों और स्थिति में बदलाव के फलस्वरूप ही पृथ्वी पर सौर ऊर्जा का वितरण निश्चित होता है।

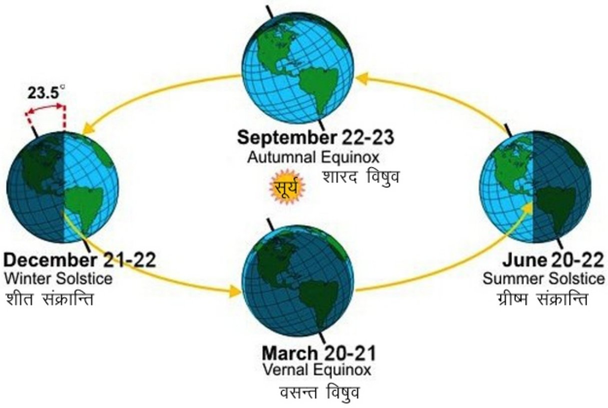

चित्र 3.1 : पृथ्वी की स्थितियाँ

3. **अयनान्त या संक्रान्ति तथा विषुव (Solstices and Equinoxes)** –

पृथ्वी के एक भाग पर हमेशा उजाला तथा दूसरे भाग पर अंधेरा रहता है। उजाले एवं अंधेरे भाग को अलग करने वाली रेखा को 'प्रदीपन या प्रकाश वृत्त' (Circle of Illumination) कहा जाता है।

पृथ्वी 21 जून एवं 22 दिसम्बर प्रत्येक वर्ष क्रमशः ग्रीष्म संक्रान्ति एवं शीत संक्रान्ति की स्थिति में होती है। 21 जून एवं 22 दिसम्बर को सूर्य की लम्बवत स्थिति क्रमशः कर्क एवं मकर रेखा पर होती है। पृथ्वी का 23½° अक्ष के झुकाव के कारण दोनों गोलार्द्धों में यह स्थिति बनती है। 21 जून को सूर्य के कर्क रेखा पर लम्बवत चमकने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु तथा इसके विपरित दक्षिण गोलार्द्ध में शीत ऋतु का प्रभाव रहता है। इसके विपरित 22 दिसम्बर को विपरित स्थिति होती है। सूर्य की लम्बवत किरणें मकर रेखा पर होती है जिससे दक्षिण गोलार्द्ध में ग्रीष्म एवं उत्तर गोलार्द्ध में शीत ऋतु की स्थिति होती है। पृथ्वी पर सूर्य की लम्बवत किरणों का प्रभाव कर्क एवं मकर रेखाओं (23½° उ.गो. एवं 23½° द.गो.) के मध्य ही बना रहता है। ये दोनों वर्तन बिन्दु के रूप में कार्य करते हैं। संक्रान्तियाँ पृथ्वी को गतिशीलता प्रदान करती है तथा सूर्य, तारों और नक्षत्रों की स्थिति में बदलाव भी होता है। यह बदलाव पृथ्वी पर जीवन, मंगल और नयेपन का द्योतक होता है। विश्व के विभिन्न देशों में संक्रान्तियों पर कई उत्सव एवं त्यौहार मनाये जाते हैं। हमारे देश में 'मकर संक्रान्ति' का विशेष महत्व है। पूरे देश में पर्व के रूप में इस बदलाव रूपी दिवस को हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इस दिन सूर्य पूजा तथा तिल–गुड़ का सेवन किया जाता है (चित्र – 3.2)।

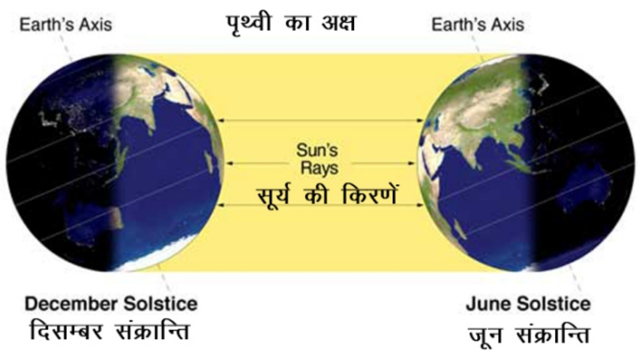

चित्र 3.2 : अयनान्त या संक्रान्ति की स्थितियाँ

विषुव – जब पृथ्वी पर 21 मार्च और 23 सितम्बर को सूर्य की स्थिति भूमध्य रेखा पर लम्बाकार होती है। इस विषुवीय स्थिति में पृथ्वी पर दिन एवं रात की लम्बाई लगभग बराबर होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में 21 मार्च से वसन्त ऋतु का प्रारम्भ होता है, इसलिए इसे वसन्त विषुव

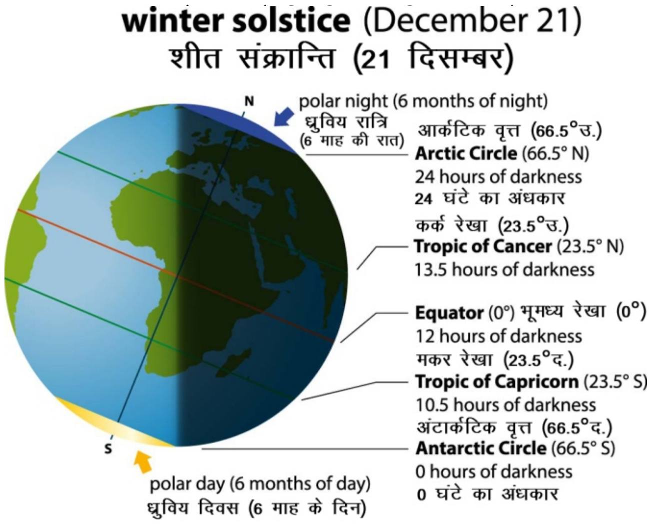

चित्र 3.3 – शीत संक्रान्ति की स्थिति

विषुव होता है। इस अवस्था में 'प्रदीपन वृत्त' पूरी पृथ्वी को ध्रुव से ध्रुव तक समान भागों में विभाजित करता है। सूर्य के सम्मुख भाग में उजाला एवं पिछले भाग में अंधेरा रहता है। विषुवयी स्थिति में सूर्य प्रातः 6 बजे पूर्व में उदय होता है और लगभग इसी समय ही पश्चिम में अस्त होता है (चित्र सं.3.1, 3.3)।

अक्षांश एवं देशान्तर
(Latitudes and Longitudes)

अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ ग्लोब पर खींची (अंकित) गई काल्पनिक रेखाएँ हैं, जो क्रमशः पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण दिशाओं में बनायी गयी हैं। इनके बने 'ग्रिड या जाल' का पृथ्वी पर स्थिति निर्धारण में बहुत महत्व है, इसे 'भू जाल' कहा जाता है। अक्षांश–देशान्तर रेखाएँ एक–दूसरे को समकोण पर काटती है (चित्र – 3.4)।

अक्षांश–भूमध्य रेखा पृथ्वी को दो समान गोलार्द्धो में विभाजित करती है, उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध। अक्षांशों का निर्धारण भूमध्य रेखा से उत्तर व दक्षिण दिशाओं में समानान्तर होता है। इनके कोणों का निर्धारण पृथ्वी के केन्द्र से होता है। भूमध्य रेखा के उत्तर व दक्षिण दिशाओं में जाने पर इन अक्षांश वृत्तों का आकार छोटा होता जाता है, भूमध्य रेखा को 0º एवं उत्तर व दक्षिण ध्रुवों को 90º से अंकित किया जाता है। दोनों ध्रुवीय बिन्दु के रूप में होते हैं। इस प्रकार 90º अक्षांश उत्तरी गौलार्द्ध एवं 90º दक्षिण गौलार्द्ध में पाये जाते हैं। सभी अक्षांशों के मध्य की दूरी 111 कि.मी. होती है, जो ध्रुवों पर उनके चपटा होने के कारण थोड़ा सा अधिक होती है। किसी स्थान की बिलकुल सही स्थिति प्राप्त करने के लिए डिग्री को मिनट में एवं मिनट को सैकन्ड में बाँटा जाता है। जैसे मुम्बई की स्थिति 18º55'08" (18 डिग्री, 55 मिनट एवं 08 सैकण्ड) उत्तर अक्षांश लिखी जायेगी।

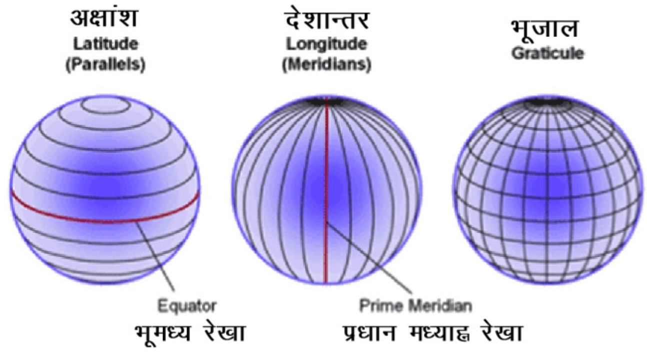

चित्र 3.4 : अक्षांश, देशान्तर व भूजाल

अक्षांशीय ग्लोब का समान विभाजन 0º भूमध्य रेखा द्वारा होता है, इसके उत्तर दिशा में 23½º उत्तर अक्षांश कर्क रेखा तथा 66½º उत्तरी अक्षांश आर्कटिक वृत्त एवं 90º उत्तरी ध्रुव केन्द्र या बिन्दु के रूप में होता है। इसी प्रकार भूमध्य रेखा के दक्षिण में 23½º दक्षिणी अक्षांश मकर रेखा एवं 66½º दक्षिणी अक्षांश अण्टार्कटिक वृत्त तथा 90º दक्षिणी ध्रुव केन्द्र या बिन्दु के रूप में प्रदर्शित होता है (चित्र – 3.3)। ग्लोब पर 0º भूमध्य रेखा से 30º उत्तर एवं दक्षिण अक्षांशों के मध्य के क्षेत्र को 'निम्न अक्षांशीय क्षेत्र', 30º से 60º उत्तर एवं दक्षिण अक्षांशों के मध्य का क्षेत्र 'मध्य अक्षांशीय क्षेत्र' तथा 60º से 90º उत्तर व दक्षिण अक्षांशों के मध्य का क्षेत्र 'उच्च अक्षांशीय क्षेत्र' होता है। इसी प्रकार 0º से 23½º उत्तर एवं दक्षिण अक्षांशों के मध्य के क्षेत्र को 'उष्ण कटिबन्ध जलवायु पेटी, 23½º से 66½º उत्तर एवं दक्षिण अक्षांशों के क्षेत्र को, 'उत्तर एवं दक्षिण शितोष्ण कटिबन्ध जलवायु पेटी' तथा 66½º से 90º उत्तर व दक्षिण अक्षांशों वाले क्षेत्र को 'शीत कटिबन्ध जलवायु पेटी' के नाम से जाना जाता है। इसी आधार पर वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं की पेटियों का भी निर्धारण होता है। किसी भी स्थान का अक्षांश निर्धारण यंत्रों तथा सूर्य, तारों, चन्द्रमा आदि की स्थिति से होता है। वर्तमान में जी.पी.एस. (ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम) की मदद से अक्षांशों की सही स्थिति ज्ञात की जाती है।

देशान्तर–ग्लोब पर जिन काल्पनिक रेखाओं को उत्तर–दक्षिण दिशा में खींचा जाता है, वे देशान्तर रेखाएँ कहलाती है। लंदन के पास स्थित 'ग्रीनवीच' स्थान से उत्तर–दक्षिण दिशा में खींची गई रेखा को 'प्रधान मध्याह्न रेखा' या 'ग्रीनवीच रेखा' कहा जाता है जिसको 0º से प्रदर्शित किया जाता है। इसके पूर्व एवं पश्चिम दिशा में 180º-180º देशान्तर बनाये गये हैं, जिनका कुल योग 360º होता है। इनका निर्धारण पृथ्वी के केन्द्र से कोणात्मक दूरियों द्वारा होता है। केन्द्रीय या प्रधान देशान्तर (0º) के विपरित दिशा में 180º 'अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा' की स्थिति होती है। देशान्तरों के मध्य की सर्वाधिक दूरी भूमध्य रेखा पर होती है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ जाने पर इनके मध्य का अन्तर कम होता जाता है। ध्रुवों पर सभी देशान्तर केन्द्रीय (बिन्दु) स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। यानि भूमध्य रेखा पर दो देशान्तरों के मध्य 111 कि.मी. का अन्तर होता है। 30º उ. व द.

अक्षांशों पर यह अन्तर 96.5 कि.मी., 60° उ. व द. अक्षांशों पर 55.4 कि.मी., 80° उ. व द. अक्षांशों पर 19.3 कि.मी. तथा 90° उ. व द. ध्रुव बिन्दु पर शून्य रह जाता है। अक्षांश रेखाओं की तरह ही देशान्तर रेखाओं को भी डिग्री, मिनट एवं सैकन्ड में बाँटा जाता है। जैसे मुम्बई का देशान्तरीय विस्तार 72° 54'10" (72 डिग्री, 54 मिनट एवं 10 सैकन्ड) है। केन्द्रीय या प्रधान मध्याह्न रेखा से पूर्व में जाने पर प्रत्येक देशान्तर पर 4 मिनट तथा प्रत्येक 15° देशान्तर पर एक घण्टे की वृद्धि होती है। इसके विपरीत पश्चिम में जाने पर कमी आती है। प्रत्येक मध्याह्न रेखा पर 'स्थानीय समय' समान रहता है। इसी प्रकार सभी 360° देशान्तर रेखाएँ जब एक वृत्त के रूप में परिवर्तित होती है तब ये 'वृहत वृत्त' बन जाती है। भूमध्य रेखा भी वृहत वृत्त के रूप में मानी जाती है। 'वृहत वृत्त' वे वृत्त होते हैं जो पृथ्वी या ग्लोब को समान मण्डलों से विभाजित करते हैं। इनकी कुल संख्या 181 है।

समय (Time) –

देशान्तर और समय (Longitude and Time) – पृथ्वी गोल है और इस गोले में 360° होती है। प्रत्येक डिग्री को देशान्तर कहते हैं। देशान्तर रेखाएँ वे कल्पित रेखाएँ हैं जो पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर खींची हुई मानी जाती है। एक देशान्तर रेखा पर जितने स्थान होते हैं, उन सभी पर एक साथ ही मध्याह्न होता है। अतः देशान्तर रेखाओं को हम मध्याह्न (Meridian) रेखाएँ भी कहते हैं।

पृथ्वी लगभग 24 घण्टे में 360° घूमती है। इस प्रकार एक घण्टे में पृथ्वी 15° घूमती है। इसी के अनुसार 1° देशान्तर को घूमने में 4 मिनट लगते हैं। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। अतः जो स्थान पूर्व में है, वहाँ सूर्य पहले दिखायी देगा। हमारे देश का मद्रास नगर 80° पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यदि वहाँ पर सूर्योदय के समय प्रातःकाल के 6 बजे हैं तो जो स्थान मद्रास से पश्चिम में 65° देशान्तर पर है, वहाँ 5 ही बजेंगे। वहाँ पर सूर्य एक घण्टे बाद दिखायी देगा। यदि हमें ग्रीनविच का और अपना स्थानीय समय मालूम हो तो हम बड़ी सरलता से देशान्तर रेखा निकाल सकते हैं, जैसे यदि ग्रीनविच में इस समय दिन के 12 बज रहे हों और हमारी घड़ी में सायंकाल 6 बजे हों तो निश्चय है कि हम ग्रीनविच के पूर्व में हैं और हमारी देशान्तर रेखा 15×6=90° है।

स्थानीय समय (Local Time) – प्रत्येक स्थान पर अपने देशान्तर के अनुसार जो समय होता है, वह वहाँ का स्थानीय समय कहलाता है। इस समय को धूप–घड़ी ठीक–ठीक बता सकती है। स्थानीय समय का सम्बन्ध मध्याह्न–कालीन सूर्य की ऊँचाई से है। इससे एक ही देशान्तर रेखा पर उत्तर–दक्षिण स्थित समस्त नगरों में एक ही समय मध्याह्न होता है अतः उनके स्थानीय समय में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पूर्व–पश्चिम स्थित नगर विभिन्न मध्याह्न रेखाओं पर होंगे। इस कारण उनमें भिन्न समय पर मध्याह्न होगा। यही कारण है कि पूर्व–पश्चिम स्थित नगरों के स्थानीय समयों में अन्तर होना स्वाभाविक है। स्थानीय समय सदा धूप घड़ी के मध्याह्न के अनुसार ही होता है।

प्रामाणिक समय (Standard Time) – स्थानीय समय अपने नगर के लिए तो ठीक हो सकता है परन्तु यात्रा करके जब हम दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं तो समय में अन्तर पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में समय को ठीक रखने के लिए पूर्व या पश्चिम की ओर यात्रा करने पर अपनी घड़ी को प्रत्येक देशान्तर को पार करने पर 4 मिनट आगे या पीछे करनी पड़ती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र में वहाँ का प्रामाणिक समय माना जाता है।

प्रामाणिक समय के लिए प्रत्येक देश में किसी एक देशान्तर रेखा को 'प्रामाणिक देशान्तर रेखा' मान लिया जाता है। इंग्लैण्ड की प्रामाणिक रेखा 0° देशान्तर की है जो ग्रीनविच से होकर निकलती है। प्रायः राष्ट्र अपने उपयुक्त देशान्तर पर स्थित स्थान के स्थानीय समय को प्रामाणिक समय मान लेते हैं। उस नगर की देशान्तर रेखा, उस देश के लिए बड़े महत्व की होती है। देश के सभी नगरों की घड़ियाँ प्रामाणिक रेखा पर स्थित नगर के समय के अनुसार मिला ली जाती हैं। इस प्रकार जो किसी विशेष स्थान का समय सारे देश में माना जाये वह उस देश का प्रामाणिक समय कहलाता है। हमारे देश में 82½° पू.दे. का स्थानीय समय सारे राष्ट्र का प्रामाणिक समय माना गया हैं यदि तुम्हारा निश्चित स्थान 82½° रेखा पर ही हो तो तुम्हारे स्थानीय मध्याह्न के अनुसार 12 तथा तुम्हारी घड़ी में 12 साथ–साथ बजेंगे। परन्तु यदि तुम्हारा स्थान इस रेखा के पूर्व में होगा तो तुम्हारी घड़ी में 12 स्थानीय मध्याह्न के बाद बजेंगे और यदि पश्चिम में हो तो पहले। यदि प्रामाणिक समय नहीं माना जाये और प्रत्येक स्थान अपने–अपने स्थानीय समय को ही सदा मानने लगें तो सभी सार्वजनिक कार्यों में बड़ी असुविधा पड़ने लगे। प्रत्येक देश के प्रामाणिक समय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समय अर्थात् ग्रीनविच समय के बीच का अन्तर पूरे या डेढ़ घण्टों में रखा जाता है जैसे पाकिस्तान का 5 घण्टे का एवं भारत का 5½ घटों का है।

समय कटिबन्ध (Time zones) – यदि कोई देश पूर्व–पश्चिम के विस्तार में बड़ा हो तो वहाँ पर सारे राष्ट्र के लिए एक ही प्रमाणिक समय रखने से काम नहीं चल सकता क्योंकि ऐसे देशों में पूर्व में स्थित स्थान और पश्चिम में स्थित स्थान के समय में 4 या 5 घण्टे का अन्तर पड़ जाता है। कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में कुछ स्थानों के स्थानीय समय में यह अन्तर दृष्टिगत होता है। समुद्री जहाजों को भी प्रत्येक स्थान का स्थानीय समय स्मरण रखने में बड़ी कठिनाई हो जाती है। इसी असुविधा को दूर करने के लिए सारी पृथ्वी को 24 भागों में बाँट दिया गया है। ऐसे प्रत्येक भाग को समय–कटिबन्ध कहते हैं। प्रत्येक समय–कटिबन्ध में एक ही प्रामाणिक समय रहता है। इन समय–क्षेत्रों को 24 भागों में इसलिए बाँटा गया है कि प्रत्येक समय–क्षेत्र में एक–एक घण्टे का अन्तर रहे। प्रत्येक क्षेत्र में 15° देशान्तर होते हैं।

कनाडा का पूर्व–पश्चिम विस्तार अधिक है; अतः उस देश को पाँच समय–कटिबन्धों में बाँट दिया गया है। प्रत्येक कटिबन्ध

में एक केन्द्रीय मध्याह्न रेखा होती है जिसका स्थानीय समय ही उस सम्पूर्ण कटिबन्ध का प्रमाणिक समय माना जाता है। कनाडा के पाँचों क्षेत्रों में 60°, 75°, 90°, 105° और 120° पश्चिमी देशान्तर रेखाओं के स्थानीय समय वहाँ के क्रमशः पाँचों कटिबन्धों के प्रामाणिक समय माने जाते हैं।

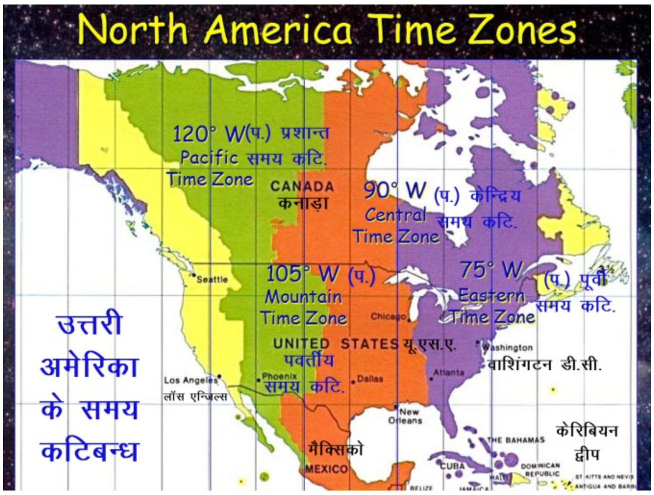

चित्र 3.5—कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका के समय—क्षेत्र

संयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य भाग में चार समय—क्षेत्र हैं। ये क्रमशः पूर्वी, मध्यवर्ती, पर्वतीय तथा प्रशान्तीय समय कहलाते हैं। इनमें 75°, 90°, 105° और 120° देशान्तरों के समय को प्रामाणिक समय माना जाता है। अलास्का एवं हवाई द्वीप समूह जो संयुक्त राज्य के ही अंग है, अलग समय क्षेत्रों में पड़ते हैं। इसी प्रकार यूरोप महाद्वीप को तीन समय—क्षेत्रों में विभक्त किया गया है, रूस में 11 समय क्षेत्र है और प्रत्येक क्षेत्र में ग्रीनविच के समय से एक—एक घण्टे का अन्तर रखा गया है।

समय की पेटियाँ विषुवत रेखा पर सबसे अधिक चौड़ी होती है। ध्रुवों की ओर वे सँकरी होती जाती हैं; यहाँ तक कि ध्रुवों पर सभी समय—कटिबन्धों का बिन्दु या केन्द्र पर मिलान होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समय (International Time)— अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह तय किया गया कि लन्दन नगर के निकट ग्रीनविच नामक स्थान से होकर जाने वाली देशान्तर प्रधान मध्याह्न रेखा मानी जायेगी। उसे शून्य देशान्तर माना जाता है और रेखाओं की गणना उसके पूर्व और पश्चिम की ओर होगी, यथा 15° पूर्वी देशान्तर और 15° पश्चिमी देशान्तर। ध्यान रखने वाली बात यह है कि 180° पूर्वी और पश्चिमी देशान्तर रेखा एक ही है।

समस्त समय—कटिबन्धों के समय की गणना मध्याह्न रेखा के अनुसार ही होती है। सारे विश्व में समय की समानता बताने के लिए ग्रीनविच के समय की सहायता ली जाती है; इसलिए वहाँ का समय अन्तर्राष्ट्रीय समय कहलाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा
(International Date Line)

आप जानते हैं कि जब हम केन्द्रीय या प्रधान मध्याह्न रेखा से पश्चिम को यात्रा करते हैं तो प्रति देशान्तर की दूरी पार करने पर हमें अपनी घड़ी का समय 4 मिनट घटाना पड़ता है परन्तु पूर्व की यात्रा में 4 मिनट प्रति देशान्तर बढ़ाना पड़ता है। अतः यदि हम सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करें अर्थात् 360° (180°पू.+180°प.) देशान्तर पार करें तो उस समय तक अपनी घड़ी को 24 घण्टे आगे कर चुकेंगे। इस प्रकार एक दिन का अन्तर पड़ जाता है। पूर्व से पश्चिम की यात्रा में एक दिन घट जायेगा और पश्चिम से पूर्व की यात्रा में एक दिन बढ़ जायेगा। यही बात केप्टिन कुक के साथ घटित हुई जब वह विश्व—भ्रमण करने के पश्चात् तीन वर्ष में घर पहुँचा तो उसे ऐसा लगा कि उसकी यात्रा में एक दिन की भूल हुई है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए भिन्न—भिन्न राष्ट्रों ने एकमत होकर 180° देशान्तर रेखा के साथ—साथ अन्तर्राष्ट्रीय तिथि—रेखा निश्चित करली है। इस रेखा से ही दिन का निकलना माना जाता है। इस प्रकार की कल्पना करने में विश्व की परिक्रमा में जो एक दिन की भूल होती थी, वह दूर हो जाती है।

जो स्थान इस रेखा के पश्चिम में है अर्थात् एशिया की ओर उसके लिए यदि सोमवार आरम्भ होता है तो पूर्व अर्थात् अमेरिका की ओर के स्थानों के लिए रविवार का आरम्भ होता है। जब कोई जहाज इस रेखा को पार कर अमेरिका की ओर जाता है तो जहाज वाले उसी दिन को, जिस दिन यह रेखा पार की जाती है, दुबारा गिनते हैं अर्थात् यदि इस रेखा को उन्होंने रविवार के दिन पार किया है ता अगले दिन को वे सोमवार न मानकर रविवार मानेंगे और यदि वे इस रेखा को पार कर एशिया की ओर जाते हैं तो अपने कैलेण्डर में से एक दिन निकाल लेते हैं। यदि रविवार को रेखा पार करते हैं तो उनके लिए अगला दिन मंगल होगा, न कि सोमवार ।

अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा की स्थिति — ध्यान से देखने पर विदित होगा कि यह रेखा सीधी नहीं है (चित्र—3.6)। इसका क्या कारण है?यह रेखा 180° देशान्तर के एक छोर से दूसरे छोर तक ठीक उसके ऊपर से नहीं निकलती है। बहुत से स्थानों पर उससे हटकर टेढ़ी—मेढ़ी इधर—उधर हो जाती है क्योंकि 180° देशान्तर तो प्रशान्त महासागर के बहुत—से ऐसे द्वीपों के बीच से होकर जाती है जो एक ही राज्य के अधीन हैं अतः यदि अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा भी 180° देशान्तर के ऊपर से ही गुजरती हुई मान ली जाती तो कहीं—कहीं एक ही द्वीप पर एक ही दिन में दो तिथियाँ हो जातीं, जिसके फलस्वरूप बड़ी गड़बड़ी हो सकती थी, इसलिए इस रेखा को 180° देशान्तर रेखा के साथ न रखकर आवश्यकतानुसार टेढ़ा—मेढ़ा बनाया गया है।

तिथि रेखा के चित्र को देखने पर स्पष्ट होता है कि इसका सबसे पहला मोड़ पूर्व की ओर है। साइबेरिया और अलास्का के बीच बेरिंग जल डमरू मध्य में यह 180° देशान्तर से हटकर पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इससे थोड़ा दक्षिण की ओर एल्यूशियन द्वीप समूह को बचाने के लिए इस रेखा को पश्चिम की ओर मुड़ना

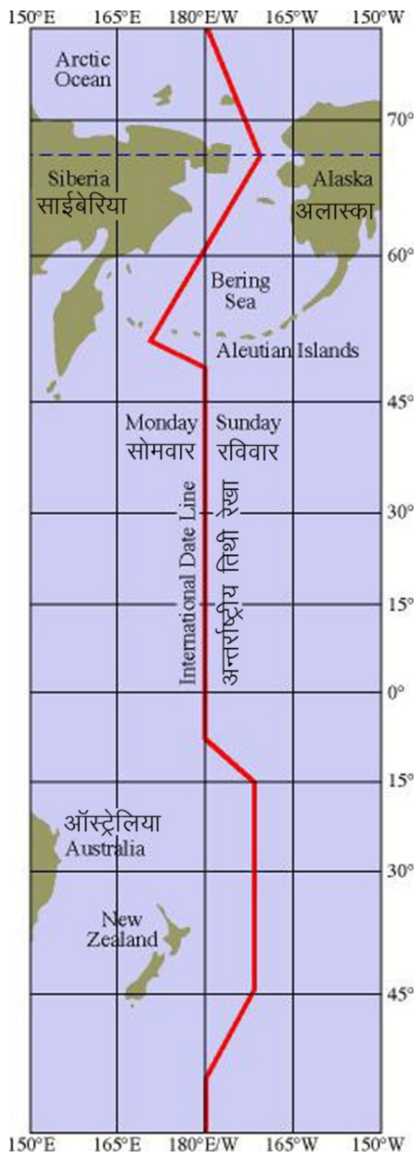

चित्र 3.6–अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा

पड़ता है। इस प्रकार साइबेरिया और अलास्का की तिथियों में अन्तर रहता है। यदि मान लीजिये साइबेरिया में जुलाई की 15 तारीख है तो अलास्का में जुलाई की 14 तारीख ही होती है। 180° देशान्तर रेखा फिजी द्वीप समूह के एक द्वीप के मध्य से होकर निकलती है, इसलिए तिथि रेखा के द्वारा एक ही द्वीप समूह के दो भागों के बीच समय में अन्तर होने के कारण काफी असुविधा हो सकती है। अतः दक्षिण गोलार्द्ध में यह रेखा फिजी व टोगा द्वीपों को बचाते हुए इनके चारों ओर घूमकर जाती है। इन द्वीपों में न्यूजीलैण्ड के समान ही तिथि का अंकन होता है।

समय का समीकरण (Equation of Time)

जिस समय के भीतर एक स्थान धुरी पर चक्कर लगाकर फिर उसी दशा में आ जाता है कि सूर्य उसके ऊपर चमकने लगे उसे सूर्य दिवस (Solar Day) कहते हैं। परन्तु पृथ्वी का कक्ष गोलाकार न होकर अण्डाकार है। साथ ही इसके मध्य सूर्य की स्थिति केन्द्रवर्ती नहीं है। फलस्वरूप एक समय पृथ्वी इसके बहुत समीप पहुँच जाती है तथा दूसरे समय इससे बहुत दूरी पर।

जब उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े की ऋतु होती है तो पृथ्वी सूर्य के अपेक्षाकृत समीप होती है जो उपसौर (Perihelion) कहलाता है। इसके विपरीत, जब उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी होती है तो पृथ्वी सूर्य से अपेक्षाकृत दूर होती है और उसे हम अपसौर (Aphelion) कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मौसमों का हेर–फेर सूर्य की दूरी पर निर्भर नहीं होता है। इसका सम्बन्ध सूर्य की आकाश में ऊँचाई अर्थात उससे प्राप्त होने वाली किरणों को कोणात्मक स्थिति तथा उनसे प्राप्त होने वाली ताप–शक्ति से होता है। जब पृथ्वी दक्षिणायन स्थिति में होती है तो इसकी परिक्रमा करने की चाल कुछ अधिक तेज हो जाती है। इसके विपरीत सूर्य–दिवस (दो वास्तविक मध्याह्नों के बीच का समय) की अवधि घटती–बढ़ती रहती है। अतएव दो प्रकार के समय का अनुभव किया जाता है।

दृष्ट समय (Apparent Time) – जब सूर्य किसी मध्याह्न रेखा पर लम्बवत् चमकता है तो उस समय रेखा पर स्थित स्थानों पर बारह बजे मध्याह्न समय होता है। इनके अनुसार घड़ी को मिलाकर जो समय रखा जाता है वह उस मध्याह्न के बारह बजेंगे तो सूर्य ठीक लम्बवत् नहीं होगा। वह इस स्थिति से कुछ और झुका होगा क्योंकि सूर्य की वह गति सदा समान नहीं रहती। इस घटने–बढ़ने के कारण समय की माप के दृष्टिकोण से सूर्य–दिवस सुविधाजनक नहीं होते। सूर्य के द्वारा समय जानने के लिए सूर्य–घड़ी का प्रयोग किया जाता है। सूर्य की स्थिति के अनुसार समय को पूर्णतः तदनुरूप ही रखने हेतु हमें असुविधा उठानी होगी क्योंकि प्रतिदिन घड़ी की सुइयों को आगे अथवा पीछे करके सूर्य के अनुरूप इस समय को लाना होगा।

मध्य–मान समय (Mean Time) – दैनिक व्यवहार में प्रायः घड़ियों को समय की दृष्टि से प्रतिदिन आगे–पीछे नहीं किया जाता। इसका आशय यह है कि घड़ियाँ सूर्य के अनुरूप दृष्ट समय नहीं स्पष्ट करतीं वरन् मध्य–मान समय बतलाती हैं। इस प्रकार ज्ञात समय को वास्तविक समय नहीं मानते और इससे निर्धारित दिन की अवधि भी भिन्न होती है। हाँ, यदि वर्ष के सभी ऐसे दिनों की अवधि को जोड़ लिया जाये तथा उनका औसत निकाला जाये तो वास्तविक दिन की अवधि का पता लग जायेगा। यही प्राप्त दिवस मध्य–मान सूर्य–दिवस होता है तथा जिस समय को हम प्रयोग करते हैं वह इस पर आधारित होता है तथा हमारी घड़ियाँ इसी मध्य–मान समय के अनुसार चलती हैं। इसी समय को घड़ी का समय (Clock Time) भी कहा जाता है।

मध्य–मान सूर्य–दिवस की अपेक्षा साधारण सूर्य–दिवस कभी लम्बे तथा कभी छोटे होते हैं। उनके समय में जो अन्तर आता है वही समय समीकरण कहा जाता है। इसे दूसरे शब्दों में दृष्ट समय और मध्य–मान समय का अन्तर ही कहा जा सकता है। यह प्रायः नौ–सेना की जन्त्रियों में दिया हुआ रहता है।

इससे स्पष्ट हुआ कि सूर्य की गति सदैव समान नहीं होती। कभी यह दृष्ट–समय से पीछे और कभी पहले प्रभावित होता है। यदि घड़ी में 12 बजे के कुछ समय पश्चात् सूर्य ठीक सिर पर लम्बवत् होता है तो समय समीकरण धनात्मक (+) होगा तथा 12 बजने से पूर्व ही सूर्य सर पर लम्बवत चमक रहा है तो समय ऋणात्मक (–) होगा। वर्ष में केवल चार तिथियाँ आती हैं जबकि दृष्ट समय एवं मध्यमान समय समान होते है। ये चार तिथियां 16 अप्रैल, 15 जून, 1 सितम्बर एवं 25 दिसम्बर हैं। इन तिथियों के समय–समीकरण शून्य (0) होता है। इन दिनों जब घड़ी में मध्याह्न के 12 बजते हैं तो धूप–घड़ी में भी वही समय होता है अर्थात मध्य–मान समय तथा दृष्ट समय बराबर होते हैं। समय समीकरण

पहले वाला दिन (old day) अभी तक बना रहता है।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. स्थानीय तथा प्रामाणिक समय का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
17. 'किसी देश अथवा प्रदेश का प्रामाणिक समय वास्तव में किसी विशिष्ट मध्याह्न रेखा का स्थानीय समय होता है।' भारत के उदाहरण से इस कथन को स्पष्ट कीजिये।
18. अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा क्या है?इसका महत्व बतलाइये।

उत्तरमाला – 1. स 2. द 3. अ 4. स 5. ब

इकाई – 2

अध्याय – 4

पृथ्वी की आंतरिक संरचना
(Interior of the Earth)

पृथ्वी का आंतरिक भाग अदृश्य व अगम्य है। मनुष्य ने खनन एवं वेधन क्रियाओं के द्वारा इसके कुछ ही किलोमीटर तक के आन्तरिक भाग को प्रत्यक्ष रूप में देखा है। गहराई के साथ तापमान में तेजी से वृद्धि के कारण अधिक गहराई तक खनन व वेधन कार्य करना संभव नहीं है। भूगर्भ मे इतना अधिक तापमान है कि वह वेधन में प्रयोग किये जाने वाले किसी भी प्रकार के यंत्र को पिघला सकता है अतः वेधन कार्य कम गहराई तक ही सीमित है इसलिए पृथ्वी के गर्भ के विषय में प्रत्यक्ष जानकारी के मिलने मे कई कठिनाईयां आती है। ज्वालामुखी उद्‌गार से निकले लावा एवं गैस आन्तरिक संरचना के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी के अन्य स्त्रोत है, परन्तु यह निश्चय कर पाना कठिन होता है कि यह मैग्मा कितनी गहराई से निकला है। भूकम्प विज्ञान से भूगर्भ की संरचना के विषय में अधिक वैज्ञानिक व प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में जानकारी देने वाले साधनों को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है –

भूगर्भ की संरचना की जानकारी के साधन

- **अप्राकृतिक साधन** – तापमान, दबाव, घनत्व
- **उल्कापात**
- **प्राकृतिक साधन** – ज्वालामुखी उद्‌गार, भूकम्प विज्ञान

भूगर्भ की संरचना की जानकारी के साधन

1. अप्राकृतिक साधन (Artificial Sources)

(अ) तापमान (Temperature) : भूगर्भिक सर्वेक्षणों से यह बात प्रमाणित होती है कि सामान्यतः पृथ्वी की सतह से केन्द्र की ओर प्रति 32 मीटर की गहराई पर $1^{\circ}C$ तापमान बढ़ता है। तापमान की इस वृद्धि दर के अनुसार भूगर्भ में सभी पदार्थ पिघली हुई अवस्था मे होने चाहिए परन्तु वास्तव मे ऐसा नही होता है। अधिक गहराई के साथ बढ़ते दबाव के कारण चट्टानों के पिघलने का तापमान बिन्दु उतना ही ऊँचा होता जाता है एवं धरातल के नीचे तापमान के बढ़ने की दर पृथ्वी के केन्द्र की ओर घटती जाती है। इस गणना के अनुसार पृथ्वी केन्द्र का तापमान लगभग $2000^{\circ}C$ से अधिक है।

(ब) दबाव (Pressure) : भूगर्भ में मोटी मोटी परतों के बढ़ते दबाव के कारण केन्द्र की ओर घनत्व बढ़ता जाता है। केन्द्र पर उच्च तापमान के कारण यहां पाये जाने वाले पदार्थों का द्रव रूप में होना स्वाभाविक है, परन्तु ऊपरी दबाव के कारण वह द्रव रूप ठोस का आचरण करता है अतः केन्द्र में अधिक दबाव व अधिक तापमान के कारण शैले प्लास्टिकनुमा ठोस है।

(स) घनत्व (Density) : पृथ्वी के केन्द्र की ओर निरन्तर दबाव बढ़ने व भारी पदार्थों के होने के कारण उसकी परतों का घनत्व भी बढ़ता जाता है। न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी का घनत्व 5.5 (धरातल का घनत्व 2.6–3.3 gcm^{-3} एवं केन्द्र का औसत घनत्व 11 gcm^{-3}) परिकलित किया गया है।

2. उल्कापात (Meteorite Shower)

उल्कापिण्ड (Meteorite) सौर्य परिवार के ही अंग है। ये ग्रहों की उत्पत्ति के समय अलग होकर अन्तरिक्ष में फैल गये थे। कभी–कभी ये उल्काएँ धरातल पर गिरती है। इस क्रिया को उल्कापात (Meteorite Shower) कहते हैं। इनके अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि उल्काओं की रचना में निकल और लोहा पाया जाता है। पृथ्वी भी सौर्य–परिवार की एक सदस्य है। पृथ्वी में चुम्बकत्व का गुण पाया जाता है, आन्तरिक भाग में निकल–मिश्रित लोहे के कारण पृथ्वी में यह गुण उत्पन्न हुआ है।

3. प्राकृतिक साधन (Natural Sources)

(अ) ज्वालामुखी उद्‌गार (Volcanic Eruption) : ज्वालामुखी उद्‌गार से निकले तत्व व तरल मैगमा से यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी अन्दर का कुछ भाग तप्त व तरल मैग्मा अवस्था

में है।

(ब) भूकम्प विज्ञान के साक्ष्य (Evidences of Seismology) : यह वह विज्ञान है जिसमें भूकम्पनीय तरंगों का सिस्मोग्राफ द्वारा अंकन करके अध्ययन किया जाता है। **भूकम्प** (Earthquake) भूपटल का आकस्मिक कम्पन्न है जो भूगर्भ में उत्पन्न होता है। **भूकम्प मूल** भूगर्भ में स्थित वह स्थान जहाँ से कम्पन्न सर्वप्रथम उत्पन्न होता है। **भूकम्पीय तरंगे** भूकम्प के समय भूकम्प की कम्पन द्वारा अपनाया गया मार्ग होती है ये तरंगे तीन प्रकार की होती है। प्राथमिक (P) तरंगे सबसे तीव्र गति से चलती है एवं ठोस, तरल व गैस तीनों प्रकार के पदार्थों से गुजर सकती है, द्वितियक (S) तरंगे केवल ठोस पदार्थों के माध्यम से चलती है तरल पदार्थों से होकर नही गुजर सकती, धरातलीय (L) तरंगे धरातल पर ही चलती है एवं अधिकेन्द्र पर सबसे बाद मे पहुँचती है व सर्वाधिक विनाशकारी होती हैं। **भूकम्पीय छाया क्षेत्र** भूकम्प अधिकेन्द्र से 105° व 140° के बीच का क्षैत्र होता है। जहा कोई भी भूकम्पनीय तंरगे अभिलेखित नही होती है। (चित्र सं. 4.1)

भूकम्पीय तरंगों के भ्रमण पथ व गति के आधार पर पृथ्वी के आंतरिक भाग के विषय में जानकारी प्राप्त होती है ये लहरें समान घनत्व वाले भाग में सीधी चलती हैं परन्तु भुकम्प केन्द्रों पर इन लहरों के अंकन से ज्ञात होता है कि ये लहरें एक सीधी दिशा में न चलकर वक्राकार मार्ग का अवलम्बन करती

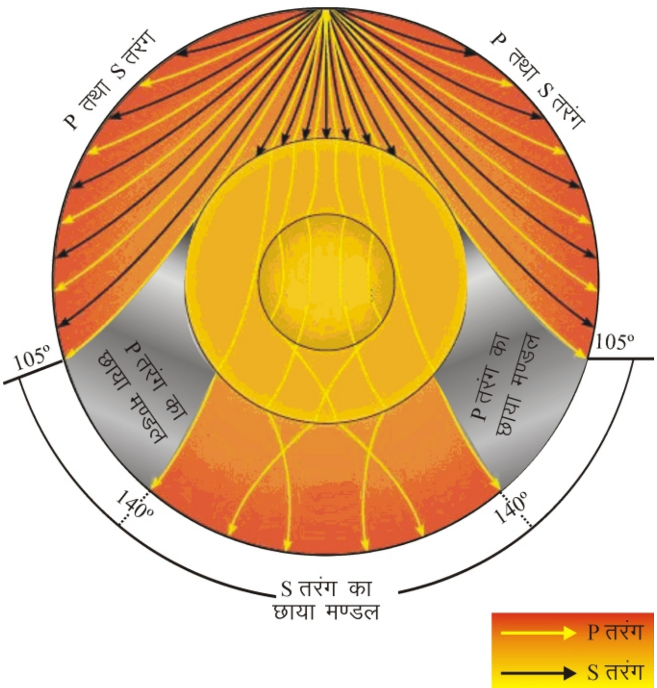

चित्र 4.1 – भूकम्पीय तरंगों के भ्रमण पथ

हैं इसमें प्रमाणित होता है कि भीतर के घनत्व में विभिन्नता है, परिणाम स्वरूप उनका मार्ग भी वक्राकार हो जाता है, चूंकि आंतरिक भाग की ओर घनत्व बढ़ता है अतः कोर में ये लहरें (P व S) वक्राकार होकर सतह की ओर अवतल हो जाती हैं (चित्र सं. 4.1) चूंकि S लहरें तरल पदार्थ से होकर नहीं गुजरती है एव 2900 किमी से अधिक गहराई अर्थात भूक्रोड से विलुप्त हो जाती हैं इससे प्रमाणित होता है कि इस 2900 कि.मी. से अधिक गहराई वाला भाग तरल अवस्था में है जो केन्द्र के चारों ओर विस्तृत है। चूंकि चट्टानों के घनत्व में अन्तर के साथ ही इन तरंगों की गति में तीन जगहों पर अधिक अन्तर आता है अतः इन आधारों पर पृथ्वी के आन्तरिक भाग कि तीन परतें निश्चित कि गई हैं (चित्र 4.2)

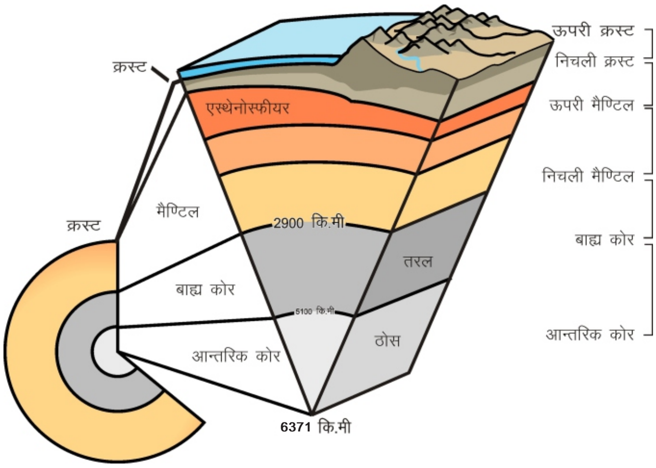

चित्र 4.2 – भूकम्प विज्ञान के आधार पर पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

1. **भूपर्पटी क्रस्ट** (The Crust) – यह पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है इसकी औसत मोटाई 30 किमी है यह परत हल्के चट्टानों से बनी है एवं इसका घनत्व 3 ग्राम प्रति घन सेमी है।
2. **अनुपटल** (The Mantle & Substratum) : भूपर्पटी के नीचे 2900 किमी की गहराई तक अनुपटल का विस्तार है। अनुपटल का ऊपरी भाग दुर्बलता मण्डल (Asthenosphere) कहलाता है। ज्वालामुखी उद्‌गार के दौरान जो लावा धरातल पर पहुँचता है उसका मुख्य स्त्रोत यही भाग है। S तरंगें 2900 किमी के बाद लुप्त हो जाती है अर्थात अनुपटल ठोस शैलों से निर्मित है।
3. **अभ्यन्तर /भूक्रोड** (The Core) – 2900 कि.मी. से 6371 कि.मी. की गहराई वाला यह भाग पृथ्वी का सबसे आन्तरिक भाग है जिसका औसत घनत्व 11 ग्राम प्रति घनसेमी है। इस भाग में S तरंगें नहीं पहुंच पाती हैं। इसके दो भाग किये जाते है, प्रथम भाग बाहय अभ्यंतर है जो

तरल अवस्था में है एवं 2900 से 5150 कि.मी. की गहराई तक विस्तृत है द्वितीय भाग आन्तरिक अभ्यन्तर है जो कि सघन है एवं 5150 से 6371 कि.मी. की गहराई तक विस्तृत है। (चित्र सं. 4.3)

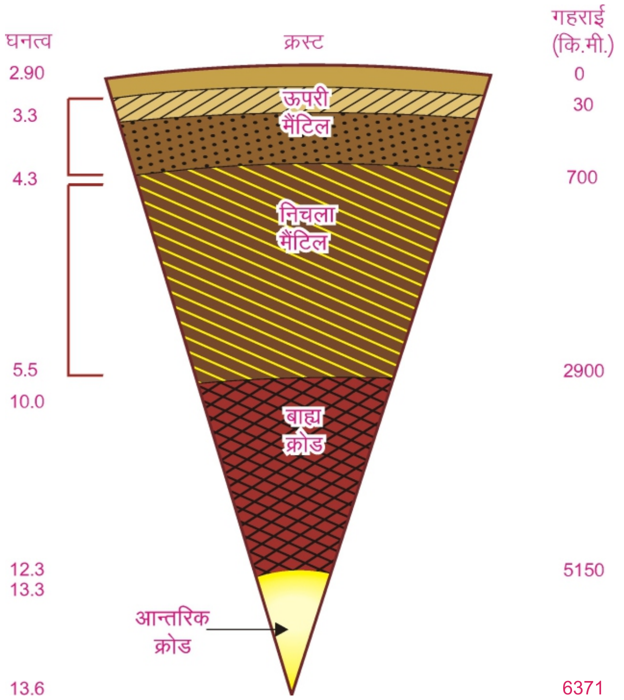

चित्र 4.3 – पृथ्वी के आन्तरिक भाग के विभिन्न मण्डलों की गहराई एवं घनत्व

स्वैस (Suess) का वर्गीकरण

स्वैस के अनुसार भूपटल का ऊपरी भाग परतदार शैलों का बना है। इस भाग के नीचे स्वैस ने रासायनिक संघटन के आधार पर तीन परतों की स्थिती मानी है।

1. **सियाल** (Sial) – इस परत में सिलिका (Silica-Si) एवं एल्यूमिनियम (Aluminum-al) की प्रधानता होती है इसलिए इस परत को सियाल (si + al = sial) कहा जाता है इसका औसत घनत्व 2.9 है व औसत गहराई 50 से 300 किलोमीटर है।

2. **सीमा** (Sima) – इस परत में सिलिका (Silica-Si) एवं मैग्नेशियम की (Magnesium-ma) प्रधानता होती है इसलिए इस परत को सीमा (si + ma = sima) कहा जाता है। इसका घनत्व 2.9 से 4.7 हैं एंव गहराई 1000 से 2000 किलोमीटर तक विस्तृत है।

3. **निफे** (Nife) – इस परत मे निकल (Nickel-ni) व फेरीयम (Ferrium-Fe) की प्रधानता होती है इसलिए इस परत को निफे (ni + fe = nife) कहा जाता है इस परत का घनत्व 11 है एवं यह भूकेन्द्र तक विस्तृत है।

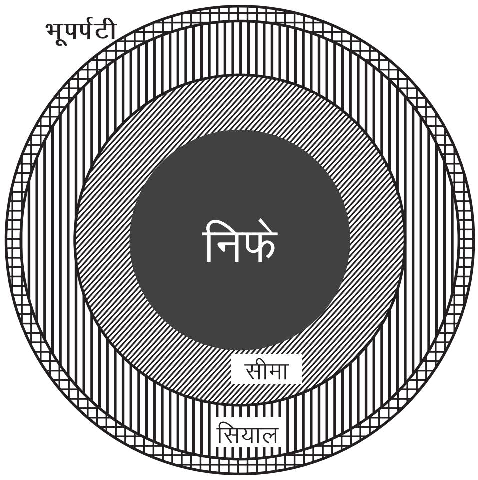

चित्र 4.4 – स्वैस के अनुसार पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

वान डर ग्राक्ट का वर्गीकरण

वान डर ग्राक्ट (Van der Gracht) ने पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की चार परतें बताई हैं, जिनको निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. **बाह्य सिलिका पर्पटी** (Outer Silica Crust) – इस परत की मोटाई महाद्वीपों के नीचे 60 किलोमीटर तक होती है, अटलाण्टिक महासागर के नीचे 20 किलोमीटर एवं प्रशान्त महासागर के नीचे 10 किलोमीटर तक है। इस परत का घनत्व 2.75 से 3.1 तक होता है। यह परत सिलिका, एल्यूमिनियम, पोटेशियम एवं सोडियम से बनी है।

2. **आन्तरिक सिलिकेट परत तथा मैण्टल** (Inner silicate layer and mantle) – इस परत की मोटाई 60 से 1200 किलोमीटर तक होती है। इस परत का घनत्व 3.1 से 4.75

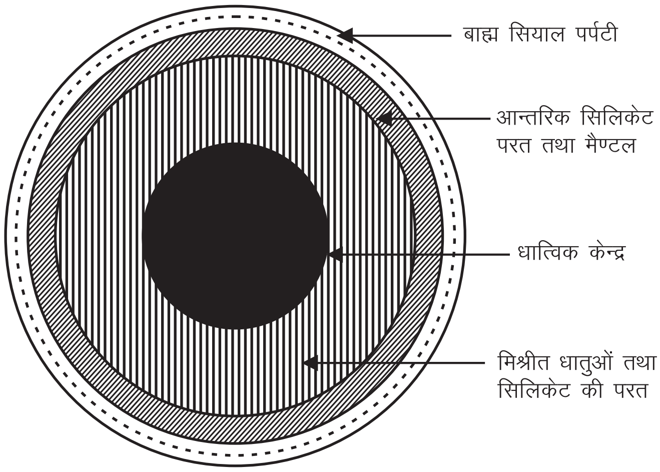

चित्र 4.5 – वान डर ग्राक्ट के अनुसार पृथ्वी के आन्तरिक संरचना

2. आन्तरिक संरचना की जानकारी के मुख्य स्रोत तापमान, घनत्व, दबाव, उल्कापात, ज्वालामुखी क्रियाऐं भूकम्पविज्ञान के साक्ष्य है।
3. भूकम्पीय लहरों की गति एवं भ्रमण पथ के वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर पृथ्वी के आन्तरिक भाग की तीन परतें निश्चित की गई हैं।

   (अ) भूपर्पटी (ब) अनुपटल (स) भूक्रोड
4. स्वैस का वर्गीकरण – (अ) सियाल (ब) सीमा (स) निफे
5. वान डर ग्राक्ट का वर्गीकरण –

   (अ) बाह्य सियाल पर्पटी

   (ब) आन्तरिक सिलिकेट परतः तथा मेण्टल

   (स) मिश्रित धातुओं तथा सिलिकेट की परत

   (द) धात्विक केन्द्र

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. सियाल परत के संघटक तत्व हैं –

   (अ) सिलिका–मैग्नीशियम

   (ब) सोडियम–एल्यूमीनियम

   (स) सिलिका–एल्यूमीनियम

   (द) सिलिका–लोहा।

2. वान डर ग्राक्ट के अनुसार सबसे ऊपर की परत की अधिकतम गहराई है –

   (अ) 1200 किमी. (ब) 60 किमी.

   (स) 2900 किमी. (द) 200 किमी.
3. स्वैस के वर्गीकरण के परिप्रेक्ष्य में जो कथन गलत है, वह है–

   (अ) ऊपरी परत का घनत्व 2.7 है।

   (ब) सीमा का घनत्व 4.7 से कम है।

   (स) निफे में चुम्बकीय गुण पाया जाता है।

   (द) सियाल निफे पर तैर रहा है।
4. सियाल, सीमा व निफे के रूप में भू–गर्भ का विभाजन किया गया था।

   (अ) वान डर ग्रांट द्वारा (ब) डेली द्वार

   (स) होम्स द्वारा (द) स्वैस द्वारा
5. निम्नलिखित में से कौन भूगर्भ की जानकारी का प्रत्यक्ष साधन है ?

   (अ) भूकम्पीय तरंगे (ब) गुरूत्वाकर्षण बल

   (स) ज्वालामुखी (द) पृथ्वी का चुम्कत्व

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

6. भूगर्भ की जानकारी के लिए प्रत्यक्ष साधनों के नाम बताईये।
7. भूकम्प विज्ञान किसे कहते हैं ?
8. भूकम्पीय तरंगे किसे कहते हैं ?
9. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में हमारी जानकारी सीमित क्यों हैं ?
10. निफे के प्रमुख संघटक तत्व कौनसे हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

11. भूकम्प विज्ञान के साक्ष्य के आधार पर निश्चित की गई पृथ्वी की आन्तरिक परतों के नाम बताईये।
12. 'भूक्रोड' की विशेषताएँ बताइये।
13. 'सियाल' की विशेषताऐं बताइए।
14. 'अनुपटल' क्या है ? इसकी विशेषताऐं बताईये।
15. वान डर ग्राक्ट द्वारा सुझाई गई पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की परतों के नाम बताईए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में वान डर ग्राक्ट के मत की व्याख्या कीजिए।
17. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में स्वैस के मत की व्याख्या कीजिए।
18. भूकम्पीय विज्ञान के साक्ष्य के आधार पर पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की व्याख्या कीजिए।

उत्तरमाला – 1. स 2. ब 3. द 4. द 5. स

अध्याय – 5

महाद्वीप व महासागरों की उत्पत्ति
(Origin of Continents and Oceans)

महाद्वीप एवं महासागर प्रथम श्रेणी के उच्चावच हैं उनकी उत्पत्ति व विकास के विषय में अनेक विद्वानों ने अलग–अलग सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं जिनमें दो सर्वाधिक स्वीकार्य व वैज्ञानिक सिद्धान्त 'महाद्वीपीय विस्थापन' व 'प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त' को माना गया हे।

महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त
(Continental Drift Theories)

यद्यपि महाद्वीपीय विस्थापन का विचार 1620 में फ्रांसिस बेकन, 1885 में स्नाइडर व 1910 में एफ. जी. टेलर ने प्रस्तुत किया था परन्तु सिद्धान्त रूप में इसका प्रतिपादन 1912 में जर्मन अल्फ्रेड वेगनर ने किया था। वेगनर एक जलवायुवेत्ता थे, जो भूतकाल में हुए जलवायु परिवर्तन की समस्या का समाधान चाहते थे। अण्टार्कटिका में कोयले की परतों की उपस्थिति एवं मरूस्थलों में हिमावरण के लक्षणों के मिलने के कारणरूप में वेगनर के सामने दो विकल्प थे :

1. जलवायु कटिबन्धों का स्थानान्तरण हुआ व स्थल भाग स्थिर रहे।
2. जलवायु कटिबन्ध स्थिर रहे व स्थल भागों का स्थानान्तरण हुआ।

वेगनर ने दूसरे विकल्प को अपनी परिकल्पना का आधार बनाते हुये स्पष्ट किया की कार्बोनिफेरस युग में समस्त महाद्वीप एक स्थलखण्ड के रूप में स्थित थे, जिसे उन्होंने 'पेंजिया' कहा। इसके चारों ओर विशाल महासागर था, जिसे वेगनर ने पेंथालासा कहा। (चित्र सं. 5.1) वेगनर के अनुसार सियाल निर्मित यह 'पेंजिया, अगाध सागरीय तली जिसे उन्होंने 'सीमा' कहा है पर निर्बाध रूप से तैर रहा था। कार्बोनिफेरस युग में पेंजिया का विभाजन हुआ।

प्रथम विभंजन में टैथिस भूसन्नति बनी, जिसके उत्तर में स्थित भाग को अंगारालैण्ड (लोरेशिया) तथा दक्षिणी भाग को

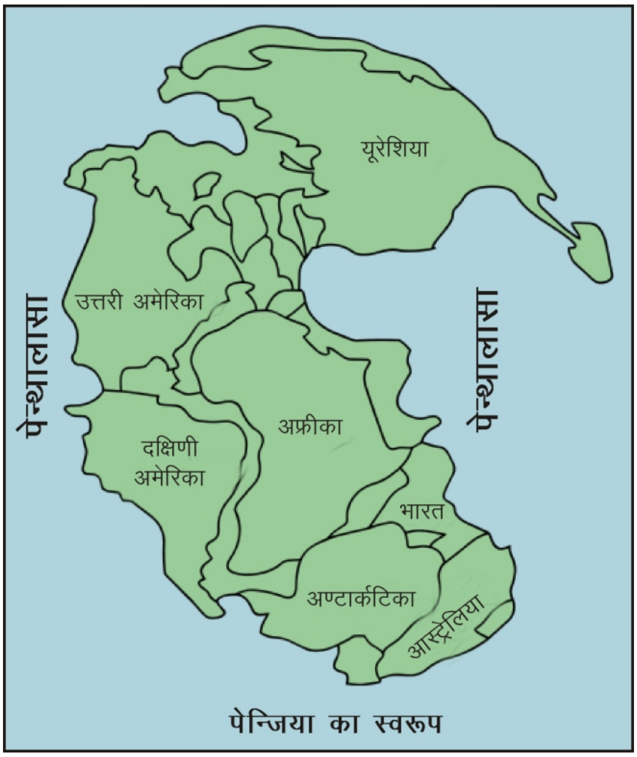

चित्र 5.1 – पेन्जिया एवं पेन्थालासा

गोंडवाना लैण्ड कहा गया। कालान्तर में इनके क्रमशः विखण्डन व विखण्डित भागों के विषुवत् रेखा व पश्चिम की ओर प्रवाह से महाद्वीपों की वर्तमान स्थिति बनी। वेगनर ने महाद्वीपों के दो दिशाओं में प्रवाह के लिए निम्न बलों को उत्तरदायी माना।

1. **गुरूत्वाकर्षण और प्लवनशीलता बल** – इनसे भू–भागों का प्रवाह भूमध्यरेखा की ओर हुआ जिससे भारत, आस्ट्रेलिया, मेडागास्कर व अण्टार्कटिका का निर्माण हुआ।
2. **ज्वारीय बल** – इससे भू–भागों का प्रवाह पश्चिम की ओर हुआ जिससे उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका बने।

वेगनर के अनुसार उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के अलग होने से उस रिक्त स्थान पर अंधमहासागर तथा आस्ट्रेलिया, अण्टार्कटिका के पृथक होने से रिक्त स्थान पर हिन्द महासागर तथा शेष बचा पेंथालासा प्रशान्त महासागर कहलाता है। (चित्र सं. 5.2)

महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में प्रमाण

1. भौगोलिक प्रमाण (Geographical Evidences)

(अ) अटलाण्टिक तटों में साम्य स्थापन (JIG-SAW-FIT in Atlantic Coast) – अटलाण्टिक महासागर के पूर्व व पश्चिम तटों में अद्भूत साम्य स्थापना है। अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों को पुनः परस्पर सटाया जा सकता है। इसे वे JIG-SAW-FIT का नाम देते हैं। उनके अनुसार पश्चिम अफ्रीकी उभार (West African Bulge) कैरीबियन सागर में तथा दक्षिण अमेरिका का उत्तरी–पूर्वी भाग गिनी की खाड़ी में सटाया जा सकता। (चित्र सं. 5.3)

(ब) पर्वतों का संरेखन (Alignment of Mountains)– यदि विस्थापित महाद्वीपों को सटाकर देखा जाये तो सभी युग की पर्वतमालाओं के संरेखण में काफी समानता देखने को मिलती है यह संरेखण केलोडियन, हर्सीनियन अल्पाइन आदि सभी पर्वतमालाओं में देखने को मिलता है। (चित्र सं. 5.4)

(स) नवीन मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति – वेगनर ने रॉकीज, एण्डीज, आल्पस एवं हिमालय पर्वतों वाले स्थान पर भूसन्नितयों के विद्यमान होने की कल्पना की है। जिनमें जमा तलछट पर दबाव पड़ने से मोड़दार पर्वतों का उद्भव हुआ।

(2) भूगर्भिक प्रमाण (Geological Evidences)

(अ) संरचनात्मक समानता (Structural Similarities): अटलाण्टिक महासागर के दोनो ओर के तटीय क्षेत्रों की शैल संरचना में समानता से प्रमाणित होता है कि ये दोनों तट कभी सटे हुए थे।

(ब) स्तर विन्यास की समानता (Stratigraphical Similarities): अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों की चट्टानों की विभिन्न परतों के क्रम में पाई जाने वाली समानता उनके कभी सटे हुए होने के प्रमाण है।

(3) भू–ज्यामितिय प्रमाण (Evidences of Geodesy)

भूज्यामितीय अध्ययनों से ऐसे प्रमाण मिले हैं कि ग्रीनलैण्ड धीरे–धीरे कनाडा की ओर विस्थापित हो रहा है जो महाद्वीप विस्थापन को प्रमाणित करता है।

(4) जैविक प्रमाण (Biological Evidences)

(अ) पुराजीवाश्मीय प्रमाण (Paleontological

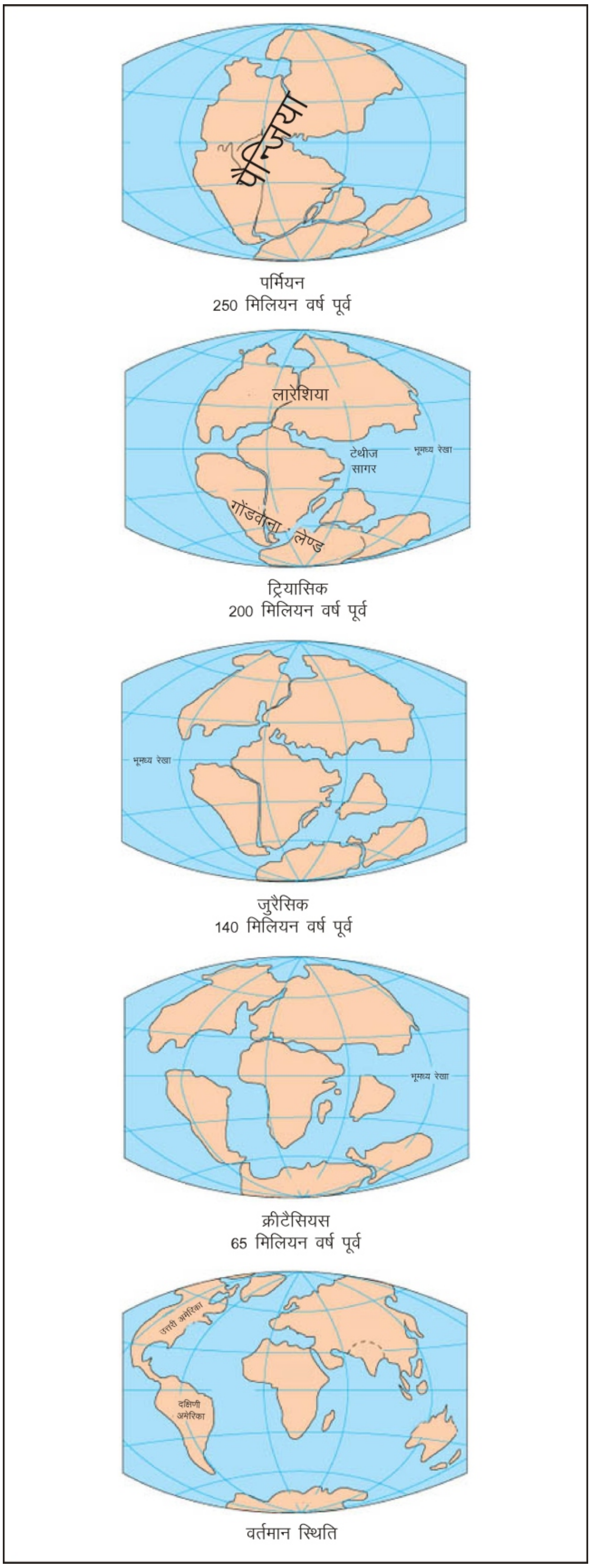

चित्र 5.2 – पेन्जिया से वर्तमान रूप में महाद्वीपीय विस्थापन के क्रम

Similarities): अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों पर समान प्रजाति व प्रकार के जीवाश्म के प्रमाण यह प्रमाणित करते हैं कि दोनों तट कभी सटे हुए थे। (चित्र सं. 5.5)

(ब) जैविक स्वभाव (Biological habits): जीवशास्त्रियों के शोध के अनुसार नार्वे में लैमिग (Liming) नामक जन्तु पश्चिम की ओर चलते–चलते अटलाण्टिक महासागर में डूबकर मर जाते हैं इसका कारण यह माना गया है कि उनकी यह आदत

चित्र 5.3 – तटीय साम्यस्थापना

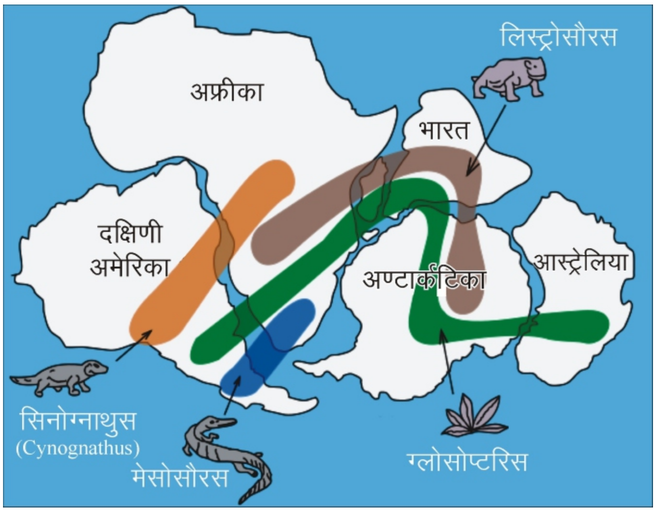

चित्र 5.5 – पुराजीवाश्मीय समानता

उस काल की है जब उत्तरी अमेरिका यूरोप से सटा हुआ था और वही आदत आज भी है।

(5) पुराजलवायु की प्रमाण (Paleoclimatological Evidences) –

कार्बोनिफेरस युग के हिमानीकरण के प्रभाव भारत, द. अमेरिका, अफ्रीका एवं ऑस्ट्रेलिया से प्राप्त होना। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब ये एक रहे हों।

चित्र 5.4 – पर्वतों का संरेखन

महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. भौगोलिक आलोचना (Geographical Criticism)

(अ) अटलाण्टिक तटों में साम्य स्थापन दोषपूर्ण हैं, क्योंकि ब्राजिल के तट को गिनी की खाड़ी से मिलाने पर 15°C का अन्तर शेष रहता है।

(ब) 'मध्य अटलाण्टिक कटक' दोनों तटों को सटाने में बाधक है, जिसका वेगनर ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया।

(स) इस सिद्धान्त की दो प्रक्रियाऐं विस्थापन एवं वलन परस्पर विरोधाभासी हैं एक ओर वेगनर के अनुसार सियाल रूपी महाद्वीप सीमा में तैर रहे हैं जबकि दूसरी ओर उन्होंने

बताया कि जमे हुए तलछट में विस्थापन के फलस्वरूप बढ़ते दबाव के कारण वलन पड़े।

2. भूगर्भिक आलोचना (Geographical Criticism)

भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार अटलाण्टिक तटों पर संरचनात्मक व स्तर विन्यास की केवल आंशिक समानताऐं हैं। अतः इन्हें पूर्ण प्रमाण नहीं माना जा सकता है।

3. भूगणितीय आलोचना (Geodesical Criticism)

वैगनर के अनुसार पश्चिम की ओर विस्थापन सूर्य व चन्द्रमा के गुरूत्वाकर्षण बल के कारण होता है। जबकि गणितज्ञों ने सिद्ध किया है कि अमेरिका को पश्चिम की ओर विस्थापत करने के लिये जितने गुरूत्वाकर्षण बल की आवश्यकता होगी वह वर्तमान बल से दस अरब गुना अधिक होना चाहिए। गणितज्ञ आलोचकों का मानना है कि इतने बल का होना असम्भव है, तथापि यदि इसे सम्भव मान भी लिया जाए तो उतने अधिक बल के कारण पृथ्वी की परिभ्रमण गति ही बाधित हो जायेगी।

4. जैविक आलोचना (Biological Criticism)

समकालीन जीवाश्म के प्रमाण को आलोचक आंशिक प्रमाण ही मानते हैं।

5. पुराजलवायु की आलोचना (Paleoclimatological Criticism)

स्टीयर्स ने बताया है कि उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका, यू.एस.ए. में बोस्टन क्षेत्र (जो उस समय भूमध्य रेखा पर था) व अलास्का में टाइलाइट जैसे हिमयुगीन निक्षेप पाये जाते हैं। वेगनर के अनुरूप महाद्वीपीय पुर्नगठन (Reconstruction) से स्टीयर्स द्वारा इंगित विसंगति का स्पष्टीकरण नहीं मिलता है।

अनेक कमियों के बावजूद, भी इस सिद्धान्त की महत्ता इस कारण है कि इसने सर्वाधिक वैज्ञानिक सिद्धान्त–प्लेट विवर्तनिकी के लिए एक आधार प्रस्तुत किया जो महाद्वीपीय विस्थापन की ही बात को पुष्ट करता है।

प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics)

1960 के दशक के अनेक पुराचुम्बकीय, भूकम्पीय सर्वेक्षणों एवं सागर नितल प्रसरण सम्बन्धी अनुसंधानों के आधार पर महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। सागर नितल प्रसरण सिद्धान्त के जनक हैरी हैस (1960) को माना जाता है।

प्लेट : सर्वप्रथम प्लेट शब्द का प्रयोग टूजो विल्सन (Tuzo Willson) ने पृथ्वी की बाहरी परत के लिए किया है। यह परत क्रस्ट (Crust) एवं ऊपरी मेन्टल (Upper Mantle) की सम्मिलित इकाई है जो 'स्थल मण्डल' (Lithosphere) के नाम से जानी जाती है। इसकी मोटाई 100 किमी व विस्तार महाद्वीप एवं महासागर दोनो पर है। यह बाहरी परत कठोर, पतली, भंगूर व उल्टी सूप प्लेट के समान है।

सिद्धान्त के अनुसार समस्त स्थल मण्डल 6 बड़ी व संभवतः 20 छोटी प्लेटों में विभक्त है जो कि निर्बलतामण्डल पर सतत रूप से एक दूसरे के संदर्भ में गतिशील होते हुए अभिसरित, अपसरित व रगड़ खाती है जिससे भूकम्प, ज्वालामुखी एवं गर्त जनन जैसी विवर्तनिक क्रियाएँ होती है। प्लेटो के इस सम्पूर्ण गतिक्रम को प्लेट विवर्तनिक कहते हैं।

प्रमुख प्लेटें (Major Plates) – प्लेटों की संख्या के बारे में विद्वान एक मत नहीं है, फिर भी मार्गन ने सम्पूर्ण स्थल मण्डल को 6 बड़ी व 20 छोटी प्लेटों में विभाजित किया है। प्रमुख बड़ी

चित्र 5.6 – विश्व की प्रमुख प्लेटे

प्लेट निम्नलिखित है (चित्र सं. 5.6) –

1. **इण्डो–ऑस्ट्रेलियन प्लेट** (Indo-Australian Plate): इस प्लेट के अन्तर्गत भारतीय उपमहाद्वीप व आस्ट्रेलिया की स्थलीय पर्पटी तथा हिन्दमहासागर एवं प्रशान्त महासागर की दक्षिणी–पश्चिमी महासागरीय पर्पटी सम्मिलित है।
2. **यूरेशियन प्लेट (Eurasian Plate)**: यह एकमात्र ऐसी प्लेट है जो अधिकांशतः महाद्वीपीय पर्पटी से निर्मित हैं। यह प्लेट पश्चिम में मध्य अटलाण्टिक कटक दक्षिण में आलप्स–हिमालय पर्वतीय क्रम एवं पूर्व में द्वीपीय चापों तक फैली हुई है।
3. **अफ्रीकी प्लेट (African Plate)**: यह एक मिश्रित महाद्वीपीय व महासागरीय प्लेट है। इसका विस्तार पूर्व में भारतीय दक्षिण में अण्टार्कटिका, पश्चिम में मध्य अटलाण्टिक कटक व उत्तर में यूरेशियन प्लेट तक है।
4. **अमेरिकी प्लेट (American Plate):** इसके अन्तर्गत उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका की महाद्वीपीय पर्पटी एवं पूर्व की ओर मध्य अटलाण्टिक कटक तक फैली महासागरीय पर्पटी सम्मिलित है। यह प्लेट अमेरिकी महाद्वीपों के पश्चिमी तट तक विस्तृत है एवं प्रशान्त महासागरीय प्लेट से मिलती है। यह प्लेट एक इकाई के रूप में पश्चिम की ओर गतिमान है, इसके परिणामस्वरूप अमेरिकी महाद्वीपों के पूर्वी किनारों पर कोई विवर्तनिकी हलचलें नहीं होती।
5. **प्रशान्त प्लेट (Pacific Plate):** पूर्वी प्रशान्त कटक (East Pacific Rise) से पश्चिम की ओर सम्पूर्ण प्रशान्त महासागर पर फैली यह एकमात्र ऐसी प्लेट है जो पूर्णरूप से महासागरीय पर्पटी से निर्मित है।
6. **अण्टार्कटिक प्लेट (Antarctica Plate):** अण्टार्कटिक प्लेट का अधिकांश भाग हिमाच्छादित है। यह प्लेट अण्टार्कटिक महाद्वीप के चारों ओर मध्य महासागरीय कटकों तक विस्तृत है।

प्लेटों के प्रकारः संरचना के आधार पर प्लेटे तीन प्रकार की होती हैं –

1. **महाद्वीपीय प्लेटः** जिस प्लेट का सम्पूर्ण या अधिकांश भाग स्थली हो, वह महाद्वीपीय प्लेट कहलाती है।
2. **महासागरीय प्लेटः** जिस प्लेट का सम्पूर्ण या अधिकांश भाग महासागरीय तली के अन्तर्गत होता है वह महासागरीय प्लेट कहलाती है।
3. **महासागरीय–महाद्वीपीय प्लेटः** जिस प्लेट पर महाद्वीप व महासागरीय तली दोनों का विस्तार होता है।

प्लेट किनारे (Plate Margins)

भू–गर्भ की सारी विवर्तनिक क्रियाऐं इन प्लेटों के किनारों पर सम्पन्न होती है। ये प्लेट किनारे तीन प्रकार के होते है। (चित्र सं. 5.7)

1. रचनात्मक प्लेट किनारा (Constructive Plate Margins)

इन किनारों के सहारे दो प्लेटों का अपसरण होता है, जिससे जो रिक्त स्थान बनता है उससे मैग्मा बाहर निकलकर लावा के रूप में जमा होते रहने से वहाँ क्षेत्रीय विस्तार होता है इसलिए इन्हें रचनात्मक किनारे कहते हैं अटलाण्टिक कटक पर ऐसे ही पार्श्व मिलते हैं।

2. विनाशात्मक किनारा (Destructive Plate Margins)

इन किनारों के सहारे दो प्लेटों के अभिसरण के कारण एक प्लेट दूसरी के ऊपर चढ़ जाती है एवं दूसरी प्लेट का अवतलन होता है। अवतलित प्लेट का अग्रभाग टूटकर मेण्टल में प्रवेश करने पर पिघल जाता है। अतः इसे विनाशात्मक किनारा कहा जाता है। यह पिछला पदार्थ पुनः कमजोर भूपटल से बाहर निकलकर ज्वालामुखी एवं द्वितीय चाप को जन्म देता है। प्रशान्त महासागरीय प्लेट के किनारों पर द्विपीय व ज्वालामुखी श्रृंखला

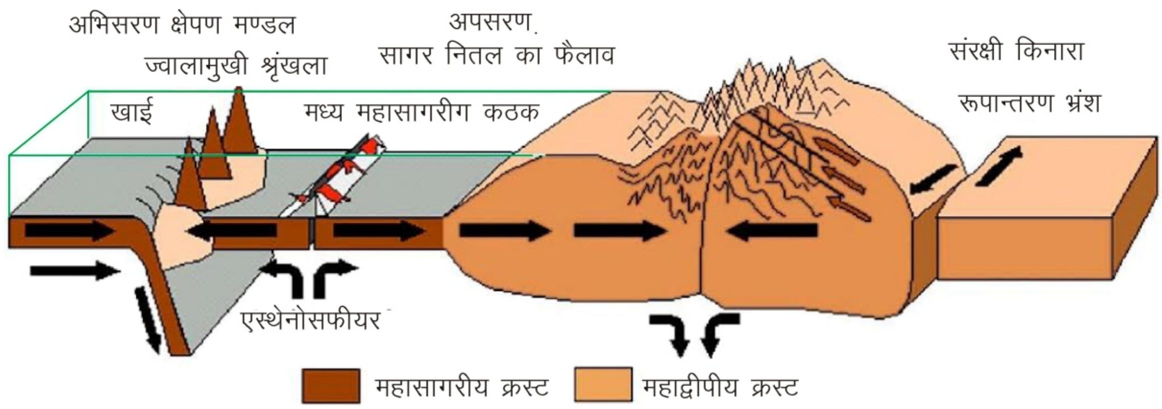

चित्र 5.7 – प्लेट किनारों के प्रकार एवं उन पर क्रियाऐं

विस्तृत है।

3. संरक्षी किनारा (Conservative Plate Margins)

इन किनारों के सहारे दो प्लेटें आस–पास में सरकती है जिसमें न तो किसी प्लेट का क्षरण होता है और न ही वहाँ नये पदार्थों का सृजन होता है, केवल रूपान्तर भ्रंश का निर्माण होता है। अतः इसे संरक्षी किनारा कहते हैं। उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भाग में सैन एण्ड्रियास भ्रंश के सहारे दो उप प्लेटों का संरक्षी किनारा ही है।

प्लेटों में गति के कारणः

पृथ्वी में स्थित रेडियो धर्मत्व से उत्पन्न भूतापीय ऊर्जा संवहनीय तरंगों के रूप में ऊपर उठ प्लेटों में गति उत्पन्न करते हैं। प्लेटों के एकदम नीचे संवहन तरंगों का प्रवाह उन्हें क्षैतिजीय गति देता है। मध्य महासागरीय कटकों के क्षेत्र में भीतर से मेग्मा का ऊपर आना एवं अभिसारी पार्श्व पर प्लेट का नीचे धंसकर मेंटल में पहुंचना संवहन तरंग की मुख्य गतिविधियां हैं।

प्लेट विवर्तनिकी के साक्ष्य

1. सागर नितल प्रसरण (Sea Floor Spreading)

अपसारी पार्श्व पर दो प्लेटों के विपरीत दिशा में प्रवाह से रिक्त स्थान बनते हैं। इन रिक्त स्थानों में नीचे से संवहन क्रिया द्वारा मैग्मा ऊपर उठता है एवं यह लावा के रूप में ऊपर जमा हो जाता है जिससे नई शैलों की उत्पत्ति होती है। इस प्रक्रिया के निरन्तर चलने से नई शैल पर्पटी बनने का क्रम चलता रहता है। परिणाम स्वरूप महासागरीय तली का विस्तारण होता है। जैसे मध्य अटलाण्टिक कटक के दोनों ओर लावा बाहर निकलकर नवीन पर्पटी का निर्माण कर रहा है जिससे अटलाण्टिक महासागर का फैलाव हो रहा है। महासागरीय तली के विस्तारण से महाद्वीप व महासागरों की अस्थिरता की संकल्पना भी प्रमाणित होती है। (चित्र सं. 5.8)

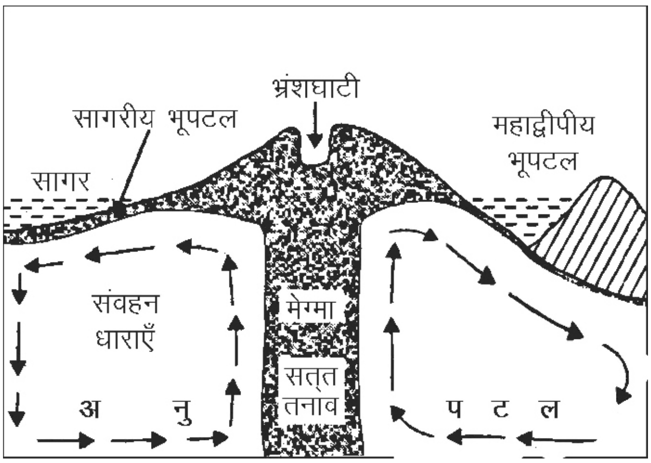

चित्र 5.8 – सागर नितल प्रसरण

2. महाद्वीपीय विस्थापन (Continental Drift)

पुरा चुम्बकत्व (Paleomagnetism) व सागर तलीय प्रसारण से सम्बन्धित नवीनतम खोजों से इस तथ्य को बल मिला है कि महाद्वीप व महासागरीय बेसिन कभी–भी स्थिर व स्थायी नहीं रहे हैं। इन खोजों के आधार पर अभी तक पिछले बीस करोड़ वर्ष से पूर्व की महाद्वीपीय विस्थापन से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध है।

3. दरारी घाटियों का चौड़ा होना (Broadening of Rift Valleys)

जिन प्लेट पार्श्वों पर दरार घटियाँ हैं वे चौड़ी होती जा रही है। लाल सागर व अदन की खाड़ी में विस्तरण की दर 1 सेमी प्रतिवर्ष है। कैलीफोर्निया की खाड़ी का भी विस्तारण हो रहा है।

4. अन्य प्रभाव (Other Effect)

प्लेट विवर्तनिकी के कारण अनेक अन्य प्रभाव भी पड़े हैं जिनको इसी अध्याय में अन्य बिन्दुओं के विवरण में समझाया जा चुका है। भूकम्प की घटनाएँ, ज्वालामुखी क्रिया, पर्वत निर्माण द्वीपीय चापों (Island/Festoons) का निर्माण आदि ऐसे अन्य प्रभाव हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि अधिकांश भूगोलवेत्ता, भूगर्भशास्त्री तथा भूवैज्ञानिक महाद्वीपीय विस्थापन की सच्चाई को अब पुनः मानने लगे हैं। वर्तमान में विस्थापन के लिये केवल सक्षम नोदकबल (Propelling Force) विवादास्पद बिन्दु है। नवीनतम शोध अध्ययनों ने तापीय संवाहनिक धाराओं की संकल्पना की विश्वसनीयता को प्लेट विवर्तनिकी के सन्दर्भ में पुर्नजीवित किया है।

इस प्रकार प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त ने वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर न केवल महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त को बल प्रदान किया वरन् इसके द्वारा भूकम्प, ज्वालामुखी क्रिया, द्वीपीय चाप की उपस्थिति आदि अन्य कई क्रियाओं का भी स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. महाद्वीपों व महासागरों को प्रथम श्रेणी के भूआकार कहते हैं।
2. वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त का प्रमुख आधार जलवायु कटिबन्ध स्थिर रहे तथा स्थल खण्डों की स्थिति परिवर्तनशील रही है।
3. वैगनर ने सियाल रूपी महाद्वीपों को सीमा की परत पर तैरता हुआ माना।

4. समस्त महाद्वीप एक स्थलखण्ड के रूप में स्थित थे, जिसे वेगनर ने पेंजिया कहा जिसके चारों ओर पेंथालासा नामक विशाल महासागर था।
5. चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण महाद्वीपों का पश्चिम की ओर विस्थापन तथा उत्प्लावन बल के कारण भूमध्य रेखा की ओर विस्थापन हुआ।
6. अटलाण्टिक तटीय साम्य, पर्वतों के संरेखण, भूगर्भिक संरचनात्मक समानता, ज्यॉमितीय प्रमाण, जैविक प्रमाण, पुराजीवाश्मीय एवं पुराजलवायु के प्रमाण महाद्वीप विस्थापन सिद्धान्त को प्रमाणित करते है।
7. पृथ्वी की बाहरी परत 'स्थल मण्डल' के लिए प्लेट शब्द का प्रयोग हुआ। प्लेटों के सम्पूर्ण गतिक्रम को प्लेट विवर्तनिक कहते हैं।
8. महाद्वीपीय व महासागरीय प्लेटें – इण्डो–ऑस्ट्रेलियन, यूरेशियन, अफ्रीकी, अमेरिकन, प्रशान्त अण्टार्कटिका प्लेटें।
9. प्लेट विवर्तनिकी के प्रभाव / साक्ष्य – महासागरीय तली का प्रसरण, महाद्वीपीय विस्थापन, दरार घाटियों का चौड़ा होना व अन्य।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. पैन्जिया के चारों ओर फैला हुआ महासागर था।
   (अ) अटलाण्टिक (ब) पैन्थलासा
   (स) टैथीस (द) आर्कटिक
2. वैगनर के अनुसार महाद्वीपों का विस्थापन जिन दिशाओं की ओर हुआ वे हैं
   (अ) दक्षिण व उत्तर (ब) पूर्व व भूमध्यरेखा
   (स) उत्तर व पश्चिम (द) पश्चिम व भूमध्य रेखा।
3. केवल प्लेट विवर्तनिकी से सम्बन्धित तथ्य है –
   (अ) साम्यस्थापन (ब) पेंजिया
   (स) टिथीस (द) आर्कटिक
4. पेंजिया जिससे निर्मित था
   (अ) सियाल (ब) सीमा
   (स) निफे (द) सियाल एवं सीमा
5. प्लेट शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया –
   (अ) फिन्च (ब) टूजो विल्सन
   (स) वेगनर (द) ग्रिफिथ टेलर

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

6. पेंजिया किसे कहते हैं ?
7. प्लेट किनारों के प्रकार बताईए।
8. अटलाण्टिक तटों के सामीप्य में कौनसी कटक बाधक है ?
9. पेंथालासा से आपका क्या आशय है ?
10. प्लेट की औसत मोटाई कितनी है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

11. महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त के भौगोलिक प्रमाण लिखिए।
12. JIG-SAW-FIT से क्या तात्पर्य है ?
13. द्वीपीय चाप बनाने की क्रिया कौनसे किनारों पर होती है ?
14. पृथ्वी की प्रमुख प्लेटों के नाम बताईये ?
15. वेगनर के अनुसार महाद्वीपों के प्रवाह के लिए कौनसे बल उत्तरदायी हैं।

निबन्धात्मक प्रश्न–

16. वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।
17. भूमण्डलीय प्लेटों का वर्णन करते हुए प्लेट विवर्तनिकी के साक्ष्य बताइए।
18. प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त पर एक लेख लिखिए।

उत्तरमाला – 1. ब 2. द 3. स 4. अ 5. ब

अध्याय – 6

शैलें
(Rocks)

पृथ्वी की ऊपरी परत जिसे भूपटल (Crust) कहा जाता है, विभिन्न प्रकार के खनिज तत्वों के संगठित होने से बना है। साधारण भाषा में 'शैल' शब्द किसी कठोर वस्तु के लिए प्रयोग होता है जबकि एक भूवैज्ञानिक के अनुसार – वे समस्त पदार्थ, जिनसे भूपर्पटी का निर्माण हुआ है चाहे वे ग्रेनाईट की भांति कठोर हो अथवा चीका की भांति मुलायम हो शैल कहलाते हैं, अतः संश्लिष्ट रूप से भूपर्पटी में विभिन्न खनिजों का मिश्रित ठोस रूप शैल कहलाता है। ये निम्न प्रकार की होते है :

1. आग्नेय शैलें (Igneous Rocks)
2. परतदार शैलें (Sedimentary Rocks)
3. कायान्तरित शैलें (Metamorphic Rocks)

आग्नेय शैलें (Igneous Rocks)

पृथ्वी के निर्माण होने के समय तप्त तरल मेग्मा व लावा के ठण्डा होकर जमने से निर्मित शैल को आग्नेय शैल कहा जाता है यह शैले सबसे पहले बनी, अतः इसे प्राथमिक शैलें भी कहा जाता है। पृथ्वी की प्रारम्भिक भूपर्पटी आग्नेय शैलों से बनी है, अतः सभी शैलों का निर्माण आग्नेय शैलों से ही हुआ है। इनमें अन्य जीवावशेष नहीं पाये जाते हैं। भूपर्पटी के सबसे ऊपर 16 किमी की मोटाई में आग्नेय शैल का 95 प्रतिशत भाग होता है।

आग्नेय शैलों की विशेषताएँ

1. इन शैलों में परतों का अभाव पाया जाता हैं।
2. ये शैलें अरन्ध्री होती हैं।
3. ये शैलें रवेदार होती हैं।
4. इन शैलों में जीवाश्म (Fossils) नहीं पाये जाते हैं।
5. ये शैलें अत्यधिक कठोर होती हैं
6. इन शैलों पर रासायनिक अपक्षय की तुलना में भौतिक अपक्षय का प्रभाव अधिक होता हैं।
7. इन शैलों में धत्विक खनिज मिलते हैं।

शैलों के खनिजों की रचना, रंग, कणों की बनावट, आकार एवं निर्माण स्थल के आधार पर आग्नेय शैलों का वर्गीकरण निम्न वर्गों में किया जाता है। (सारणी –6.1)

1. निर्माण स्थल के आधार पर आग्नेय शैलों का वर्गीकरण

(अ) **आन्तरिक** (Intrusive) **आग्नेय शैल** : ये शैलें धरातल के नीचे मैग्मा जमने से बनती है। धरातल के नीचे मैग्मा के धीरे–धीरे ठण्डा होने के कारण इन शैलों में बड़े आकार के रवे बनते हैं गहराई के अनुसार ये दो प्रकार की होती है :

(i) **पातालीय** (Plutonic): मैग्मा के पृथ्वी के भीतर बहुत अधिक गहराई पर ठण्डा होकर जमने से ये शैलें बनती हैं। बहुत अधिक गहराई पर ठण्डा होने की प्रक्रिया धीमी गति से होने के कारण इनमें रवे बड़े आकार के बनते हैं। ग्रेनाईट इसका सर्वोत्तम

सारणी 6.1 : आग्नेय शैलों का वर्गीकरण

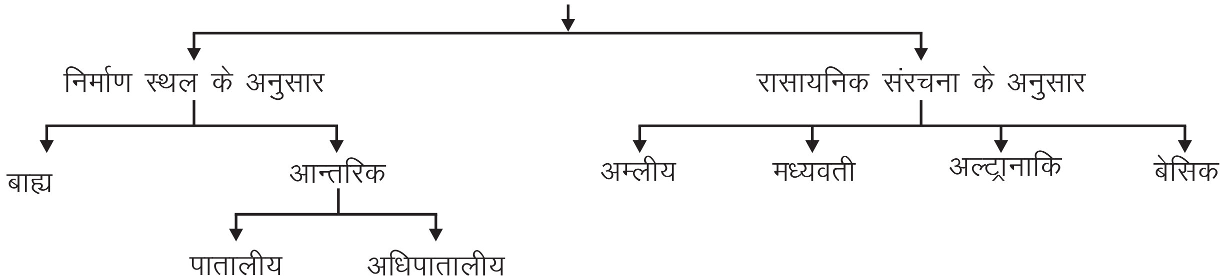

उदाहरण हैं।

(ii) **उपपातालीय** (Hypabyssal): मैग्मा के धरातल के कुछ ही नीचे दरारों व सन्धियों में जम जाने से ये शैले बनती हैं। ठण्डा होने में अपेक्षाकृत कम समय लगने के कारण इनमें रवे छोटे आकार के बनते हैं उपपातालीय शैले के रूप में मैग्मा फैकोलिथ, लेकोलिथ, लोपोलिथ डाइक, सिल आदि की आकृतियां ग्रहण करता है– चित्र –6.1

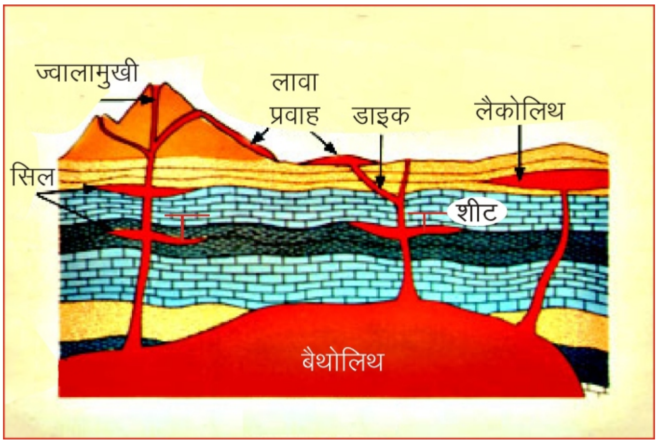

चित्र सं. 6.1 : आग्नेय शैले

(ब) **बाह्य** (Extrucive) **आग्नेय शैल** : ये शैलें धरातल के ऊपर लावा के ठण्डा होकर जमने से बनती है। लावा के जल्दी ठण्डा होने से इनमें रवों का आकार बड़ा होता है। ग्रेबो एवं बेसाल्ट बाह्य आग्नेय शैलों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

2. रासायनिक संरचना के अनुसार वर्गीकरण

(अ) **अम्लीय** (Acidic) **शैलें**: इन शैलों में सिलिका की मात्रा 65 प्रतिशत से अधिक होती है। ये कठोर व मजबूत शैले होती हैं। ग्रेनाईट इसका प्रमुख उदाहरण है।

(ब) **पैठिक** (Basic) **शैलें**: इन शैलों में सिलिका की मात्रा 45 से 55 प्रतिशत के मध्य होती है। ये क्षारीय होती है। बेसाल्ट व ग्रेबो इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(स) **मध्यवर्ती** (Intermediate) **शैलें**: इन शैलों में सिलिका की मात्रा अम्लीय व पैठिक शैलों के मध्य होती है, डायोराइट इसका प्रमुख उदाहरण है।

(द) **अल्ट्रा पैठिक** (Ultra Basic) इनमें सिलिका की मात्रा 45 प्रतिशत से कम होती है पेरिडोटाइट इसका प्रमुख उदाहरण हैं।

मैग्मा तीन प्रकार के होते है –

1. बेसाल्टिक (तापमान : 1000^{0}–1200^{0} से.),
2. एण्डेसाइटिक (तापमान : 800^{0}–1000^{0} से.),
3. रायोलिटिक (तापमान : 650^{0}–800^{0} से.)।

परतदार शैलें (Sedimentary Rocks)

पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद से ही उस पर अनाच्छादन की शक्तियां कार्यरत रहती हैं, जिसमें अपक्षय व अपरदन के द्वारा शैलें टूटकर उसी स्थान पर या अन्यत्र जमा होती जाती हैं। इन विभिन्न शैलों के द्वारा प्राप्त शैल चूर्ण, जीवावशेष एवं वनस्पतियों के एक के ऊपर एक परतों के रुप में जमा होने से निर्मित शैल को अवसादी शैल कहते हैं। ये शैल भू–पृष्ठ के 75 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं।

विशेषताएँ

1. इन शैलों में अनेक परतें पाई जाती है।
2. ये शैलें रंध्र युक्त होती हैं।
3. शैलों की परतों के मध्य में जीवावशेष मिलते हैं।
4. इन शैलों का अपरदन अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है।
5. ये शैलें प्रायः मुलायम होती हैं।

अवसादी शैलों का निर्माण अनेक प्रकार के पदार्थ व अवसाद से होता है और निर्माण में अनेक प्रक्रम भाग लेते हैं। अतः अवसादी शैलों का वर्गीकरण निम्न आधार पर किया जा सकता है : (सारणी–6.2)

(1) निर्माण में प्रयुक्त अवसाद के अनुसार – इस आधार पर अवसादी शैलों को निम्न भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

(अ) **शैल चूर्ण से निर्मित** (Clastic Rocks) – अपक्षय व

सारणी 6.2 : परतदार शैलों का वर्गीकरण

- प्रयुक्त अवसाद के अनुसार
  - चट्टान चूण से निर्मित
  - जैविक तत्व से निर्मित
  - रासायनिक तत्व से निर्मित
- निर्माण में प्रयुक्त साधन के अनुसार
  - जलज शैल
  - वापूढ शैल
  - हिमालीकृत शैल

अपरदन क्रिया से प्राप्त शैल चूर्ण एक स्थान से दूसरे स्थान पर परतों के रुप में जमा होते रहते हैं कालान्तर में ये संगठित होकर अवसादी शैल का रूप धारण कर लेते हैं। बालूका पत्थर, कांग्लोमेरेट, चीका मिट्टी एवं लोयस इनके प्रमुख उदाहरण हैं।

(ब) **जैविक तत्वों से निर्मित अवसादी शैलें** (Organically Rocks) – जीव–जन्तुओं एवं वनस्पति के अवशेषों की इन शैलों में प्रधानता होती हैं। इन्हें तीन भागों में विभाजित किया जाता है –

(i) **चूना प्रधान शैलें** – चूना प्रधान जीव–जन्तुओं के अवशेषों तथा जल से घुले हुए चूने के प्रभाव से ये शैले बनती हैं। डोलोमाईट इसी प्रकार की शैल है।

(ii) **कार्बन प्रधान शैलें** (Carbonaceous Rocks)– उष्ण आर्द्र क्षेत्रों में वनस्पति के अवसादों की परतों के दबने से इस प्रकार की शैलें बनती हैं। कोयलायुक्त शैलें में इसी श्रेणी में सम्मिलित की जाती ह ैं।

(स) रासायनिक तत्वों से निर्मित अवसादी चट्टानें (Chemically formed sedimentary Rocks) – बहते जल के मार्ग में घुलनशील शैलों के स्थित होने की दशा में जल घुलनशील पदार्थों को घोलकर अपने साथ परिवहित करके ले जाता है एवं इनका जमाव अन्यत्र करता जाता है, जिससे इन शैलों का निर्माण होता है। खड़िया मिट्टी, शैल खड़ी एवं नमक की शैले इस प्रकार की शैलों के प्रमुख उदाहरण हैं।

(2) निर्माण में प्रयुक्त साधन के आधार पर –

(अ) जल निर्मित शैले (Aqueous Rocks) – इनका निर्माण जलीय भागों में अवसादों के निक्षेपण से होता है। जमाव स्थल के आधार पर ये शैलें तीन प्रकार की होती है। सागरीय शैल, झीलकृत शैल एवं नदीकृत शैल।

(ब) वायु निर्मित शैले (Aeolian Rocks) – ये शैलें वायु द्वारा कणों के परिवहन व निक्षेपण से बनती है। लोयस इसका प्रमुख उदाहरण है।

(स) हिमानी निर्मित शैले (Glacial Rocks) – ये शैलें हिमानी द्वारा कंकड़, गोलाश्यों के परिवहन व निक्षेपण से बनती हैं। इन्हें हिमोढ़ कहते हैं।

कायान्तरित शैलें (Metamorphic Rocks)

किसी मौलिक शैल में विघटन व वियोजन के बिना उसके गुण और संरचना में मूलभूत परिवर्तन से बनी भिन्न प्रकार की शैले कायान्तरित शैले कहलाती हैं। ये मौलिक शैलें, आग्नेय, अवसादी या कायान्तरित भी हो सकती है। यह कायान्तरण जल, ताप व दाब अथवा तीनों के प्रभाव से हो सकता है।

कायान्तिरित शैलों की विशेषताऐं –

1. ये गौण शैले (Secondary Rocks) होती है क्योंकि इनका निर्माण अन्य शैलों के कायान्तरण अथवा रूप परिवर्तन से होता है।
2. ये मौलिक शैलों की अपेक्षा अधिक संगठित व कठोर होती है।
3. इनमें धात्विक खनिजों की प्रधानता होती है। अतः ये शैले आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है।
4. ये शैलें अरन्ध्रपूर्ण होती है।

सामान्य रूप से रूपान्तरण को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. तापीय रूपान्तरण (Thermal Metamorphism)

ज्वालामुखी क्रिया के समय जब शैलों का मैग्मा से सम्पर्क होता है, तब ज्वालामुखी नली के आसपास की शैलों में उच्चताप के कारण कायान्तरण होता है इसे तापीय या संस्पर्शीय रूपान्तरण कहते हैं।

2. गतिक या क्षैत्रीय कायान्तरण (Dynamic or Regional Metamorphism)

इस प्रकार के रूपान्तरण की क्रिया एक विस्तृत क्षेत्र में घटित होती है, इनमें सम्पीड़न व ताप दोनों का प्रभाव होता है। इस प्रकार का रूपान्तरण प्रायः मोड़दार पर्वतीय क्षेत्रों में होता है।

3. जलीय रूपान्तरण (Hydro Metamorphism)

ऐसे रूपान्तरणों में जल के साथ रासायनिक पदार्थों के मिलने से घोल के रूप में शैल के खनिज में परिवर्तन आ जाता है।

4. ताप जलीय रूपान्तरण (Thermo Hydro Metamorphism)

जब शैलों के ऊपर गर्म जल होता है तब दबाव व जल वाष्प से शैलों में इस प्रकार का रूपान्तरण होता है।

कायान्तरित शैलों का वर्गीकरण

मौलिक शैल जिनके रूपान्तरण से रूपान्तरित शैल बनी इस आधार पर शैलों को निम्नलिखित भागों में बांटा जाता है–

क्र.सं.	मौलिक शैल	रूपान्तरित शैल
1.	आग्नेय शैल	
	1. ग्रेनाईट	1. नीस
	2. बेसाल्ट	2. ऐम्फी बोलाईट
	3. ग्रेबो	3. सर्पेण्टाईन
2.	परतदार शैल	
	1. बालू पत्थर	1. क्वार्टजाईट

	2. चूना पत्थर	2. संगमरमर
	3. शेल	3. स्लेट
	4. कोयला	4. ग्रेफाइट, हीरा
3.	कायान्तरित	पुनः कायान्तरित
	1. स्लेट	1. शिष्ट
	2. शिष्ट	2. फाइलाइट

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भूपर्पटी में विभिन्न खनिजों का मिश्रित ठोस रूप शैल कहलाता है।
2. शैलों के तीन मुख्य प्रकार – आग्नेय, परतदार एवं कायान्तरित।
3. पृथ्वी के निर्माण के समय तप्त तरल मैग्मा के ठण्डा होकर जमने से निर्मित शैलों को आग्नेय शैल कहा जाता है।
4. आग्नेय शैले परत रहित, जीवावशेष रहित, कठोर, रवेदार अरन्ध्री तथा धात्विक खनिजों से युक्त होती है।
5. परतदार शैलें परतयुक्त, जीवावशेषयुक्त, रन्ध्रयुक्त एव अपेक्षाकृत मुलायम होती है।
6. जल, ताप व दाब के प्रभाव से मौलिक शैलों में परिवर्तन से कायान्तरित शैलें भिन्न प्रकार की शैलें कहलाती हैं। ये अधिक संगठित और धात्विक खनिजों से युक्त होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. निम्न में से कौनसी शैल आग्नेय शैल है –
   (अ) नीस (ब) संगमरमर
   (स) हीरा (द) स्लेट
2. मौलिक शैल है ?
   (अ) आग्नेय (ब) परतदार
   (स) अवसादी (द) कायान्तरित।
3. जिन शैलों में जीवावशेष नहीं पाये जाते हैं, वे हैं –
   (अ) परतदार (ब) गौण
   (स) आग्नेय (द) कायान्तरित
4. निम्न में से कौनसी शैल कायान्तरित शैल है ?
   (अ) ग्रेनाईट (ब) संगमरमर
   (स) बेसाल्ट (द) इनमें से कोई नहीं।
5. निम्न में से कौनसी शैल परतदार शैल है ?
   (अ) ग्रेनाईट (ब) चुना पत्थर
   (स) बेसाल्ट (द) संगमरमर

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न –

6. आग्नेय शैल के कोई दो उदाहरण दीजिए।
7. शैल किसे कहते हैं ?
8. किन्हीं दो अवसादी चट्टानों के कायान्तरित रूप बताइये।
9. शैल को परिभाषित कीजिए।
10. परतदार शैल को परिभाषित कीजिए।

लघुत्रात्मक प्रश्न –

11. आग्नेय शैलों की विशेषताऐं बताईये।
12. परतदार शैलों की विशेषताऐं बताईये।
13. कायान्तरित शैलों की विशेषताऐं बताईये।
14. परतदार शैलों से बनी कायान्तरित शैलों के नाम बताईये।
15. आग्नेय शैलों से बनी कायान्तरित शैलों के नाम बताईये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. शैलों को वर्गीकृत कीजिए एवं कायान्तरित शैलों का विस्तृत विवेचन कीजिए।
17. आग्नेय शैलों को वर्गीकृत करते हुए विस्तृत वर्णन कीजिए।
18. परतदार शैलों को वर्गीकृत करते हुए उनका विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला – 1. द 2. अ 3. स 4. ब 5. ब

अध्याय – 7

भूकम्प एंव ज्वालामुखी
(Earthquakes and Volcanoes)

भूकम्प (Earthquake)

पृथ्वी का भूपटल अन्तर्जात तथा बहिर्जात बल के कारण सदैव परिवर्तनशील रहता है। भूकम्प आकस्मिक अन्तर्जात बल के कारण होने वाली एक प्रमुख प्राकृतिक आपदा है। भूकम्प भूपृष्ठ के कम्पन को कहते हैं।

भूगोलवेत्ता एफ. जे. मोंकहाऊस के अनुसार भूपटल की शैलों में संचलन व समायोजन की क्रिया द्वारा बाहर की ओर सभी दिशाओं में होने वाले प्रत्यास्थ प्रघाती तरंगों के संचार को भूकम्प कहते हैं। साधारण शब्दों में भूकम्प को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, ''भूकम्प भूगर्भिक शक्तियों के परिणामस्वरूप धरातल के किसी भाग में उत्पन्न होने वाले आकस्मिक कम्पन को कहते हैं।''

भूकम्प उत्पत्ति के कारण –

किसी क्षेत्र की समस्थिति में अस्थायी रूप से उत्पन्न असंतुलन से भूकम्प आता है। धरातल की संतुलन व्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न करने वाले निम्नलिखित कारक हैं जिनसे भूकम्प उत्पन्न होते हैं :

1. **भ्रंशन** (Faulting) – भूगर्भिक शक्तियों द्वारा तनाव व सम्पीड़न के कारण शैलों में चटकन व दरारें पड़ जाती हैं एवं भ्रंशन उत्पन्न होते हैं। इन क्रियाओं के दौरान भूकम्प आते हैं।
2. **ज्वालामुखी क्रिया** (Volcanism) – ज्वालामुखी क्रिया भूकम्प के आने का प्रमुख कारण है। ज्वालामुखी उद्‌गार के समय जब तीव्र व वैगवती गैसें पृथ्वी के अभ्यांतर से बाहरी भाग पर प्रकट होने के लिए धक्का लगाती हैं तो भूपटल पर कम्पन्न पैदा होता है। ऐटना, क्राकाटोवा, विसूवियस आदि ज्वालामुखी विस्फोट के समय विनाशकारी भूकम्प आए थे।
3. **जलीय भार** (Water load) – कुछ विद्वानों के अनुसार बड़े बांधों के निर्माण के फलस्वरूप धरातलीय भाग पर अत्यधिक मात्रा में जल का भंडारन होने से जल भंडार की तली के नीचे स्थित शैलों में हेर–फेर होने लगता है जिससे भूकम्प आते हैं। दिसम्बर 1967 को महाराष्ट्र के कोयना भूकम्प का एक कारण 'कोयना बांध' को माना जाता है।
4. **भूपटल का संकुचन** (Contraction of the Earth)– कुछ विद्वानों ने भूकम्पों की उत्पत्ति का कारण भूपटल में संकुचन को माना है। उनके अनुसार पृथ्वी के तापक्रम में निरन्तर विकिरण की क्रिया के फलस्वरूप ह्रास हो रहा है, जिससे भूपटल ठंडी होने से सिकुड़ रही है। जब यह क्रिया शीघ्र व तीव्रता से होती है तो भूकम्प उत्पन्न होते हैं, डाना, ब्यूमाउण्ट, जेफ्रीज इसी मत के समर्थक हैं।
5. **समस्थिति समायोजन** (Isostatic Adjustments)– सामान्यतया भूपटल के विविध भूआकाऱों यथा पर्वत, पठार, मैदान व महासागरीय गर्त में संतुलन बना रहता है जब कभी अपरदन कारी क्रिया द्वारा निक्षेपित मलबे से समुद्री क्षेत्रों में भार अधिक हो जाता है, तो इस संतुलन व्यवस्था में क्षणिक रूप से असन्तुलन होने से भूकम्प आते हैं। हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में भूकम्प प्रायः इसी कारण से आते हैं। (चित्र सं. 7.1)
6. **प्रत्यास्थ पुनश्चलन सिद्धान्त** (Elastic Rebound Theory) – प्रो. एफ.एस.रीड के अनुसार शैले रबड़ की भांति एक सीमा तक खिंचती है उसके बाद टूट जाती है एवं टूटे हुए भूखण्ड पुनः खींचकर अपना स्थान ग्रहण करते हैं इससे भूकम्प उत्पन्न होते हैं।
7. **प्लेट विवर्तनिकी** (Plate Tectonic) – विभिन्न प्लेट किनारों पर भूपलेटें अपसरीत, अभिसरीत या दाऐं बाऐं सरकती हैं। इन क्रियाओं के दौरान होने वाली हलचलों के कारण भूकम्प आते हैं।
8. **अन्य कारण** – उपर्युक्त कारणों के अलावा गैसों के फैलाव, भूस्खलन, समुद्रतटीय भागों में भृगुओं के टूटने,

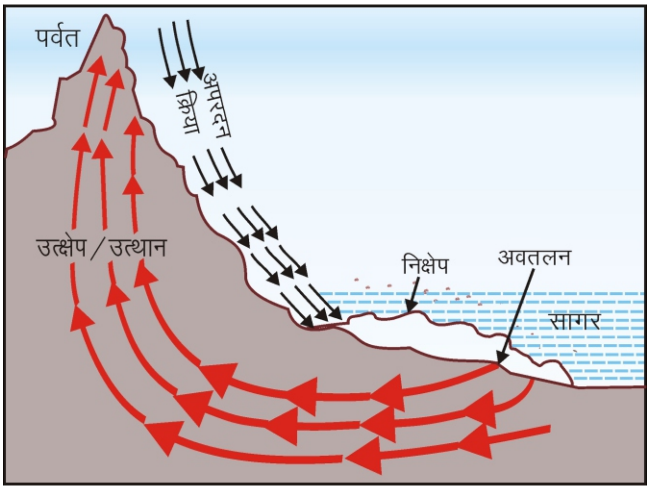

चित्र 7.1 : भूसन्तुलन समायोजन

कन्दराओं की छतों के ढहने आदि के कारण लघु प्रभाव वाले भूकम्प आते हैं। इसके अतिरिक्त मानवीय कारणों यथा–आणविक विस्फोट, खनन क्षेत्रों में विस्फोट, गहरे छिद्रण आदि से भी स्थानीय प्रभाव वाले भूकम्प उत्पन्न होते हैं।

भूकम्प विज्ञान (Seismology)

भूकम्प विज्ञान में भूकम्पीय लहरों का सिस्मोग्राफ द्वारा अंकन किया जाता है भूगर्भ में जिस स्थान पर भूकम्प की उत्पत्ति होती है उसे भूकम्प मूल (Focus) कहते हैं। भूकम्प मूल के समकोण पर भूकम्प का वह केन्द्र होता है जहां पर भूकम्पीय लहरों का अनुभव सबसे पहले होता है इस स्थान को अधिकेन्द्र (Epicentre) कहते हैं। (चित्र सं. 7.2)

भूकम्पीय तरंगे (Earthquke Waves)

भूकम्प मूल पर आघात उत्पन्न होने से शैलों में कम्पन्न होता है जिससे तरंगे उत्पन्न होती है। तरंगों के चलने की विधि व गति के अनुसार भूकम्पीय तरंगों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है, पी–तरंगे, एस–तरंगे और एल तरंगे।

1. **पी–तरंगे** (P-Waves) – इन्हें प्राथमिक तरंगें भी कहते हैं। भूकम्प मूल से प्रारम्भ होकर ये तरंगे धरातल पर सबसे पहले पहुंचती है। इनकी औसत गति 6 से 13 किमी प्रति सैकण्ड होती है। इन तरंगों के शैल में से होकर गुजरने पर शैल कणों में कम्पन्न तरंगों की गति की दिशा में आगे पीछे होता है ये तरंगे ठोस, द्रव व गैस तीनों माध्यम से गुजरतीं हैं।

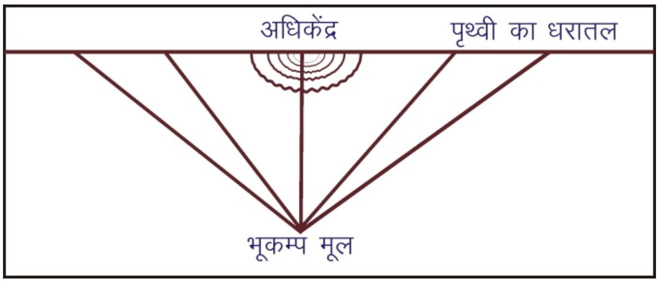

चित्र 7.2 : भूकम्प मूल एवं अधिकेद्र

2. **एस–तरंगे** (S-Waves) – इन्हें द्वितीयक तरंगे भी कहते हैं। इनकी औसत गति 4 से 7 किलोमीटर प्रति सैकण्ड होती है। इन तरंगों के शैलों से होकर गुजरने पर शैल कणों में गति तरंग की दिशा में समकोण पर होती है। यह तरंगे केवल ठोस भाग से गुजरती है, तरल भाग में लुप्त हो जाती है।
3. **एल–तरंगे** (L-Waves) – धरातल पर ये तरंगे सबसे लम्बा मार्ग तय करती है एवं केवल धरातल पर अधिकेन्द्र से चारों ओर फैलती हैं। इसलिए इन तरंगों को लम्बी व धरातलीय तरंगे कहते हैं। ये तरंगे तीन किलोमीटर प्रति सैकण्ड की गति से चलती है इन तरंगों से भूकम्प क्षेत्र में सर्वाधिक क्षति होती है। अधिकेन्द्र पर तीनों तरंगों का अभिलेखन एक साथ होता है। अतः इनमें भिन्नता ज्ञात नहीं होती है। किन्तु इनकी गति भिन्न होने के कारण अधिकेन्द्र से दूर इनके पहुंचने का समय अलग अलग होता है। अतः ये तरंगे एक के बाद एक पहुंचती है। जिससे इनमें स्पष्ट विभेद किया जा सकता है। (चित्र सं. 7.3)

Pg व Sg लहरें – गुण में ये P तथा S की भाँति होती हैं, लेकिन इनकी गति कम होती है। ये लहरें धरातल के निकट चलती हैं।

P* व S* लहरें – इनकी गति Pg तथा Sg से अधिक होती हैं। ये पृथ्वी की मध्यवर्ती परत में चलती हैं।

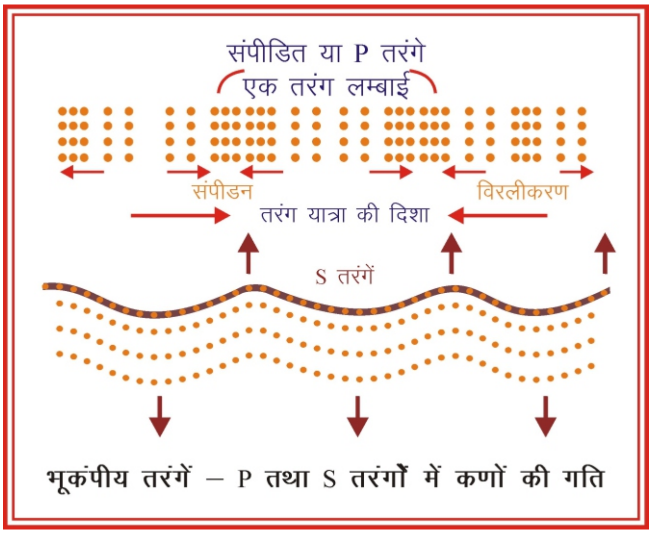

चित्र 7.3 : भूकम्पीय तरगें

भूकम्प के प्रकार –

अनेक प्रकार के भूकम्प पृथ्वी के विभिन्न भागों को प्रभावित करते रहते हैं। स्वभाव तथा कारणों के आधार पर भूकम्पों को निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है –

1. कृत्रिम भूकम्प (Aartificial Earthquake)

ये भूकम्प मानवीय क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये भूकम्प स्थानीय प्रभाव वाले होते हैं और इनकी तीव्रता बहुत कम होती है। जैसे खान खोदने, परमाणु विस्फोट, भूमिगत आण्विक परीक्षण आदि से उत्पन्न भूपटल कम्पन्न।

2. प्राकृतिक भूकम्प (Natural Earthquake)

ये प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न क्रियाशील भूकम्प होते हैं, जो कि निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :

(अ) ज्वालामुखी भूकम्प (Volcanic Earthquakes)– जो भूकम्प ज्वालामुखी क्रिया या उद्‌गार के समय उत्पन्न होते हैं, वो भूकम्प ज्वालामुखी भूकम्प कहलाते हैं, यथा विसूवियस, एटना, क्राकाटोवा उद्‌गार के समय उत्पन्न भूकम्प।

(ब) विवर्तनिक भूकम्प (Tectonic Earthquakes)– ये संरचनात्मक भूकम्प हैं, जो भूगर्भ की विवर्तनिक हलचलों यथा तनाव, संपीड़न आदि से उत्पन्न होते हैं। ऐसे भूकम्प अधिक गहराई पर उत्पन्न नहीं होते हैं, यथा– केलिफोर्निया का भूकम्प।

(स) संतुलन मूलक भूकम्प (Isostatic Earthquake)– ये भूकम्प भूपटल की संतुलन व्यवस्था में अव्यस्था उत्पन्न होने के फलस्वरूप आते हैं। इस प्रकार के भूकम्प प्रायः नवीन मोड़दार पर्वतीय क्षेत्र हिमालय आदि में आते हैं यथा वर्ष 2015 में हिंदकुश तथा नेपाल का भूकम्प।

(द) प्लूटोनिक भूकम्प (Plutonic Earthquake)– धरातल से अत्यधिक गहराई पर उत्पन्न होने वाले भूकम्प प्लूटोनिक भूकम्प या पातालीय भूकम्प कहलाते हैं। ऐसे भूकम्प की उत्पत्ति तथा शक्ति के बारे में बहुत कम ज्ञान हैं।

3. स्थिति के अनुसार भूकम्प– इस आधार पर भूकम्पों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

(अ) स्थलीय भूकम्प (Land Earthquake) – स्थल पर आने वाले भूकम्प को स्थलीय भूकम्प कहते हैं, मध्य महाद्वीपीय पेटी में आने वाले भूकम्प अधिकांशतः इसी श्रेणी के हैं।

(ब) सामुद्रिक भूकम्प (Marine Earthquake) – समुद्रों में आने वाले भूकम्पों को सामुद्रीक भूकम्प कहते हैं। इस तरह के अन्तः सागरीय भूकम्पों द्वारा उत्पन्न ऊंची विनाशकारी सागरीय लहरों को जापानी भाषा में 'सुनामी' (Tsunami) कहते हैं। मार्च 2011 को जापान के होंशू द्वीप के निकट आये तीव्र भूकम्प की वजह से उत्पन्न सुनामी से फुकुशिमा नगर पूरी तरह से नष्ट हो गया।

भूकम्पों का विश्व वितरण –

विश्व के अधिकांश भूकम्प नवीन मोड़दार पर्वतों, ज्वालामुखी क्षेत्रों, समुद्री तटीय क्षेत्रों में आते हैं, ये वे क्षेत्र हैं जहां भूसंतुलन अव्यवस्थित है या कमजोर भूपटल है। भूकम्प की घटना प्लेटों के किनारों पर होती है। विश्व में भूकम्पों की

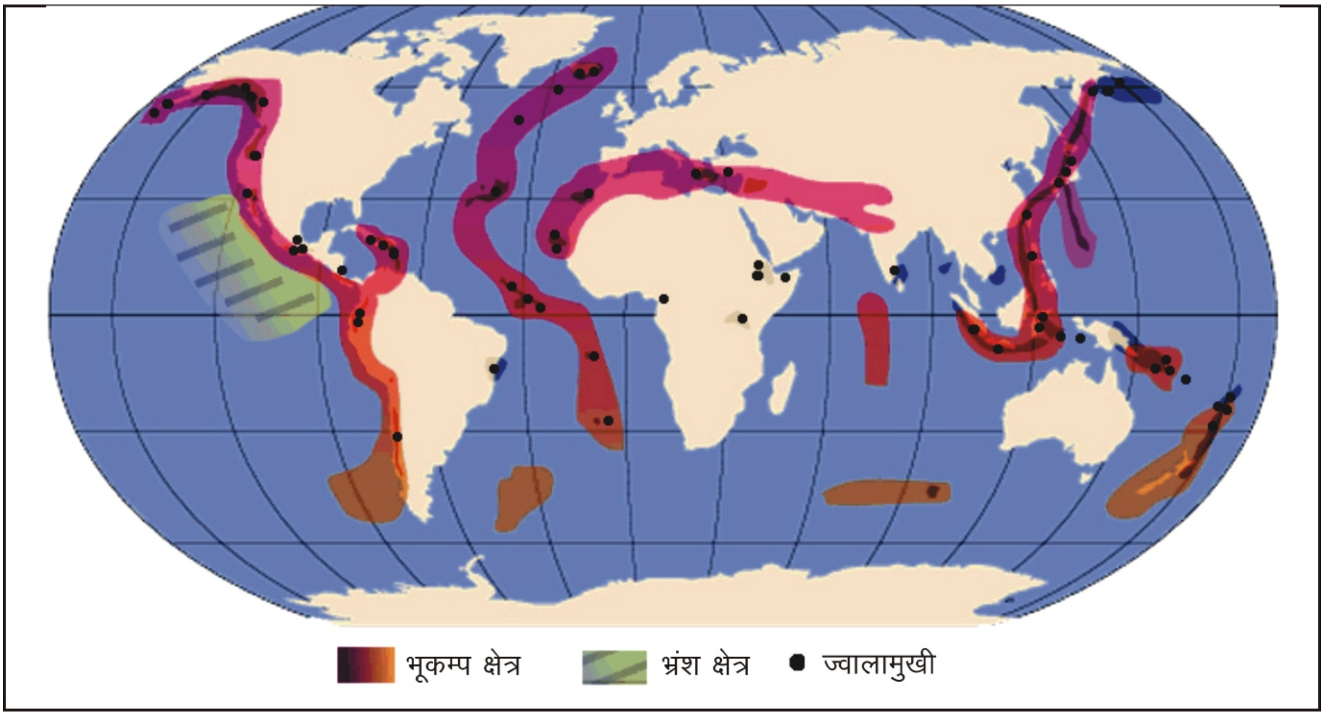

चित्र 7.4 : भूकम्प एवं ज्वालामुखी का विश्व वितरण

निम्नलिखित पेटियां है (चित्र 7.4)–

1. **परि प्रशांत पेटी** (Circum Pacific Belt)

यह विश्व का सबसे विस्तृत भूकम्प क्षेत्र है जहां पर विश्व के 2/3 (लगभग 63 प्रतिशत) भूकम्प आते हैं यह पेटी प्रशांत महासागर के चारों ओर एक वृत्त की परिधि की तरह द्वीपों तथा महाद्वीपों में स्थित है। यहाँ पर भूकम्प के चार प्रमुख दशायें सागर तथा स्थल मिलन क्षेत्र, नवीन वलित पर्वत क्षेत्र, ज्वालामुखी क्षेत्र विनाशकारी प्लेट सीमा अपसरण क्षेत्र मिलती है। इसमें उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिम तटीय क्षेत्र, एशिया के कमचटका प्रायद्वीप से पूर्वी एशिया के द्वीप यथा क्यूराइल, जापान, ताइवान फिलिपिंस आते हैं।

2. **मध्य महाद्वीपीय पेटी** (Mid Continental Belt)

इसे भूमध्यसागरीय पेटी भी कहते हैं। यहां पर भ्रंशमूलक तथा संतुलन क्रिया के कारण भूकम्प आते हैं। विश्व के 21 प्रतिशत भूकम्प इसी भाग में आते हैं। इस पेटी में पुर्तगाल से लेकर हिमालय, तिब्बत तथा दक्षिण पूर्वी द्वीप समूह आते हैं। भारत का भूकम्पीय क्षेत्र भी इसी पेटी में आता है। यहां के प्रमुख क्षेत्र – इटली, चीन, एशिया माइनर हिन्दकुश, हिमालय, आल्पस, म्यांमार है।

3. **मध्य अटलांटिक कटक पेटी** (Mid Atlantic Ridge Belt)

यह पेटी मध्य अटलांटिक कटक के सहारे स्थित है जो अटलांटिक महासागर में पश्चिमी द्वीप समूह से लेकर दक्षिण में बोवेट द्वीप तक विस्तृत है। इसकी एक शाखा नीलघाटी से होकर अफ्रिका की महान दरार घाटी तक विस्तृत है। यहां पर भूकम्प मुख्य रूप से रूपान्तरण भ्रंश के निर्माण प्लेटों के अपसरण से और ज्वालामुखी क्रिया के कारण आते हैं। भूमध्य रेखा पर सर्वाधिक भूकम्प आते हैं।

भूकम्पों का प्रभाव –

भूकम्प एक प्राकृतिक आपदा है जो कम समय में अत्यधिक विनाशकारी प्रभाव भूपटल पर लाती है। भूकम्प की तीव्रता को रिचर (रिएक्टर) पैमाने पर मापा जाता है। इसमें 0 से 9 बिन्दू होते हैं। आगे का प्रत्येक एक बिन्दु पिछले एक बिन्दु से 10 गुना अधिक तीव्रता तथा 31.6 गुना अधिक ऊर्जा पैदा करता है। वहीं भूकम्प की गहनता मरकैली पैमाने मापा जाता है। यह अनुभव मूलक प्रणाली है। इसमें मानव पर पड़ने वाले प्रभाव के संदर्भ में देखा जाता है, जो कि 1 से 12 तक होती है। भूकम्प प्रायः मानव के लिए विनाशकारी प्रभाव लाते हैं। इससे लाभ की अपेक्षा हानिकारक प्रभाव अधिक है। अतः मानव के लिए अभिशाप है।

भूकम्पों से हानियाँ –

1. भूकम्प से अपार जन–धन की हानि होती है। लाखों व्यक्ति मर जाते हैं, मकान, बांध व जलाशय टूट जाते हैं।
2. भूकम्प से भूपटल की शैल टूट जाती है, नदियों के मार्ग बदल जाते हैं, रेल, सड़क यातायात मार्गों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक तीव्र भूकम्प से संपूर्ण नगर नष्ट हो जाता है।
3. भूकम्पों से सागरीय भागों में सुनामि लहरें उठती हैं, जिससे तटीय क्षेत्र, द्वीप जलमग्न हो जाते हैं।

भूकम्प से लाभ

1. भूकम्प से ऊँचे भाग की उत्पत्ति हो जाती है जो कि उस क्षेत्र की जलवायु पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।
2. समुद्री क्षेत्र में जलमग्न भूमि सतह से ऊपर आने से ऊपजाऊ मैदान निर्मित हो जाता है जो कि कृषि कार्य के लिए उपयोगी है। जब समुद्रतटीय भूमि नीचे धँस जाती है तो बंदरगाह गहरे हो जाते हैं।
3. भूकम्प से पृथ्वी की आंतरिक संरचना समझने में सहायता मिलती है।

ज्वालामुखी (Vulcanism)

ज्वालामुखी भूगर्भिक शक्तियों द्वारा जनित एक आकस्मिक क्रिया है जिसमें भूपटल के कटक या दरार से गैस, शैल पदार्थ एवं तप्त तरल मैग्मा बाहर निकलते हैं।

वुलॅरिज व मॉर्गन के अनुसार "ज्वालामुखी वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत पृथ्वी के भीतर तथा बाहर प्रकट होने की सभी

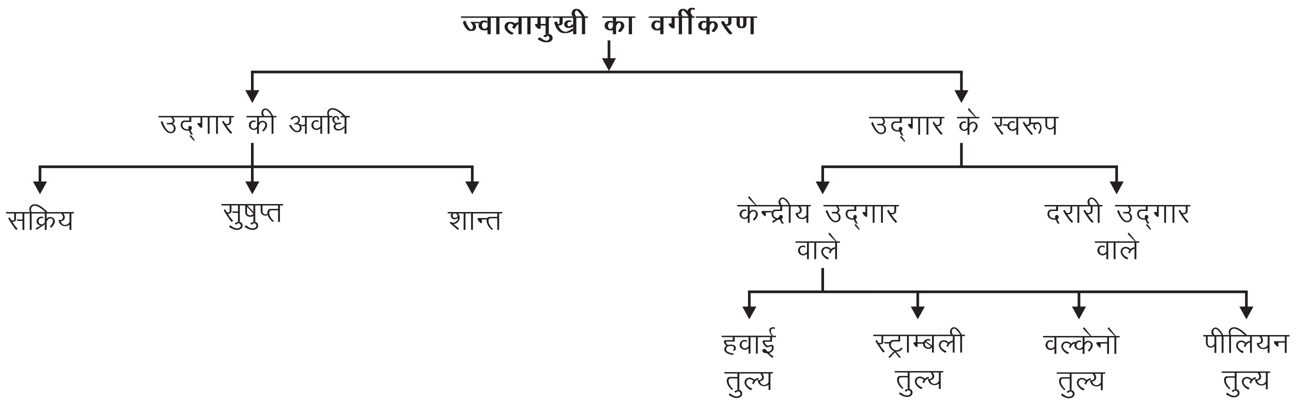

क्रियाऐं सम्मिलित की जाती है।''

सामान्य शब्दों में – ज्वालामुखी क्रिया एक व्यापक शब्द है जिसमें शैल पदार्थ की उत्पत्ति, प्रवाह, निक्षेप व ठण्डा होकर ठोस होने की क्रियाऐं सम्मिलित हैं।

ज्वालामुखी क्रिया के कारण (Causes of Vulcanicity) -

1. **भूगर्भिक असन्तुलन** (Isostatic Disequilibsium) – भूगर्भिक असन्तुलन के कारण भूगर्भिक क्षेत्रों में संचनात्मक परिवर्तन होते हैं जिनसे ज्वालामुखी क्रिया होती है।
2. **गैसों की उत्पत्ति** (Formation of Gases) – भूगर्भिक जल दरारों से पृथ्वी के आन्तरिक भाग में पहुंचकर वाष्प में परिवर्तित हो जाता है जो कि उद्‌गार में नोदक शक्ति (Propelling Force) का कार्य करती है।
3. **भूगर्भ में ताप वृद्धि** – भूगर्भ में स्थित रेडियो सक्रिय पदार्थो के निस्तर विखण्डन से निकलते ताप से शैलें द्रवित होकर कमजोर, एवं आयतन में बढ़ जाती है तत्पश्चात् कमजोर दरारों से लावा के रूप में बाहर निकलती हैं।
4. **दाब में कमी** – ऊपरी परतों के दबाव के कारण भूगर्भ की शैले ठोस अवस्था में रहती है और दबाव कम होने पर पिघल जाती है जो ज्वालामुखी क्रिया को प्रोत्साहित करता है।
5. **प्लेट विवर्तनिकी** (Plate Tectonic) – भूपृष्ठ की विभिन्न प्लेटों की गतियों के कारण भी ज्वालामुखी क्रिया होती है। प्लेटों के एक दूसरे के सम्मुख दिशा में गति करने से यह क्रिया अधिक होती है।

ज्वालामुखी के प्रकार (Types of Volcanoes) – ज्वालामुखी को मुख्यतः दो आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। (1) उद्‌गार की अवधि (2) उद्‌गार के स्वरूप। इन आधारों पर वर्गीकरण निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

1. उद्‌गार की अवधि के आधार पर ज्वालामुखी के प्रकार–

(अ) सक्रिय या जाग्रत ज्वालामुखी (Active Volcano)– इस प्रकार के ज्वालामुखियों से बहुधा उद्‌गार होते रहते है। इटली के एटना व स्ट्राम्बली सक्रिय ज्वालामुखी हैं।

(ब) सुषुप्त ज्वालामुखी (Dormant Volcano)– ऐसे ज्वालामुखियों से कुछ समय की सुषुप्ति के पश्चात् पुनः उद्‌गार होते रहते है। इटली का विसूवियस इसी प्रकार का ज्वालामुखी है, जिसमें सन् 1631, 1812, 1906 तथा सन् 1943 में उद्‌गार हो चुके हैं।

(स) शान्त या मृत ज्वालामुखी (Extinct Volcano)– जिन ज्वालामुखियों में दीर्घावधि से कोई उद्‌गार नहीं हुए एवं ज्वालामुख में जलादि भर जाते हैं, उन्हें शान्त ज्वालामुखी कहते हैं। म्यानमार का माउण्ट पोपा, इरान का कोहे सुल्तान आदि शान्त या मृत ज्वालामुखी है।

उद्‌गार के स्वरूप के आधार पर ज्वालामुखी के प्रकार

(अ) केन्द्रीय उद्‌गार वाले ज्वसालामुखी (Central Eruption Type Volcanoes)– जिन ज्वालामुखियों से उद्‌गार एक नली मार्ग एवं एक मुख से होता है, उन्हें केन्द्रीय उद्‌गार वाले ज्वालामुखी कहते हैं। उद्‌भेदन के आधार पर केन्द्रीय उद्‌गार वाले ज्वालामुखी को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

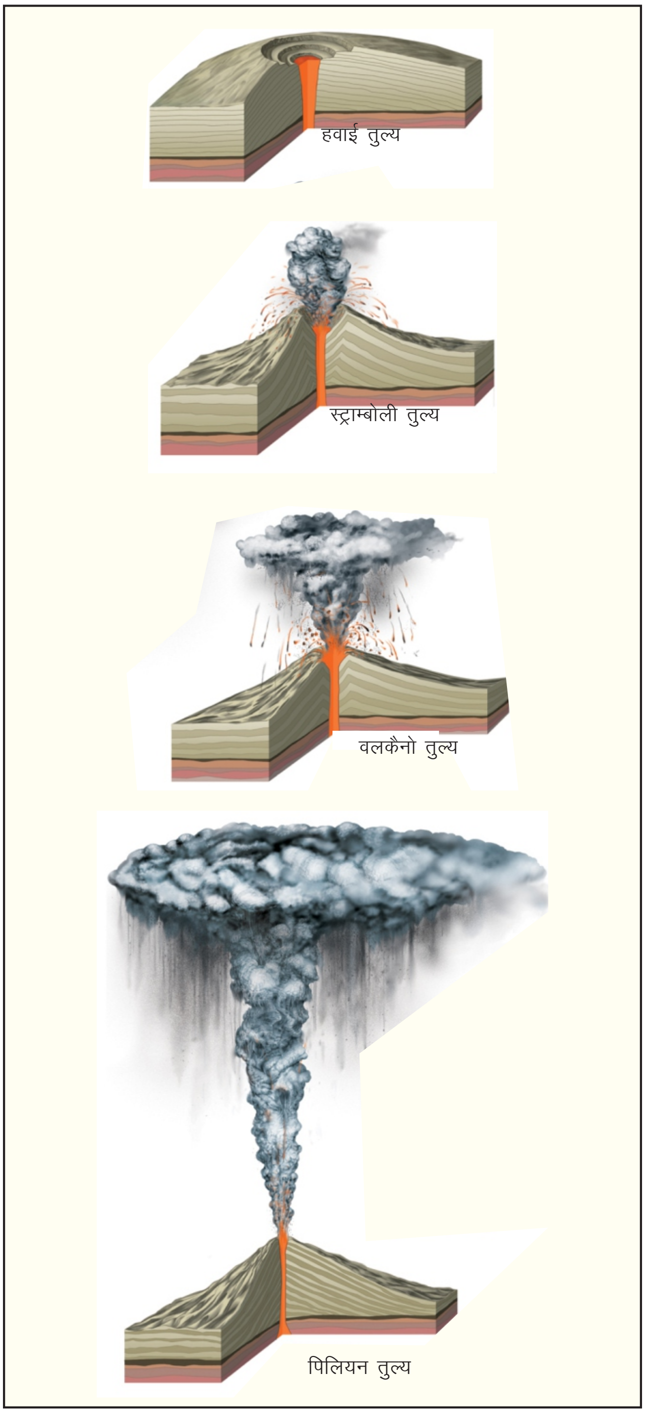

चित्र 7.5 : ज्वालामुखी के प्रकार

2. उद्गार के स्वरूप के आधार पर ज्वालामुखी के प्रकार–

(i) **हवाई तुल्य ज्वालामुखी** (Hawailian Types of Volcanoes)– इस प्रकार के ज्वालामुखी में विस्फोटक क्रिया कम होती है एवं उद्गार शांत ढंग से होता है। इसका मुख्य कारण लावा का पतला होना और गैस की तीव्रता में कमी होना है। इस प्रकार के ज्वालामुखी उद्गार के उदाहरण मुख्यतः हवाई द्वीप में देखने को मिलते हैं, अतः इसे हवाई तुल्य ज्वालामुखी कहा जाता है।

(ii) **स्ट्राम्बली तुल्य ज्वालामुखी** (Strombolian Type of Volcanoes)– इस प्रकार के उद्गार में लावा अपेक्षाकृत तीव्रता के साथ प्रकट होता है और गाढ़ा होता है। कभी कभी विस्फोटक उदगार भी होता है। स्ट्राम्बली ज्वालामुखी में इस प्रकार का उद्गार होता है तथा इसी के नाम पर इस तरह के उद्गार वाले ज्वालामुखियों को स्ट्राम्बोली तुल्य ज्वालामुखी कहते हैं।

(iii) **वलकैनों तुल्य ज्वालामुखी** (Volcanian Type of Volcanoes)– इस प्रकार के ज्वालामुखी से ज्वालामुखी पदार्थ भयंकर विस्फोट व अधिक तीव्रता के साथ बाहर निकलते हैं और विस्फोट के पश्चात् राख और धूल से भरी गैसें, विशाल काले बादलों के रूप में काफी ऊँचाई तक ऊपर उठती है और फूलगोभी के रूप में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के ज्वालामुखियों का नामकरण लिपारी द्वीप समूह स्थित वलकैनों (Volcano) नामक ज्वालामुखी के आधार पर किया जाता है।

(iv) **पीलियन तुल्य ज्वालामुखी** (Pelean Type)– ऐसे ज्वालामुखी में उद्गार सबसे अधिक विस्फोटक एवं भयंकर रूप में होता है तथा सर्वाधिक विनाशकारी होता है। पश्चिमी द्वीप समूह के मार्टिनिक द्वीप में पीलि (Pelee) ज्वालामुखी में हुए विस्फोटक उद्गार के समान ज्वालामुखियों को पीलियन तुल्य ज्वालामुखी कहते हैं।

(ब) दरारी उद्गार वाले ज्वालामुखी (Volcanoes with Fissure Eruption)– ऐसे ज्वालामुखी में लावा दरारों के माध्यम से बिना विस्फोट के शांतिपूर्वक निकलता है। लावा प्रायः पतला होता है फलस्वरूप लावा पठार का निर्माण होता है कोलंबिया के पठार एवं भारत में दक्कन का पठार दरारी उद्गार वाले लावा से निर्मित पठार है (चित्र सं. 7.4)।

ज्वालामुखी से निस्सृत पदार्थ –

1. **गैस व जलवाष्प** (Gasses and Water Vapour) – ज्वालामुखी के उद्भेदन के साथ ही जलवाष्प एवं कार्बनडाई ऑक्साईड, सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साईड, हाइड्रोक्लोसिक एसिड, अमोनिया क्लोराइड आदि गैसें निकलती है। गीजर (Fumaroles) गर्म पानी के स्त्रोत हैं, जिनसे उष्ण वाष्प एवं जल तीव्रता से निकलता हैं। गैसें, अम्ल, गन्धक आदि पदार्थ तीव्र धार के रूप में बाहर आते हैं। 'सोल्फटारा' (Solftara) गन्धकीय धुँआरा कहलाता है।
2. **ठोस पदार्थ** (Solid Material)– ज्वालामुखी से सूक्ष्म धूल या राख से लेकर बड़े आकार के शीलाखण्ड निकलते हैं।
3. **तरल पदार्थ** (Liquid Material) – धरातल के नीचे समस्त पिघला शैल पदार्थ मैग्मा कहलाता है एवं ज्वालामुखी से जब यह धरातल पर आता है तो उसे लावा के नाम से जाना जाता है।

ज्वालामुखी का विश्व वितरण

विश्व में ज्वालामुखी का वितरण निम्न मेखलाबद्ध वितरण प्रणाली में प्रस्तुत किया जा सकता है (चित्र 7.4)–

1. **परिप्रशान्त महासागरीय मेखला** (Circum Pacific Belt) – विश्व के दो–तिहाई से कुछ अधिक ज्वालामुखी केवल इसी मेखला में पाये जाते हैं। यह मेखला प्रशान्त महासागर के चारों ओर तटवर्ती क्षेत्र में फैली हुई है। यही पेटी अन्टार्कटिका के एरबस पर्वत से प्रारम्भ होकर एण्डीज, रॉकीज पर्वत होती हुई अलास्का से मुड़कर दक्षिण पूर्वी तटीय भागों के सहारे होती हुई मध्य महाद्वीपीय पेटी में मिल जाती है। इन मेखला में जापान का फ्यूजीयामा, फिलीपाइन का माउण्टताल, अमेरिका का शास्ता, रेनियर आदि प्रमुख ज्वालामुखी पर्वत है।
2. **मध्यमहाद्वीपीय मेखला** (Mid-Continental Belt) – यह मुख्य रूप से आल्पस हिमालय पर्वतीय श्रृंखला के क्षेत्र में फैली हुई है, भूमध्य सागर के ज्वालामुखी भी इसी मेखला में फैले हैं। वैरन, माउण्ड पोपा, एल्बूर्ज, एटना, विसुवियस, स्ट्रॉम्बली आदि इसी मेखला के ज्वालामुखी हैं।
3. **मध्य अटलाण्टिक कटक मेखला** (Mid-Atlantic Ridge Belt) – अटलाण्टिक महासागर में S की आकृति में यह मेखला फैली हुई है। यह मेखला उत्तर में आइण्लैण्ड से लेकर मध्य में अटलाण्टिक कटक के सहारे दक्षिण में अण्टार्कटिका महाद्वीप तक फैली है। हैकला, कटला, एसेन्शियन, सेन्ट हैलेना इस मेखला के प्रमुख ज्वालामुखी हैं।
4. **पूर्वी अफ्रीका मेखला** (East African Belt) – यह मेखला उत्तर में इजराइल में दक्षिण में लाल सागर तथा पूर्वी अफ्रीकी दरार घाटी में होते हुए मैडागास्कर तक विस्तृत है। एल्गन, तिबेस्ती व किलिमन्जारों इस मेखला के अंग हैं।
5. **अन्य ज्वालामुखी** (Other Volcanism) – उक्त मेखला के अतिरिक्त अन्य कुछ ज्वालामुखी एकाकी रूप में विस्तृत

है इनमें प्रशान्त महासागर के हवाई द्वीप तथा हिन्द महासागर के मॉरिशस, कमोरो, रियुनियन आदि द्वीपों पर स्थित ज्वालामुखी को सम्मिलित किया जाता है।

ज्वालामुखी क्रिया के प्रभाव –

रचनात्मक प्रभाव – ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा बिखराव के बाद अत्यधिक उपजाऊ मृदा को जन्म देता है। भारतीय प्रायद्वीप की काली मिट्टी ज्वालामुखी उद्गार के लाभप्रद पक्षों का एक उदाहरण है। विभिन्न प्रकार के खनिज युक्त भूपट्टियों के विकास में ज्वालामुखी प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका है।

ध्वंसात्मक प्रभाव – ज्वालामुखी उद्गार के साथ बहते हुए लावा एवं अन्य पदार्थों व गैसों से मानव जीवन व वातावरण की हानि के साथ ही सांस्कृतिक भूदृश्य की भी हानि होती है। करोड़ों जीवन ज्वालामुखी उद्गार से नष्ट हो जाते हैं तटीय क्षेत्रों में जलप्लावन से अपार क्षति होती है करोड़ों की संख्या में समुद्री जीव जन्तु मर जाते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भूकम्प भूगर्भिक शक्तियों के परिणामस्वरूप धरातल के किसी भाग में उत्पन्न होने वाले आकस्मिक कम्पन्न को कहते हैं।
2. भ्रंशन, ज्वालामुखी, भूपटल का संकुचन, जलीय भार इत्यादि भूकम्प के प्रमुख कारण हैं ?
3. भूकम्पीय तरंगे तीन प्रकार की होती हैं। P तरंगे, S तरंगे एवं L तरंगे।
4. ज्वालामुखी भूगर्भिक शक्तियों द्वारा जनित एक आकस्मिक क्रिया है जिसमें भूपटल के छिद्र या दरार से गैस, शैल पदार्थ एवं मैग्मा बाहर निकलते हैं
5. सक्रीय, सुषुप्त, शान्त, केन्द्रीय उदगार वाले और दरारी उद्गार वाले ज्वालामुखी के प्रमुख प्रकार हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. इटली के एटना ज्वालामुखी को निम्न में से किस प्रकार में रखा जा सकता है?

   (अ) सक्रीय (ब) शान्त

   (स) मृत (द) सुषुप्त

2. इटली के विसुवियस ज्वालामुखी को निम्न में से किस प्रकार में रखा जा सकता है।

   (अ) सक्रीय (ब) शान्त

   (स) मृत (द) सुषुप्त

3. म्यांमार का मोउण्ट पोपा ज्वालामुखी निम्नलिखित में से किस प्रकार का है ?

   (अ) सक्रीय (ब) शान्त

   (स) मृत (द) सुषुप्त

4. जिन ज्वालामुखियों से उद्गार एक मुख से होता है उन्हें किस प्रकार के ज्वालामुखी की श्रेणी में रखा जा सकता है।

   (अ) दरारी उद्गार (ब) केन्द्रीय उद्गार

   (स) मृत (द) सुषुप्त

5. भारत में 'दक्कन का पठार' किस प्रकार के ज्वालामुखी उद्गार से निर्मित पठार है।

   (अ) दरारी उद्गार (ब) केन्द्रीय उद्गार

   (स) मृत (द) सुषुप्त

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न –

6. भूकम्प को परिभाषित कीजिए।
7. ज्वालामुखी से निस्तृत पदार्थ के नाम बताईये।
8. द्वितीयक तरंगे किसे कहते हैं ?
9. दो सक्रीय ज्वालामुखियों के नाम बताईये।
10. दो शान्त ज्वालामुखियों के नाम बताईये।

लघुत्रात्मक प्रश्न –

11. प्रत्यास्थ पुनश्चलन को समझाईए।
12. ज्वालामुखी क्रिया से भूकम्प कैसे आते हैं ? समझाइए।
13. जलीय भार से भूकम्प कैसे आते हैं ? समझाइये।
14. ज्वालामुखी के प्रकार बताइये।
15. जाग्रत ज्वालामुखी के उदाहरण बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. भूकम्प की उत्पत्ति के कारण बताते हुए विभिन्न भूकम्पीय तरंगों की व्याख्या कीजिए।
17. भूकम्पों का वर्गीकरण देते हुए उनका विश्व वितरण बताइए।
18. ज्वालामुखी के कारण बताते हुए, उनके वर्गीकरण की व्याख्या कीजिए।

उत्तरमाला – 1. अ 2. द 3. द 4. ब 5. अ

अध्याय – 8

प्रमुख स्थलाकृतिक स्वरूप
(Major Landforms)

भूपटल पर दिखाई देने वाले विविध स्थल महाद्वीप, महासागर, पर्वत, पठार, मैदान झील आदि स्थलरूपों के आकार में पर्याप्त भिन्नता है। प्रमुख स्थलाकृतिक स्वरूपों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है –

1. **प्रथम श्रेणी के उच्चावच** – महाद्वीप व महासागर (First Order Relief feature – Continents and Oceans)
2. **द्वितीय श्रेणी के उच्चावच** – पर्वत, पठार व मैदान (Second Order Relief feature – Mountain, Plateau, and plain)
3. **तृतीय श्रेणी के उच्चावच** – घाटियाँ, डेल्टा आदि (Third Order Relief feature – Valleys, Deltas etc.) (चित्र 8.1)

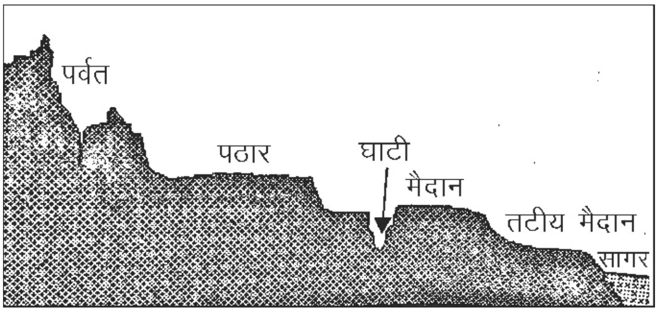

चित्र 8.1 : प्रमुख स्थलाकृतिक स्वरूप

भूपटल के विविध स्थल रूपों का निर्माण पृथ्वी के आन्तरिक एवं बाह्य बलों के पारस्परिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है। इन बलों को निम्नलिखित (आरेख सं. 8.1) वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है।

पर्वत (Mountain)

आस–पास के सामान्य धरातल से एकदम ऊँचे भाग, जिनका शिखर संकुचित व ढाल तीव्र हो ऐसे स्थलाकृतिक स्वरूप पर्वत कहलाते हैं –

फिन्च के अनुसार "पर्वत समुद्रतल से 600 मीटर या अधिक ऊँचे तथा 260 डिग्री से 350 डिग्री के ढाल वाले होते हैं।

पर्वतों के प्रकार एवं वर्गीकरण – संसार में पाये जाने वाले सभी पर्वत एक जैसे नहीं है। वे अपनी निर्माण प्रक्रिया, ऊँचाई, आयु, अवस्थिति, संरचना एवं बनावट में अनेक प्रकार के होते हैं। (आरेख सं. 8.2)

उत्पत्ति के आधार पर पर्वतों का वर्गीकरण –

1. **वलित पर्वत** (Fold Mountain) – पृथ्वी के भीतर उत्पन्न सम्पीड़नात्मक बल से धरातलीय चट्टानों में वलन या मोड़

सारणी 8.1 : स्थल रूपों का निर्माण करने वाले बल

- अन्तर्जात बल (Endogentic Force)
  - परतविरूपण
    - महादेशजनक बल
    - पर्वतनिर्माणक बल
  - आकस्मिक
    - ज्वालामुखी
    - भूकम्प
- बहिर्जात बल (Exogentic Force)
  - अपक्षय
  - अपरदन
  - सामुहिक स्थानांतरण

पड़ने से इन पर्वतों का निर्माण होता है। सम्पीड़न शक्ति से मुड़कर उठे भाग को अपनति तथा नीचे धंसे भाग को अभिनति कहा जाता है। तीव्रगामी भूगर्भिक हलचलें इन अभिनतियों और अपनतियों के मोड़ों को ऊँचा उठा देती है, एवं कालान्तर में वलित पर्वतों का उत्थान हो जाता है। हिमालय, यूराल एवं एण्डीज पर्वत वलित पर्वतों के उदाहरण हैं। ये संसार के नवीनतम पर्वत हैं एवं इनकी शैलों में जीवाशेष नहीं पाये जाते हैं। (चित्र 8.2)

2. **गुम्बदाकार पर्वत** (Dome Shaped Mountain) – पृथ्वी के भीतर उबला तप्त मैग्मा धरातल पर आने की भरसक चेष्टा करता है। जब यह मेग्मा बाहर नहीं आ पाता तो धरातलीय चट्टानें गुम्बदाकार रूप में ऊपर उठ जाती है। उत्तरी अमेरिका के उटाह राज्य में हेनरी और यून्टा पर्वत इसी प्रकार के पर्वत हैं। (चित्र 8.3)

3. **संग्रहित पर्वत** (Accumulated Mountain) – हवा, नदी, हिमनद, लहरों एवं ज्वालामुखी के द्वारा बड़े ढेर के रूप में संग्रहित निक्षेपित पदार्थ एवं एकत्रित मलबे से इन पर्वतों का निर्माण होता है। जापान का फ्यूजीयामा, इटली का विसूवियस एवं अफ्रीका का किलीमंजरों ज्वालामुखी संग्रहित पर्वत है। (चित्र 8.4)

4. **भ्रंशोत्थ अथवा ब्लॉक पर्वत** (Foulted or Block Mountain) – जब दो समान्तर दरारों का मध्यवर्ती भाग ऊपर की ओर उठ जाये या मध्य भाग के दोनों ओर के भाग नीचे धँस जाये तो ब्लॉक पर्वत की उत्पत्ति होती है। भ्रंश के द्वारा इनका निर्माण होने के फलस्वरूप इन्हें भ्रंशोत्थित पर्वत भी कहते हैं। (चित्र 8.5)

5. **अवशिष्ट पर्वत** (Residual Mountain) – अनाच्छादनकारी, कारकों यथा–नदी, पवन, लहर हिमनद आदि के अपरदनात्मक प्रभाव से अछूता कठोर चट्टानी भू–भाग आस–पास के क्षेत्र से ऊँचा उठा रह जाता है तो उसे अवशिष्ट पर्वत कहा जाता है। जब नदी पठारी भू–भाग को काटकर सममतल मैदान में बदल देती है

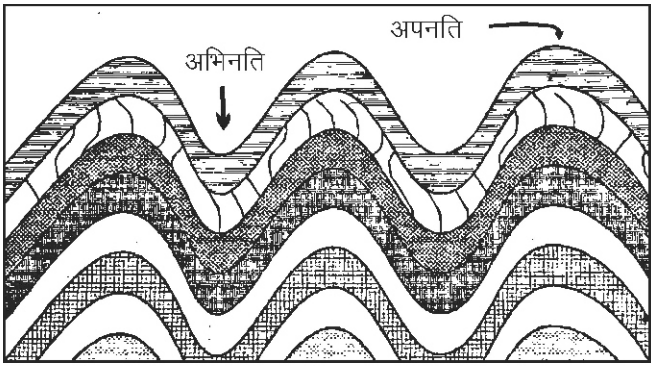

चित्र 8.2 : वलित पर्वत

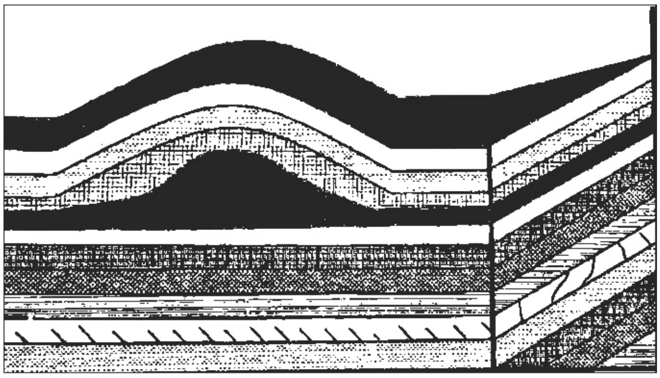

चित्र 8.3 : गुम्बदाकार पर्वत

चित्र 8.4 : संग्रहित पर्वत

सारणी 8.2 :पर्वतों का वर्गीकरण

उत्पत्ति के आधार पर	ऊँचाई के आधार पर	आयु के आधार पर
1. वलित पर्वत	1. अधिक ऊँचे पर्वत	1. चर्नियन
2. गुम्बराकार पर्वत	2. साधारण ऊँचे	2. केलिडोनियन
3. संग्रहित पर्वत	3. कम ऊँचे	3. हर्सिनियन
4. ब्लॉक पर्वत	4. निम्न ऊँचे	4. अल्पाइन
5. अवशिष्ट		
6. मिश्रित पर्वत		

किन्तु मध्यवर्ती कठोर चट्टानों वाले भाग का कटाव नहीं हो पाता तो वह अवशिष्ट पर्वत का रूप ले लेता है। (चित्र 8.6)

आयु के अनुसार पर्वतों का वर्गीकरण

अब तक चार प्रमुख पर्वत निर्माणकारी हलचलें घटित हुई हैं। हलचलों के मध्य एक लम्बा शांतकाल रहा है। शांतकाल के दौरान सम्पीड़नात्मक बल संग्रहित हुआ। जिसके फलस्वरूप निम्नलिखित पर्वत निर्माणकारी हलचलें घटित हुई।

1. **आर्कियन पर्वत** – आज से 40 करोड़ वर्ष पूर्व कैम्ब्रियन काल में आर्कियन पर्वत निर्माणकारी हलचलें घटित हुई। इस समय यूरोप में फेनोंस्कैण्डीनेविया तथा भारत में अरावली पर्वत का निर्माण हुआ।
2. **केलेडोनियन पर्वत**– लगभग 32 करोड़ वर्ष पूर्व घटित हलचलों के दौरान अमेरिका में अप्लेशियन, यूरोप में स्कॉटिश अपलैण्ड एवं आयरलैण्ड के पर्वतों का निर्माण हुआ।
3. **हर्सिनियन पर्वत** – लगभग 22 करोड़ वर्ष पूर्व घटित इन हलचलों को अल्टाइड, वारिस्कन व आरमोरिकन आदि नामों से भी जाना जाता है। एशिया में थ्यानशान, अल्टाई, खिंगन व नानशान पर्वत, आस्ट्रेलिया में पूर्वी कार्डिलेरा, यूरोप में पेनाइन आदि पर्वत इसी काल में बने।
4. **अल्पाइन पर्वत** – आज से लगभग 3 करोड़ वर्ष पूर्व इन नवीनतम मोड़दार पर्वतों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। जिनमें हिमालय, कुनलुन, कराकोरम, अराकान, एल्ब्रुज, हिन्दुकुश, रॉकीज, एण्डीज, आल्पस, बाल्कन, पैरेनीज आदि पर्वत श्रेणियां उल्लेखनीय हैं।

ऊँचाई के अनुसार पर्वतों का वर्गीकरण

प्रो. फिन्च ने यह विभाजन प्रस्तुत किया है –

1. **अधिक ऊँचे पर्वत** (High Mountain) – पर्वत 6000 फीट या 2000 मीटर से अधिक ऊँचे होते हैं।
2. **साधारण ऊँचाई वाले पर्वत** (Rugged Mountain) – ये पर्वत सामान्यतया 4500 से 6000 फीट या 1500 से 2000 मीटर ऊँचे होते हैं।
3. **कम ऊँचे पर्वत** (Rough Mountain) – कम ऊँचे पर्वतों की ऊँचाई 3000–4500 फीट या 1000 से 1500 मीटर के मध्य होती है।
4. **निम्न पर्वत** (Low Mountain) – ये पर्वत सामान्यतः 2000–3000 फीट या 700 से 1000 मीटर तक ऊँचे होते हैं।

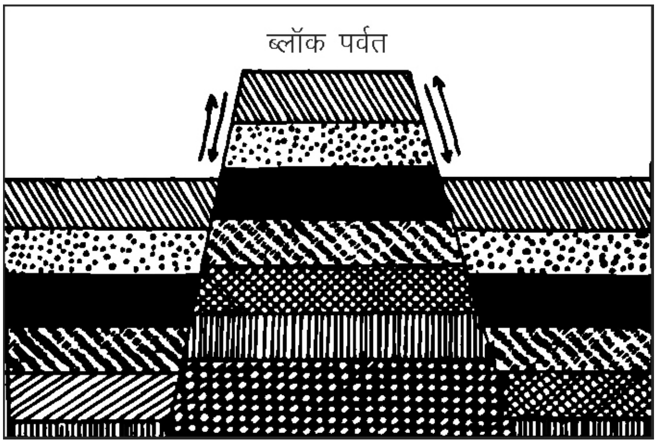

चित्र 8.5 : ब्लॉक पर्वत

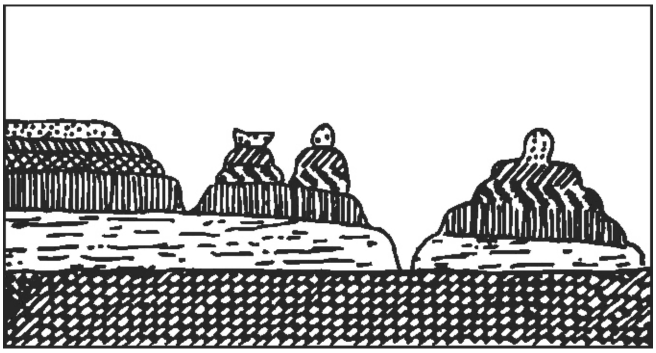

चित्र 8.6 : अवशिष्ट पर्वत

मानव जीवन पर पर्वतों का प्रभाव

पर्यटन की दृष्टि से पर्वत सदैव आकर्षण का केन्द्र रहे हैं।

सारणी 8.3 : पठारों का वर्गीकरण

आधार

उत्पत्ति	स्थिति	विकास	जलवायु
1. लावा निर्मित	1. अन्तर्पर्वतीय	1. नवीन	1. आर्द
2. हिमानीकृत	2. पर्वतपदीय	2. प्रौढ़	2. शुष्क
3. वायुजनित	3. महाद्वीपीय	3. वृद्धावस्था	3. हिमाच्छादिन्न
4. जलज		4. पुनर्युवनित	

मनोरंजन, स्वास्थ्य लाभ एवं साहसिक पर्वतारोहण के लिए पर्वतों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सुरक्षा एवं कुटनीतिक दृष्टि से भी अनेक बार पर्वतों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ यहाँ के लोगों को पेयजल, सिंचाई, मत्स्याखेट तथा जल विद्युत पैदा करने का अवसर प्रदान करती है। पर्वत उस क्षेत्र की जलवायु को प्रभावित करते हैं तथा वर्षा को नियंत्रित करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के निवासी साहसिक, निर्भिक, परिश्रमी स्वस्थ, और सरल होते हैं।

धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भी मानव जीवन में पर्वतों का उल्लेखनीय स्थान है। शांत व एकांत पर्वतीय कन्दराओं में ऋषि मुनियों की तपोभूमि एवं आध्यात्मिक केन्द्र स्थित है। अनेक तीर्थ स्थल पर्वतों की देन है। बद्रीनाथ, वैष्णोदेवी आदि तीर्थ धामों की यात्रा प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालुओं द्वारा की जाती है।

पठार (Plateau)

आस–पास के धरातल से ऊँचे उठे हुए भाग, जिनका शीर्ष भाग सममतल, चौड़ा व एक अधिक किनारे तीव्र ढाल युक्त हो पठार कहलाते हैं। पठारों का वर्गीकरण आरेख सं. 8.3 के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है।

उत्पत्ति के आधार पर पठारों का वर्गीकरण –

1. **लावा निर्मित पठार** (Lava Plateau) – भूगर्भ से लावा उद्‌गार व्यापक क्षेत्र पर फैलकर ऐसे पठार का निर्माण करता है। कोलम्बिया एवं दक्षिणी भारत के पठार इसके उदाहरण हैं।
2. **हिमानीकृत पठार** (Glaciated Plateau) – उच्च अक्षांशीय में लेब्रेडोर, स्केण्डेनिविया, अलास्का आदि ऐसे पठार हैं।
3. **वायुजनित पठार** (Aeolain Plateau) – पवनों द्वारा उड़ाकर लायी गई मिट्टी के अत्यधिक निक्षेपण से इन पठारों का निर्माण होता है। पाकिस्तान में पोतवार तथा चीन में लोयस का पठार इसके उत्तम उदाहरण हैं।
4. **जलज पठार** (Acqueous Plateau) – समुद्री भाग अथवा भूसन्नतियों से निरन्तर जमा हुए अवसाद जब कभी आंतरिक हलचलों से समुद्रतल से ऊपर उठ जाते हैं तो जलज पठार जन्म लेते हैं।

स्थिति के आधार पर पठारों का वर्गीकरण

1. **अन्तर्पर्वतीय पठार** (Intermoantane Plateau) – पर्वतों के मध्य स्थिति होने के कारण ये अन्तर पर्वतीय पठार कहलाते हैं। हिमालय और कुनलुन पर्वतों के मध्य तिब्बत पठार इसका उदाहरण हैं। (चित्र सं. 8.7)
2. **पर्वतपदीय पठार** (Piedmont Plateau) – ये पठार पर्वतों की तलहटी में स्थित होते हैं जिनके एक ओर पर्वत तथा दूसरी ओर समुद्र या मैदान होता है। अर्जेन्टाईना का पैटागोनिया का पठार एण्डीज पर्वत की तलहटी में स्थित है। (चित्र सं. 8.8)

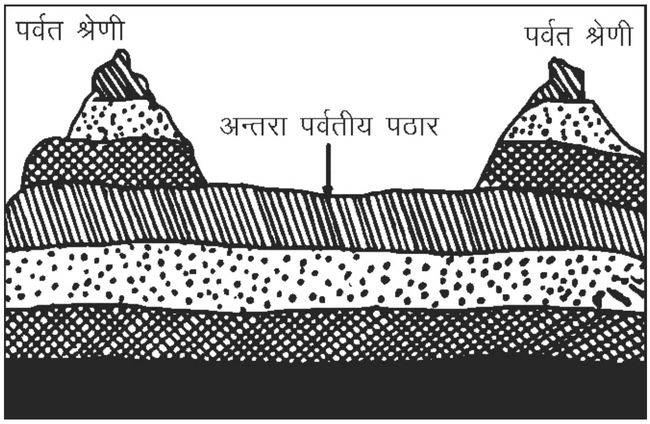

चित्र 8.7 : अन्तर्पर्वतीय पठार

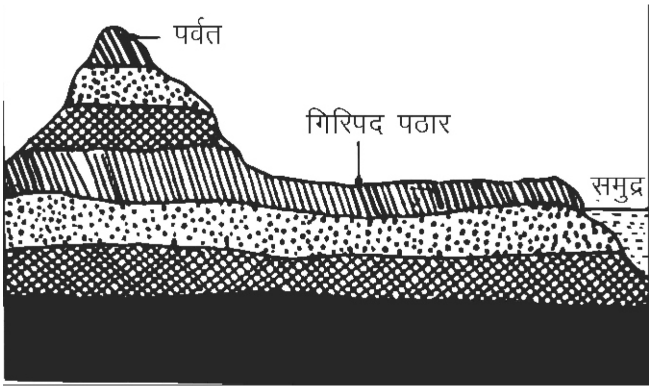

चित्र 8.8 : पर्वतपदीय पठार

3. **महाद्वीपीय पठार** (Continental Plateau) – ये पठार किसी देश या महाद्वीप के सम्पूर्ण भाग पर विस्तृत होते हैं। जैसे – दक्कन का पठार, ग्रीनलैण्ड का पठार और अन्टार्कटिका का पठार आदि।

जलवायु के आधार पर पठारों का वर्गीकरण

1. **आर्द्र पठार** (Humid Plateau) – इन पठारों पर प्रायः 50 प्रतिशत आर्द्रता तथा अच्छी वर्षा होती है। उदाहरण के लिए मेघालय व मालागासी के पठार आर्द्र पठारों की श्रेणी में आते हैं।
2. **शुष्क पठार** (Dry or Arid Plateau) – इन पठारों पर वाष्पीकरण की मात्रा वर्षा से अधिक रहने के कारण शुष्कता बनी रहती है जैसे तारीम, गोबी व पोतवार के पठार।
3. **हिममण्डित पठार** (Iced Plateau) – ऊँचे प्रदेशों व उच्च अक्षांशों में अत्यधिक ठण्ड के कारण वर्ष भर अधिकांश भाग हिमाच्छादित रहता है, जैसे ग्रीनलैंड व अन्टार्कटिका के पठारों पर।

विकास की अवस्था के आधार पर पठारों का वर्गीकरण

1. **नवीन पठार** (Young Plateau) – ये पठार आसपास के मैदान से तीक्ष्ण कगार द्वारा अलग होते हैं। इन पर बहने वाली नदियाँ गहरी घाटी बनाती हैं। कोलो पठार पर नदी गहरे केनयन का निर्माण करती है।
2. **प्रौढ़ पठार** (Mature Plateau) – ऊबड़–खाबड़ एवं विषम धरातल वाले इन पठारों पर कन्दराएँ और कटक तीव्र ढाल वाले होते हैं। इनके किनारे सीढ़ीनुमा दिखाई देते हैं, जैसे कि अप्लेशियन का पठार।
3. **वृद्धावस्था के पठार** (Old Plateau) – पठार के उच्चावच समप्रायः मैदान में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे रांची का पठार।
4. **पुनर्युवनित पठार** (Rejuvenated Plateau) – आन्तरिक हलचलों के कारण वृद्धावस्था प्राप्त कर चुके पठार का पुनः उत्थान हो जाता है। उस पर पुनः अपरदन प्रारम्भ हो जाता है।

पठार का महत्त्व

आर्थिक दृष्टि से पठार पर्वतों की अपेक्षा अधिक आबाद होते हैं। इनकी उपजाऊ मिट्टी पर गहन कृषि होती है। ये बहुमूल्य खनिजों के भण्डार होते हैं। इनके तीव्र ढालों से उतरते हुए नदियां जल–प्रपात बनाती हैं। इनके कठोर धरातल पर जलाशयों का निर्माण किया जाता है। पठारों पर पर्वतों की अपेक्षा यातायात के साधन अधिक विकसित होते हैं। यद्यपि मैदानों की तुलना में पठार बहुत कम विकसित मिलते हैं।

मैदान (Plain)

अपेक्षाकृत समतल, क्रमिक व मन्द ढाल तथा निम्न उच्चावच वाले धरातलीय भू–भाग को मैदान कहते हैं। समुद्रतल से ऊँचाई की दृष्टि से मैदान में काफी असमानता है, जैसे– हॉलेण्ड का पोल्डर्स मैदान समुद्रतल से भी नीचा है तो कश्मीर में झील मैदान 1700 मीटर की ऊँचाई पर है वहीं भारत का उत्तरी मैदान डेल्टा के निकट 1.8 मीटर से लेकर पंजाब में 200 मीटर तक ऊँचा है।

मैदान का वर्गीकरण

निर्माण प्रक्रिया के आधार पर

अपरदनात्मक	**निक्षेपणात्मक**
1. नदीकृत	1. जलोढ़
2. हिमानीकृत	2. हिमाढ़
3. वायुघर्षित	3. लोयस
4. कार्स्ट	4. लावानिर्मित
	5. झील निर्मित

(अ) अपरदनात्मक मैदान (Erosional Plains) – अपरदन चक्र की समाप्ति पर सभी उच्चावच समप्राय मैदान में परिवर्तित हो जाते हैं।

1. **नदीकृत मैदान** (Riverine Plain) – नदियाँ अपने मार्ग में आने वाले विषम धरातल को अपरदन के द्वारा समतल बनाकर समप्राय मैदानों का निर्माण करती है। इन मैदानों में जहाँ–तहाँ कठोर प्रतिरोधी शैल – मोनाडनॉक टीलों के रूप में दिखाई देते हैं। पेरिस व लन्दन बेसिन इसी तरह के मैदान हैं।
2. **हिमानीकृत मैदान** (Glaciated Plain) – उच्च पर्वत शिखरों एवं उच्च अक्षांशों पर हिमावरण छाया रहता है। बर्फ के नीचे का धरातल रगड़ और घर्षण के द्वारा समतल होता रहता है। कनाडा, स्वीडन, फिनलैण्ड में हिमानीकृत मैदान पाये जाते हैं।
3. **वायुघर्षित मैदान** (Wind Eroded Plain) – यांत्रिक अपक्षय द्वारा ढीले एवं टूटे शैल कण हवा उड़ाकर ले जाती है। मार्ग में पड़ने वाली उत्थित चट्टानों का यह हवा अपघर्षण (Abrasion) करती है। इसी क्रिया से वायु घर्षित मैदान का निर्माण होता है जिसे पेडीप्लेन कहते हैं।
4. **कार्स्ट मैदान** (Karst Plain) – चूने की शैलों वाले क्षेत्र में भूमिगत जल के अपरदन चक्र की अंतिम अवस्था में धरातलीय विषमताएँ समाप्त प्रायः होने से कार्स्ट मैदान बनता है। भारत में नैनीताल व अल्मोड़ा, यूगोस्लाविया तथा फ्रांस के चूना प्रदेशों में इसके उदाहरण मिलते हैं।

(ब) निक्षेपात्मक मैदान (Depositional Plains)

1. **जलोढ़ या कांपीय मैदान** (Alluvial Plain) – नदियों द्वारा ऊँचे भागों से अपरदित मलबा (Debris) प्रवाहित कर निम्नवर्ती भागों में निक्षेपण करने से ये मैदान बनते हैं। स्थिति के अनुसार इन्हें पर्वतपदीय मैदान (Peidmont Plain) बाढ़ मैदान तथा डेल्टा मैदान कहा जाता है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, नील नदियों के डेल्टाई मैदान बहुत उपजाऊ व घने बसे हुए हैं।
2. **हिमोढ़ मैदान** (Glacio Fluvial Plain) – ये मैदान हिमानी द्वारा किये गये निक्षेपण से बनते हैं। हिमरेखा के नीचे हिमानी द्वारा लाये गये कंकड़, पत्थर व बजरी जमा होने से बट्टड़–मृतिका (Till Plain) मैदान तथा हिमानी के पिघले जल द्वारा बारीक मिट्टी के निक्षेपण से अवक्षेप मैदान (Out Wash Plain) का निर्माण होता है।
3. **लोयस मैदान** (Loss Plain) – मरूस्थलीय प्रदेशों में हवा के साथ प्रवाहित बारीक मिट्टी के जमाव से इनका निर्माण होता है। चीन, अर्जेन्टाईना, केस्पियन सागर के सहारे लोयस के मैदान उल्लेखनीय है।

4. **लावा निर्मित मैदान** (Lava Plain) – ज्वालामुखी विस्फोट के साथ निकला लावा, राख व बारीक शैल कण विस्तृत क्षेत्र पर जमा होने से इन मैदानों का निर्माण होता है। दक्षिण भारत में लावा निर्मित मैदान पाये जाते हैं।
5. **झील निर्मित मैदान** (Lacustrine Plain) – जब कभी नदियों के अवसादीय निक्षेपण से झील भर जाती है तो जमा तलछट, उपजाऊ मैदान का रूप ले लेता है। जब कभी आंतरिक हलचलों से झील की तली ऊपर उठ जाती है तो उसका जल इधर उधर फैल जाता है और तली मैदान में परिवर्तित हो जाती है। हंगरी का मैदान, अमेरिका, के प्रेयरी प्रदेश झील निर्मित मैदान है।

मैदानों का महत्व (Importance of Plain)

विश्व की 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या मैदानों में निवास करती है। विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ–सिन्धु घाटी सभ्यता, दजला–फरात की बेबिलोनियन सभ्यता, नील घाटी सभ्यता इत्यादि मैदानों में विकसित हुई। इसीलिए मैदानों को 'सभ्यताओं का पालना' (Cradle of Civilizations) कहते हैं। मानव बसाव, कृषि, चारागाह, यातायात एवं परिवहन की दृष्टि से मैदान सुगम एवं उपयोगी होते हैं। सममतल होने के कारण रेलमार्ग, सड़क मार्ग और हवाई अड्डे बनाने के लिए मैदान सुविधाजनक रहते हैं। मैदानों में सिंचाई के साधन, विशेषकर नहरें आसानी से बनाई जा सकती है। मैदान सभी प्रकार की मानवीय क्रियाओं (Human Activities) के सर्वोत्तम स्थल हैं। संसार की घनी आबादी वाले क्षेत्र मैदानों में ही बसे हुए मिलते हैं।

घाटियाँ (Valleys)

घाटी को सामान्यतया नदी के 'ऋणात्मक स्थलरूप' (Negative Topography) की संज्ञा दी जाती है। किन्तु सभी घाटियाँ आवश्यक रूप से नदी निर्मित नहीं होती है। घाटियों का निर्माण पटल विरूपण (Diastrophism) के द्वारा भी होता है। घटियाँ भूमिगत जल और हिमानियों द्वारा भी बनाई जाती है। घाटी वस्तुतः दो ढालों के मध्य अवतलित या अपरदित खाई होती है जिसकी रचना विवर्तनिक घटनाओं (Tectonic Movement) या बाह्य शक्तियों (Exogenetic Force) के द्वारा होती है।

घाटियों का वर्गीकरण (Classification of Valleys)

विवर्तनिक घटनाओं द्वारा निर्मित घाटियाँ – अन्तर्जात बलों द्वारा प्रेरित हलचलों से निर्मित घाटियाँ विवर्तनिक श्रेणी के अन्तर्गत आती है। इनके निम्नलिखित रूप उल्लेखनीय हैं –

1. अभिनति घाटी (Synclinal Valley) – विवर्तनिक क्रिया के सम्पीड़नात्मक बल से शैलों में लम्बाकार मोड़ पड़ जाता है। फलस्वरूप वलन के अवतलित भाग में अभिनति घाटी का निर्माण होता है।

2. भ्रंश घाटी (Rift Valley) – दो समानान्तर भ्रंशों के मध्य स्थल भाग नीचे धँसने से भ्रंश घाटी का निर्माण होता है। नर्मदा नदी की घाटी भ्रंश घाटी का उदाहरण है।

बाह्य शक्तियों द्वारा निर्मित घाटियाँ (Exogenetic Valleys) – बाहरी अपरदनकारी शक्तियों द्वारा निम्न प्रकार की घाटियाँ बनती हैं –

1. नदी घाटी (River Valley) – वर्षा का जल धरातल पर बहते हुए लम्बवत एवं क्षैतिज कटाव करके नदी घाटी का निर्माण करता है। नदी घाटी का विकास उसकी गहराई, चौड़ाई और लम्बाई से होता है।

2. हिमनदी घाटी (Glacial Valley) – हिमाच्छादित ऊँचे पर्वतों से सरकने वाली बर्फ चौड़ी व खड़े ढाल वाली U आकार की घाटी का निर्माण करती है। बड़ी हिमानी में ऊँचाई से आकर मिलने वाली सहायक हिमनद लटकती (Hanging Valleys) घाटी का निर्माण करती है।

3. अन्धी घाटी (Blind Valley) – चूने के प्रदेश में धरातल पर बहने वाली नदी गहराई में कटाव करते हुए चूने की चट्टानों में बने घोल रन्ध्र में समा जाती है जिससे रंध्र के बाद बची शुष्क घाटी को अन्धी घाटी कहा जाता है।

अनुवांशिक वर्गीकरण (Genetic Classification)–

1. अनुवर्ती घाटी (Consequent Valley)– ढाल की नति के सहारे बनने वाली घाटी को अनुवर्ती या नति घाटी कहते हैं।

2. परिवर्ती घाटी (Subsequent Valley)– अनुवर्ती घाटी के निर्माण के बाद ढाल के नति लम्ब के सहारे बनने वाली घाटी को परिवर्ती या अनुदैर्ध्य घाटी कहते हैं।

3. प्रत्यानुवर्ती घाटी (Obsequent Valley) – मुख्य अनुवर्ती के विपरीत दिशा में बहने वाली परिवर्ती नदी के सहायक नदी प्रत्यानुवर्ती घाटी का निर्माण करती हैं।

4. नवानुवर्ती घाटी (Resequent Valley) – अनुवर्ती नदी की दिशा के अनुरूप बहने वाली परिवर्ती नदी की सहायक नदी नवानुवर्ती घाटी का निर्माण करती है।

5. अक्रमवर्ती घाटी (Insequent Valley) – संरचना और ढाल से अप्रभावित नदी घाटी अक्रमवर्ती घाटी कहलाती है।

अवस्था के आधार पर (Stage of Valleys)

1. **युवा घाटी** (Youth Valley) – युवावस्था में घाटी का ढाल तीव्र होता है, इसलिए लम्बवत् कटाव अधिक होने से गहरी घाटी का निर्माण होता है।
2. **प्रौढ़ घाटी** (Mature Valley) – प्रौढ़ावस्था में घाटी का ढाल मन्द हो जाता है इसलिये पार्श्ववर्ती कटाव अधिक होने से घाटियाँ चौड़ी होने लगती हैं।

3. **वृद्ध घाटी** (Old Valley) – यह घाटी की अंतिम अवस्था कही जा सकती है। इस अवस्था में उसका ढाल अतिमन्द हो जाता है और घाटी समतल होने लगती है।

संरचना की दिशा के अनुसार (Structural Trends) –

1. **पूर्ववर्ती घाटी** (Antecedent Valley) – किसी भूखण्ड के उत्थान से पूर्व विकसित घाटी में भूमि के उत्थान के बाद भी नदी पूर्व निर्मित घाटी में बहती है तो उसे पूर्ववर्ती घाटी कहते हैं।
2. **अध्यारोपित घाटी** (Superimposed Valley) – धरातल की ऊपरी परतों पर निर्मित घाटी जब निचली कठोर चट्टानी परतों पर भी उसी दिशा का अनुसरण करती हो तो उसे अध्यारोपित घाटी कहा जाता है।

आधारतल परिवर्तन के अनुसार (Change in base level)–

1. **निमग्न घाटी** (Drowned Valley) – सागरतल ऊपर उठने पर घाटियों के मुहाने जलमग्न हो जाते हैं तो निमज्जित घाटी का निर्माण होता है।
2. **पुनर्युवनित घाटी** (Rejuvenated Valley) – सागरतल के नीचे चले जाने पर नदियाँ पुनः निम्नवर्ती कटाव करने लगती है जिसे पुनर्युवनित घाटी कहते हैं।

स्थलरूप विकास की संकल्पना

धरातल पर महाद्वीप और महासागर सबसे बड़े स्थलरूप हैं। पर्वत–पठार और मैदान दूसरी कोटि के स्थलरूप हैं तथा इन पर बाह्य बलों द्वारा निर्मित होने वाले असंख्य भूरूप तीसरी कोटि के स्थल रूप हैं इनमें से कोई भी स्थलरूप धरातल पर स्थायी नहीं हैं। अन्तर्जात बलों द्वारा जैसे ही कोई स्थलरूप विकसित होता है, बहिर्जात बलों द्वारा उसके विनाश (Degradation) की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। आज जहाँ हिमालय पर्वत खड़ा है वहाँ पहले टेथीस सागर लहराता था। पर्वत अपरदित होकर पठारों एवं मैदानों का रूप ले लेते हैं तथा मैदान जलमग्न होकर समुद्रों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार स्थलरूपों के विकास का चक्र निरन्तर चलता रहता है। स्थलाकृतियों के विकास में प्र्याप्त जटिलता पाई जाती है। सभी महाद्वीप और महासागर छोटी–बड़ी 20 भू–प्लेटों (Tectonic Plates) से निर्मित हैं। भूप्लेटों के खिसकने से उनके किनारों पर विवर्तनिक क्रियाऐं होती हैं जो विभिन्न प्रकार के स्थलरूपों का विकास करती हैं। भूप्लेट विवर्तनिक संकल्पना (Concept of Plate) के द्वारा पर्वतीकरण, भूकम्प, ज्वालामुखी एवं महाद्वीपीय विस्थापन (Continental drift) जैसी समस्याओं के निराकरण में सहायता मिली है। इसी प्रकार भूआकृति चक्र (Geomorphic Cycle) तथा अपरदन चक्र (Cycle of Erosion) की संकल्पनाओं से तीसरी कोटि के असंख्य स्थलरूपों के विकास की समस्याओं के समाधान के मार्ग प्रशस्त हुए हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भूपटल के विविध स्थलरूपों का निर्माण पृथ्वी के आन्तरिक व बाह्य बलों की पारस्परिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है।
2. वलित पर्वत श्रृंखलाएँ विश्व के नवीनतम पर्वत हैं जिनकी शैलों में जीवावशेष पाये जाते हैं। इनका उत्थान भूसन्नतियों से हुआ है।
3. हिमालय, यूराल एवं एण्डिज पर्वत वलित पर्वतों के उदाहरण हैं।
4. आसपास के सामान्य धरातल से एकदम ऊँचे भाग जिनका शिखर संकुचित व ढाल तीव्र हो, ऐसे स्थलाकृतिक स्वरूप पर्वत कहलाते हैं ?
5. आस–पास के धरातल से ऊँचे उठे हुए भाग, जिनका शीर्ष समतल, चौड़ा व एक या अधिक किनारे तीव्र ढालयुक्त हो पठार कहलाते हैं।
6. अपेक्षाकृत समतल, क्रमिक व मंद ढाल, निम्न उच्चावच वाले धरातलीय भू–भाग को मैदान कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. प्रथम श्रेणी के उच्चावच कौनसे हैं –
   (अ) डेल्टा व घाटियाँ (ब) महाद्वीप व महासागर
   (स) पर्वत व पठार (द) मैदान व तट
2. कौनसा बल अन्तर्जात बल नहीं है –
   (अ) ज्वालामुखी (ब) भूकम्प
   (स) पर्वतीकरण (द) अपरदन
3. निम्नलिखित में से कौन अंतः पर्वतीय पठार का उदाहरण हैं?
   (अ) पेंटागोनिया का पठार (ब) तिब्बत का पठार
   (स) लोवस का पठार (द) मालागासी का पठार
4. निम्नलिखित में से कौन संग्रहित पर्वत का उदाहरण है –
   (अ) हिमालय (ब) जापान का फ्यूजीयामा
   (स) यूराल (द) एण्डीज
5. निम्नलिखित में से कौनसा पठार आर्द्र पठार का उदाहरण हैं ?
   (अ) पोतवार का पठार (ब) गोबी का पठार
   (स) चेरापूंजी का पठार (द) तारिम का पठार

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

6. विश्व के नवीनतम पर्वत कौनसे हैं ?
7. संग्रहित पर्वत किसे कहते हैं ?
8. नर्मदा नदी किस प्रकार की घाटी में प्रवाहित होती है ?
9. अवशिष्ट पर्वत किसे कहते हैं ?
10. पर्वतपदीय पठार किसे कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

11. हर्सीनियन पर्वतों के नाम लिखिए।
12. हिमानीकृत पठारों का उल्लेख कीजिए।
13. अन्तर पर्वतीय पठार क्या हैं ?
14. पूर्ववर्ती घाटी किसे कहते हैं ?
15. प्रौढ़ पठार किसे कहते हैं, उदाहरण दीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. पर्वतों का वर्गीकरण कीजिए।
17. उत्पत्ति के आधार पर पठारों का वर्गीकरण कीजिए।
18. मैदानों के वर्गीकरण एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तरमाला– 1. ब 2. द 3. ब 4. ब 5. स

अध्याय – 9

अनाच्छादन
(Denudation)

स्थलाकृतियों का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। अन्तर्जात शक्तियाँ भूपटल पर विषम स्थलाकृतियों (पर्वत, पठार, मैदान आदि) का निर्माण करती हैं तो बर्हिजात शक्तियाँ समतलीकरण की प्रक्रिया के दौरान स्थलाकृतियों के स्वरूप में परिवर्तन करती हैं। वह क्रिया जिसके द्वारा भूपटल की निम्नस्थ शैलों का आवरण उतरता है, उसे अनावृतिकरण या अनाच्छादन कहते हैं। अनाच्छादन या अनावृतिकरण में निम्नलिखित प्रक्रिया उल्लेखनीय हैं :

1. **अपक्षय** (Weathering) – यह एक स्थैतिक प्रक्रिया है, इसमें शैलें अपने ही स्थान पर विघटन (Disinitegration) एवं वियोजन (Decomposition) द्वारा टूटती–फूटती रहती है, इस प्रक्रिया को अपक्षय कहते हैं।
2. **अपरदन** (Erosion) – यह एक गतिशील प्रक्रिया है, इसमें शैलें गतिशील शक्तियों (हिम, वायु, लहरों, भूमिगत जल व नदी) द्वारा घिसती, कटती व स्थानान्तरित या परिवहित होती रहती है, इस प्रक्रिया को अपरदन कहते हैं।
3. **सामुहिक स्थानान्तरण** (Mass Movement) – अपक्षयित शैल पदार्थों का गुरूत्वाकर्षण बल के द्वारा ढाल के सहारे संचलित होना सामुहिक स्थानान्तरण कहलाता है।

अपक्षय (Weathering)

अपक्षय (Weathering) – शैलों का अपने ही स्थान पर भौतिक व रासायनिक क्रियाओं द्वारा विघटन (Disinitegration) व वियोजन (Decomposition) से टूटने को अपक्षय कहते हैं।

अपक्षय को प्रभावित करने वाले कारक –

1. **शैल संरचना एवं संगठन** 'रंध्रपूर्ण व घुलनशील खनिजों वाली शैलों में रासायनिक अपक्षय अधिक होता है। उर्ध्वाधर परतों वाली चट्टानों में यांत्रिक अपक्षय व क्षैतिज परतों वाली चट्टानों में रासायनिक अपक्षय अधिक होता है।
2. **भूमि का ढाल** – मंद एवं न्यून ढाल वाली भूमि पर, तीव्र ढाल वाली भूमि की तुलना में अपक्षय कम रहता है।
3. **जलवायु में भिन्नता** – उष्ण आर्द्र प्रदेशों में रासायनिक अपक्षय जबकि उष्ण व शुष्क प्रदेशों में यान्त्रिक अपक्षय अधिक सक्रिय होता है।
4. **वनस्पति का प्रभाव** – वनस्पतियां आंशिक रूप से अपक्षय के कारक भी हैं और आंशिक रूप से उसके लिए अवरोधक भी हैं। वनस्पति विहीन उष्ण प्रदेशों में सूर्याताप की अधिकता के कारण अपक्षय की मात्रा भी अधिक रहती है।

अपक्षय के प्रकार (Types of Weathering) -

विघटन व वियोजन में भाग लेने वाले कारकों के आधार पर अपक्षय को निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. भौतिक अपक्षय (Physical Weathering) – सूर्याताप, तुषार, जल एवं वायु दबाव द्वारा चट्टानों में विघटन होने की क्रिया भौतिक अपक्षय कहलाती है।

(अ) **पिण्ड विच्छेदन** (Block disintegration) – गर्म मरूस्थलों में शैलों में अत्यधिक दैनिक तापान्तर होने से शैलों में दरारें पड़ जाती है और कालान्तर में शैल बड़े–बड़े टुकड़ों में विघटित हो जाती है, इसे पिण्ड विच्छेदन कहते हैं। (चित्र सं. 8.1)

(ब) **अपशल्कन** (Exfoliation) – शैलों की ऊपरी परत के गर्म व ठण्डी होने से शैलों का छिलकों की तरह टूटना अपशल्कन कहलाता है। (चित्र सं. 8.1)

(स) **तुषारी अपक्षय** (Forst Weathering) – बहुत ठण्डे क्षेत्रों में निरन्तर रूप से पानी का शैलों की दरारों में जमने व पिघलने के परिणामस्वरूप शैलों का टूटना तुषारी अपक्षय कहलाता है।

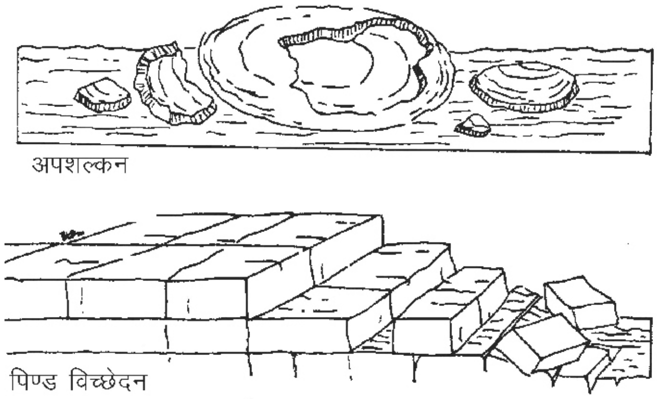

चित्र 9.1 : भौतिक अपक्षय

(द) दाब मोचन (Pressure Release) – जब कभी ऊपरी चट्टानों के हटने से निचली चट्टानों पर पड़ने वाला दबाव कम होता है तो उनमें चटकने पड़ने लगती हैं।

2. रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering) – रासायनिक प्रक्रिया द्वारा शैलों का जल व गैस की सहायता से टूटना, घुलना, सड़ना व नये यौगिकों में बदलना रासायनिक अपक्षय कहलाता है।

(अ) ऑक्सीकरण (Oxidation) – वायुमण्डलीय ऑक्सीजन जल में घुलकर शैल खनिजों को ऑक्साइड में बदल देती है जिसे ऑक्सीकरण कहते हैं, इससे शैलों का शीघ्र अपघटन होता है। इसका सबसे अधिक प्रभाव लोहे के खनिजों पर होता है।

(ब) कार्बोनेशन (Carbonation) – वायुमण्डलीय कार्बनडाई ऑक्साईड गैस जल में मिलकर कार्बनिक अम्ल बनाती है, इसके सम्पर्क में आकर चूनायुक्त शैले तीव्रता से घुल जाती है।

(स) सिलिका पृथक्करण (Desilication) – शैलों से सिलिका के अलग होने को डिसिलिकेशन कहते हैं। आर्द्र प्रदेशों में आग्नेय शैलों पर जल क्रिया से सिलिका पृथक हो जाती है और उनका अपक्षय हो जाता है।

(द) जलयोजन (Hydration) – शैल खनिजों में जल के अवशोषण को हाइड्रेशन कहते हैं। बॉक्साइट, फेल्सपार आदि शैले जल्दी जल सोखती है, जिससे उनका भार बढ़ जाता है और वे बिखर जाती है।

(य) घोलन (Solution) – वर्षा जल शैल पदार्थों से अनेक प्रकार के अम्लों एवं कार्बनिक तत्वों को घोल लेता है एवं नया रासायनिक मिश्रण बना लेता है। इसी अभिक्रिया को हाइड्रोलिसिस कहते हैं।

3. जैविक अपक्षय (Biological Weathering)

भूपटल पर अनेक प्रकार के जीव–जन्तु और वनस्पति अपक्षय में संलग्न रहते हैं।

(अ) वनस्पति द्वारा अपक्षय – विभिन्न वृक्षों की जड़ें शैलों में प्रवेश कर उनके कणों को ढीला कर देती है, जिससे शैले शीघ्र टूट जाती है।

(ब) जीवजन्तु द्वारा अपक्षय – केंचुआ, दीमक, चूहे आदि अनेक जीव को असंगठित करते रहते हैं।

(स) मानव द्वारा अपक्षय – मनुष्य की कृषि खनन व निर्माण क्रियाओं द्वारा अपक्षय होता है।

अपरदन (Erosion)

अपरदन शब्द लेटिन भाषा के 'Erodere' शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य घिसना या कुतरना है। अपरदन एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें शैलें, हिमानी, भूमिगत जल, लहरों, वायु व नदियों द्वारा घिसती, कटती एवं स्थानान्तरित या परिवहित होकर निक्षेपित होती रहती हैं। नदी, भूमिगत जल, हिमानी, पवन, लहरें आदि द्वारा अपरदन निम्नलिखित विधियों से होता हैं –

1. **अपघर्षण** (Abrasion or Corrasion) – जब अपरदनकारी कारक (नदी, हिमनद, पवन, महासागरीय तरंगें) अपने साथ चट्टानी मलबे व चूर्ण को बहाकर ले जा रहे होते हैं तो ये पदार्थ धरातलीय शैलों का घर्षण करते जाते हैं जिसे अपघर्षण कहते हैं।
2. **सन्निघर्षण** (Attrition) – पवन, नदी या लहरों के साथ प्रवाहित शैल कण एवं टुकड़े आपस में रगड़ खाकर टूटते रहते हैं जिसे सन्निघर्षण कहते हैं।
3. **जलदाब क्रिया** (Hydraulic Action) – नदी जल के भारी दबाव से या जल भँवर के दबाव से चट्टानों के अपरदन की क्रिया को जलदाब क्रिया कहते हैं।
4. **संक्षारण** (Corrosion or Solution) – जल की रासायनिक क्रिया द्वारा चट्टानों के खनिजों का जल में घुलकर बह जाना संक्षारण कहलाता है।
5. **अपवाहन** (Deflation) – पवन द्वारा बालू मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाकर ले जाना अपवाहन कहलाता है।
6. **गुहिकायन** (Cavitation) – नदी में उत्पन्न भंवर से उठने वाली तरंगे नदी के तल में अनेक प्रकार के छिद्रों का निर्माण करती है। जल गर्तिकाएँ तथा अवनमित कुण्ड ऐसे छिद्रों के उदाहरण हैं।
7. **उत्पाटन** (Plucking) – जब हिमानी अपने मार्ग में आने वाले शैल खण्ड उखाड़कर उनका परिवहन अपने साथ करती है तो उस क्रिया को उत्पाटन या उत्खनन कहते हैं।

अपरदित पदार्थ प्रायः तीन रूपों में प्रवाहित होता है।

1. **घुलकर** (Solution) – जल में अनेक पदार्थ घुलकर उसके साथ प्रवाहित होते हैं।
2. **निलम्बन** (Suspention) – अपरदनकारी कारकों (जल या पवन) के साथ तैरते हुए या लटकते हुए पदार्थ प्रवाहित होते हैं।
3. **लुढ़ककर** (Traction) – चट्टानों के बड़े–बड़े टुकड़े घिसटते हुए और लुढ़कते हुए नदी तल पर प्रवाहित होने को कर्षण या घसीटना कहा जाता है।

निक्षेपण (Deposition)

अपरदनात्मक कारकों की गति धीमी पड़ने पर तथा ढाल कम होने पर प्रवाहित मलबे के जमा होने की क्रिया को निक्षेपण कहते हैं। तलछटीय निक्षेपण से अवसादीय शैलों का निर्माण होता है।

सामुहिक स्थानान्तरण (Mass Translocation)

वृहत मात्रा में शैल मलबे के गुरूत्वाकर्षण बल के द्वारा ढाल के सहारे संचलित व स्थानान्तरित होना सामुहिक स्थानान्तरण कहलाता है। असंगठित शैल मलबे के लुढ़कने में गुरूत्वाकर्षण शक्ति उत्तरदायी होती है। ढालों से खिसककर शैल कणों (Rock Waste) का तलहटी पर ढेर लग जाता है। चट्टान चूर्ण का यह ढेर टालस (Talus) कहलाता है। ढीली चट्टानों के शंकुनुमा ढेर को टालस शंकु (Talus Cone) कहते हैं। असंगठित ढीले पदार्थ के लुढ़कने या सरकने की मात्रा व गति के अनुसार सामुहिक स्थानान्तरण को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है:

1. मन्द गति सामूहिक स्थानान्तरण – जल की नमी कम मात्रा में होने के कारण भग्न चट्टान चूर्ण (Rock Waste) धीमी गति से सरकता है। उपध्रुवीय शीत प्रदेशों में मंद बहाव की क्रिया अधिक होती है। मन्द वाह क्रिया के अन्तर्गत भूमि सर्पण (Solifluction) शैल सर्पण (Rock Creep), टालस सर्पण (Talus Creep) एवं मृदा सर्पण (Soil creep) शामिल किये जाते हैं।

2. तीव्र गति सामूहिक स्थानान्तरण – जल की प्रचुरता से शैलचूर्ण संतृप्त होकर तीव्रता से खिसकता है। तीव्र वाह के अन्तर्गत भूमिवाह (Earthflow) पंकवाह (Mudflow) एवं चादर वाह (Sheet Wash) को शामिल किया जाता है। नदी घाटियों की दीवारों पर खिसकते पंकवाह को देखा जा सकता है।

3. अत्यधिक तीव्र सामूहिक स्थानान्तरण – अति तीव्र वाह के लिए जल की नमी का होना आवश्यक नहीं है। बड़े शिलाखण्ड गुरूत्व बल से अचानक गिरने लगते हैं। इसके अन्तर्गत भूमि रूस्खलन (Land Slide) शैल स्खलन (Rock Slide), शैल पात (Rock Fall) मलबा स्खलन (Debris Slide) मलवापात (Debris Fall) तथा अवपातन (Slump) की प्रक्रिया शामिल की जाती है।

अपरदन चक्र की संकल्पना (Cycle of Erosion)

अमेरिकी भूगोलविद विलियम मोरिस डेविस (W.M.Davis) ने 1899 में अपरदन चक्र की संकल्पना प्रस्तुत किया। इन्होंने बताया कि ''अपरदन चक्र की अवधि के दौरान उत्थित भू–भाग अपरदित होकर आकृति विहिन समप्राय मैदान में रूपान्तरित होता है''।

"The Cycle of erosion is a period of time during which an uplifted landmass undergoes its transformation by the process of landsculpture ending into a low featureless plain."

डेविस ने आगे कहा कि ''भदृश्य संरचना, प्रक्रम एवं अवस्था का परिणाम होता है''। "Landscape is a function of structure, process and stage."

(i) संरचना (Structure) – किसी भूभाग पर पहले शैल संरचना विकसित होती है उसके बाद वहाँ विविध भूदृश्यों का निर्माण होता है।

(ii) प्रक्रम (Process) – भूदृश्यों या स्थलाकृतियों के विकास में नदी, पवन, लहरें, हिमनद, भूमिगत जल आदि परिवर्तनकारी प्रक्रमों में से किसी न किसी प्रक्रम की अहम

सामुहिक स्थानान्तरण के प्रकार

मन्दवाह
1. भूमि सर्पण
2. शैल सर्पण
3. टालस सर्पण
4. मृदा सर्पण

तीव्रवाह
1. भूमि वाह
2. पंकवाह
3. चादर वाह

अत्यधिक तीव्रवाह
1. भूमि रूखलन
2. शैल रूखलन
3. शैल परत
4. मलबा स्खलन
5. मलवापात
6. अवपातन

भूमिका रहती है।

(iii) अवस्था (Stage) – मानव जीवन की भांति भूदृश्यों के विकास की तीन अवस्थाएँ होती हैं, जैसे – युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। अवस्थाओं की अवधि प्रक्रम की गतिशीलता और शैल संरचना पर आधारित होती है। (चित्र सं. 9.2)

1. **युवावस्था** (Youth Stage) – इस अवस्था में नदी निम्नवर्ती कटाव से घाटी को गहरा करती है।

2. **प्रौढ़ावस्था** (Mature Stage) – इस अवस्था में नदी पार्श्ववर्ती कटाव (Lateral Erosion) के द्वारा अपनी घाटी को चौड़ा करती है।

3. **वृद्धावस्था** (Mature Stage) – इस अवस्था में भूपटलीय विषमताएँ घट जाती हैं तथा सम्पूर्ण क्षेत्र एक समप्राय मैदान (Peneplain) में परिवर्तित हो जाता है।

पेंक का अपरदन चक्र (Penck's Cycle of Erosion)

जर्मन भूगोलविद् वाल्टर पेन्क ने अपरदन चक्र को भूदृश्यों के विकास की अवस्था (Phase) उनके उत्थान की दर (Rate of Upliftment) तथा उनके निम्नीकरण (Degradation) के पारस्परिक सम्बन्धों का योग बताया है। (चित्र सं. 9.3)

1. **प्रथम अवस्था** – इस अवस्था में पेंक के अनुसार उत्थान व अपरदन की क्रिया साथ–साथ चलती है। किन्तु अपरदन की अपेक्षा उत्थान अधिक होता है।
2. **द्वितीय अवस्था** – इस अवस्था में उत्थान व अपरदन समानरूप से सक्रिय रहते हैं। परिणामस्वरूप घाटियाँ चौड़ी और गहरी होने लगती हैं।
3. **तृतीय अवस्था** – इस अवस्था में उत्थान व अपरदन क्रिया की प्रतिस्पर्द्धात्मक दर के कारण ऊपरी तथा निचले वक्र का पृष्ठीय अन्तर समान रहता है।
4. **चतुर्थ अवस्था** – इस अवस्था में उत्थान की दर शिथिल व क्षीण हो जाती है और अपरदन उसी गति से प्रभावी रहता है। परिणामस्वरूप घाटियाँ गहरी व दोआब नीचे होने लगते हैं।
5. **पंचम अवस्था** – इस अवस्था में उत्थान के साथ–साथ अपरदन की दर भी शिथिल व क्षीण हो जाती है। दोनों वक्रों का पृष्ठीय अन्तर घट जाता है।

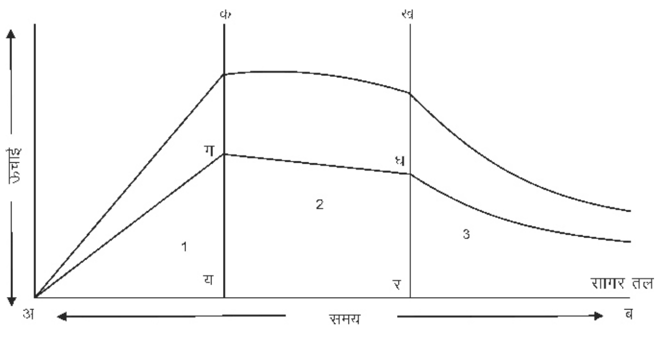

चित्र 9.2 : डेविस के अपरदन चक्र का रेखाचित्र

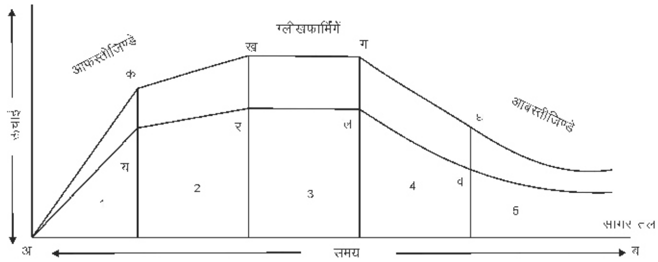

चित्र 9.3 : पेंक के अपरदन चक्र का रेखाचित्र

डेविस और पेंक के मतों में अन्तर

1. डेविस के अनुसार पहले उत्थान होता है उसके बाद अपरदन प्रारम्भ होता है। जबकि पेंक के अनुसार उत्थान व अपरदन एक साथ प्रारम्भ होते हैं।
2. डेविस के विचार में उत्थान अल्पावधि में होता है जबकि पेंक की दृष्टि में उत्थान अधिक समय तक चलता है।
3. डेविस के चक्र में युवावस्था, प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था का उल्लेख किया गया है। जबकि पेंक के चक्र में आफस्तीजिण्डे (Aufsteigende) अर्थात बढ़ती गति, ग्लीखफार्मिंगे (Gleichfermige) अर्थात समान गति और आबस्तीजिण्डे (Absteigende) अर्थात घटती गति का उल्लेख मिलता है।
4. डेविस के चक्र में भूदृश्य संरचना, प्रक्रम और अवस्था का प्रतिफल बताया गया है। पेंक के चक्र में भूदृश्य उत्थान व निम्नीकरण की दर का प्रतिफल बताया गया है।
5. डेविस का चक्र तीन अवस्थाओं में पूरा होता है जबकि पैंक का अपरदन चक्र पांच अवस्थाओं से गुजरता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. अनाच्छादन अपक्षय, अपरदन एवं सामुहिक स्थानान्तरण की क्रियाओं का योग है।
2. शैलों का अपने ही स्थान पर विघटन व वियोजन द्वारा टूटने को अपक्षय कहते हैं।
3. अपरदन शब्द लेटिन भाषा के 'Erodere' शब्द से बना है जिसका तात्पर्य घिसना या कुतरना है।
4. हवा, नदी या लहरों के साथ प्रवाहित शैल कण एवम् टुकड़े आपस में रगड़ खाते हैं जिसे सन्निघर्षण कहते हैं।

5. हवा द्वारा बालू मिट्टी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाकर ले जाने को अपवाहन (Deflation) कहा जाता है।
6. विलियम मोरिस डेविस के अनुसार भूदृश्य संरचना, प्रक्रम एवं अवस्था का प्रतिफल होता है।
7 पेंक के अनुसार उत्थान एवं अपरदन एक साथ प्रारम्भ होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. शैलों का स्थैतिक विघटन व वियोजन कहलाता है –
   (अ) अनाच्छादन (ब) अपरदन
   (स) अपक्षय (द) घोलन
2. अनाच्छादन किसे कहते हैं ?
   (अ) अपरदन व परिवहन (ब) अपरदन व निक्षेपण
   (स) अपरदन व अपक्षय एवं सामुहिक स्थानान्तरण
   (द) अपरदन व घोलन
3. अपशल्कन की क्रिया सामान्यतः वैसे प्रदेशों में होती है जहाँ–
   (अ) वार्षिक तापान्तर अधिक हो
   (ब) तापमान ऊँचा हो। (स) तापमान नीचा हो
   (द) दैनिक तापान्तर अधिक
4. किस प्रदेश में रासायनिक अपक्षय की क्रिया अधिक सक्रिय होती हैं ?
   (अ) उष्ण एवं शुष्क (ब) ध्रुवीय प्रदेश
   (स) उष्ण एवं आर्द्र (द) शीत एवं आर्द्र
5. वृहत शैल मलबे का गुरूत्वाकर्षण बल के द्वारा ढाल के सहारे स्थानान्तरित होना कहलाता है ?
   (अ) अपक्षय (ब) अपरदन
   (स) सामुहिक स्थानान्तरण (द) परिवहन

अतिलघुत्रात्मक प्रश्न –

6. ऑक्सीकरण कौनसा अपक्षय है ?
7. अपरदन से क्या आशय है ?
8. सन्निघर्षण अपक्षय में होता है या अपरदन में ?
9. पिण्ड विच्छेदन कौनसा अपक्षय है ?
10. कार्बोनेशन कौनसा अपक्षय है ?

लघुत्रात्मक प्रश्न –

11. अनाच्छादन का संक्षेप में अर्थ बताईए।
12. अपक्षय के प्रकार लिखिए।
13. उत्पाटन किसे कहते हैं ?
14. संक्षारण से आप क्या समझते हैं ?
15. भौतिक अपक्षय को स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. अपक्षय का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
17. अनाच्छादन को समझाईये एवं उसके प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
18. अपरदन चक्र की संकल्पना का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला– 1. स 2. स 3. द 4. स 5. स

अध्याय – 10

अपरदन के कारक

(Agents of Erosion)

पृथ्वी सतह पर आन्तरिक व बाहरी शक्तियाँ विभिन्न स्थलाकृतियों का निर्माण करती हैं बाहरी शक्तियाँ (अपक्षय, अपरदन व सामुहिक स्थानान्तरण की क्रिया द्वारा) शैलों के अनावृतिकरण का कार्य करती हैं। इन क्रियाओं के द्वारा स्थलाकृतियों के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होता है और विभिन्न स्थलाकृतियों का निर्माण होता है।

अपरदन एक गतिशील प्रक्रम है। अपरदन में भाग लेने वाली शक्तियों यथा नदी, सागरीय तरंगे, पवनें हिमानी एवं भूमिगत जल को अपरदन के कारक कहा जाता है। यह आवश्यक नहीं की ये सभी कारक समान रूप तथा समान गति से अपरदन का कार्य करें, क्योंकि सम्बन्धित क्षेत्र की जलवायु, अवस्थिति, चट्टानों की संरचना व संगठन आदि अपरदन को प्रभावित करते हैं।

अपरदन के निम्नलिखित कारकों की अपरदनात्मक व निक्षेपणात्मक क्रियाऐं पृथ्वी सतह पर विभिन्न स्थलाकृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. नदी – जलीय स्थलाकृतियाँ
   (River - Fluvial Topographies)
2. सागरीय लहरें – तटीय स्थलाकृतियाँ
   (Sea Waves - Coastal Topographies)
3. पवन – शुष्क स्थलाकृतियाँ
   (Wind - Arid Topographies)
4. हिमानी – हिमानीकृत स्थलाकृतियाँ
   (Glaciers - Glaciated Topographies)
5. भूमिगत जल–कार्स्ट स्थलाकृतियाँ
   (Underground Water - Karst Topographies)

नदी - जलीय स्थलाकृतियाँ
(River - Fluvial Topographies)

बहता हुआ जल घाटी के पार्श्व भाग व तली को खरोंचता व कुरेदता हुआ शैल सामग्री को अलग कर अपने साथ परिवहित

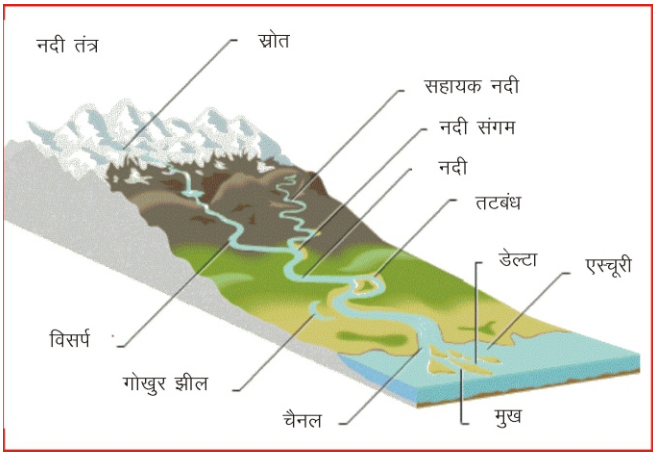

चित्र 10.1 : जलीय स्थलाकृतियाँ

कर अन्य जगह निक्षेपित करता है। इससे निम्नलिखित अपरदनात्मक व निक्षेपात्मक स्थलाकृतियों का निर्माण होता है। (चित्र सं. 10.1)

(अ) अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ
(Erosional Topographies)

1. **गॉर्ज** (Gorge) –यह खड़े पार्श्व वाली संकरी एवं गहरी घाटी होती है।
2. **केनियन** (Canyon)–केनियन गार्ज की अपेक्षा अधिक तंग व गहरी घाटी है।
3. **जलप्रपात** (Water-Falls) – अकस्मात उर्ध्वाधर ढाल पर जल के तीव्र गति से गिरने पर जलप्रपात निर्मित होता है। (चित्र सं. 10.2)

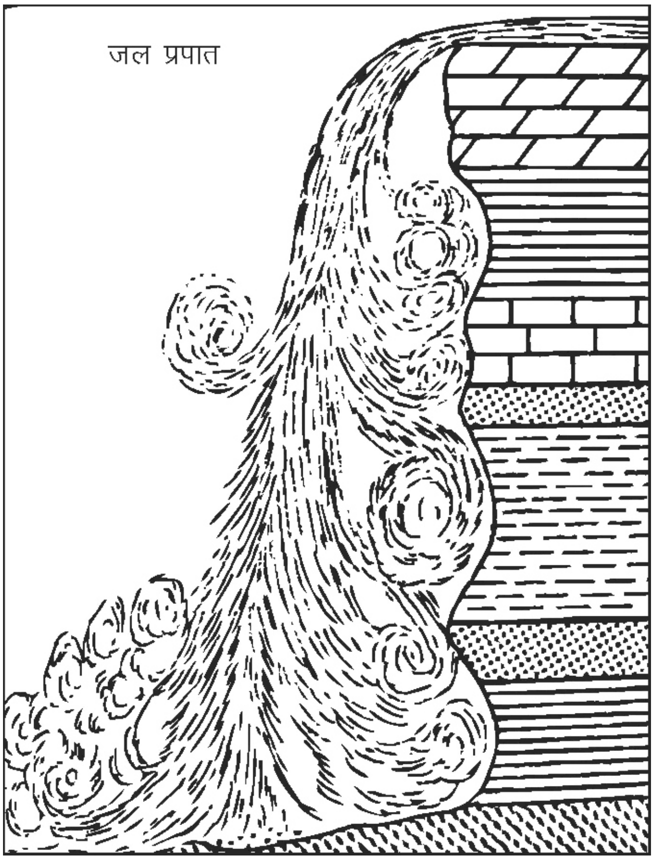

चित्र 10.2 : जल प्रपात

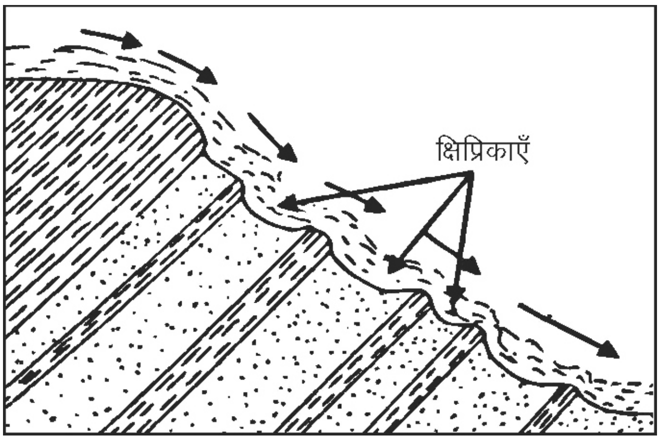

चित्र 10.3 : क्षिप्रिकाएँ

4. **क्षिप्रिकाऐं** (Rapids) – नदी मार्ग के वे भाग जहाँ ऊपर उठी कठोर शैलों के कारण नदी उछलती हुई बहती है। (चित्र सं. 10.3)

5. **जल गर्तिका**– यह नदी की तली में जल के वेग की छेदन क्रिया से निर्मित गर्त होते हैं।

6. **संरचनात्मक पीठिकाऐं** (Structural Benches) – यह कठोर व कोमल शैलों की क्रमशः क्षैतिज परतों से घाटी के पार्श्व में बनी सोपान जैसी आकृतियां है।

7. **नदी विसर्प** (River Meanders) – यह नदी के अत्यधिक घुमावदार मोड़ होते हैं जहां नदी सांप की भांति बहती हुई लगती है।

8. **समप्राय मैदान** (Peneplain) – यह नदी द्वारा निर्मित आकृति विहिन कम ढाल वाला मैदान होता है।

(ब) निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ
(Depositional Topographics)

1. **जलोढ़ शंकु** (Alluvial Cone) –यह नदी के पर्वतों से मैदान में प्रवेश करते समय पर्वतीय ढाल पर शंकु के आकार में मलबे का जमाव होता है। (चित्र सं. 10.4)

2. **जलोढ़ पंख** (Alluvial Fans) –यह नदी के पर्वत से मैदान में प्रवेश करते समय मलबे की पंखेनुमा आाकार में जमाव होते हैं। (चित्र सं. 10.4)

3. **डेल्टा** (Delta) –नदी के मुहाने पर जलोढ़क के निक्षेपण से निर्मित त्रिभुजाकार आकृति वाला क्षेत्र डेल्टा कहलाता है। (चित्र सं. 10.1)

4. **प्राकृतिक तटबंध** (Natural Levees)– ये पानी के उतर जाने के पश्चात् नदी के दोनों ओर निर्मित रेतीली मिट्टी की दीवारें होती हैं। (चित्र सं. 10.1)

5. **बाढ़ के मैदान** (Flood Plain) – नदी का वह भाग जहाँ नदी बाढ़ के समय जलोढ़क का निक्षेपण करती है, बाढ़ का मैदान कहलाता है।

चित्र 10.4 : जलोढ़ शंकु एवं पंख

6. **गोखुर झील** (Oxbow-lake) – जब नदी विसर्पित मार्ग छोड़कर सीधी बहती है एवं उसके वक्राकार भाग जलपूर्ण होकर गोखुरनुमा छाड़न झील निर्माण करते हैं। (चित्र सं. 10.1)

सागरीय लहरें – तटीय स्थलाकृतियाँ
(Sea Waves -Coastal Topographics)

हवा के प्रहार से सागरतल पर उठने वाली तरंगों को लहरें कहा जाता है। लहरें तटवर्ती भागों पर जलगति क्रिया, अपघर्षण, सन्निघर्षण व जलीय दाब क्रिया एवं मलबे के निक्षेपण से अनेक प्रकार की अपरदनात्मक व निक्षेपात्मक स्थलाकृतियों का निर्माण करती है।

(अ) अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ
(Erosional Topographics)

1. **भृगु** (Cliff) – लहरों द्वारा आधार पर निरन्तर प्रहार से अपरदन के कारण निर्मित लम्बवत किनारा भृगु कहलाता है।
2. **लघुनिवेशिका** (Caves) – तट के समानान्तर कठोर व कोमल शैलों वाले क्षेत्रों में कोमल शैलों के कटाव से बनी अण्डाकार आकृति को लघु निवेशिका कहते हैं।

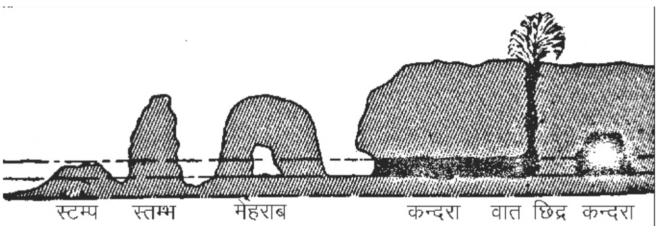

चित्र 10.5 : तटीय स्थलाकृतियाँ

3. **कन्दरा** (Sea Caves) – तटवर्ती भागों में लहर निर्मित खांचों का लगातार कटाव होने से समुद्री गुफाओं बनती है। (चित्र सं. 10.5)
4. **वात छिद्र** (Blow-out) – तटवर्ती कन्दरा की छत पर ज्वारीय तरंगें छेद कर देती है जिसे वात छिद्र कहते हैं। (चित्र सं. 10.5)
5. **मेहराब** – समुद्र तट पर दो ओर से बनने वाली गुफाओं के परस्पर मिल जाने से मेहराब की रचना होती है। (चित्र सं. 10.5)
6. **गुहा स्तम्भ** – मेहराब की छत के टूटने से निर्मित स्तम्भ गुहा स्तम्भ कहलाता है। (चित्र सं. 10.5)
7. **तरंग घर्षित वेदिका** (Wave cat Platform) – यह भृगु के निरन्तर पीछे हटने से निर्मित चबूतरों होता है।

(ब) निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ
(Depositional Topographics)

1. **पुलिन** (Beach) – सागर तट के सहारे लहरों द्वारा मलबे के निक्षेपण से पुलिन का निर्माण होता है।
2. **कस्प पुलिन** (Cusp Beach) – सागर की ओर लम्बाई में विस्तारित कंकर पत्थर, बजरी निर्मित त्रिकोण के रूप में बने बीच को कस्प पुलिन कहते हैं।
3. **स्पिट** (Spit) – लहरों द्वारा सागर की ओर जिव्हा के रूप में किया गया निक्षेपण स्पिट कहलाता है।
4. **रोधिका** (Bars) – तरंग या धाराओं द्वारा निक्षेपित कटक या बांध को रोधिका कहते हैं।
5. **अपतट रोधिका** (Offshore Bars) – तट से दूर किन्तु उसके समान्तर बनी बांध या दीवार, अपतट रोधिका कहलाती है।
6. **हुक** (Hook) – स्पिट के अर्द्धचन्द्राकार घुमावदान जमाव को हुक कहते हैं।
7. **लूप** (Loop) – जब हुक छल्ले की ओर मुड़कर तट से मिल जाता है तो लूपनुमा आकृति बनती है।
8. **संयोजक रोधिका** (connecting Bars) – दो द्वीपों को जोड़ने वाले बांध या दीवार को संयोजी रोधिका कहते हैं।
9. **लैगून एवं खाड़ी रोधिका** (Lagoon & Bay Bars) – किसी खाड़ी के दोनों छोर निक्षेपित दीवार या बांध से जुड़ जाते हैं जो उस दीवार को खाड़ी रोधिका तथा इस बन्द खाड़ी को लैगून कहते हैं।
10. **टोम्बोलो** (Tombolo) – द्वीपों को तट से जोड़ने वाली रोधिका 'टोम्बोलो' कहलाती है।

पवन–शुष्क स्थलाकृतियाँ
(Wind-Arid Topographics)

मरूस्थलीय क्षेत्रों में पवनों की अपरदनात्मक व निक्षेपणात्मक क्रियाओं द्वारा विभिन्न स्थलरूपों का निर्माण होता है। पवनें मरूस्थली क्षेत्रों से अपवाहन, अपघर्षण एवं सन्निघर्षण द्वारा शैलों को काटते, छाँटते एवं उन शैलकणों का परिवहन कर अन्यत्र निक्षेपण करती है, जिससे मरूस्थली क्षेत्रों में पवनों द्वारा अपरदनात्मक एवं निक्षेपणात्मक स्थलरूपों का निर्माण होता है।

(अ) अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ
(Erosional Topographics)

1. **वातगर्त** (Blow out) – वह गर्त जो पवन द्वारा ढीली व असंगठित शैलों को उड़ाकर ले जाने से बनते हैं वातगर्त कहलाते हैं।

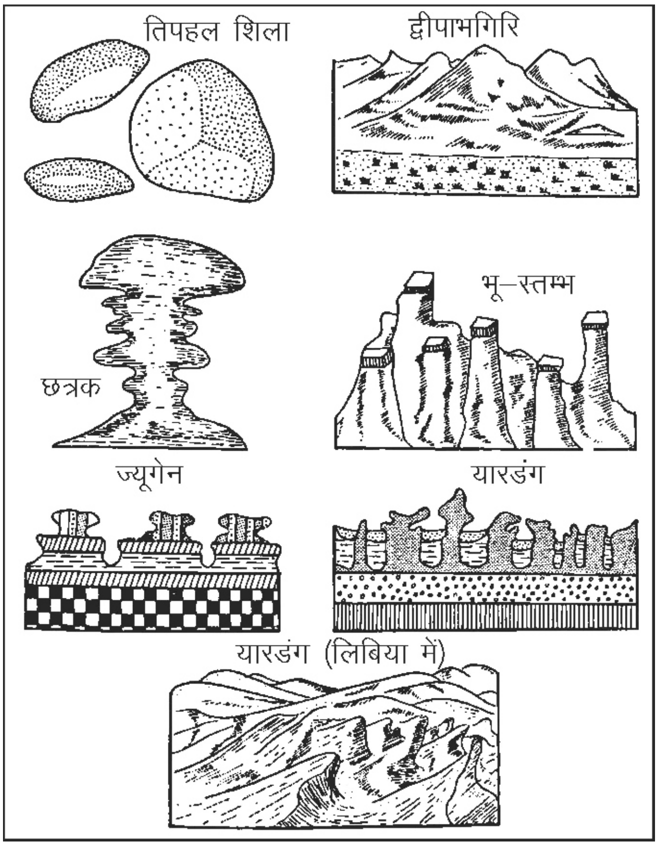

चित्र 10.6 : शुष्क स्थलाकृतियाँ

2. **द्वीपाभगिरी** (Inselberge) – यह मरूस्थल रूपी विशाल महासागर में कठोर शैलों के उभरे टीले होते हैं जो द्वीप या पर्वत की भांति दिखाई देते हैं। (चित्र सं. 10.6)
3. **छत्रक शील** (Mushroom Rock) – ये कठोर चट्टानों के अपशिष्ट भाग हैं जिनकी आकृति छतरी के समान होती है। (चित्र सं. 10.6)
4. **भूस्तम्भ** (Demoisells) – ये वे भूस्तम्भ हैं जो मरूस्थलों में कठोर शैलों के आवरण से संरक्षित होते हैं। (चित्र सं. 10. 6)
5. **तिपहल शिला** (Driekanter) – यह हवा के घर्षण से बना तीक्ष्ण पार्श्व वाला शैल का टुकड़ा होता है। (चित्र सं. 10.6)
6. **अश्मिक जालिका** (Stone Lattice) – यह एक जालीदार शैल है जो भिन्न संरचना वाली शैलों पर पवन की अपघर्षण क्रिया से बनती है।
7. **ज्यूगेन** (Zeugen) – यह क्षैतिज रूप में एकान्तर क्रम में बिछी कठोर व कोमल शैलों की परतों के हवा के अपरदन निर्मित खांचे होते हैं। (चित्र सं. 10.6)
8. **यारडंग** (Yardang) – ये कोमल व कठोर शैलों की क्रमश लम्बवत् परतों से बने नूकीले, भू आकार होते हैं। (चित्र सं. 10.6)

(ब) निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ
(Depositional Topographies)

1. **बालुका स्तूप** (Sand Dunes) – ये रेत के छोटे–छोटे गतिशील ढेर या टीले होते हैं जो पवन के साथ स्थानान्तरित होते हैं।
2. **उर्मिकाएँ** (Ripples) – यह सागरीय तरंगों की भांति मरूस्थलों की रेतीली सतह पर उभरने वाले भू आकार हैं।
3. **बालुका प्रवाह** (Sand drift) – यह स्थलाकृतिक अवरोध के सहारे बालु की लम्बाकार गतिशील श्रेणियां होती है।
4. **बालुका कगार** (Sand Levees) – ये बालु की लम्बाकार, चौड़े शिखर वाली श्रेणियां होती है।
5. **लोयस** (Loess) – पवन द्वारा उड़ाकर लाये गये सूक्ष्म धूलकणों के निक्षेप को लोयस कहते हैं।

हिमानी – हिमानीकृत स्थलाकृतियाँ
(Glaciers - Glaciated Topographies)

हिमानी या हिमनद हिम की ऐसी राशि है जो धरातल पर संचय के स्थान से धीरे–धीरे खिसकती है। हिमच्छादित क्षेत्रों में हिमानी उत्पाटन व अपघर्षण करते हुए शैलों का अपरदन करती है एवं विभिन्न रूपों में हिमोढ़ का निक्षेपण करती हैं, जिससे हिम क्षेत्रों में अनेक अपरदनात्मक एवं निक्षेपात्मक स्थलाकृतियों का निर्माण होता है।

(अ) अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ
(Erosional Topographies)

1. **यू–आकार की घाटी** ('U' Shaped Valley) – हिमानी नदी निर्मित घाटियों को घिसकर खड़े पार्श्व व चौड़े सपाट

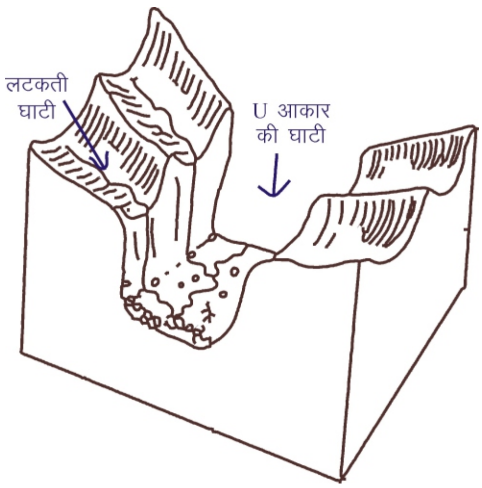

चित्र 10.7 : U आकार एवं लटकती घाटी

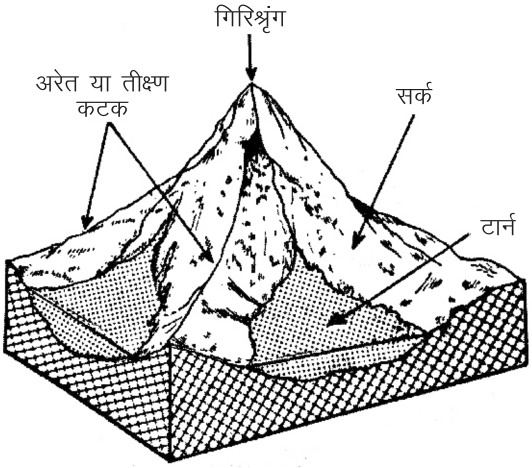

चित्र 10.8 : हिमानीकृत स्थलाकृतियाँ

तल वाली यू–आकार की घाटी का निर्माण करती है। (चित्र सं. 10.7)

2. **लटकती घाटी** (Hanging Valley) – यू आकार की मुख्य गहरी घाटी में उसकी सहायक हिमानी की घाटी ऊपर लटकती प्रतीत होती है। (चित्र सं. 10.7)
3. **हिम गह्वर** (Cirque) – यह हिमानी द्वारा आराम कुर्सी की आकृति में निर्मित गर्त होता है। (चित्र सं. 10.8)
4. **टार्न** (Tarn) – यह सर्क रूपी बेसिन में जल भरने से निर्मित झील होती है। (चित्र सं. 10.8)
5. **नूनाटक** (Nunatak) – हिम क्षेत्रों में उभरे टीले नूनाटक कहलाते हैं।
6. **कॉल** (Col) – यह दो आसन्न सर्क के मिलने से निर्मित आर–पार मार्ग होता है।
7. **श्रृंग व पुच्छ** (Crag and Tail) – हिमानी क्षेत्रों में ऐसी शिलाऐं जिनके हिम सम्मुख ढाल तीव्र व उबड़–खाबड़ व विमुख ढाल सपाट व मंद होते हैं श्रृंग व पुच्छ कहलाते हैं। (चित्र सं. 10.9)
8. **मेषशिला** (Sheep Rock) – यह हिमानी अपरदित भेड़ की पीठ के समान शीला होती है।

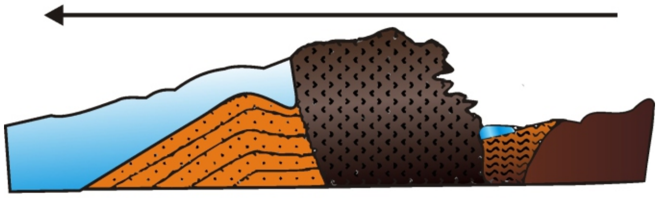

चित्र 10.9 : हिमानीकृत श्रृंग एवं पुच्छ

9. **फियोर्ड** – यह हिमानी निर्मित घाटियों के जलमग्न होने से निर्मित कटे–फटे तट होते हैं।

(ब) निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ
(Depositional Topographies)

1. **हिमोढ़** (Morains) – हिमानी द्वारा निक्षिप्त कंकड़ पत्थर व गोलाश्म के जमाव हिमोढ़ कहलाते हैं, जो हिमानी के किनारों, उसके अन्तिम भाग या तल पर निक्षिप्त होते हैं।
2. **एस्कर** (Esker) – यह हिमानी जलोढ़क के जमाव से निर्मित लम्बे, संकड़े एवं लहरदार कटक होते हैं।
3. **केम** (Kame) – यह हिमानी जलोढ़क से निर्मित तीव्र ढाल युक्त टीले होते हैं।
4. **केटील** (Kettle) – ये हिमखण्डों के पिघलने से निर्मित गर्त होते हैं।
5. **ड्रमलिन** (Drumlin) – गोलाश्म मृतिका (Boulder Clay) के निक्षेपण से अण्डों की टोकरी के समान आकृति को ड्रमलिन कहलाती है।
6. **हिमानी अवक्षेप मैदान** (Outwash Plain) – यह हिमजल के प्रवाह से मलबे के दूर तक फैलने से निर्मित पंखे के आकार वाले मैदान होते हैं।

भूमिगत जल – कार्स्ट स्थलाकृतियाँ (Ground Water - Karst Topographies)

पृथ्वी की ऊपरी सतह के नीचे भूपृष्ठीय चट्टानों के छिद्रों तथा दरारों में स्थित जल को भूमिगत जल कहते हैं। चूने पत्थर वाली चट्टानों के क्षेत्र में भूमिगत जल के द्वारा सतह के ऊपर तथा नीचे विभिन्न प्रकार के स्थलरूपों का निर्माण घोलन क्रिया द्वारा होता है। चूने के प्रदेश को कार्स्ट प्रदेश कहा जाता है। 'कार्स्ट' शब्द की उत्पत्ति यूगोस्लेव भाषा के क्रास (Krass) शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य चूने के प्रदेश से होता है। कार्स्ट प्रदेश शब्द यूगोस्लाविया के कार्स्ट प्रदेश से लिया गया है। इसी नाम के आधार पर विश्व के सभी देशों में चूना पत्थर प्रदेश में निर्मित स्थलरूपों को कार्स्ट स्थलाकृति कहते हैं, जहां अपरदनात्मक एवं निक्षेपात्मक क्रियाओं द्वारा विभिन्न स्थलाकृतियों का निर्माण होता है।

(अ) अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ
(Erosional Topographies) –

1. **टेरा रोसा** (Tera-Rossa) – घोलन क्रिया से निर्मित लाल व भूरि मिट्टीयां टेरा–रोसा कहलाती हैं।
2. **लेपिज** (Lapies) – यह सरशैया सदृश्य नुकीली व कटीली भूआकृतियां होती हैं। (चित्र सं. 10.10)

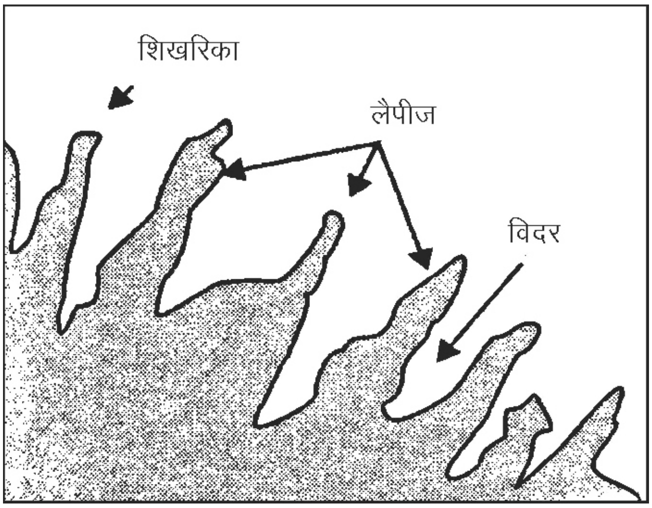

चित्र 10.10 : लेपिज

3. **घोलरन्ध्र** (Sink Hole) – ये कार्बनडाईऑक्साइड युक्त जल की घुलन क्रिया से निर्मित गर्त होते हैं। विलय रन्ध्र व डोलालइन भी इसी प्रकार के गर्त होते हैं जो आकार में क्रमशः बड़े होते हैं। (चित्र सं. 10.11)
4. **विलय रन्ध्र** (Swallow-Hole) – यह घोल रन्ध्रों से बड़े आकार वाले रन्ध्र होते हैं।
5. **डोलाइन** (Doline) – बड़े आकार के विलयन रन्ध्रों को डोलाइन कहते हैं।

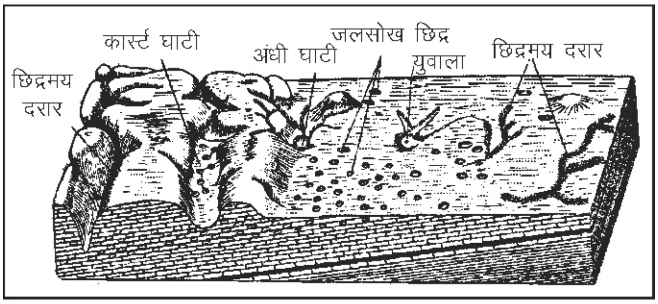

चित्र 10.11 : कार्स्ट – अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ

6. **सकुण्ड** (Uvala) – यह अनेक डोलाइन के आपस के मिलने से निर्मित विस्तृत गर्त होते हैं।
7. **राजकुण्ड** (Polije) – यह अनेक युवाला के आपस में मिलने से निर्मित विस्तृत गर्त है।
8. **धंसती निवेशिका** (Sinking Creek) – चूने की सतह पर असंख्य छिद्रो से जहां जल धँसता हुआ दिखाई देता है धंसती निवेशिका कहलाता है।

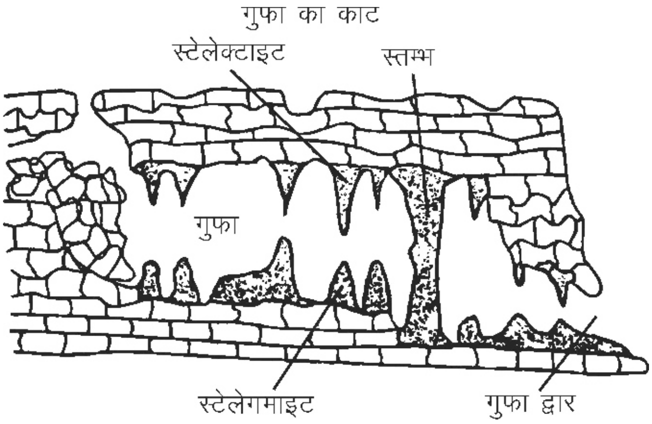

चित्र 10.12 : कार्स्ट – निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ

9. **अन्धी घाटी** (Blind Valley) – चूने के प्रदेश में प्रवाहित नदी डोलाइन आदि छिद्रों से भूमिगत हो जाती है तो उसके आगे की घाटी शुष्क पड़ी रहती है जिसे अन्धी घाटी कहते हैं। (चित्र सं. 10.11)

(ब) निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ
(Depositional Topographies) –

1. **आश्चुताश्म** (Stalactite) – यह कंदरा की छत से लटकती हुई ठोस व नुकीली आकृति है जो छत से रिसते हुए जल के वाष्पीकरण से बनती है। (चित्र सं. 10.12)
2. **निश्चुताश्म** (Stalagmite) – यह कंदरा के फर्श पर बनी स्तम्भाकार आकृति है जो फर्श पर जल के टपकने से बनती है। (चित्र सं. 10.12)
3. **गुहा स्तम्भ** (Cave Pillar) – यह आश्चुताश्म व निश्चुताश्म के मिलने से बनी स्तम्भाकार आकृति है। (चित्र सं. 10.12)
4. **ड्रिपस्टोन** (Drip Stone) – यह कन्दरा की तली पर परदे जैसा चूने का स्तम्भ होता है।
5. **नोडुल्स** (Nodules) – शैल छिद्रों में एक प्रकार के खनिज घोल से हुए जमाव को नोडुल्स कहते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. नदी, सागरीय तरंगे, पवनें, हिमानी और भूमिगत जल अपरदन के प्रमुख कारक।
2. जब नदी विसर्पित मार्ग छोड़कर सीधी बहती है और उसके वक्राकार भाग जलपूर्ण होकर गाखुरनुमा छाड़न झील का निर्माण करते हैं ?
3. गार्ज, जलप्रपात, क्षिप्रिकाएें, जलाढ़ शंकु, प्राकृतिक तटबन्ध डेल्टा आदि नदी निर्मित प्रमुख स्थलाकृतियाँ है ?
4. भृगु, लघुनिवेशिका, कन्दरा, पुलिन, कस्पपुलिन, स्पिट, रोधिका, लेगुन, खाड़ी कगार, इत्यादि सागरीय लहरों से

निर्मित प्रमुख स्थलाकृतियाँ है।

5. वातगर्त, द्वीपाभगिरी, छत्रकशिला, ज्यूगेन, यारडंग, लोयस इत्यादि पवनों द्वारा निर्मित प्रमुख स्थलाकृतियाँ है।
6. टार्न, लटकती घाटी, नूनाटक, श्रृंग–पुच्छ, मेषशिला, एस्कर, केम इत्यादि हिमानी निर्मित प्रमुख स्थलाकृतियाँ हैं।
7. टेरा, रोसा, लेपिज, घोलरन्ध्र, डोलाईन, अन्धीघाटी, ड्रिपस्टोन नोडल्स इत्यादि भूमिगत जल निर्मित प्रमुख स्थकृतियाँ है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. वह भूदृश्य जो नदी के निक्षेपण से बनता है ?

   (अ) गार्ज (ब) जलोढ़ पंख

   (स) जल गर्तिका (द) जल प्रपात
2. वह भूदृश्य जो लहरों के अपरदन से बनता है?

   (अ) भृगु (ब) डेल्टा

   (स) छत्रक शिला (द) डोलाइन
3. पवन द्वारा जो अपरदनात्मक स्थलाकृति नहीं है, वह है –

   (अ) स्तूप (ब) छत्रक शिला

   (स) इन्सेल बर्ग (द) ज्यूगेन
4. कौनसा भूरूप हिमानी अपरदन से निर्मित नहीं है ?

   (अ) फियोर्ड (ब) हिम सोपान

   (स) हिम–श्रृंग (द) एस्कर
5. मरूप्रदेश में लहरदार उभार को कहते हैं ?

   (अ) बालू का कगार (ब) उर्मिका

   (स) बरखान (द) लोयस

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

6. जलोढ़क शंकु कैसे बनते हैं ?
7. गार्ज किसे कहते हैं ?
8. सर्क में जल भरने से बनने वाली झील का नाम बताओ ?
9. अण्डों की टोकरी सदृश्य स्थलाकृति का नाम बताइये।
10. यारडंग किसे कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

11. गोखुर झील कैसे बनती है ?
12. लैगून कैसे बनती है ?
13. छत्रक शिला कैसे बनती है ?
14. अंधी घाटी क्या है ?
15. सर्क किसे कहते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. नदी निर्मित स्थलाकृतियों का वर्णन कीजिए।
17. हिमानी निर्मित स्थलाकृतियों का वर्णन कीजिए।
18. अपरदन को समझाते उसके प्रमुख कारकों से निर्मित स्थलाकृतियों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला – 1. ब 2. अ 3. अ 4. द 5. ब

इकाई – 4

अध्याय – 11

वायुमण्डल : संघटन एवं संरचना
(Atmosphere : Composition and Structure)

वायुमण्डल का परिचय:

पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए वायु के विस्तृत आवरण को वायुमण्डल कहते हैं। वायु का यह आवरण एक लिफाफे के रूप में है, जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के कारण इसका एक अभिन्न अंग बन गया है। इस वायु का न कोई रंग है, न स्वाद तथा न ही गंध है। पवन के संचार से ही हम वायु को अनुभव कर सकते हैं।

पृथ्वी के गैसीय आवरण को वायुमण्डल कहा जाता है, जिसकी ऊँचाई हजारों किलोमीटर है। पृथ्वी से वायुमण्डल को स्थल मण्डल तथा जल मण्डल की तरह अलग नहीं किया जा सकता। वायुमण्डल में अनेक गैसें व्याप्त है। कोई भी व्यक्ति या जीव बिना वायु के जीवित नहीं रह सकता। वायु संसार के सभी प्राणियों के जीवन का आधार है।

फिन्च एवं ट्रिवार्था के अनुसार ''वायुमण्डल गैसों का आवरण है जो धरातल से सैंकड़ों मील की ऊँचाई तक विस्तृत है तथा पृथ्वी का अभिन्न अंग है''।

मॉक हाऊस के अनुसार, ''वायुमण्डल गैस की एक पतली परत है जो गुरूत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी के साथ जुड़ी हुई है।''

वायुमण्डल का महत्व:

वायुमण्डल में ऑक्सीजन, नाईट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन तथा अनेक उपयोगी गैसें पायी जाती हैं। वायुमण्डल के आवरण के कारण ही पराबैंगनी किरणों के हानिकारक प्रभाव से हमारी रक्षा हो पाती है। शायद यही कारण है कि मानव जाति के इतिहास के शुरू से ही वायुमण्डल हम सबके लिए कौतुहल का विषय रहा है। वायुमण्डल में निहित तापमान व आर्द्रता मानव जीवन को प्रभावित करती है। यह हमारे लिए तरह–तरह के प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करता है तथा इसकी रचना हमें जीवित रखती है।

वायुमण्डल का संघटन (Composition of Atmosphere)

वायुमण्डल कई गैसों का मिश्रण है। गैसों के अलावा वायुमण्डल में जलवाष्प तथा धूलकण भी पाये जाते है। वायुमण्डल में मुख्य रूप से 9 प्रकार की गैसें पाई जाती है, जिनमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, ऑर्गेन, कार्बनडाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम, नियॉन, क्रिप्टान तथा ओजोन प्रमुख है। इन सभी गैसों में नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन महत्वपूर्ण है।

वायुमण्डल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं समस्त प्राणियों के लिये अनिवार्य गैस ऑक्सीजन है। धरातल का कोई भी प्राणी इसके बिना जीवित नहीं रह सकता। वायुमण्डल में सर्वाधिक मात्रा 78.8 प्रतिशत नाइट्रोजन गैस की है। दूसरे स्थान पर ऑक्सीजन 20.95 प्रतिशत है। इस प्रकार ये दोनों गैसें वायुमण्डल के लगभग 99 प्रतिशत आयतन घेरे हुए हैं।

कुछ महत्वपूर्ण गैसों की विशेषताऐं:

1. नाइट्रोजन– वायुमण्डल में सर्वाधिक मात्रा में मौजूद गैस है। नाइट्रोजन की उपस्थिति के कारण ही वायुदाब, पवनों की शक्ति तथा प्रकाश के परावर्तन का आभास होता है। इस गैस का कोई

सारणी 11.1

वायुमण्डल में विभिन्न गैसों का प्रतिशत

क्र. सं.	गैस	सूत्र	आयतन का प्रतिशत
01	नाइट्रोजन	N_2	78.8
02	ऑक्सीजन	O_2	20.95
03	आर्गन	Ar	0.93
04	कार्बनडाईआक्साइड	Co_2	0.03
05	नियोन	Ne	0.0018
06	हीलियम	He	0.0005
07	ओजोन	O_3	0.00006
08	हाइड्रोजन	H	0.00005

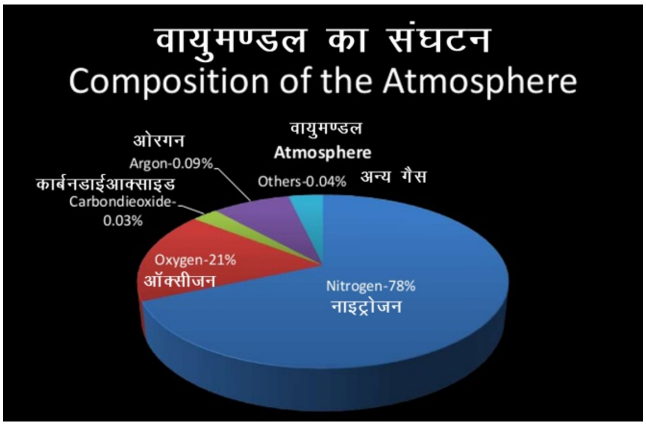

चित्र 11.1 : वायुमण्डल का संगठन

रंग, गंध या स्वाद नहीं होता है। यह गैस वस्तुओं को तेजी से जलने से बचाती है। इस गैस से पेड़ पौधों में प्रोटीन का निर्माण होता है जो भोजन का मुख्य अंग है। यदि वायुमण्डल में नाइट्रोजन गैस न होती तो आग पर नियंत्रण रखना कठिन हो जाता। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया 'नाईट्रोजन चक्र' कहलाती है।

2. ऑक्सीजन– यह जीवनदायिनी गैस मानी गई है। ऑक्सीजन गैस अन्य रासायनिक तत्वों के साथ सरलता से मिलकर अनेक प्रकार के यौगिकों का निर्माण करती है। वस्तुओं के जलने के लिये यह गैस आवश्यक है। अतः यह ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। कार्बोहाइड्रेट निर्माण में महत्वपूर्ण होती है।

3. कार्बनडाइऑक्साइड– यह एक भारी गैस है। यह वस्तुओं के जलने से उत्पन्न होती है। सभी प्रकार की वनस्पतियाँ कार्बनडाइऑक्साइड का उपयोग प्रकाश–संश्लेषण में करती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस गैस की मात्रा में होने वाली वृद्धि से वायुमण्डल की निचली परतों के तापमान में वृद्धि हो रही है, भूमण्डलीय तपन बढ़ रहा है और जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

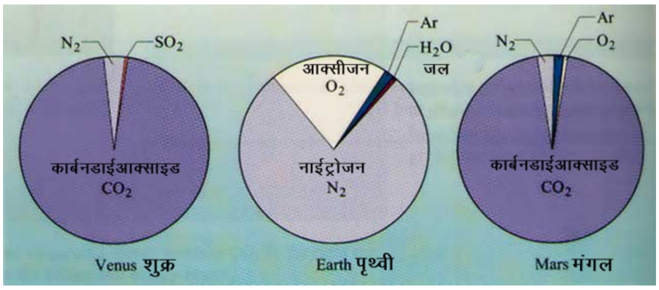

चित्र 11.2 : शुक्र, पृथ्वी और मंगल पर कार्बनडाईऑक्साइड की स्थिति

4. ओजोन– वायुमण्डल की एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण गैस है। इसका निर्माण ऑक्सीजन के तीन परमाणुओं से होता है। जलवायु की दृष्टि से इस गैस का विशेष महत्व है। यह सूर्य से आने वाली तेज पराबैंगनी विकिरण के कुछ अंश को अवशोषित कर लेती है। इस प्रकार सौर विकिरण का केवल उतना ही भाग धरातल पर पहुँचने दिया जाता है, जितना आवश्यक और उपयोगी होता है।

5. जलवाष्प– जलवाष्प अधिकांशत वायुमण्डल की निचली परतों तक सीमित रहती है। ऊँचाई में वृद्धि के साथ जलवाष्प की मात्रा में कमी होती जाती है। वायुमण्डल के सम्पूर्ण जलवाष्प का 90 प्रतिशत भाग 8 किलोमीटर की ऊँचाई तक सीमित है। इसके ऊपर जलवाष्प की मात्रा काफी कम हो जाती है। वायुमण्डल में जलवाष्प की औसत मात्रा 2 प्रतिशत है।

जलवाष्प सूर्य से आने वाले सूर्यताप के कुछ भाग को अवशोषित कर लेता है तथा पृथ्वी द्वारा विकिरित ऊष्मा को संजोए रखता है। इस तरह यह एक कंबल का काम करता है, जिससे पृथ्वी न तो अत्यधिक गर्म और न ही अत्यधिक ठण्डी हो

सकती है। जलवाष्प के संघनन से वर्षा होती है।

6. धूलकण— वायुमण्डल में पवन की गति के कारण सूक्ष्म धूल के कण उड़ते रहते हैं। ये धूलकण विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होते हैं। इसमें सूक्ष्म मिट्टी, धूल, समुद्री नमक, ज्वालामुखी राख, उल्कापात के कण शामिल है। ये धूलकण प्रायः वायुमण्डल की निचली परतों में ही रहते हैं।

वायुमण्डल में गैस अथवा जलवाष्प के अलावा जो भी ठोस पदार्थ कणों के रूप में उपस्थित रहते हैं, वे सभी धूल कण कहलाते हैं। वायुमण्डलीय गैसों तथा धूलकणों से होने वाले 'वरणात्मक प्रकीर्णन' से ही आकाश का रंग नीला दिखाई देता है तथा इसी कारण सूर्योदय या सूर्यास्त के समय आकाश का रंग लाल हो जाता है। आर्द्र प्रदेशों की अपेक्षा औद्योगिक नगरों तथा शुष्क प्रदेशों की वायु में अपेक्षाकृत अधिक धूल कण पाये जाते हैं।

वायुमण्डल की संरचना
(Structure of Atmosphere)

वायुमण्डल को अनेक परतों में विभाजित किया गया है। सामान्य विचारधारा के अनुसार वायुमण्डल को निम्नलिखित पाँच मुख्य परतों में विभाजित किया गया है, जिसका आधार वायुमण्डल में तापमान का ऊर्ध्ववाधर वितरण है—

1.क्षोभ मण्डल (**Troposphere**)
2.समताप मण्डल (**Stratosphere**)
3.मध्य मण्डल (**Mesosphere**)
4.आयन मण्डल (**Ionosphere**)
5.बहिर्मण्डल (**Exosphere**)

1. क्षोभमण्डलः यह वायुमण्डल की सबसे निचली परत है, जिसमें वायुमण्डल के कुल भार का 75 प्रतिशत भाग केन्द्रित है। इस परत की धरातल से औसत ऊँचाई 13 किलोमीटर है इसकी ऊंचाई भूमध्य रेखा पर 18 किमी एवं ध्रुवों पर 8 से 10 किमी है। यह वायुमण्डल की सबसे महत्वपूर्ण परत है, क्योंकि सभी मौसमी घटनायें इसी परत में होती है। ऊँचाई में वृद्धि के साथ तापमान में गिरावट इस परत की सबसे बड़ी विशेषता है। इसमें प्रति 1 किमी की ऊँचाई पर 6.5 डिग्री सेल्सियस तापमान गिर जाता है जिसे तापमान की 'सामान्य ह्रास दर' कहते हैं। ऋतु तथा मौसम संबंधी लगभग सभी घटनाएँ जो मानव पर प्रभाव डालती है, इसी परत में होती है। इस परत में धूल—कण तथा जलवाष्प सबसे अधिक मात्रा में होते हैं, जिनसे बादल बनते हैं, वर्षा होती है तथा अन्य जलवायु एवं मौसम संबंधी घटनाएँ घटती हैं। यह मौसम वैज्ञानिकों के गहन अध्ययन का मण्डल है।

क्षोभ मण्डल की ऊपरी सीमा को क्षोभ सीमा कहते हैं। इसकी मोटाई केवल 1.5 किमी है। इस सीमा के ऊपर वायुमण्डलीय स्थिरता रहती है। इसे 'मौसमी परिवर्तनों की छत' भी कहते हैं। इस परत से 20 किमी ऊपर तक वायुमण्डल के तापमान का गिरना बंद हो जाता है।

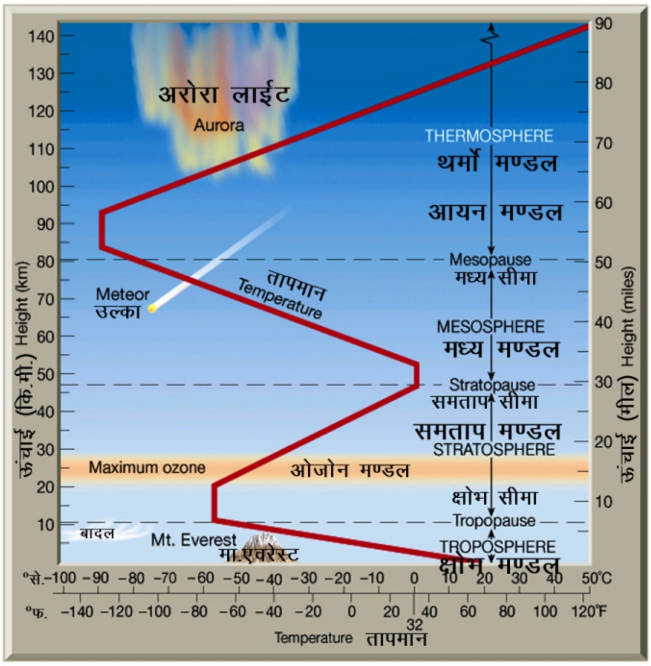

चित्र 11.3 : वायुमण्डल की संरचना

2. समताप मण्डलः धरातल से इसकी औसत ऊँचाई 50 किलोमीटर मानी जाती है। इसकी मोटाई भूमध्य रेखा पर कम तथा ध्रुवों पर अधिक होती है। अनेक वैज्ञानिकों ने ओजोन मण्डल को समताप मण्डल का ही एक भाग मान लिया है जिस कारण इस परत की ऊँचाई 50 से 55 किमी माना जाता है। यहाँ तापमान समान रहने के कारण इस परत को समताप मण्डल कहते हैं। इस मण्डल में ओजोन परत पाई जाती है जो सूर्य से आने वाल पराबैंगनी किरणों का अवशोषण कर लेती है।

3. मध्य मण्डलः यह समताप मण्डल के ऊपर 80 किमी की ऊँचाई तक विस्तृत है। इस परत में ऊँचाई के साथ तापमान गिरने लगता है तथा – 80°c रह जाता है। इसके आगे पुनः

तापमान बढ़ने लगता है। इस परत में वायुदाब अत्यधिक न्यून होता है। मध्य मण्डल की ऊपरी सीमा को मध्य मण्डल सीमा कहते हैं।

4. आयन मण्डलः यह परत मध्य मण्डल सीमा के ऊपर 80 से 400 किमी की ऊँचाई तक फैली है। इस परत के अस्तित्व का आभास सर्वप्रथम रेडियो तरंगों द्वारा हुआ। यहाँ पर उपस्थित गैस के कण विद्युत आवेशित होते है। ऐसे विद्युत आवेशयुक्त कणों को आयन कहते हैं। अतः इस परत का नाम आयन मण्डल रखा गया है। इसकी ऊपरी सीमा पर तापमान $1100^{\circ}c$ हो जाता है। इसी भाग में 'ध्रुवीय ज्योति' (Aurora) भी दृष्टिगोचर होती है। इस मण्डल को 'थर्मोस्फीयर' भी कहते हैं।

5. बहिर्मण्डलः यह वायुमण्डल की सबसे ऊपरी परत है। इस परत में वायु बहुत ही विरल है और धीरे–धीरे बाह्य अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है। इसकी कोई ऊपरी सीमा नहीं है। फिर भी कुछ वैज्ञानिकों ने इसकी ऊँचाई 1000 किमी तक मानी है।

मौसम एवं जलवायु के तत्व –

किसी स्थान विशेष पर किसी विशेष समय में वायुमण्डलीय दशाओं के योग को **''मौसम'' (Weather)** कहते है। अतः मौसम से वायुण्डल की विशिष्ट दशाओं का बोध होता है। वायुमण्डलीय दशाओं में तापमान, वायुदाब, वर्षा, हवाऐं, आर्द्रता आदि कारकों को सम्मिलित किया जाता है। इन घटकों को **'मौसम के तत्व'** कहते हैं। मौसम सम्बन्धी दशाओं में प्रायः परिवर्तन होता रहता है। फलस्वरूप 'मौसम के तत्व' भी बदलते है। अतः किसी स्थान विशेष का मौसम भी बदलता रहता है। यह परिवर्तन एक दिन से दूसरे दिन या एक स्थान से दूसरे स्थान पर मौसम के तत्वों की मात्रा, सक्रियता तथा वितरण में अन्तर के कारण होता है। मौसम के तत्वों के इस परिवर्तन को नियन्त्रित करने वाले कारकों को 'मौसम क नियंत्रक' कहते है। इसके अन्तर्गत अक्षांश, जल तथा स्थल का असमान वितरण, समुद्री धाराऐं, वायुदाब, समुद्र तल से ऊॅचाई, पर्वतीय अवरोध, धरातल का स्वभाव, वायु विक्षोभ आदि को सम्मिलित किया जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल का आवरण पाया जाता है।
2. वायुमण्डल एक विशाल ''काँच घर'' का काम करता है।
3. वायुमण्डल का 99 प्रतिशत भाग नाइट्रोजन व ऑक्सीजन गैसों द्वारा बना होता है। शेष 1 प्रतिशत में आर्गन, कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम, ओजोन, नियोन, जिनोन आदि गैसे सम्मिलित हैं।
4. जलवाष्प, धूल के कण, धुआँ, नमक के कण आदि भी वायुमण्डल के अन्य संघटक हैं।
5. वायुमण्डल की 5 मुख्य परतें – क्षोभ मण्डल, समताप मण्डल, मध्यमण्डल, आयन मण्डल एवम् बाह्यमण्डल है।
6. मौसम के तत्वों में तापमान, वायुदाब, वर्षा, हवाएँ, आर्द्रता आदि को सम्मिलित किया जाता है।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. वायुमण्डल में सर्वाधिक मात्रा में पायी जाने वाली गैस है–
   (अ) कार्बनडाईऑक्साइड
   (ब) नाइट्रोजन
   (स) ऑक्सीजन
   (द) आर्गन
2. वायुमण्डल की किस परत में मौसमी घटनाएँ होती है ?
   (अ) समताप मण्डल
   (ब) क्षोभ मण्डल
   (स) आयन मण्डल
   (द) मध्य मण्डल
3. वायुमण्डल की वह परत जिसे 'मौसमी परिवर्तनों' की छत कहते हैं ?
   (अ) क्षोभ मण्डल
   (ब) आयन मण्डल
   (स) समताप मण्डल
   (द) मध्य मण्डल
4. वायुमण्डल में जलवाष्प की औसत मात्रा है ?
   (अ) 1 प्रतिशत (ब) 2 प्रतिशत
   (स) 3 प्रतिशत (द) 4 प्रतिशत
5. वायुमण्डल की सर्वाधिक विस्तृत परत है ?
   (अ) समताप मण्डल (ब) क्षोभ मण्डल
   (स) आयन मण्डल (द) बाह्य मण्डल

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न–

6. वायुमण्डल में कितने प्रकार की गैंसे पाई जाती है?
7. धूलकण क्या है?
8. समताप मण्डल क्या है?
9. ओजोन परत कहाँ पाई जाती है?
10. हीलियम गैस की प्रधानता किस मण्डल में रहती है?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. वायुमण्डल किसे कहते हैं?
12. वायुमण्डल में पायी जाने वाली प्रमुख गैस कौन–सी है ?
13. वायुमण्डल में जलवाष्प एवं धूलकणों का क्या महत्व है ?
14. क्षोभ मण्डल की विशेषताएँ क्या है ?
15. वायुमण्डल का महत्व बताते हुए इसकी परतों का वर्णन कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. वायुमण्डल के संघटन की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
17. वायुण्डल की परतों का वर्णन कीजिये।
18. ''पृथ्वी पर जीवन का ध्रुव वायुमण्डल है'' कथन का वैज्ञानिक परीक्षण कीजिये।

उत्तरमाला – 1. ब 2. ब 3. अ 4. ब 5. द

अध्याय – 12

सूर्यातप एवं ऊष्मा बजट
(Insolation and Heat Budget)

वायुमण्डल का हजारों किलोमीटर का आवरण हमारी पृथ्वी को सूर्य की प्रचण्ड किरणों तथा अत्यधिक गर्मी से बचाता है। रात में वायुमण्डल पार्थिव विकिरण को कम्बल की तरह रोककर हमें शीत से बचाता है। पृथ्वी के लिए ताप का मुख्य स्रोत सूर्य है, जिसकी सतह पर 6000°C तापमान रहता है। यह ताप सूर्य सतह से विकिरण द्वारा पृथ्वी पर आता है, जो सूर्य के ताप का अत्यन्त सूक्ष्म भाग होता है। सूर्य पृथ्वी से 15 करोड़ किमी दूर स्थित है। सूर्य के अलावा उष्मा के अन्य स्रोत लगभग नगण्य है। सूर्य एक दहकता हुआ गैसीय पिण्ड है, जिससे लगातार उर्जा का विकिरण होता रहता है। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वीतल तक पहुँचने में 8 मिनट 20 सैकण्ड का समय लगता है।

सूर्यातप (Insolation)

सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचने वाले सौर विकिरण को सूर्यातप कहते हैं तथा सूर्य की सतह से चारों ओर विकरित होकर फैलने वाले ताप को सौर विकिरण कहते हैं। पृथ्वी द्वारा सौर विकिरण का ग्रहण किया जाना सूर्यातप या सूर्यताप की प्राप्ति है। क्रिचफील्ड के अनुसार परिभाषा– ''सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचने वाली विकिरण ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं''।

धरातल पर आने वाले सौर विकिरण को सूर्यातप कहते हैं, किन्तु सारा सूर्यातप पृथ्वी तल तक नहीं पहुँच पाता, उसका कुछ अंश वायुमण्डल द्वारा शोषित हो जाता है। यह ऊर्जा लघु तरंगों के रूप में सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचती है। ट्रिवार्था के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी प्रति मिनट सूर्य से इतनी उर्जा प्राप्त करती है जितनी मानव जाति वर्ष भर में अपने विविध कार्यों के लिए उपयोग करती है। अतः पृथ्वी तल पर प्राप्त होने वाली यही सौर ऊर्जा सम्पूर्ण भौतिक एवं जैविक घटनाओं का संचालन करती है। इस प्रकार पृथ्वी के किसी निश्चित क्षेत्र पर, किसी निश्चित समय में सौर विकिरण का जो अंश प्राप्त किया जाये वह सूर्यताप या सूर्यातप कहलाता है और यह सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं है। सूर्यातप का मापन 'पाइरोहेलियोमीटर' द्वारा किया जाता है।

तापमान का वितरणः पृथ्वी तल पर तापमान का वितरण सभी जगह एक समान नहीं पाया जाता। तापमान के वितरण पर अन्य कारकों की अपेक्षा अक्षांश का सर्वाधिक नियंत्रण होता है। प्राचीन यूनानवासियों को इस बात का ज्ञान था कि भूमध्य रेखा पर सर्वाधिक गर्मी पड़ती है और उसके उत्तर या दक्षिण ध्रुवों की तरफ तापमान क्रमशः कम होता जाता है। इसी आधार पर उन्होंने हमारी पृथ्वी को पाँच ताप कटिबंधों में बाँटा। हम प्रायः सूर्यातप एवं तापमान को पयार्यवाची ही समझते हैं, परन्तु इन

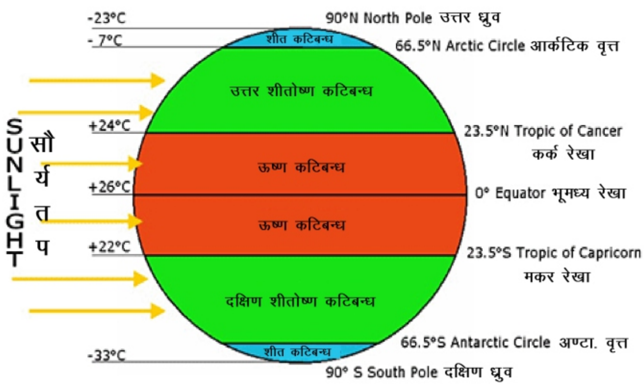

चित्र 12.1 : ताप कटिबन्ध एवं तापमान का क्षैतिज वितरण

दोनों के अर्थ भिन्न है, फिर भी सूर्यातप तथा तापमान का गहरा संबंध है, क्योंकि सूर्यातप पर तापमान निर्भर करता है। यहाँ तापमान का आशय वायुमण्डलीय ताप से है, जिसका स्रोत सूर्य है।

तापमान का क्षैतिज वितरणः

तापमान के क्षैतिज वितरण का अर्थ तापमान के अंक्षाशीय वितरण से है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों तक तापमान के वितरण में परिवर्तन आता रहता है। मानचित्र पर तापमान का वितरण समताप रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। समताप रेखा वह काल्पनिक रेखा है जो मानचित्र पर समान तापमान वाले स्थानों को मिलाती हुए खींची जाती है।

विश्व के अधिकांश भागों में जनवरी तथा जुलाई के महीनों में न्यूनतम अथवा अधिकतम तापमान पाया जाता है। इसलिये तापमान के विश्लेषण के लिए साधारणतः जनवरी तथा जुलाई के माह ही चुने जाते हैं।

जनवरी की समताप रेखायेंः

जनवरी माह में सूर्य की किरणें दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित मकर रेखा पर लम्बवत् पड़ती है जिससे दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म तथा उत्तरी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होती है। अतः दक्षिणी गोलार्द्ध में तापमान अधिक एवं उत्तरी गोलार्द्ध में तापमान कम होता है। इस दौरान सबसे ठण्डे भाग साइबेरिया व ग्रीनलैण्ड में स्थित होते हैं। साइबेरिया के विस्तृत भाग पर 25°C की समताप रेखा खिंची हुई है। दक्षिणी महाद्वीपों पर 30°C की समताप रेखा एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में 10°C की समताप रेखा अक्षांश के समानान्तर है जबकि 20°C की समताप रेखा महाद्वीप व महासागरों के

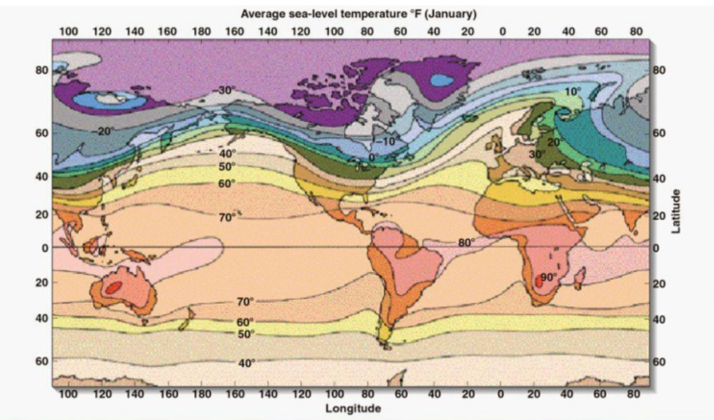

चित्र 12.2 : समताप रेखायें (जनवरी में)

वितरण के अनुरूप मुड़ी हुई है। उत्तरी गोलार्द्ध में जल व थल के विषम वितरण के कारण समताप रेखाएँ काफी वक्र हो गई है।

जुलाई की समताप रेखायेंः

जुलाई में सूर्य की किरणें उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा पर लगभग लम्बवत् चमकती है। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होती है। जुलाई में 30°C की समताप रेखा उत्तरी अफ्रीका, दक्षिणी–पश्चिमी एवं मध्य एशिया तथा उत्तरी अमेरिका में कोलम्बिया पठार आदि को घेरती है। जनवरी की समताप रेखाओं से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि जुलाई में गर्मी का प्रभाव व्यापक क्षेत्रों पर होता है। इस दौरान अन्टार्कटिका पर न्यूनतम तापमान रहता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में समताप रेखाएँ प्रायः अक्षांशो के समानान्तर खिंची हुई है।

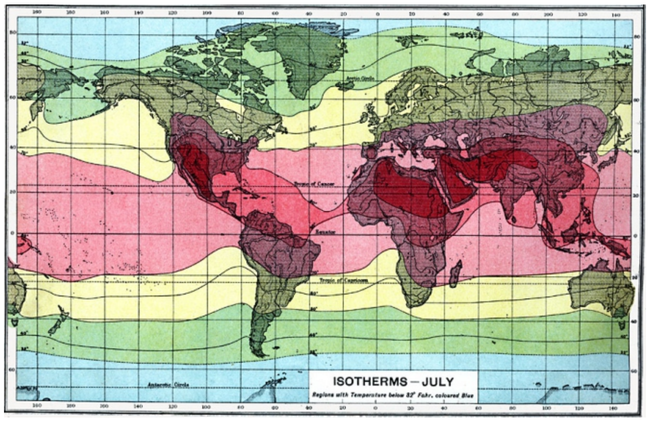

चित्र 12.3 : समताप रेखायें (जुलाई में)

तापमान का ऊर्द्धवाधर (लम्बवत्) वितरणः

तापमान के लम्बवत् वितरण से हमारा तात्पर्य धरातल से ऊपर की ओर, ऊँचाई में, वायुमण्डल की विभिन्न परतों में तापमान के वितरण से है। वैज्ञानिकों ने तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ऊँचाई के बढ़ने से तापमान घटता जाता है। यही कारण है कि मैदानों की अपेक्षा पहाड़ों में ठण्ड अधिक रहती है। प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1°C तापमान कम हो जाता है जिसे तापमान की सामान्य ह्रास दर कहते हैं। यह दर प्रत्येक स्थान पर समान नहीं होती, अपितु ऋतु, स्थिति एवं स्थानीय विक्षोभों के अनुसार बदलती रहती है। सामान्य रूप से 6.5°C प्रति किमी की दर से तापमान घटता है। तापमान में गिरावट क्षोभ

मण्डल तक ही जारी रहती हे। इसके पश्चात तापमान परिवर्तन अलग–अलग मण्डलों में अलग–अलग होता हैं।

तापमान का व्युत्क्रमण (विलोमता):

तापमान की विलोमता के समय वायुमण्डलीय दशा स्थिर होती है। सामान्य परिस्थितियों में ऊँचाई के साथ तापमान घटता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में ऊँचाई के साथ तापमान घटने के स्थान पर बढ़ता है। ऊँचाई के साथ तापमान के बढ़ने को तापमान का व्युत्क्रमण अथवा विलोमता कहते हैं। इसके लिए लम्बी रातें, स्वच्छ आकाश, शान्त वायु, शुष्क वायु एवं हिमाच्छादन इत्यादि भौगोलिक परिस्थितियाँ प्रमुख कारक है। ऐसी परिस्थितियों में धरातल और वायु की निचली परतों से ऊष्मा का विकिरण तेज गति से होता है। परिणामस्वरूप निचली परत की हवा ठण्डी होने के कारण घनी व भारी हो जाती है। ऊपर की हवा जिसमें ऊष्मा का विकिरण धीमी गति से होता है, अपेक्षाकृत गर्म रहती है। ऐसी परिस्थति में तापमान ऊँचाई के साथ घटने के स्थान पर बढ़ने लगता है।

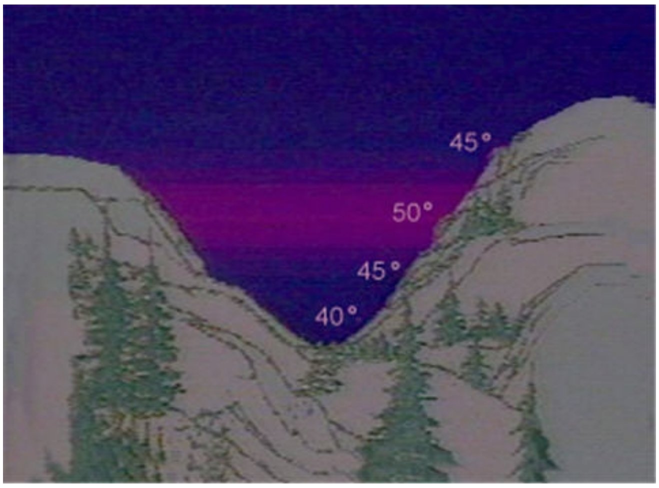

चित्र 12.4 : घाटी में तापमान का प्रतिलोमन

अन्तरापर्वतीय घाटियों में शीत ऋतु की रातों में ऐसा प्रायः होता है। यही कारण है कि पर्वतीय घाटियों में बस्तियाँ और फलों के बगीचे सबसे नीचे नहीं बल्कि पर्वतीय ढ़ालों से थोड़े ऊपरी भाग में विकसित किये जाते हैं। हिमालय क्षेत्र में पर्यटकों के लिए विश्रामस्थल घाटी से थोड़े ऊपरी ढ़ालों पर स्थित हैं। हिमाचल प्रदेश में सेब के बागान भी घाटियों के ऊपरी ढ़ालों पर ही है।

तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकः

(1) भूमध्य रेखा से दूरीःसूर्य की किरणें भूमध्य रेखा पर लगभग पूरे वर्ष लम्बवत् पड़ती है जिस कारण वहाँ पर सूर्यातप अधिक प्राप्त होता है। इसके विपरीत भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर सूर्य की किरणें तिरछी हो जाती है। अतः वहां पर सूर्यातप कम प्राप्त होता है। ध्रुवों पर तापमान हिमांक से भी कम हो जाता है और वहाँ पर बर्फ जमी रहती है।

(2) समुद्र तल से ऊँचाईः ऊँचाई की ओर जाने पर तापमान घटता जाता है। सामान्यतः 165 मीटर की ऊँचाई पर $1^{\circ}C$ अथवा 1 किमी की ऊँचाई पर $6.5^{\circ}C$ तापमान गिर जाता है। दिल्ली की अपेक्षा शिमला का तापमान कम है क्योंकि शिमला, दिल्ली की अपेक्षा अधिक ऊँचाई पर स्थित है। अतः पर्वतीय प्रदेश मैदानों की अपेक्षा अधिक ठण्डे होते हैं।

(3) समुद्र तट से दूरीः स्थल की अपेक्षा जल देर से गर्म होता है और देर से ही ठण्डा होता है। अतः जो स्थान सागर के निकट है वहां पर तापमान लगभग एक समान रहता है। इसके विपरीत समुद्र से दूर स्थित स्थानों के ताप में अधिक असमानता पायी जाती है।

(4) समुद्री धाराएँः समुद्री धाराएँ तटवर्ती क्षेत्रों के तापमान को काफी प्रभावित करती है। जिन क्षेत्रों में गर्मधारा बहती है वहाँ का तापमान अधिक एवं जिन क्षेत्रों में ठंडी धारा बहती है वहाँ का तापमान कम हो जाता है। 'गल्फ स्ट्रीम' की गर्म धारा यूरोप के तटीय भागों का तापमान ऊँचा बनाये रखती है। इस प्रकार समुद्री धाराएँ अपने स्वभाव के अनुसार तटीय भागों के तापमानों को नियंत्रित करती हैं।

(5) प्रचलित पवनेंः जिन स्थानों पर गर्म पवनें आती है वहाँ का तापमान अधिक एवं जहाँ पर ठण्डी पवनें आती है वहाँ का तापमान कम रहता है। इटली में सहारा मरूस्थल से आने वाली 'सिरोको' पवन तथा उत्तरी अमेरिका के मैदानों में 'चिनुक' नामक गर्म पवन वहाँ के तापमान में वृद्धि करती है। इसी तरह उत्तरी भारत के मैदानी भाग में गर्मियों में चलने वाली 'लू' से तापमान कई बार $45^{\circ}C$ तक पहुँच जाता है।

(6) भूमि का ढालः धरातल के जो ढाल सूर्य के सामने आते हैं वे

सूर्यातप अधिक प्राप्त करते हैं, वहाँ पर तापमान भी अधिक होता है। इसके विपरीत जो ढाल सूर्य से विपरित दिशा में होते है, वहाँ पर सूर्यताप कम प्राप्त होता है, वहाँ पर तापमान भी कम होता है। हिमालय तथा आल्पस पर्वतो के दक्षिणी ढलानों पर तापमान अधिक तथा उत्तरी ढ़लानों पर तापमान कम पाया जाता है।

(7) धरातल की प्रकृतिः हिम तथा वनस्पतियों से आच्छादित धरातलीय भाग सूर्य से प्राप्त हुए अधिकांश ताप को परावर्तित कर देते हैं। अतः इन प्रदेशों में तापमान अधिक नहीं हो पाता। इसके विपरीत बालू तथा काली मिट्टी से ढँके हुए प्रदेश अधिकांश सूर्यातप का अवशोषण कर लेते हैं जिस कारण वहाँ पर तापमान अधिक होता है। धरातल द्वारा प्राप्त सूर्य ताप को परावर्तित करने की प्रक्रिया को 'एल्बिडो या श्विार्त' (Albedo) कहा जाता है।

(8) मेघ तथा वर्षाः धरातल पर स्थित वे क्षेत्र जहाँ पर मेघ छाए रहते हैं तथा वर्षा भी अधिक होती है वहाँ का तापमान अधिक नहीं हो पाता, क्योंकि मेघ सूर्य की किरणों का परावर्तन कर देते हैं। जैसे, भूमध्य रेखा पर सूर्य की किरणों के लम्बवत् पड़ने के बावजूद भी वहाँ पर उतना अधिक तापमान नहीं हो पाता जितना की मेघरहित उष्ण मरूस्थलीय भागों में हो जाता है।

पृथ्वी का ऊष्मा बजट (Heat Budget)

पृथ्वी तथा वायुमण्डल द्वारा प्राप्त ताप तथा उस ताप के ह्यास के संतुलन को ऊष्मा बजट कहते हैं। पृथ्वी का औसत तापमान लगभग एक समान रहता है क्योंकि सूर्य से प्राप्त होने

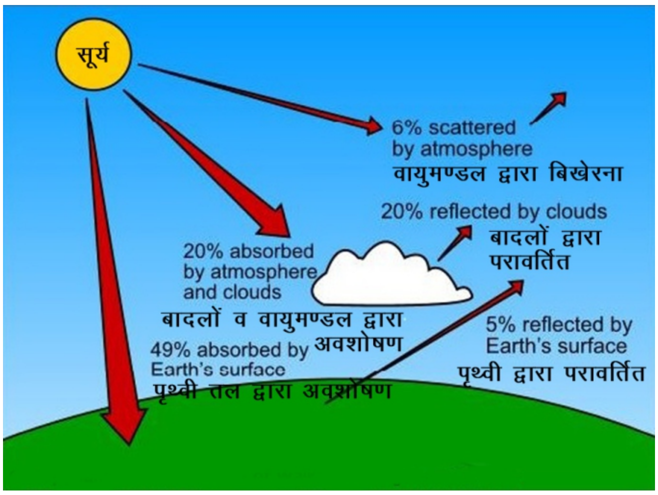

चित्र 12.5 : पृथ्वी के उष्मा बजट का मॉडल

वाले सूर्यातप तथा पृथ्वी द्वारा छोड़े जाने वाले पार्थिव विकिरण की मात्रा लगभग समान है। सौर्यिक विकिरण ऊर्जा के दो अरब भागों में से केवल 1 भाग ही पृथ्वी पर पहुँचता है, बाकि बचा शेष ताप वायुमण्डल द्वारा अवशोषण, परावर्तन व प्रकीर्णन की प्रक्रिया द्वारा नष्ट हो जाता है।

यदि हम यह मान लें कि वायुमण्डल की ऊपरी सतह पर प्राप्त होने वाला ताप 100 इकाई है तो बजट इस प्रकार होगा। इनमें 35 इकाई ताप तो पृथ्वी के धरातल पर पहुँचने से पूर्व ही अन्तरिक्ष में परावर्तित हो जाता है जो निम्न प्रकार से है–

इस प्रकार 100 इकाईयों में से केवल 51 इकाई ताप ही पृथ्वी पर पहुँच पाता है। पृथ्वी द्वारा अवशोषित 51 इकाईयाँ पुनः पार्थिव विकिरण के रूप में वापस अंतरिक्ष में लौट जाती है जिनमें से 17 इकाईयाँ सीधे अंतरिक्ष में लौट जाती है तथा शेष 34 इकाईयाँ वायुमण्डल द्वारा अवशोषित होती है। इन 34 इकाईयों में से 6 इकाई वायुमण्डल द्वारा, 9 इकाई संवहन द्वारा तथा 19 इकाई संघनन की गुप्त उष्मा के रूप में अवशोषित होती है। वायुमण्डल द्वारा अवशोषित 48 इकाईयाँ (14 इकाई सूर्यातप से तथा 34 इकाई भौमिक विकिरण से) तथा सीधे अंतरिक्ष में लौटी 17 इकाईयाँ (17+48=65) वापस अंतरिक्ष में लौट जाती है। अतः 65 इकाईयाँ प्राप्त होती है तथा इतनी ही पुनः वापस लौटा दी जाती है। यही हमारी पृथ्वी का अनुमानित ऊष्मा बजट है, जिसमें कुछ परिवर्तन होता रहता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. वायुमण्डल तथा पृथ्वी के ऊष्मा का मुख्य स्त्रोत सर्य है।
2. पृथ्वी के धरातल पर वार्षिक सूर्यातप के अक्षांशीय वितरण (पेटी) के तीन मण्डल–निम्न अक्षांशीय, मध्य अक्षांशीय तथा ध्रुवीय पाए जाते है।
3. धरातल पर सूर्यातप को प्रभावित करने वाले कारक हैं–सूर्य की किरणों का तिरछापन, दिन की अवधि, स्थल व जल का स्वभाव, पृथ्वी से सूर्य की दूरी, सौर कलंक, वायुमण्डल, समुद्रतल से ऊँचाई, ढ़ाल का स्वरूप, समुद्र से दूरी, समुद्री धाराएँ आदि।
4. अक्षांशों के अनुसार तापमान के वितरण को क्षैतिज वितरण कहते है। धरातल से ऊँचाई की ओर तापमान के वितरण को तापमान का ऊर्ध्वाधर वितरण कहते है।

5. सामान्यरूप से क्षोभमण्डल में ऊँचाई के साथ तापमान घटता है, परन्तु कभी–कभी विशेष परिस्थितियों में ऊँचाई के साथ तापमान में वृद्धि होती है, जिसे तापमान का प्रतिलोमन कहते हैं।

अभ्यास–प्रश्न

बस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. सूर्यातप का मापन किया जाता है ?
   (अ) पाइरोहेलिया मी.
   (ब) थर्मामीटर
   (स) बैरोमीटर
   (द) सेन्टीमीटर
2. सूर्य की किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने में कितना समय लगता है?
   (अ) 5 मिनट (ब) 6 मिनट
   (स) 7 मिनट (द) 8 मिनट
3. पृथ्वी पर आने वाले सौर्यिक ऊर्जा को कहते हैं?
   (अ) पार्थिव विकिरण
   (ब) विकिरण
   (स) सूर्यातप
   (द) ऊष्मा बजट
4. तापमान विलोमता से तात्पर्य है?
   (अ) धरातल पर ताप का बढ़ना
   (ब) तापमान में असमान गिरावट
   (स) ऊँचाई के साथ तापमान बढ़ना
   (द) ऊँचाई के साथ तापमान गिरना
5. पृथ्वी पर कुल सौर विकिरण का कितना प्रतिशत भाग पहुँचता है?
   (अ) 51 (ब) 48
   (स) 35 (द) 17

अतिलघुत्तरीय प्रश्न–

6. सौर विकिरण क्या है?
7. समताप रेखाएँ किसे कहते हैं?
8. सूर्य से पृथ्वी की दूरी कितनी है?
9. ताप कटिबन्ध किसे कहते हैं?
10. वायुमण्डलीय ताप का मुख्य स्रोत क्या है?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. पृथ्वी का एल्बिडो क्या है?
12. तापमान का व्युत्क्रमण क्या है?
13. सूर्यातप किसे कहते हैं?
14. सूर्याताप को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन से हैं?
15. तापमान के क्षैतिज एवं लम्बवत् वितरण में क्या अन्तर है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. सूर्यातप किसे कहते हैं? तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
17. पृथ्वी के ऊष्मा बजट की व्याख्या कीजिए।
18. तापमान के वितरण को समझाते हुए भूमण्डल पर तापमान के क्षैतिज एवं ऊर्द्ववाधर वितरण को स्पष्ट कीजिये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. द 3. स 4. स 5. अ

अध्याय – 13

वायुदाब की पेटियाँ एवं पवनें
(Air Pressure Belts and Winds)

पृथ्वी तल से हजारों किलोमीटर ऊपर तक फैला वायुमण्डल पृथ्वी तल पर दबाव या दाब उत्पन्न करता है। पृथ्वी तल के नजदीक वायुदाब सर्वाधिक मिलता है। ऊपर जाने पर वायुदाब कम होता जाता है। वायुदाब तथा पवन जलवायु के ऐसे महत्त्वपूर्ण तत्व हैं जो इसके अन्य तत्वों को गहराई से प्रभावित करते हैं।

हमारी पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल व्याप्त है जो अनेक गैसों से निर्मित हजारों किलोमीटर मोटा आवरण है। यह गैसीय आवरण धरातल पर दबाव डालता है, जिसे वायुदाब कहते हैं। संक्षेप में, वायुमंडलीय दबाव का अर्थ है–किसी दिए गए स्थान व समय पर वहाँ की हवा के स्तंभ का भार। वायुदाब की खोज सर्वप्रथम ग्यूरिक (Guericke-1651) ने की थी। किसी स्थान का वायुदाब निरन्तर परिवर्तनशील होता है। वायुमण्डल में दाब सब जगह और सारे समय समान नहीं रहता, यह वायुताप द्वारा नियंत्रित होता है। अधिक ताप पाकर वायु फैलती है, जिससे इसके घनत्व में कमी आती है, फलस्वरूप वायुदाब घटता है।

गुरूत्वाकर्षण बल के कारण धरातल के निकट की वायु ऊपरी वायुमण्डल की अपेक्षा अधिक सघन होती है। अधिक ऊँचाई पर वायु अपेक्षाकृत बिरल होती है। इसलिए पर्वतों अथवा पठारों पर मनुष्य को अपेक्षित मात्रा में ऑक्सीजन के लिये अधिक बार सांस लेनी पड़ती है। इस कारण पर्वतरोहियों को ऑक्सीजन के सिलेण्डर साथ ले जाना आवश्यक होता है।

वायुदाब के क्षैतिज वितरण की अपेक्षा उसका ऊर्ध्वाधर वितरण अधिक महत्वपूर्ण होता है। मौसम विभाग में वायुदाब का अध्ययन जलवायु अथवा मौसम के नियंत्रक के रूप में किया जाता है। वायुदाब में होने वाला थोड़ा परिवर्तन भी मौसम को प्रभावित करता है। मौसम के अन्य तत्व जैसे बादल, वर्षा, तूफान, आँधी तथा पवन इत्यादि वास्तव में वायुदाब से ही नियंत्रित होते हैं। अतः मौसम के पूर्वानुमान में वायुदाब का विशेष महत्व है। वायुदाब मापने की अधिक प्रचलित इकाई मिलीबार (mb.) है। एक मिलीबार का अर्थ है–एक वर्ग सेन्टीमीटर पर एक ग्राम भार का बल। तापमान, जलवाष्प, समुद्रतल से ऊँचाई, गतिक कारक आदि वायुदाब को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक है।

वायुदाब तथा पवनें

वायुदाब एवं पवन संचार का घनिष्ठ संबंध है। वायुदाब में अन्तर ही पवनों की उत्पत्ति का कारण होता है। वायुदाब का अन्तर वर्षा एवं तापमान को भी प्रभावित करता है। पवनों द्वारा निम्न अक्षांशों और उच्च अशांक्षों के मध्य ऊष्मा का स्थानान्तरण होता है, जिससे अक्षांशीय ताप संतुलन बनाये रखने में सहायता मिलती है। पवनों के द्वारा ही महासागरों से महाद्वीपों को आर्द्रता पहुँचाई जाती है, जिससे वर्षा संभव होती है।

वायुदाब की पेटियाँ (Air Pressure Belts)

वायुदाब पेटियों के निर्धारण का प्रमुख आधार तापमान तथा पृथ्वी को एक ही प्रकार का धरातल (स्थल या जल) मानकर ये पेटियाँ निश्चित की गई है। अतः ये पेटियाँ अत्यधिक साधारणीकृत है। भूमण्डल पर वायुदाब के कारकों की भिन्नता के कारण वायुदाब का विषम वितरण होना स्वाभाविक है। वायुदाब

को सात पेटियों में प्रदर्शित किया गया है। पृथ्वी तल पर निम्नलिखित वायुदाब पेटियाँ प्रत्येक गोलार्द्ध में पायी जाती है (चित्र 13.3)।

1. भूमध्य रेखीय निम्नदाब पेटी (डोलड्रम)
2. उपोष्ण कटिबंधीय उच्चदाब पेटी
3. उपध्रुवीय निम्नदाब पेटी
4. ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी

1. भूमध्य रेखीय निम्नदाब पेटी: इस पेटी का विस्तार भूमध्य रेखा के 5° उत्तर से 5° दक्षिण अक्षांशों तक विस्तृत है। यहाँ वर्ष भर सूर्य की सीधी किरणें पड़ने के कारण तापमान सदैव ऊँचा तथा वायुदाब कम रहता है। यहाँ वायुमण्डल में जलवाष्प की अधिकता रहती है तथा वायु का घनत्व कम रहता है। भूमध्य रेखा पर भू–घूर्णन का वेग सर्वाधिक होता है, जिससे यहां अपकेन्द्रीय बल सर्वाधिक होता है।

इस पेटी में धरातलीय क्षैतिज पवनें नहीं चलती अपितु अधिक तापमान के कारण वायु हल्की होकर ऊपर उठती है और संवहनीय धाराओं का जन्म होता है। इसलिए इस कटिबंध को भूमध्य रेखीय 'शान्त कटिबंध' या डोलड्रम पेटी भी कहते हैं। यह तापजन्य पेटी है।

2. उपोष्ण कटिबंधीय उच्चदाब पेटी: विषुवत रेखा के दोनों और 30° से 35° अक्षांशों के मध्य ये पेटियाँ स्थित है। यहाँ पर प्रायः वर्ष भर उच्च तापमान, उच्च वायुदाब एवं मेघरहित आकाश पाये जाते हैं।

इस पेटी की मुख्य विशेषताओं में एक यह भी है कि विश्व के सभी उष्ण मरूप्रदेश इसी पेटी में महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर स्थित है। वायुमण्डल के ऊपरी भाग में घर्षण का अभाव होने से उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों में ये हवायें क्रमशः अपने दायीं तथा बायीं ओर मुड़ जाती है। इन उच्चदाब के क्षेत्रों को 'अश्व अक्षांश' भी कहते हैं। यह गतिजन्य पेटी है।

3. उपध्रुवीय निम्नदाब पेटी: यह पेटी 60° से 65° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के मध्य में स्थित है। इन आक्षांशो में निम्न तापमान पाया जाता है लेकिन यहाँ उच्चदाब के बजाय निम्न वायुदाब पाया जाता है जिसका कारण पृथ्वी की घूर्णन गति है। इन क्षेत्रों में गर्म जल धारायें चलने के कारण तापक्रम अधिक होने से वायुभार कम पाया जाता है। यह भी गतिजन्य पेटी है।

4. ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी: ध्रुवों के निकट निम्न तापमान के कारण सदैव उच्चदाब रहता है। दोनों गोलार्द्धों में स्थित ये दोनों पेटियाँ ताप जनित है। यहाँ पर तापमान वर्ष भर कम रहने के कारण ध्रुवों तथा उनके निकटवर्ती क्षेत्रों का धरातल सदैव हिमाच्छादित रहता है। इसलिये धरातल के निकट की वायु अत्यधिक शीतल व भारी रहती है। इसी कारण से यहाँ धरातलीय दाब संबंधी आँकड़े प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं किये जा सकते।

वायुदाब का वितरण : मानचित्रों पर वायुदाब को समदाब रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। तापमान की भाँति वायुदाब के लिए भी वर्ष के दो महिने (जनवरी तथा जुलाई) चुने जाते हैं।

जनवरी में वायुदाब की स्थिति: चित्र 13.1 में जनवरी में वायुदाब की स्थिति दर्शाइ गई है। इस समय सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में मकर रेखा पर लगभग लम्बवत चमकता है। इस कारण वहाँ तापमान अधिक तथा वायुभार कम होता है। निम्न वायुदाब के क्षेत्र दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के आन्तरिक भागों में है। उत्तरी गोलार्द्ध पूर्णतः विकसित उपोष्ण उच्च वायुदाब क्षेत्र महाद्वीपों पर पाये जाते हैं।

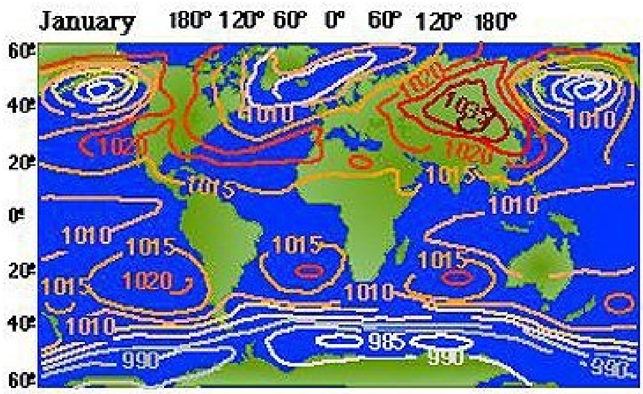

चित्र 13.1 जनवरी में वायुदाब का वितरण

जुलाई में वायुदाब की स्थिति: जुलाई में सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा पर लगभग लम्बवत चमकता है। यह खिसकाव एशिया में सर्वाधिक होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल के अधिक

गर्म हो जाने के कारण वहाँ पर निम्न वायुदाब का क्षेत्र विकसित हो जाता है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उच्च वायुदाब की पेटी विकसित होती है (चित्र 13.2)।

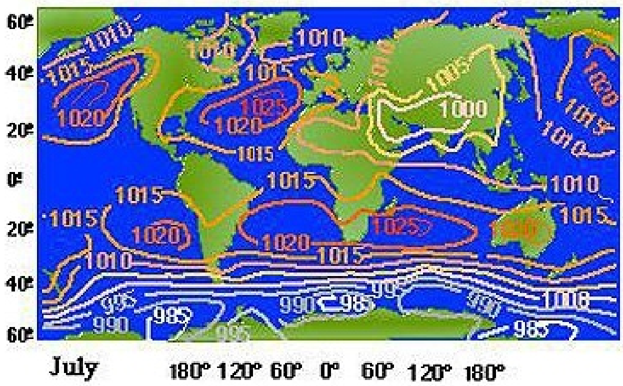

चित्र 13.2 : जुलाई माह में वायुदाब का वितरण

वायुदाब की पेटियों का ऋतुवत् परिवर्तन

वायुदाब की पेटियों का उपर्युक्त वितरण सदैव एक सा नहीं रहता है। सूर्य के उत्तरायण एवम् दक्षिणायन की स्थितियाँ, स्थल एवम् जल के स्वभाव में अन्तर आदि कारकों के कारण वायुदाब में दैनिक तथा वार्षिक परिवर्तन होते रहते हैं। गर्मियों में जब सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में होता है तो ये पेटियाँ औसत स्थिति से 5° उत्तर की ओर एवम् सर्दियों में जब सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में सीधा चमकता है तो ये पेटियाँ औसत स्थिति से 5° दक्षिण की ओर खिसक जाती हैं। इनकी आदर्श स्थिति केवल 21 मार्च तथा 23 सितम्बर को होती है, जब सूर्य विषुवत् रेखा पर लम्बवत् होता है। वायुदाब की पेटियों के खिसकाव के समय विषुवत् रेखीय पेटी 5° अक्षांश के स्थान पर 0°–10° अक्षांशों के मध्य ऋतु के अनुसार उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित हो जाती है। इसी प्रकार उपोष्ण पेटी 30° से 35° अक्षांशों के स्थान पर 30° से 40° अक्षांशों के मध्य, जबकि उपध्रुवीय पेटी 60° से 65° अक्षांशों के स्थान पर 60° से 70° अक्षांशों के मध्य पाई जाती है। ध्रुवीय प्रदेशों में विशेषकर उत्तरी ध्रुवीय प्रदेश में महाद्वीपीय विस्तार के कारण इसका अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यहाँ ग्रीष्मकाल में ध्रुवीय पेटी बहुत संकरी हो जाती है। दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेश में भूखण्ड के संकरे होने व महासागरीय विस्तार के कारण इनमें विशेष परिवर्तन नहीं मिलता है (चित्र 13.3)।

वायुमण्डलीय दाब का ऊर्ध्वाधर वितरण (Vertical Distribution of Atmospheric Pressure)

पास्कल (Pascal, 1643) ने सर्वप्रथम बताया था कि वायुमण्डल में ऊँचाई के साथ वायुदाब कम होता है। वायुमण्डल की निचली परतों का घनत्व अधिक होता है, क्योंकि यहाँ ऊपर की वायु का दबाव पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप वायुमण्डल की निचली परतों की हवा का घनत्व और दाब दोनों अधिक होते हैं। इसके विपरीत, ऊपरी परतों की वायु कम दबी हुई होती है, अतः उसके घनत्व और दाब दोनों कम होते हैं। इसीलिए ऊँचाई के साथ वायुदाब हमेशा घटता जाता है, लेकिन इसके घटने की दर हमेशा एक समान नहीं होती है। यह वायु के घनत्व, तापमान, जलवाष्प की मात्रा तथा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर निर्भर होती है। इन सभी कारकों के परिवर्तनशील होने के कारण ऊँचाई और वायुदाब के बीच कोई सीधा आनुपातिक सम्बन्ध नहीं होता है। फिर भी सामान्य रूप से क्षोभमण्डल में वायुदाब घटने की औसत दर प्रति 300 मीटर की ऊँचाई पर लगभग 34 मिलीबार होती है। अधिक ऊँचाई पर गैसें तेजी से विरल और हल्की होती जाती हैं। परिणामस्वरूप वायुदाब अत्यधिक कम हो जाता है। इसीलिए मनुष्य ऊँची पर्वत चोटियों पर चढते समय ऑक्सीजन के सिलेण्डर एवम् विशेष सूट का उपयोग करता है।

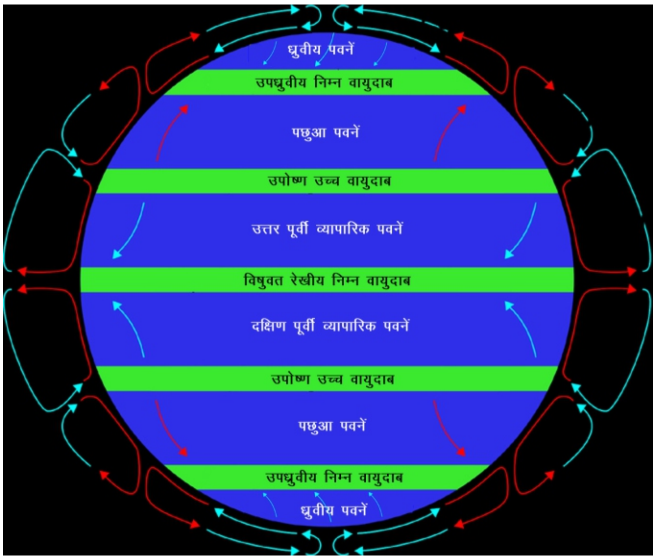

चित्र 13.3 : वायुदाब एवं पवनों की पेटियाँ

पवनें (Winds)

क्षैतिज रूप में गतिशील वायु को पवन कहते हैं। पवनें उच्च वायुदाब क्षेत्र से निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर बहती हैं। यह वायुदाब की विषमताओं को संतुलित करने का प्रकृति का प्रयास है। यदि पृथ्वी स्थिर होती है और इसका धरातल एक समान समतल होता तो पवनें उच्च–वायुदाब से निम्न–वायुदाब वाले स्थानों की ओर, समदाब रेखाओं पर समकोण बनाते हुए, सीधी

चलतीं। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता है, क्योंकि पवनों की दिशा और गति को कई कारक प्रभावित करते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं :

1. दाब प्रवणता (Pressure Gradient)

किन्हीं दो स्थानों के बीच वायुदाब के अन्तर को दाब प्रवणता कहते हैं। यह प्रवणता क्षैतिज दिशा में होती है। दाब प्रवणता को बैरोमेट्रिक ढाल भी कहते हैं। किन्हीं दो स्थानों के बीच दाब प्रवणता अधिक होने पर पवनों की गति अधिक होती है, इसके विपरीत दाब प्रवणता कम होने पर पवनों की गति धीमी होती है।

2. पृथ्वी की परिभ्रमण/घूर्णन गति (Rotation of the Earth)

पृथ्वी की परिभ्रमण/घूर्णन गति के कारण पवनें विक्षेपित हो जाती हैं। इसे 'कारिऑलिस बल' (Coriolis Force) और इस बल के प्रभाव को 'कारिऑलिस प्रभाव' (Coriolis Effect) कहते हैं। इस प्रभाव के कारण पवनें उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाईं ओर विक्षेपित हो जाती है। इस प्रभाव को फेरल नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया था, इसलिए इसे फेरल का नियम भी कहते है।

3. धरातलीय स्वरूप (Land Forms)

पृथ्वी पर धरातलीय असमानताएँ पवनों के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं, जिससे पवनों की दिशा और गति प्रभावित होती है। अपेक्षाकृत समतल महासागरीय तल पर घर्षण की मात्रा कम होती है, जिससे पवनें अधिक तेज गति से प्रवाहित होती हैं। इसके विपरीत स्थलखण्डों पर घर्षण की मात्रा अधिक होती है जिससे पवनों की गति काफी धीमी हो जाती है। यही कारण है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागरीय विस्तार के कारण पछुआ पवनें अधिक तेज तथा निश्चित दिशा में प्रवाहित होती हैं। जबकि उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय भागों के कारण पछुआ पवनों की गति अपेक्षाकृत धीमी हो जाती है।

पवनों का नामकरण (Nomenclature of Winds)

जिस दिशा में पवनें चलती हैं, उसी दिशा के अनुसार उनका नामकरण किया जाता है। पश्चिम दिशा से आ रही पवनों को पछुआ (Westerly) तथा पूर्व दिशा से आ रही पवनों को पुरवा (Easterly) कहते हैं (चित्र–13.3)।

पवनों के प्रकार (Classification of Winds)

पवनों को उनके प्रभाव क्षेत्र व अवधि के आधार पर तीन वर्गों में रखा जाता है –

(i) स्थाई पवनें (Permanent Winds)

(ii) सामयिक पवनें (Periodical Winds)

(iii) स्थानीय पवनें (Local Winds)

(i) स्थाई पवनें (Permanent Winds)

जो पवनें वर्षभर एक निश्चित दिशा तथा निश्चित क्रम में चलती हैं, उन्हें स्थाई पवनें कहते हैं। इन्हें प्रचलित पवनें, ग्रहीय पवनें, भूमण्डलीय पवनें, सनातनी पवनें आदि नामों से भी जाना जाता है। ये पवनें वायुदाब की पेटियों से सम्बन्धित हैं। इनमें प्रमुख हैं – व्यापारिक पवन, पछुआ पवन तथा ध्रुवीय पवन।

व्यापारिक पवनें (Trade Winds)

दोनों गोलार्द्ध में उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटियों से विषुवतीय निम्न वायुदाब पेटी की ओर चलने वाली हवाओं को व्यापारिक पवनें कहते हैं। ये पवनें सीधी न चलकर फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में अपने दाहिनी ओर और दक्षिण गोलार्द्ध में अपने बाईं ओर विक्षेपित हो जाती हैं। अतः दिशानुरूप इन पवनों को उत्तरी गोलार्द्ध में 'उत्तरी पूर्वी व्यापारिक पवनें' तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में 'दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनें' कहा जाता है। ये पवनें प्राचीन काल में पालयुक्त जलयानों को व्यापार में सुविधा प्रदान करती थी, इसलिए इन्हें 'व्यापारिक पवन' कहा जाता है।

इन पवनों की विभिन्न भागों में विभिन्न विशेषताएँ होती हैं। उपोष्ण उच्च वायुदाब के पास हवाओं के नीचे उतरने के कारण ये हवाएँ शुष्क और शांत होती हैं। ये पवनें जैसे–जैसे आगे अग्रसर होती हैं मार्ग में जलराशियों से जलवाष्प ग्रहण कर लेती है। विषुवत् रेखा के पास पहुँचते–पहुँचते ये हवाएँ जलवाष्प से लगभग संतृप्त हो जाती हैं, जहाँ अस्थिर होकर वर्षा करती है। विषुवत् रेखा के पास दोनों गोलार्द्धों की व्यापारिक पवनें आपस में टकराती हैं और संवहनीय धारा के रूप में ऊपर उठकर घनघोर वर्षा करती है।

पछुआ पवनें (Westerlies)

दोनों गोलार्द्धों में उपोष्ण उच्च वायाुदाब पेटियों से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटियों की ओर बहने वाली पवनों को पछुआ पवनें कहते हैं। इनकी दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलखण्ड की अधिकता तथा मौसमी परिवर्तन के कारण इन पवनों का पश्चिमी प्रवाह अस्पष्ट हो जाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागरीय विस्तार के कारण ये पवनें अधिक नियमित और स्थाई होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इनका वेग भी अधिक होता

है। इनकी प्रचण्डता के कारण ही इन्हें दक्षिणी गोलार्द्ध में 40°–50° अक्षांशों में 'गरजती चालीसा' (Roaring Forties), 50° दक्षिणी अक्षांश के पास 'भयंकर पचासा' (Furious Fifties) तथा 60° दक्षिणी अक्षांश के पास 'चीखती साठा' (Shrieking/Screaming Sixties) कहते हैं।

ध्रुवों की ओर पछुआ पवनों की सीमा अस्थिर होती है। ये हवाएँ मौसम में अस्थिरता उत्पन्न करती है।

ध्रुवीय पवनें (Polar Winds)

दोनों गोलार्द्धों में ध्रुवीय उच्च वायुदाब से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की ओर चलने वाली हवाओं को ध्रुवीय पवनें कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण–पूर्व से उत्तर–पश्चिम की ओर होती है। ध्रुवीय शीत क्षेत्रों से चलने के कारण ये हवाएँ अत्यन्त ठण्डी तथा शुष्क होती है। तापमान कम होने के कारण इनकी जलवाष्प धारण करने की क्षमता भी कम होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में तीव्र गति से चलने वाली ध्रुवीय पवनों को 'नॉरईस्टर' (Nor'easter) कहते हैं। जिसका सर्वाधिक प्रभाव उत्तर पूर्वी कनाडा एवं यू.एस.ए. पर पड़ता है।

(ii) सामयिक पवनें (Periodical Winds)

जिन हवाओं की दिशा में मौसम अथवा समय के अनुसार परिवर्तन होता है, उन्हें सामयिक पवनें कहते हैं; इनमें निम्न प्रकार की पवनें सम्मिलित की जाती हैं–

(अ) मानसूनी पवनें (Monsoon Winds)

(ब) स्थल समीर और सागर समीर (Land Breeze and Sea Breeze)

(स) पर्वत समीर और घाटी समीर (Mountain Breeze and Valley Breeze)

(अ) मानसूनी पवनें

मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के 'मौसिम' शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'मौसम' होता है। अतः मानसूनी पवनें उन हवाओं को कहते हैं जो मौसम के अनुसार अपनी दिशा परिवर्तित कर लेती हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में निम्नलिखित संकल्पनाएँ प्रचलित है :–

तापीय संकल्पना (Thermal Concept)

इस विचारधारा के अनुसार मानसून की उत्पत्ति पृथ्वी के असमान संगठन (स्थलीय तथा जलीय भाग) तथा उनके गर्म एवम् ठण्डा होने के विरोधी स्वभाव के कारण होती है। गर्मियों में अधिक सूर्यातप के कारण स्थलीय भाग सागरों की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाने के कारण निम्न दाब के क्षेत्र हो जाते हैं, जिससे सागरीय भागों से स्थल की ओर हवाएँ चलने लगती हैं। इसे ग्रीष्मकालीन मानसून कहते हैं। इसके विपरीत सर्दियों में सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण स्थलीय भाग उच्च दाब के केन्द्र बन जाते हैं तथा सागरीय भाग निम्न दाब के केन्द्र। परिणामस्वरूप स्थलीय भाग से सागरों की ओर हवाएँ चलती हैं जिन्हें शीतकालीन मानसून कहते हैं। इसे ही उत्तरी–पूर्वी मानसून भी कहते हैं (चित्र 13.4)।

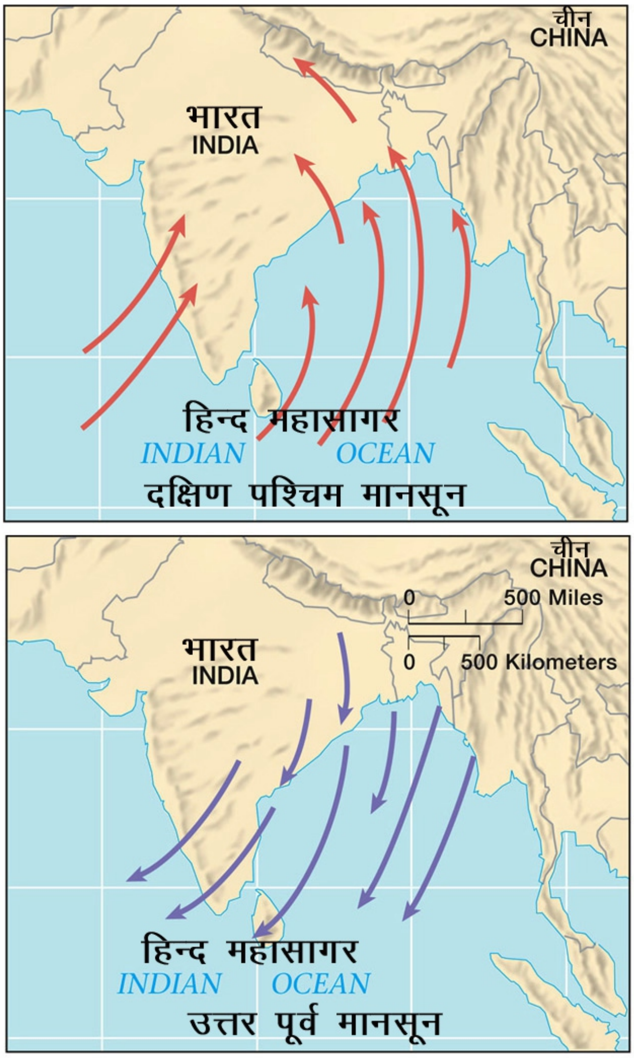

चित्र 13.4 : मानसूनी पवनें

फ्लॉन की गतिक संकल्पना (Dynamic Concept of Flohn)

फ्लॉन ने मानसून की तापीय उत्पत्ति का खण्डन करके गतिक उत्पत्ति (Dynamic Origin) की संकल्पना का

प्रतिपादन किया। इनके अनुसार मानसून हवाओं की उत्पत्ति मात्र वायुदाब तथा हवाओं की पेटियों के खिसकाव के कारण होती है। विषुवत् रेखा के पास व्यापारिक पवनों के मिलने से अभिसरण (Convergence) का आविर्भाव होता है। इसे अन्तः उष्ट कटिबन्धीय अभिसरण (Inter-Tropical Convergence-ITC) कहते हैं। इसकी उत्तरी सीमा को NITC तथा दक्षिणी सीमा को SITC कहते हैं। इस ITC के मध्य डोलड्रम की मेखला होती है, जिसमें विषुवतीय 'पछुआ हवाएँ' चलती हैं। सूर्य के उत्तरायण की स्थिति के समय NITC खिसककर 30° उत्तरी अक्षांश तक विस्तृत हो जाती है जिससे दक्षिण पूर्वी एशिया इसके अन्तर्गत आ जाता है। अतः इन भागों पर डोलड्रम की विषुवत् रेखीय पछुआ पवनें स्थापित हो जाती हैं, जो कि गर्मी की दक्षिण–पश्चिमी मानसून पवनें होती हैं। इसी प्रकार सूर्य के दक्षिणायन होने पर दक्षिण–पूर्वी एशिया से NITC हट जाती है तथा उस पर उत्तरी–पूर्वी व्यापारिक पवनें पुनः स्थापित हो जाती है। यह शीतकालीन उत्तरी–पूर्वी मानसून होता है।

आधुनिक संकल्पना (Modern Concept)

इसे 'जेट स्ट्रीम' संकल्पना के नाम से भी जाना जाता है। दक्षिणी एशिया में यह जेट स्ट्रीम नामक तीव्र प्रवाह क्षोभमण्डल में लगभग 12 किमी. की ऊँचाई पर पश्चिम से पूर्व की ओर चलता है। इसे यहाँ पर उपोष्ण कटिबन्धीय पछुआ जेट स्ट्रीम कहते हैं। 60° उत्तरी अक्षांश पर इसकी ऊँचाई 9 से 10 किमी. तथा ध्रुवों पर ऊँचाई और कम होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में सर्दियों में इस उच्च तलीय पछुआ जेट स्ट्रीम का हिमालय तथा तिब्बत पठार के यांत्रिक अवरोध के कारण विभाजन हो जाता है। उत्तरी शाखा तिब्बत के पठार के उत्तर में चापाकार रूप में पश्चिम से पूर्व की ओर तथा मुख्य शाखा तिब्बत के पठार तथा हिमालय के दक्षिण में पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। मुख्य शाखा अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के ऊपर से होकर चक्रवातीय मार्ग का अनुसरण करती है। इसी के प्रभाव से शरदकालीन मानसून की उत्पत्ति होती है।

गर्मियों में 21 मार्च के बाद सूर्य की स्थिति उत्तरायण हो जाती है, जिस कारण ध्रुवीय धरातलीय उच्च वायुदाब कमजोर होने लगता है। उच्च तलीय ध्रुवीय भँवर के उत्तर की ओर खिसकने के कारण उच्चतलीय पछुआ जेट स्ट्रीम भी उत्तर की ओर खिसकने लगती है। भारत से यह जेट स्ट्रीम मध्य जून तक पूर्णतः लुप्त हो जाती है। अब जेट स्ट्रीम तिब्बत के पठार के उत्तर में शीतकालीन मार्ग के विपरीत बहने लगती है। ईरान के उत्तरी भाग एवम् अफगानिस्तान के ऊपर इस उच्च तटीय जेट स्ट्रीम का प्रवाह मार्ग चक्रवातीय वक्र (घड़ी की सूई के विपरीत दिशा में) के रूप में होता है, जिससे क्षोभमण्डल में गतिक निम्नदाब तथा चक्रवातीय दशा बन जाती है। यह उच्च तलीय निम्न दाब उत्तर–पश्चिमी भारत व पाकिस्तान तक विस्तृत होता है। इसके नीचे धरातल पर पहले से ही तापजन्य निम्न दाब स्थित होता है। इस स्थिति के कारण धरातलीय निम्न दाब से हवाएँ ऊपर उठती हैं तथा उच्च तलीय निम्न दाब इन हवाओं को अधिक ऊपर तक खींचता है जिस कारण दक्षिण–पश्चिम मानसून का अचानक प्रस्फोट (बौछार) होता है।

(ब) स्थल समीर और सागर समीर

ये मानसूनी हवाओं का ही छोटा रूप है, जिनकी दिशा में 24 घण्टे में दो बार परिवर्तन होता है। स्थलीय तथा सागरीय समीर के चलने का एकमात्र कारण स्थल तथा जल के गर्म तथा ठण्डा होने में परस्पर विरोधी स्वभाव का होना है। सागर तटीय क्षेत्रों में या झील के किनारों पर इन पवनों का अनुभव प्रतिदिन किया जा सकता है।

स्थल समीर (Land Breeze)

रात्रि के समय स्थलीय भाग में जल की अपेक्षा तीव्र गति से पार्थिव विकिरण होने से ऊष्मा का ह्रास अधिक होता है, जिससे स्थलीय भाग जल की अपेक्षा शीघ्र ठण्डा हो जाता है।

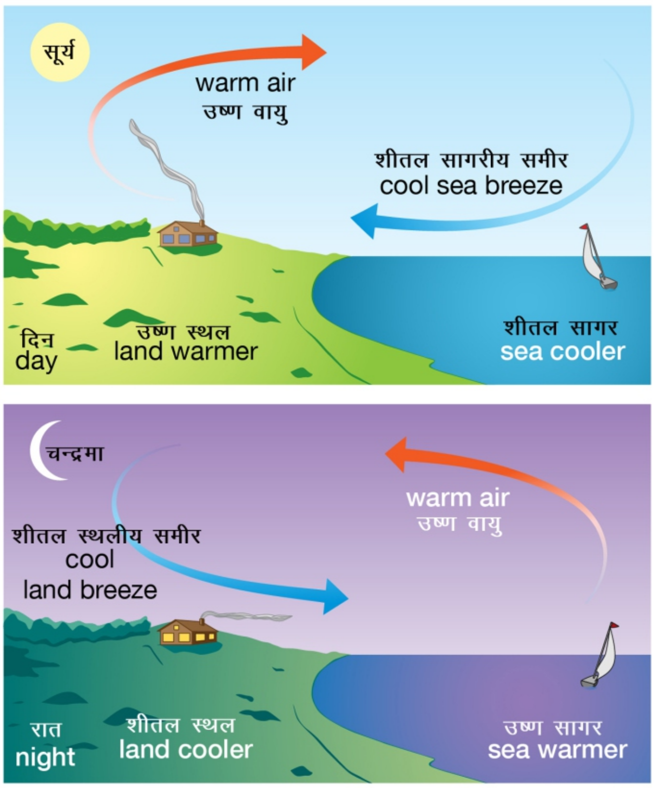

चित्र 13.5 : सागरीय एवं स्थलीय समीर

इसके कारण स्थलीय भाग पर उच्च दाब तथा सागरों पर निम्न दाब बन जाता है। परिणामस्वरूप स्थलीय भाग से सागर की ओर हवाएँ चलने लगती हैं, जिन्हें स्थलीय–समीर कहते हैं। ये हवाएँ शुष्क होती हैं। इन हवाओं के कारण तटीय भागों की जलवायु पर समकारी प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि भारत में कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई आदि नगरों की जलवायु सम पाई जाती है, अर्थात् न अधिक गर्म और न अधिक ठण्डी।

सागर समीर (Sea Breeze)

दिन के समय सूर्य की किरणों से स्थलीय भाग जल की अपेक्षा शीघ्र गर्म हो जाते हैं, जिससे तटवर्ती स्थलीय भागों पर निम्न दाब तथा समुद्री भागों पर उच्च दाब बन जाते हैं। परिणामस्वरूप सागरीय भागों से स्थल की ओर हवाएँ चलने लगती हैं, जिन्हें सागरीय समीर कहते हैं। इन हवाओं का संचार सुबह 10–11 बजे प्रारम्भ होता है तथा 1 से 2 बजे के बीच सर्वाधिक सक्रिय हो जाता है तथा रात्रि में 8 बजे तक समाप्त हो जाता है। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में तटीय भागों पर इन हवाओं के आगमन के साथ ही 15–20 मिनिट के अन्दर 5^o–7^o सेल्शियस तापमान गिर जाता है। परिणामस्वरूप मौसम सुहावना तथा स्वास्थ्यप्रद हो जाता है। ये हवाएँ आगे चलकर तटीय भागों पर वर्षा करती है। इन हवाओं का संचार केवल गर्मियों में दिन के समय ही हो पाता है।

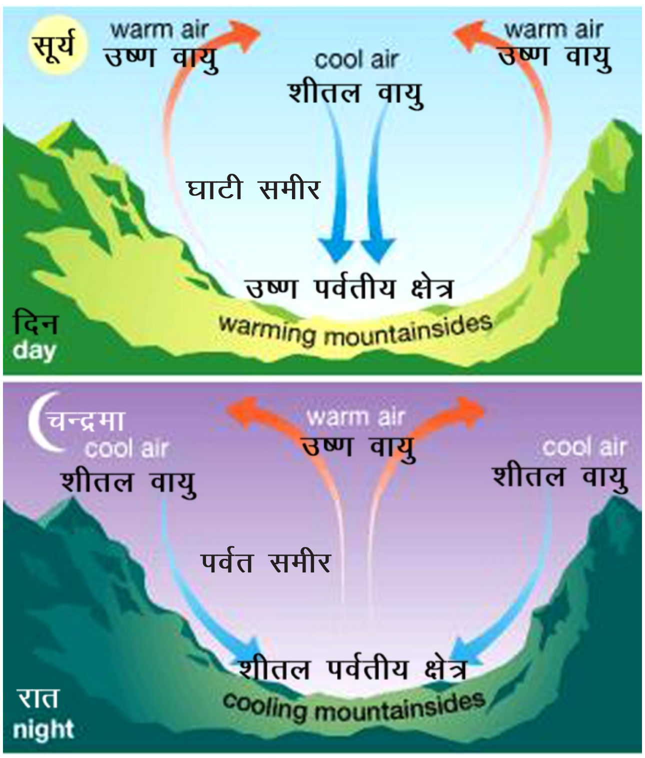

चित्र 13.6 : घाटीय एवं पर्वतीय समीर

(स) पर्वत समीर और घाटी समीर

दिन के समय सूर्य की किरणों से पर्वतों के ढाल घाटी–तल की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाते हैं, जिससे यहाँ निम्न दाब और घाटी–तल में उच्च दाब बन जाता है। परिणामस्वरूप हवाएँ घाटी–तल से पर्वतीय ढाल की ओर बहने लगती है। इसे घाटी–समीर कहते हैं। सूर्यास्त के बाद यह व्यवस्था पलट जाती है। रात्रि के समय पर्वतीय ढालों पर विकिरण द्वारा ताप ह्रास अधिक होता है। इससे पर्वतीय ढालों पर उच्च दाब और घाटी–तल में निम्न दाब बन जाता है। ऐसी परिस्थिति में पर्वतीय ढालों की ऊँचाईयों से ठण्डी और भारी हवा नीचे घाटी की ओर उतरने लगती है। इसे पर्वत–समीर कहते हैं।

इन हवाओं के कारण तापीय प्रतिलोमन की स्थिति बन जाती है। इसके कारण रात्रि में घाटियों में पाला या तुषार पड़ता है। जबकि ऊपरी भाग पालामुक्त रहते हैं। भारत में हिमाचल प्रदेश में ऐसी दशाएँ विकसित होती हैं।

(iii) स्थानीय पवनें (Local Winds)

जो हवाएँ किसी स्थान विशेष के तापमान और वायुदाब में अन्तर के कारण चलती हैं, उन्हें स्थानीय पवनें कहते हैं। ये पवनें वहाँ चलने वाली प्रचलित पवनों के विपरीत स्वभाव वाली होती हैं। ये पवनें स्थानीय विशेषताओं के अनुरूप गर्म, ठण्डी, बर्फ से भरी, धूल से युक्त आदि कई प्रकार की हो सकती हैं। इनसे प्रभावित क्षेत्रों में ये लाभकारी अथवा हानिकारक प्रभाव डालती है। मुख्य स्थानीय पवनों में चिनूक, फोन, बोरा, सिराको, हरमट्टान, खमसिन, मिस्ट्राल, ब्लिजार्ड, ब्रिक फिल्डर, विली–विली आदि हैं।

चिनूक तथा फॉन (Chinook & Foehn)

पर्वतीय ढालों के सहारे चलने वाली गर्म और शुष्क स्थानीय हवाओं को उत्तरी अमेरिका में 'चिनूक' तथा यूरोप में 'फॉन' कहते हैं। चिनूक पवनों का प्रभाव संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेयरी मैदानों पर विशेष रूप से पाया जाता है। मुख्यरूप से ये पवनें शीत ऋतु में चलती हैं। इस ऋतु में उत्तरी अमेरिका के वृहत् मैदानों में बर्फ की परत बिछ जाती है। किन्तु जब ये गर्म व शुष्क चिनूक हवाएँ रॉकी पर्वतों को पार कर पूर्व के प्रेयरी घास के मैदानों में उतरती हैं तो उस बर्फ की परत को शीघ्र ही पिघला देती हैं। इसलिए इन पवनों को हिम–भक्षिणी (Snow Eaters) पवनें भी कहते हैं।

चिनूक पवनों के समान गुणों वाली 'फॉन' पवनें हैं, जो कि आल्प्स पर्वत के दक्षिणी ढाल से चढ़कर उत्तर की ओर ढाल के सहारे नीचे उतरती है। इन पवनों के कारण प्रभावित

क्षेत्रों का ताप एकदम तेजी से बढ़ जाता है, अर्थात् एक या दो मिनिट में 8° से 10° सेल्शियस तक। इससे वहाँ जमी बर्फ पिघल जाने से घास उग आती है, पशुओं के लिए चारागाह तैयार हो जाते हैं, तथा कृषि आरम्भ कर दी जाती है। इसका सर्वाधिक प्रभाव स्विजरलैण्ड में होता है, जहाँ ये हवाएँ बसन्त तथा पतझड़ ऋतुओं में अधिक चलती हैं।

सिराको (Sirocco)

यह गर्म, शुष्क तथा रेत से भरी हवा होती है, जो कि सहारा के रेगिस्तान से उत्तर दिशा में भूमध्यसागर की ओर चलकर इटली, स्पेन आदि को प्रभावित करती है। सिराको के साथ लाल रेत की मात्रा अधिक होती है। जब यह भूमध्य सागर से होकर गुजरती है तो नमी धारण कर लेती हैं। दक्षिण इटली में लाल मिट्टी वर्षा के साथ नीचे उतरती है, इस वर्षा को 'रक्त वर्षा' (Blood rain) के नाम से जाना जाता है। एटलस पर्वत के उत्तरी ढाल के सहारे नीचे उतरने पर इसकी शुष्कता तथा तापमन बढ़ जाते हैं। इन हवाओं को अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग नामों से जाना जाता है। इटली में सिराको, सहारा में सिमूम, लीबिया में गिबली (Gibli), ट्यूनिशिया में चिली (Chili), स्पेन में लेवेश (Leveche) आदि नामों से जाना जाता है। अरब के रेगिस्तान में चलने वाली गर्म व शुष्क हवा को सिमूम (Simoom) कहते हैं। इन हवाओं का वनस्पति, कृषि एवम् फलों के बागों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है।

हरमट्टान (Harmattan)

अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान के पूर्वी भाग में उत्तर–पूर्व तथा पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा में चलने वाली गर्म व शुष्क हवाओं को 'हरमट्टान' कहते हैं। इनकी गति तीव्र होती है। अफ्रीका का पश्चिमी तट उष्ण तथा आर्द्र होता है, जिससे मौसम अस्वास्थ्यकर हो जाता है। हरमट्टान के आने पर यहाँ का मौसम शुष्क हो जाने के कारण सुहावना एवम् स्वास्थ्यप्रद हो जाता है। इसी प्रभाव के कारण गिनी तट पर इस हवा को 'डॉक्टर हवा' (Doctor Winds) की संज्ञा दी जाती है।

इसी तरह की गर्म एवम् शुष्क हवाएँ आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रान्त में चलती है जिन्हें 'ब्रिकफिल्डर' (Brickfielder) कहते हैं।

मिस्ट्रल (Mistral)

ये ठण्डी, शुष्क और तीव्र गति से चलने वाली हवाएँ हैं, जो कि भूमध्य सागर के उत्तरी–पश्चिमी भाग, विशेषकर स्पेन तथा फ्रान्स को प्रभावित करती है। मिस्ट्रल सामान्य रूप से 56–64 किमी. प्रति घण्टे की चाल से चलती हैं, परन्तु कभी–कभी इनकी गति 128 किमी. प्रति घण्टे तक हो जाती है। इससे वायुयानों के चलने में कठिनाई होती है। इन हवाओं से बचने के लिए इनकी प्रवाह–दिशा के समकोण पर बाग तथा झाड़ियाँ

चित्र 13.7 : संसार में स्थानीय पवनों का वितरण

लगाई जाती हैं। इन हवाओं के आने पर तापमान हिमांक के नीचे चला जाता है।

बोरा (Bora)

यह शुष्क तथा ठण्डी प्रचण्ड हवा है, जो कि एड्रियाटिक सागर के पूर्वी किनारे पर चलती है। विशेषकर उत्तरी इटली का भाग इन हवाओं द्वारा अधिक प्रभावित होता है। इसकी तेज गति के कारण रास्ते में इमारतों की छतें उड़ जाती हैं तथा पेड़–पौधे धराशायी हो जाते हैं। कभी–कभी तो ये कई दिनों क लगातार चलती हैं। नमीयुक्त होने से इनसे वर्षा भी हो जाती है।

ब्लिजर्ड (Blizzard)

इन्हें हम झंझावात भी कहते हैं। ये मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा साइबेरिया में चला करती है। इनकी गति 80–96 किमी. प्रति घण्टा होती है। हिम कणों से युक्त होने के कारण इनसे दृश्यता समाप्त हो जाती है। इनके आगमन से तापमान अचानक हिमांक के नीचे चला जाता है तथा सतह बर्फ से ढक जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पश्चिम–पूर्व धरातलीय अवरोध के अभाव में ये हवाएँ समस्त मध्यवर्ती मैदान को प्रभावित करती हुई दक्षिणी प्रान्तों तक पहुँच जाती है। यहाँ इन्हें 'नार्दन' (Northern) तथा साइबेरिया में 'बुरान' (Buran) कहते हैं।

लू (Loo)

उत्तरी भारत और पाकिस्तान के मैदानी क्षेत्रों में गर्मियों में साधारणतः दोपहर बाद, अति गर्म और शुष्क हवाएँ पश्चिम दिशा से बहती है। इन्हें ही लू कहते हैं। इनका तापमान 40° से 50° सेल्शियस के बीच रहता है; इस मौसम में घर से बाहर निकले व्यक्तियों को लू लगने की संभावना रहती है। हन हवाओं के कारण प्रभावित क्षेत्र का मौसम कष्टदायक हो जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. वायुमण्डल द्वारा पृथ्वी के धरातल पर पड़ने वाला दबाव, बैरोमीटर द्वारा इसका मापन होता है। वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारक–तापमान, समुद्र तल से ऊँचाई, पृथ्वी का परिभ्रमण / घुर्णन, जलवाष्प आदि।
2. वायुदाब की पेटियों का ऋतुवत् परिवर्तन होता है। धरातल से ऊँचाई के साथ वायुदाब कम होता है।
3. पवनें तथा उनकी दिशा व गति को प्रभावित करने वाले कारक–दाब प्रवणता, पृथ्वी की परिभ्रमण / घुर्णन गति, धरातलीय स्वरूप आदि होते है।
4. स्थाई पवनें–व्यापारिक, पछुआ व ध्रुवीय पवनें होती है तथा सामयिक पवनें–मानसूनी, स्थल–समीर, समुद्र–समीर, पर्वत–समीर और घाटी–समीर; मानसूनों की उत्पत्ति–तापीय, फ्लॉन की गतिक एवम् आधुनिक संकल्पनाएँ।
5. स्थानीय पवनें–चिनूक व फोन, सिराको, हरमट्टान, मिस्ट्रल, बोरा, ब्लिजर्ड, लू आदि।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. वायुदाब की खोज किसने की थी ?
   (अ) ट्रिवार्था (ब) फेरल
   (स) ग्यूरिक (द) फिन्च
2. भूमध्य रेखिये निम्न दाब पेटी का विस्तार क्या है ?
   (अ) 5°उत्तर से 5°दक्षिणी अक्षांशो
   (ब) 30°से 35°उत्तरी व दक्षिणी आक्षांशो
   (स) 60°से 65°उत्तरी व दक्षिणी आक्षांशो
   (द) इनमें से कोई नहीं।
3. उत्तरी भारत व पाकिस्तान के मैदानी भागों में चलने वाली गर्म व शुष्क पवन को क्या कहते हैं।
   (अ) चिनूक (ब) लू
   (स) मिस्ट्रल (द) बोरा
4. वे पवनें जो वर्ष भर निश्चित दिशा में चलती हैं कहलाती हैः
   (अ) अनिश्चित पवनें (ब) मौसमी पवनें
   (स) प्रचलित पवनें (द) स्थानीय पवनें
5. 'डोलड्रम' पेटी पाई जाती है?
   (अ) भूमध्य रेखा के निकट (ब) कर्क रेखा के निकट
   (स) मकर रेखा के निकट (द) आर्कटिक के निकट

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. वायुदाब मापने की प्रचलित इकाई क्या है?
7. मिस्ट्रल पवन कहाँ चलती है?
8. आल्पस पर्वतीय क्षेत्र में चलने वाली पवन कौनसी है?
9. भूमध्यरेखीय निम्न दाब पेटी का विस्तार बताओ।
10. पवन किसे कहते हैं?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. वायुदाब किसे कहते हैं ?
12. डोलड्रम्स क्या है ?
13. प्रचलित पवनें किसे कहते हैं ?
14. 'लू' किसे कहते हैं ?
15. वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारकों के नाम बताऐं।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. वायुदाब किसे कहते हैं?वायुदाब की पेटियों का वर्णन करें।
17. पवन क्या है? पवनों के कितने प्रकार होते हैं? वर्णन कीजिये।
18. मानसून पवनों की उत्पत्ति सम्बन्धित सिद्धान्तों का वैज्ञानिक परीक्षण कीजिए।

उत्तरमाला – 1. स 2. अ 3. ब 4. स 5. अ

अध्याय – 14

वायुराशियाँ, वाताग्र, चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात
(Airmasses, Front, Cyclone and Anticyclone)

वायुराशियाँ (Air Masses)

वायुमण्डल के उस विस्तृत तथा घने भाग को, जिसके भौतिक गुण, विशेषकर तापमान और आर्द्रता, क्षैतिज रूप में लगभग एक समान होते हैं, वायु राशि कहते हैं। सामान्यतः वायुराशि सैंकड़ों किलोमीटर तक विस्तृत होती है और उसमें कई परतें होती हैं। प्रत्येक परत समान गुणों वाली होती है। जब किसी विस्तृत समतल धरातल पर वायुमण्डल सम्बन्धी दशाएँ स्थिर होती हैं, तो वहाँ की वायु में धरातल की आर्द्रता तथा तापमान सम्बन्धी विशेषताएँ समाहित हो जाती हैं, और वायुराशियों की उत्पत्ति होती है। एक बार उत्पन्न होने के बाद वायुराशियाँ उद्गम क्षेत्र पर स्थिर नहीं रह पाती हैं। वे आगे की ओर प्रवाहित हो जाती हैं और सम्पर्क में आने वाले क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। इस प्रक्रिया के दौरान इसके भी गुणधर्मों में परिवर्तन हो जाता है, परन्तु विस्तृत आकार के कारण परिवर्तन मन्द गति से होता है।

उत्पत्ति क्षेत्र

वे प्रदेश जहाँ वायुराशियाँ उत्पन्न होती हैं, उत्पत्ति क्षेत्र कहलाते हैं। आदर्श उत्पत्ति क्षेत्र के लिए निम्नलिखित दशाएँ आवश्यक होती हैं।

(i) विस्तृत एवम् समान स्वभाव वाला क्षेत्र होना चाहिए, ताकि उस क्षेत्र में तापमान और आर्द्रता सम्बन्धी दशाएँ समान हो। उत्पत्ति क्षेत्र या तो पूर्णतया स्थलीय भाग होना चाहिए या पूर्णतया सागरीय भाग।

(ii) वायु की गति बहुत कम और इसका अपसरण (Divergence) होना चाहिए, जिससे दूसरे क्षेत्र की वायु प्रवेश न कर सके।

(iii) वायु मण्डल सम्बन्धी दशाएँ लम्बे समय तक स्थिर होनी चाहिए, ताकि वायु धरातलीय विशेषताओं को ग्रहण कर सके।

पृथ्वी पर वायुराशियों के निम्नलिखित 6 आदर्श उत्पत्ति क्षेत्र पाए जाते हैं :–

(i) ध्रुवीय सागरीय क्षेत्र (अटलाण्टिक एवम् प्रशान्त महासागर के उत्तरी क्षेत्र–शीतकाल में),

(ii) उप ध्रुवीय महाद्वीपीय क्षेत्र (यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका के हिमाच्छादित भाग और आर्कटिक प्रदेश–शीतकाल में)

(iii) मानसूनी क्षेत्र (दक्षिणी–पूर्वी एशिया)

(iv) उष्ण कटिबन्धीय महासागरीय क्षेत्र (प्रति चक्रवाती क्षेत्र–शीत एवम् ग्रीष्मकाल)

(v) उष्ण कटिबन्धीय महाद्वीपीय क्षेत्र (उत्तरी अफ्रीका, एशिया तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का मिसीसिपी घाटी क्षेत्र)

(vi) विषुवत रेखीय क्षेत्र (वर्षभर)

वायुराशियों का वर्गीकरण (Classification of Air Masses)

वायुराशियों को निम्नलिखित दो आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है :–

(i) उत्पत्ति क्षेत्र का स्वभाव, तथा

(ii) वायुराशि में होने वाला रूपान्तरण

उत्पत्ति क्षेत्र के स्वभाव के आधार पर वायुराशियाँ दो प्रकार की होती हैं – उष्ण कटिबन्धीय तथा ध्रुवीय। चूँकि उत्पत्ति क्षेत्र महासागर या महाद्वीप में से कोई भी हो सकता है,

इसलिए इन्हें दो–दो उपवर्गों में बाँट सकते हैं – समुद्रीय उष्ण कटिबन्धीय, महाद्वीपीय उष्ण कटिबन्धीय, समुद्री ध्रुवीय तथा महाद्वीपीय ध्रुवीय। समुद्री वायुराशियों में आर्द्रता अधिक होने के कारण ये अधिक मात्रा में वर्षा करती हैं। इसके विपरीत महाद्वीपीय वायुराशियाँ शुष्क होती हैं और इनसे वर्षा भी कम होती है।

वायु राशियाँ उत्पत्ति क्षेत्र छोड़ने के बाद जब अन्य क्षेत्रों से गुजरती है तो इनका क्रमशः रूपान्तरण होने लगता है। यह रूपान्तरण दो प्रकार का होता है – ऊष्मागतिक (Thermodynamic) तथा यान्त्रिक (Mechanical)। जब धरातल और वायु राशि के आधारीय तल के बीच ऊष्मा के आदान–प्रदान के कारण वायुराशि नीचे से गर्म या ठण्डी होती है तो इसे ऊष्मागतिक रूपान्तरण कहते हैं। वायुराशि में होने वाले उस रूपान्तरण को, जो धरातल द्वारा दी गई गर्मी और ठण्डक से

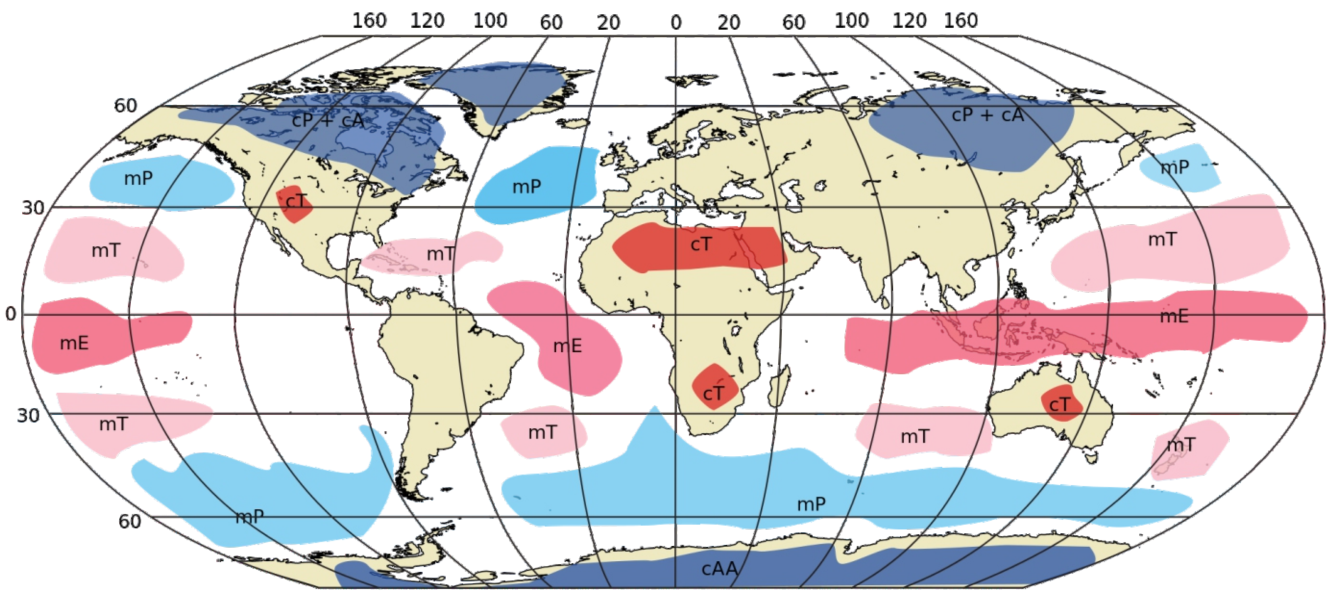

चित्र 14.1 : विश्व में वायुराशियों का वितरण

वायु राशियों का वर्गीकरण निम्न चार्ट द्वारा स्पष्ट है :

वायुराशियाँ

- भौगोलिक वर्गीकरण
  - उष्ण कटिबन्धीय (T)
    - समुद्री उष्ण कटिबन्धीय (MT)
    - महाद्वीपीय उष्ण कटिबन्धीय (CT)
  - ध्रुवीय (P)
    - समुद्री ध्रुवीय (MP)
    - महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP)
- ऊष्मागतिक वर्गीकरण
  - उष्ण (W)
  - ठण्डी (K)
- यांत्रिक वर्गीकरण
  - स्थिर (S)
  - अस्थिर (U)

मुक्त होता है, यांत्रिक रूपान्तरण कहते हैं। उदाहरण के लिए चक्रवातों, प्रतिचक्रवातों तथा वायु के ऊर्ध्वाधर संचरण के कारण होने वाले रूपान्तरण। वायुराशि में गतिशीलता होने पर उसे अस्थिर (Unstable-U) तथा गतिशीलता नहीं होने पर उसे स्थिर (Stable-S) वायुराशि कहते हैं।

वाताग्र (Front)

वाताग्र या सीमाग्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विश्वयुद्ध के दौरान किया गया था। जब दो विपरीत स्वभाव वाली वायु (ठण्डी व गर्म) आकार मिलती है तो वे तापमान एवं आर्द्रता संबंधी अपनी पहचान बनाये रखने की लगातार कोशिश करती है। इस प्रक्रिया में इनके बीच में एक ढलुआ सीमा का विकास हो जाता है। इसे वाताग्र कहते हैं। जब दो भिन्न गुणों वाली वायुराशियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो वे अपने आप ही आपस में नहीं मिल जाती अपितु काफी समय तक परस्पर अलग रहती हैं। ब्लयेर का कहना है कि ''जिस सतह या रेखा के सहारे वायुराशियाँ पृथक रहती है उसे वाताग्र या सीमाग्र कहते हैं''। जलवायु विज्ञान में वाताग्र का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि ये मौसम की विशिष्ट दशाओं को जन्म देते हैं, जिन्हें हम चक्रवात, प्रति चक्रवात कहते हैं। इसलिये वाताग्र को चक्रवातों व प्रति चक्रवातों का पालना भी कहते हैं।

वाताग्र की उत्पत्तिः वाताग्र की उत्पत्ति के लिये निम्न दशाएँ आवश्यक हैं–

(i) भिन्न स्वभाव वाली वायुराशियाँ अर्थात गर्म व ठण्डी वायुराशियाँ

(ii) आर्द्रता में अन्तर

(iii) वायुमण्डलीय संचार

वाताग्रों के प्रकारः पेटर्सन ने वाताग्रों को चार भागों में विभाजित किया है जिनका मध्य अंक्षाशीय चक्रवातों के अन्तर्गत पूर्ण रूप से विकास होता है।

(1) ऊष्ण वाताग्र– गर्म एवं हल्की वायु के तीव्रता से ठण्डी एवं भारी वायु के ऊपर चढ़ने पर बनने वाला वाताग्र ऊष्ण वाताग्र कहलाता है।

(2) शीत वाताग्रः ठण्डी एवं भारी वायु द्वारा गर्म एवं हल्की वायु को ऊपर उठा देने पर जो वाताग्र बनता है वह शीत वाताग्र कहलाता है।

(3) स्थिरवत् या स्थायी वाताग्रः दो विपरीत वायुराशियों के समानान्तरण रूप में अलग होने एवं वायु की लम्बवत् गति के अभाव में बने वाताग्र को स्थायी वाताग्र कहते हैं।

(4) संरोधित या अधिविष्ट वाताग्रः शीत वाताग्र के गर्म वाताग्र से मिलने एवं गर्म वायु का नीचे धरातल से सम्पर्क खत्म होने से उत्पन्न होने वाला वाताग्र अधिविष्ट वाताग्र कहलाता है।

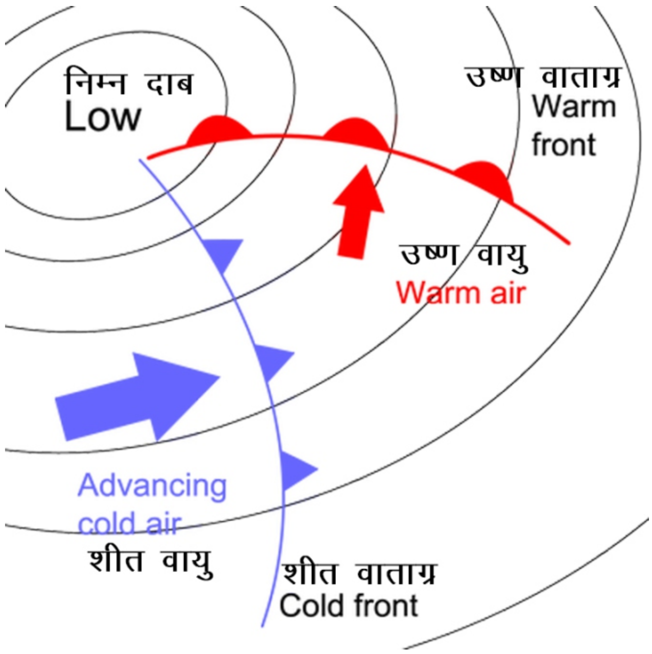

चित्र 14.2 : वाताग्र एवं चक्रवात की उत्पत्ति

चक्रवात (Cyclone)

चक्रवात से अभिप्राय सामान्यतः निम्न वायुदाब के केन्द्र से होता है, जिसके चारों ओर बाहर की ओर वायुदाब क्रमशः बढ़ता जाता है, जिस कारण सभी दिशाओं से हवाएँ अन्दर केन्द्र की तरफ प्रवाहित होने लगती है। फैरल के नियम के अनुसार ये हवाएँ उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा के विपरीत तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के अनुसार होती है अर्थात उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बायीं ओर मुड़ जाती है। ट्रिवार्था के अनुसार ''चक्रवात अपेक्षाकृत वे निम्न वायुदाब क्षेत्र होते हैं जो संकेन्द्रीय एवं सटी हुई समदाब रेखाओं से घिरे रहते हैं''। चक्रवातों का आकार प्रायः अण्डाकार, गोलाकार या V अक्षर के समान होता है।

चक्रवातों की विशेषताएँ–

(i) चक्रवात निम्नदाब के केन्द्र होते हैं तथा इनमें वायुदाब केन्द्र से बाहर की ओर बढ़ता है।

(ii) इनमें हवाएँ परिधि से केन्द्र की ओर चलती है।

(iii) चक्रवातों का आकार अण्डाकार, गोलाकार या v अक्षर के समान होता है।

(iv) चक्रवात मौसम को प्रभावित करते हैं, जिससे वायुदाब का गिरना, चन्द्रमा व सूर्य के चारों तरफ प्रभा मण्डल का स्थापित होना, तीव्र वर्षा का होना इत्यादि।

(v) उत्तरी गोलार्द्ध में हवाएँ घड़ी की सुई के विपरीत तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के अनुकूल होती है।

चक्रवातों के प्रकारः

(1) शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Temperate Cyclone)

(2) ऊष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Tropical Cyclone)

(1) शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातः मध्य अक्षांशो में मौसम कभी एक समान नहीं रहता है। प्रायः यहाँ मौसम परिवर्तित होता रहता है, मध्य अक्षांशो में बनने वाले वायु–विक्षोभ के केन्द्र में कम दाब तथा बाहर की ओर अधिक दाब होता है और प्रायः ये गोलाकार, अण्डाकार या अंग्रेजी के v अक्षर के आकार के होते हैं जिससे इन्हें निम्न या गर्त या ट्रफ कहते हैं। इनका निर्माण दो विपरीत स्वभाव वाली ठण्डी तथा गर्म हवाओं के मिलने से होता है। इन चक्रवातों का क्षेत्र 35° से 65° अक्षांशो के मध्य दोनों गोलार्द्धों में पाया जाता है जहाँ पर ये पछुआ हवाओं के प्रभाव में पश्चिम से पूर्व दिशा में चलते हैं। इनका चलने का क्रम वैसा ही रहता है जैसा कि नदी की धारा में भँवरें ऊपर से नीचे चला करती है। इनके द्वारा वायुमण्डल में मेघों की उत्पत्ति होती है, जो अनुकूल परिस्थितियों में जलवृष्टि या हिमवृष्टि प्रदान करते हैं। इनसे वायुदाब एवं तापमान में परिवर्तन होता है। इन चक्रवातों की गति अनिश्चित होती है। ग्रीष्मकाल की अपेक्षा शीतकाल में इनकी गति तीव्र होती है।

शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्तिः

शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति मुख्य रूप से ध्रुवीय वाताग्रों पर होती है किन्तु अयनवृर्ती क्षेत्रों से बाहर इनकी उत्पत्ति कहीं भी हो सकती है। इनकी उत्पत्ति व विकास शीत ऋतु में अधिक होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये चक्रवात उत्तरी प्रशान्त महासागर के पश्चिमी तटवर्ती से अल्यूशियन निम्नदाब क्षेत्र एवं उत्तरी अटलांटिक महासागर के पश्चिमी किनारे से आइसलैण्ड स्थित निम्नदाब क्षेत्र तक तथा इसके अलावा चीन, फिलीपीन्स, साइबेरिया प्रमुख क्षेत्र है। दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म व शीतकाल में इन चक्रवातों की उत्पत्ति समानरूप से होती है। यहां पर 60° दक्षिणी अक्षांश के आसपास सर्वाधिक चक्रवात उत्पन्न होते हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के प्रकारः

इन चक्रवातों को तीन भागों में विभाजित किया गया है– (i) तापीय चक्रवात (ii) गतिक चक्रवात (iii) प्रवासी चक्रवात

इन चक्रवातों के आने से पूर्व आकाश में सफेद बादलों की लम्बी लेकिन पतली टुकड़ियाँ दिखाई देने लगती है, जब कभी बैरोमीटर में निरन्तर पारा गिरने लगे, हवाएँ अपनी दिशा बदलने लगे, सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर प्रभा मण्डल बन जाए तथा हवा बंद होने से नालियों में बदबू आने लगे तो समझना चाहिए कि चक्रवात आने वाला है।

(2) ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवातः ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात भूमध्य रेखा से दोनों ओर कर्क ओर मकर रेखाओं के मध्य पाये जाते हैं। ये चक्रवात अनेक रूपों में दिखाई देते हैं। ये प्रभावित क्षेत्र में तीव्र गति से उग्र रूप धारण कर उत्पात मचाते रहते हैं। शीतोष्ण चक्रवातों के समान इनमें समरूपता नहीं पाई जाती है। इन चक्रवातों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है–

(i) इनके केन्द्र में न्यूनदाब होता है तथा इनकी समदाब रेखाओं का आकार गोलाकार होता है।

(ii) इनकी गति में भिन्नता पाई जाती है। कहीं पर इनकी गति 32 किमी प्रति घण्टा तथा कहीं पर 200 किमी प्रति घण्टा होती है।

(iii) इनके आकारों में काफी भिन्नता होती है। साधारणतया इनका व्यास 80 से 300 किमी तक होता है।

(iv) ये चक्रवात स्थायी होते हैं। एक स्थान पर कई दिनों तक वर्षा करते हैं।

(v) ये चक्रवात अधिक विनाशकारी होते हैं।

(iv) ये चक्रवात सागरों के ऊपर तीव्र गति से चलते हैं परन्तु स्थल पर आते ही कमजोर पड़ जाते हैं।

उत्पत्तिः

ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति 8° से 15° उत्तरी अक्षांशो के मध्य महासागरों पर होती है। ये ग्रीष्म काल में अधिक उत्पन्न होते हैं। इनका जन्म तथा विकास क्षेत्र सागरीय भाग ही होते हैं। ये स्थल पर आते–आते विलीन हो जाते हैं। ये चक्रवात अत्यधिक शक्तिशाली तथा विनाशकारी तूफान होते हैं। इनको पश्चिमी द्वीप समूह के निकट हरीकेन, चीन, फिलिपीन्स व जापान में टाइफून तथा हिन्द महासागर में साइक्लोन कहते हैं। इन चक्रवातों की उत्पत्ति उत्तरी अटलांटिक महासागर, मैक्सिको की खाड़ी, पश्चिमी द्वीप समूह, कैरेबियन सागर, उत्तरी तथा दक्षिणी महासागर, चीन सागर तथा प्रशान्त महासागर के अधिकांश क्षेत्रों पर पाया जाता है।

ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवातों को निम्न भागों में बाँटा गया है– (1) क्षीण चक्रवात (2) प्रचण्ड चक्रवात (3) हरीकेन या टाइफून (4) टारनैडो

हरीकेनः संयुक्त राज्य अमेरिका में ऊष्ण कटिबंधीय प्रचण्ड चक्रवात का नाम।

टाइफूनः हरिकेन की तरह चीन में पूर्वी तट पर आने वाला प्रचण्ड चक्रवात।

टारनैडोः आकार की दृष्टि से सबसे छोटा किन्तु सर्वाधिक भयंकर एवं विनाशकारी ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात जो मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका की मिसीसिपी घाटी तथा गौण क्षेत्र आस्ट्रेलिया में आते हैं।

चक्रवात उत्पत्ति के सिद्धान्तः चक्रवातों की उत्पत्ति के संबंध में निम्न प्रमुख सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं–

(1) स्थानीय तपन सिद्धान्त

(2) गतिक सिद्धांत (लैम्पर्ट तथा शॉ)

(3) ध्रुवीय वाताग्र सिद्धान्त (बर्कनीज 1918)

प्रतिचक्रवात (Anticyclone)

प्रति चक्रवात वृताकार समवायुदाब रेखाओं द्वारा घिरा एक ऐसा क्रम है जिसके केन्द्र में वायुदाब उच्च होता है और बाहर की ओर वायुदाब क्रमशः घटता जाता है। अतः प्रतिचक्रवात में हवाएँ केन्द्र से परिधि की ओर चलती है। प्रतिचक्रवात स्वभाव, प्रकृति, गुण, वायु व्यवस्था, मौसम आदि के दृष्टिकोण से चक्रवात से विलोम होते हैं। इनको उच्चदाब क्रम तथा कटक भी कहते हैं। आकार की दृष्टि से ये चक्रवातों से अधिक विशाल होते हैं। इनमें हवाओं की गति मन्द होती है तथा ये प्रायः स्थायी होते हैं। इनमें हवाएँ शीतल व धीमी गति से चलती है, आकाश स्वच्छ रहता है। प्रति चक्रवात शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग गाल्टन ने 1861 में किया। विश्व के प्रमुख प्रति चक्रवात 30° अक्षांश के आसपास दोनों गोलार्द्धों में महासागरों पर लगभग स्थायी रूप में पाए जाते हैं। वायुमण्डल के ऊँचे स्तरों में इनका लोप हो जाता है।

विशेषताएँः

(i) प्रति चक्रवात के केन्द्र में उच्च वायुदाब होता है, जो परिधि की ओर कम होता जाता है।

(ii) इनमें हवाएँ उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में और दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में चलती है।

(iii) आकार में चक्रवातों से बड़े होते हैं। इनका आकार प्रायः गोलाकार होता है।

(iv) प्रति चक्रवातों के आने से मौसम साफ, आकाश स्वच्छ तथा हवाएँ मन्द हो जाती है।

(v) ये उपोष्ण कटिबंधीय उच्चदाब क्षेत्रों में अधिक उत्पन्न होते हैं।

प्रतिचक्रवात के प्रकारः

प्रसिद्ध मौसम वैज्ञानिक हैंजिल्क ने 1909 में दो भागों में विभाजित किया है :

(1) शीतल प्रति चक्रवात

(2) ऊष्ण प्रति चक्रवात।

लेकिन जलवायु वेक्ताओं की नवीन खोज के आधार पर

(3) अवरोधी प्रति चक्रवात का प्रादुर्भाव हुआ। अतः प्रति चक्रवात तीन प्रकार के होते हैं।

(1) शीतल प्रतिचक्रवातः

इन चक्रवातों की उत्पत्ति ध्रुवीय प्रमुख रूप से आर्कटिक क्षेत्रों में होती है जहाँ से ये पूर्व तथा दक्षिणी पूर्व दिशा में अग्रसर

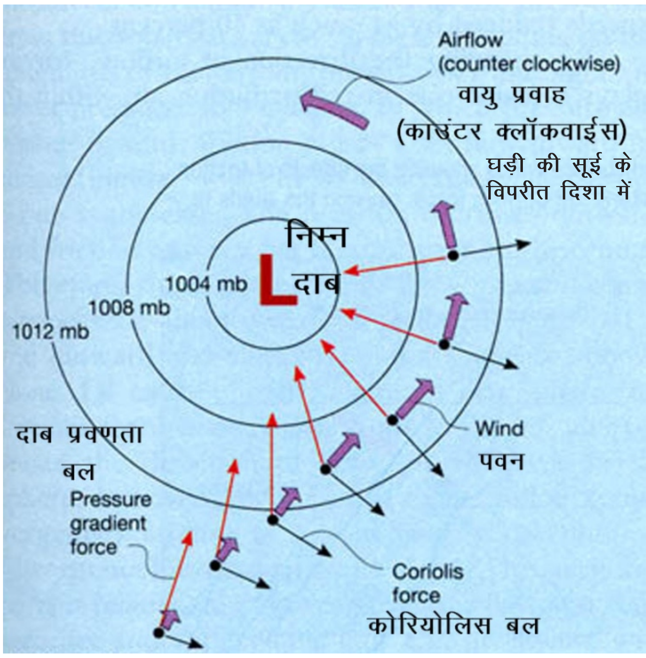

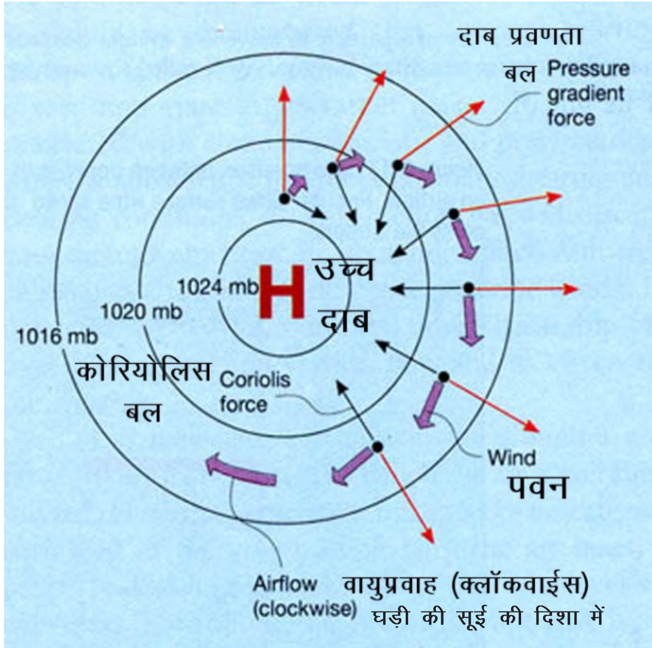

चित्र 14.3 : उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात की तुलनात्मक स्थिति

होते हैं। ऊष्ण प्रति चक्रवातों की तुलना में इनका आकार छोटा होता है और ये तीव्र गति से आगे बढ़ते हैं। इनकी गहराई कम होती है तथा ऊँचाई 3000 मीटर से अधिक नहीं होती है। ये दो प्रकार के होते हैं–

(**i**) अस्थायी व क्षणिक प्रति चक्रवातः ये चक्रवात अधिकतर मार्ग में ही विलीन हो जाते हैं। केवल कुछ ही ऊष्ण प्रदेशों तक पहुँच पाते हैं।

(**ii**) अर्द्ध–स्थायी प्रति चक्रवातः ये अधिक सक्रिय होते हैं और इनका मार्ग भी लम्बा होता है।

शीतल प्रति चक्रवातों की उत्पत्ति तापीय होती है। आर्कटिक प्रदेशों में शीतकाल में विकिरण द्वारा अत्यधिक तापमान के कम होने से तथा सूर्यातप कम मिलने से उच्च वायुदाब बन जाता है, जिससे शीतल प्रति चक्रवातों की उत्पत्ति होती है, जिनके प्रमुख रूप से दो मार्ग है– (1) कनाडा के उत्तर में तथा (2) साइबेरिया के उत्तर में।

(2) ऊष्ण प्रतिचक्रवातः

इन प्रति चक्रवातों की उत्पत्ति शीतोष्ण उच्च वायुदाब की पेटी में होती है। इस पेटी में हवाओं का अपसरण होता है। इनका आकार विशाल होता है। ये कम सक्रिय होते हैं। यह प्रायः दक्षिणी–पूर्वी सुंयुक्त राज्य अमेरिका व पश्चिमी यूरोपीय देशों में अधिक सक्रिय रहते हैं। इनमें हवा मन्द और आकाश मेघ रहित और स्वच्छ रहते हैं।

(3) अवरोधी प्रति चक्रवातः

जलवायुवेत्ताओं की नवीन खोज के आधार पर इस प्रति चक्रवात का प्रादुर्भाव हुआ। क्षोभ मण्डल के ऊपरी भाग में वायु संचार के अवरोध के कारण इन प्रति चक्रवातों की उत्पत्ति होती है। इनमें वायु प्रणाली, वायुदाब तथा मौसम संबंधी विशेषताएँ ऊष्ण प्रति चक्रवातों के समान होती है। इनका आकार छोटा व गति मन्द होती है। ये उ.प. यूरोप, अटलांटिक महासागरिय भाग तथा प्रशान्त महासागर के पश्चिमी भाग में उत्पन्न होते हैं।

जेट स्ट्रीम (Jet Stream)

मध्य अक्षांशीय क्षोभमण्डल के ऊपरी स्तरों में, क्षोभ–सीमा के पास, अत्यधिक तीव्र गति से बहने वाली हवाओं को "जेट स्ट्रीम" कहते हैं। ये सँकरी, सर्पीली एवम् तेज गति वाली वायु धाराओं की पट्टियाँ हैं। ये पृथ्वी का चक्कर लगाती रहती हैं। इनकी चौड़ाई 40 से 160 किमी. तक तथा मोटाई 2 से 3 किमी. तक होती है। इनकी गति 120 किमी. प्रति घण्टा से भी अधिक होती है। शीतकाल में इनकी गति अधिक तीव्र होती है।

इन वायु धाराओं की स्थिति मौसम के अनुसार बदलती रहती है। जेट स्ट्रीम के मार्ग गर्मियों में ध्रुवों की ओर तथा सर्दियों में विषुवत/ रेखा की ओर खिसक जाते हैं। इन वायु धाराओं की सर्वप्रथम जानकारी द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई थी। युद्ध समाप्ति के बाद इनके विषय में व्यापक खोजबीन की गई। यद्यपि मौसम वैज्ञानिक इनकी उत्पत्ति एवम् कुछ अन्य पहलुओं पर एकमत नहीं हैं, फिर भी इनके विषय में काफी जानकारी जुटा लेने से वायुयान चालकों द्वारा इनके प्रवाह का अनुकूल दिशा में उपयोग कर लिया जाता है। जेट स्ट्रीम को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है –

(i) उपोष्ण जेट स्ट्रीम, तथा

(ii) मध्य अक्षांशीय या ध्रुवीय वाताग्री जेट स्ट्रीम।

(i) उपोष्ण जेट स्ट्रीम (Subtropical Jet Stream)

इनकी स्थिति क्षोभ सीमा के पास 30^{0}–35^{0} अक्षांशों के बीच दोनों गोलार्द्धों में पाई जाती है। ये वर्ष भर बहती है। इनकी उत्पत्ति पृथ्वी की घूर्णन क्रिया के कारण होती है। पृथ्वी का यह घूर्णन विषुवत् रेखा के ऊपर वायुमण्डल में अधिकतम गति उत्पन्न करता है। इसके परिणामस्वरूप विषुवतीय कटिबन्ध में ऊपर उठने वाली वायुधाराएँ ऊपर जाकर उत्तर और दक्षिण की ओर फैलकर अधिक तेज गति से बहने लगती हैं। ये वायु धाराएँ कॉरिआलिस बल के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दाई ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाईं ओर विक्षेपित हो जाती है। ये ही वायुधाराएँ लगभग 30^{0} अक्षांशों पर पहुँचकर उपोष्ण जेट स्ट्रीम बन जाती हैं।

(ii) मध्य अक्षांशीय या ध्रुवीय वाताग्री जेट स्ट्रीम (Mid Latitudinal or Polar Front Jet Stream)

इनकी उत्पत्ति तापान्तर के कारण होती है और ध्रुवीय वाताग्र से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इनकी स्थिति 40^{0}–60^{0} अक्षांशों के बीच दोनों गोलार्द्धों में होती है। इनकी स्थिति उपोष्ण जेट स्ट्रीम की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशील होती है। ग्रीष्म ऋतु में ये ध्रुवों की ओर तथा ऋतु में विषुवत् रेखा की ओर खिसक जाती है।

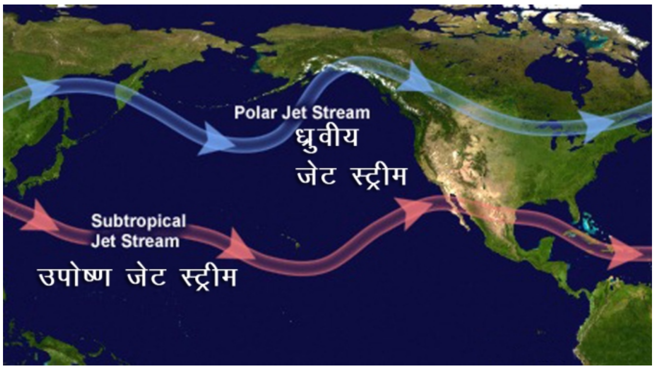

चित्र 14.4 : जेट स्ट्रीम का प्रवाह

यद्यपि जेट स्ट्रीम को अभी तक पूर्णतः नहीं समझा जा सका है, तथापि मौसमी दशाओं पर इनका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। चक्रवात, प्रति चक्रवात, मानसून, प्रचण्ड वायु तथा तूफान जैसी मौसमी घटनाओं को निर्मित करने, प्रेरित करने और भयंकर बनाने में इन वायुधाराओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दू

1. मध्य अक्षांशों में क्षोभमण्डल के ऊपरी स्तरों में अत्यधिक तीव्र गति से बहने वाली हवाएँ 'जेट स्ट्रीम' कहलाती है।
2. भिन्न गुणों वाली वायुराशियों के मिलने की सीमा वाताग्र कहलाती है। गुणों के आधार पर वाताग्र दो प्रकार के होते है – उष्ण वाताग्र एवं शीत वाताग्र।
3. चक्रवात–निम्न दाब केन्द्र में और बाहर की ओर उच्च दाब पाया जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के प्रतिकूल एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के अनुकूल वायु प्रवाह, आंधी, तूफान, गर्जना के साथ वर्षा होती है।
4. प्रतिचक्रवात – वायुदाब एवं पवनों की गति चक्रवातों के ठीक विपरीत होती है, इसमें मौसम शुष्क एवं साफ रहता है।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. चक्रवातों व प्रति चक्रवातों का पालना किसे कहते हैं?
   (अ) वाताग्र (ब) वायुराशियों
   (स) विक्षोभ (द) हरिकेन
2. चक्रवातों में हवाओं की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में रहती है :
   (अ) घड़ी की सुई के विपरीत
   (ब) लम्बवत
   (स) घड़ी की सुई के अनुसार
   (द) तिर्यक
3. हरिकेन है एकः
   (अ) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात
   (ब) ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात
   (स) प्रति चक्रवात
   (द) वाताग्र

4. चक्रवातों की उत्पत्ति का गतिक सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया था?
   (अ) बर्कनीज (ब) लैम्पर्ट तथा शॉ
   (स) वेनगर (द) डेविस
5. निम्न में से कौनसा वाताग्रों का प्रकार नहीं है?
   (अ) ऊष्ण वाताग्र
   (ब) शीत वाताग्र
   (स) स्थायी वाताग्र
   (द) अस्थाई वाताग्र

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. उत्पत्ति क्षेत्र के आधार पर वायुराशियों के प्रकार बताइये।
7. उष्ण वाताग्र क्या है?
8. स्थायी वाताग्र किसे कहते हैं?
9. उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति कहाँ होती है?
10. चक्रवात किसे कहते हैं?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. वाताग्र किसे कहते हैं? वाताग्रों के प्रकार बताइये।
12. वाताग्रों की उत्पत्ति के लिए आवश्यक दशाएँ क्या हैं?
13. चक्रवात व प्रति चक्रवात में अन्तर स्पष्ट करें।
14. हरिकेन क्या है?
15. चक्रवातों की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धांत कौन–कौन से है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. वाताग्र किसे कहते हैं? इनकी उत्पत्ति की आवश्यक दशाओं को बताते हुए वाताग्रों के प्रकार का वर्णन करें।
17. चक्रवात क्या है? शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति व प्रकार समझाईये।
18. चक्रवात व प्रति चक्रवात क्या है? इनके प्रकार व विशेषताएँ बताईये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. अ 3. ब 4. ब 5. द

अध्याय – 15

संघनन एवं वर्षा
(Condensation and Rainfall)

वायुमण्डल में मौजूद जल वाष्प को आर्द्रता कहते हैं। वायुमण्डल में औसत रूप से 2 प्रतिशत आर्द्रता पाई जाती है। हवा में पानी वाष्प या भाप के रूप में विद्यमान रहता है। प्रत्येक पदार्थ की तरह जल की भी ठोस, तरल व गैस तीन अवस्थायें होती है। ठोस रूप में इसे हिम, तरलवस्था में जल, व गैसीय अवस्था में जल वाष्प कहा जाता है। वायुमण्ड़ल में जलवाष्प वाष्पीकरण द्वारा आता है। अनुकूल परिस्थितियां होने पर यह जलवाष्प संघनित होकर वर्षा, ओले, बर्फ आदि के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। पृथ्वी पर गिरा हुआ जल वापस महासागर में पहुँच जाता है या सीधा ही वायुमण्डल में प्रवेश कर जाता है। कुछ जल को पेड़ – पौधे अवशोषित कर लेते है तथा बाद में वाष्पोत्सर्जन क्रिया द्वारा पुनः वायुमण्डल में छोड़ देते है। अतः महासागरों, वायुमण्डल और महाद्वीपों के मध्य जल का आदान–प्रदान वाष्पोत्सर्जन, वाष्पीकरण, संघनन और वर्षण के द्वारा निरन्तर होता रहता है।

वायुमण्डल में मौजूद जलवाष्प की वास्तविक मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते है। अथवा वायु के निश्चित आयतन में उपस्थित कुल जलवाष्प की वास्तविक मात्रा को 'निरपेक्ष आर्द्रता' कहते है। निरपेक्ष आर्द्रता पृथ्वी की सतह पर अलग–अलग स्थानों पर भिन्न–भिन्न होती है। निरपेक्ष आर्द्रता की मात्रा पर वर्षा की संभावना निर्भर करती है। निरपेक्ष आर्द्रता को ग्राम/घन मीटर में व्यक्त किया जाता है। इसी तरह किसी निश्चित तापक्रम पर वायु की आर्द्रता सामर्थ्य तथा उसमें मौजूद वास्तविक आर्द्रता की मात्रा के अनुपात को 'सापेक्षिक आर्द्रता' कहते है। इसे प्रतिशत में व्यक्त करते है।

जब निश्चित तापमान पर आर्द्धता सामर्थ्य के बराबर, जलवाष्प होती है तो उसे 'संतृप्त वायु' (Saturated air) कहते है। इसी प्रकार जिस तापमान पर वायु संतृप्त होती है, उसे 'ओसांक' (Dew Point) कहते हैं।

$$\text{सापेक्षिक आर्द्रता} = \frac{\text{निरपेक्ष आर्द्रता} \times 100}{\text{आर्द्रता सामर्थ्य}}$$

वायुमण्डलीय आर्द्रता का मापन हाइग्रोमीटर (आर्द्रतामापी) यन्त्र द्वारा किया जाता है।

वाष्पीकरण (Evaporation)

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा द्रव या ठोस अवस्था का जल गैस या जलवाष्प में बदलता है। वायुमण्डल को आर्द्रता वाष्पीकरण द्वारा ही प्राप्त होती है। अतः जिस प्रक्रिया द्वारा जल जलवाष्प में बदलता है वह वाष्पीकरण है। वाष्पीकरण की मात्रा तथा तीव्रता वायु की गति, तापक्रम तथा शुष्कता पर निर्भर करती है। स्थल की अपेक्षा सागरों पर वाष्पीकरण अधिक होता है। एक ग्राम बर्फ को पानी में बदलने के लिए 79 कैलोरी की आवश्यकता होती है तथा एक ग्राम पानी को वाष्प में बदलने के लिए 607 कैलोरी की आवश्यकता होती है।

महाद्वीपों पर सर्वाधिक वाष्पीकरण 10° उत्तर से 10° दक्षिणी अक्षांशों में तथा महासागरों पर सर्वाधिक वाष्पीकरण दोनों गोलार्द्धों में 10° से 20° अक्षांशों के मध्य होता है। उच्च अक्षांशों की ओर वाष्पीकरण की मात्रा क्रमशः घटती जाती है।

वाष्पीकरण हर जगह पर समान नहीं होता। वाष्पीकरण की मात्रा मुख्य रूप से (1) तापमान (2) वायु की शुष्कता (3) जल क्षेत्र का विस्तार (4) बादल (5) पवन का वेग आदि पर निर्भर करती है।

संघनन (Condensation)

जल की गैसीय अवस्था के तरल या ठोस अवस्था में बदलने की क्रिया को संघनन कहते हैं। संघनन की क्रिया वायुमण्डल में स्थित सापेक्षिक आर्द्रता की मात्रा पर निर्भर करता है। जिस तापक्रम पर हवा संतृप्त होती है उसे ओसांक या ओस बिन्दु कहते हैं। यदि वायु का तापमान ओसांक के नीचे चला जाये अथवा जलवाष्प की मात्रा बढ़ जाये तो संघनन शुरू होता है। यह दो दशाओं में होता है–

(1) ताप में कमी होने की दशा में।

(2) आर्द्रता में वृद्धि होने से।

संघनन के लिए सर्वाधिक अनुकूल परिस्थिति तापमान में गिरावट के कारण उत्पन्न होती है।

संघनन के रूपः

संघनन के प्रमुख रूप ओस, पाला, बादल, कोहरा आदि है।

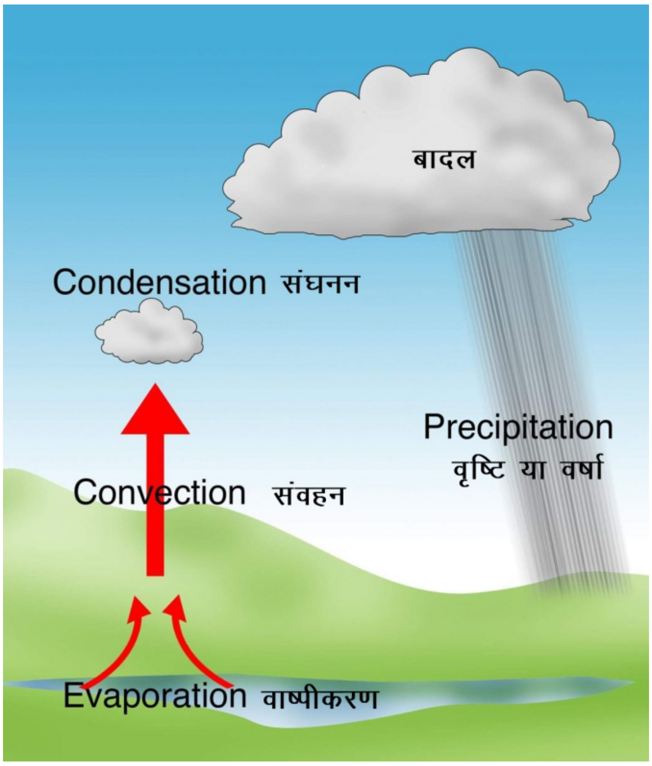

चित्र 15.1 : वाष्पीकरण, संवहन, संघनन एवं वर्षा

(1) ओसः दिन के समय पृथ्वी गर्म हो जाती है तथा रात्रि में ठण्डी, अतः कभी–कभी पृथ्वी का तल इतना अधिक ठण्डा हो जाता है कि उससे छूने वाली वायु का तापमान ओसांक से नीचे गिर जाता है। इससे वायु में उपस्थित जलवाष्प का संघनन हो जाता है तथा वह छोटी–छोटी बूँदों के रूप में पौधों की पत्तियों तथा अन्य प्रकार के तलों पर जम जाती है। इसे ओस कहते हैं। ओस बनने के लिए आवश्यक है कि (1) वायु में जलवाष्प हो और साथ ही (2) धरातल का तापमान इतना कम हो जाए कि वह वायु को ठण्डा करके वाष्प को धनीभूत कर सके।

(2) पालाः जब वायु में उपस्थित जलवाष्प धनीभूत हो रहा है और वायु का तापमान $0^{o}C$ हो या इससे कम हो तो जलवाष्प ओस का रूप न लेकर ठोस (हिमकण) का रूप लेने लगता है यही पाला है। पाला बनने के लिए आवश्यक है कि वायु का ताप शीघ्रता से व लम्बे समय तक गिरता रहे तथा आकाश मेघ रहित हो व वायु में जलवाष्प रहे तथा वायु का तापमान हिमांक से नीचे आ जाये।

(3) कोहराः इसकी उत्पत्ति धरातल के निकट जलवाष्प के संघनन होने से होती है। कोहरा वायुमण्डल की पारदर्शिता कम कर देता है। धरातल या वायुमण्डल की दृश्यता जब एक किलोमीटर से कम हो जाती है तो संघनित जलवाष्प के इस रूप को 'कोहरा' कहते हैं। कोहरे के लिए आवश्यक है तापमान का ओसांक से नीचे गिरना तथा मन्द गति से पवन का प्रवाह। दृश्यता के आधार पर कोहरा निम्न प्रकार का होता है– हल्का, साधारण, सघन तथा अति सघन। कोहरे की दृश्यता का मापन 'टांसमिसोमीटर' (Transmissometer) यंत्र द्वारा किया जाता है। दृश्यता अत्यधिक कम होने की दशा को 'कुहासा' (Mist) या धुंध कहा जाता है।

(4) बादल/मेघः वायुमण्डल में काफी ऊँचाई पर खुली स्वच्छन्द हवा में जलवाष्प के संघनन से बने कणों या हिमकणों की विशाल राशि को बादल कहा जाता है। बादल अधिकतम 12000 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। बादल का निर्माण पृथ्वी की सतह से कुछ ऊँचाई पर होता है इसलिए ये अलग–अलग आकार के होते हैं। अतः इनकी ऊँचाई, घनत्व, विस्तार तथा पारदर्शिता के आधार पर बादलों को निम्न रूपों में विभाजित किया गया है– (i) पक्षाभ मेघ (ii) कपासी मेघ (iii) स्तरी मेघ (iv) वर्षा मेघ।

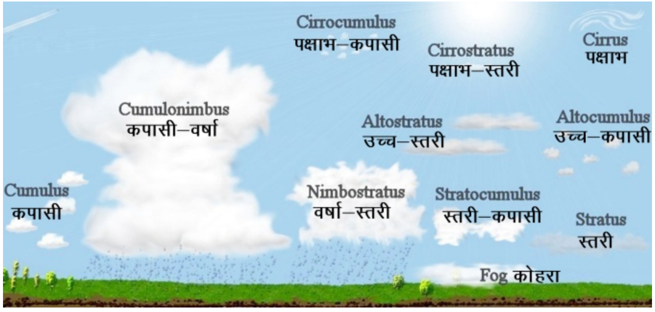

चित्र 15.2 : बादलों के प्रकार

(i) **पक्षाभ मेघः** ये सर्वाधिक ऊँचाई (8000 से 12000 मीटर) पर पाये जाते हैं। इनसे मौसम प्रायः साफ व आकाश स्वच्छ रहता है तथा वर्षा नहीं होती है। ये सफेद चादर की तरह सम्पूर्ण आकाश में फैले रहते हैं। इनके आगमन पर सूर्य तथा चन्द्रमा के चारों ओर प्रभामण्डल बन जाते हैं, जो चक्रवात आने के सूचक हैं।

(ii) **कपासी मेघः** अत्यधिक विस्तृत तथा गहरे काले रंग के सघन एवं भारी बादल होते हैं। इन बादलों से भारी वर्षा, ओला तथा तड़ित झंझा आदि आते हैं। ये रूई के समान दिखते हैं तथा इनकी ऊँचाई 4000 से 7000 मीटर तक होती है। इनकी आकृति गोभी के फूल के समान होती है।

(iii) **स्तरी मेघः** ये बादल कोहरे के समान होते हैं जो सतह के सबसे निकट पाये जाते हैं। इनकी रचना कई समान परतों से होती है। इनका निर्माण दो विपरीत स्वभाव वाली हवाओं के मिलने से प्रायः शीतोष्ण कटिबंध में शीत ऋतु में होता है।

(iv) **वर्षा मेघः** ये बादल घने एवं काले होते हैं। इनकी सघनता हो जाती है। अतः ये भाग वृष्टिछाया प्रदेश कहलाते हैं।

3. चक्रवातीय वर्षाः यह वर्षा शीत प्रधान देशों में होती है। इसमें चक्रवातों से वर्षा होती है। चक्रवातों में वायु केन्द्र की ओर तेजी से बढ़ती है और ऊपर उठने लगती है। समुद्र से होकर आने के कारण यह वायु जलवाष्प से भरी होती है। अतः जब ठण्डी ध्रुवीय वायु इसके सम्पर्क में आती है तब बीच में एक प्रकार का वाताग्र प्रदेश बन जाता है और वाष्पयुक्त गर्म वायु ठण्डी होकर वर्षा करती है जिसे चक्रवातीय वर्षा कहते हैं। यह वर्षा मूसलाधार नहीं होती बल्कि सालभर हल्की फुहारों के रूप में होती है। इस प्रकार की वर्षा शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के क्षेत्रों में होती है। शीत ऋतु में उत्तर पश्चिम भारत में भी चक्रवातों द्वारा वर्षा होती है।

समवृष्टि रेखाएँः संसार के मानचित्र पर समान वर्षा वाले स्थानों को मिलाती हुई जो रेखाएँ खींची जाती है उन्हें 'समवृष्टि रेखाएँ' या 'समवर्षा रेखाएँ' (Isohyets) कहते हैं।

वर्षामापीः वर्षा की माप एक विशेष प्रकार के यंत्र से होती है जिसे 'वर्षामापी यंत्र' (Rain gauge) कहते हैं। वर्षा इंचों या मिलिमीटरों में मापी जाती है।

वर्षा पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक

(i) अक्षांश (ii) ऊँचाई

(iii) प्रचलित पवनें (iv) जल धाराएँ

(v) समुद्र से दूरी (iv) जल व स्थल की स्थिति

(vii) पर्वत श्रेणियों की दिशा इत्यादि।

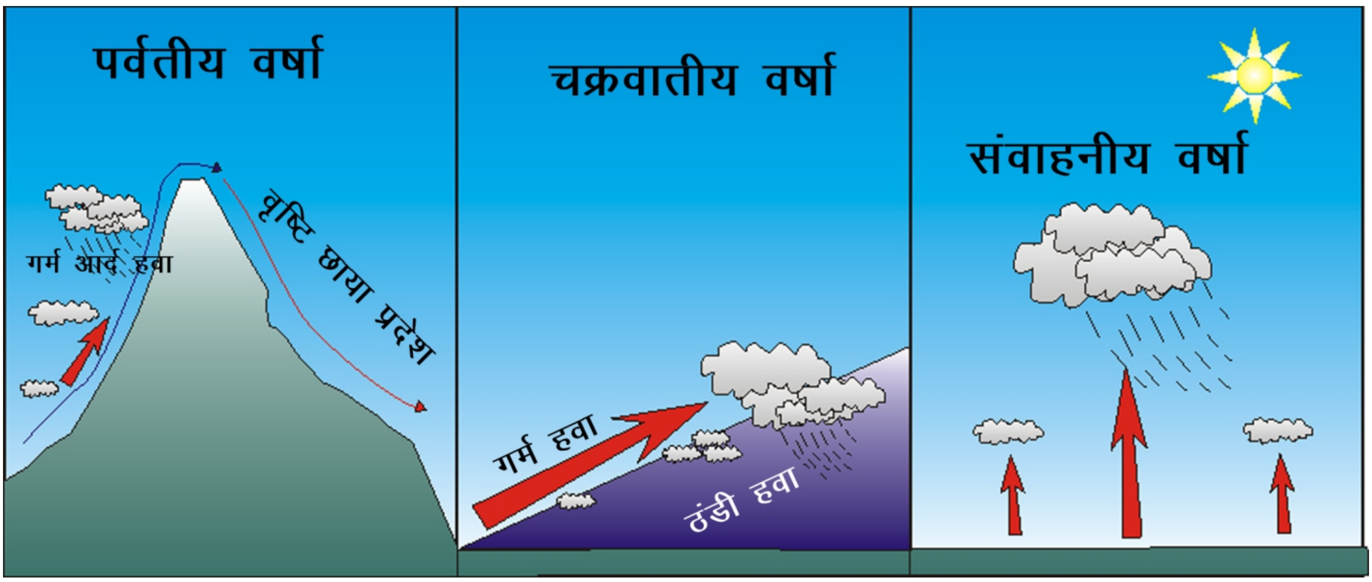

चित्र 15.3 : वर्षा के प्रकार

विश्व में वर्षा का वितरण

(Distribution of Rainfall)

पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है। धरातल पर वर्षा का वितरण बहुत ही असमान है। वर्षा कहीं 200 सेमी. से अधिक होती है, तो कहीं 20 सेमी. से भी कम। वर्षा के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों में तापमान, स्थल–जल का वितरण, हवाओं की दिशा, पर्वतों की दिशा आदि महत्वपूर्ण है। पृथ्वी पर वर्षा की निम्नलिखित 6 पेटियाँ हैं –

1. अत्यधिक वर्षा वाली विषुवत्‌रेखीय पेटी –

इस पेटी का विस्तार विषुवत् रेखा के दोनों ओर 10° अक्षांशों तक पाया जाता है। इसमें दक्षिणी अमेरिका की अमेजन घाटी, अफ्रीका का कांगो बेसिन, मध्य अमेरिका का पवनमुखी तटवर्ती क्षेत्र, न्यूगिनी, फिलीपाइन्स एवम् मेडागास्कर के पूर्वी तटीय क्षेत्र मुख्य हैं। यहाँ वार्षिक वर्षा 175 सेमी. से 200 सेमी. तक होती है। वर्षा मुख्य रूप से संवहनीय प्रकार की होती है। यहाँ प्रतिदिन मेघ गर्जन तथा विद्युत चमक के साथ दोपहर बाद वर्षा होती है।

2. व्यापारिक पवनों की वर्षा पेटी –

इस पेटी का विस्तार विषुवत् रेखा के दोनों ओर 10° से 20° अक्षांशों के बीच पाया जाता है। यहाँ व्यापारिक हवाओं द्वारा महाद्वीपों के पूर्वी भागों में वर्षा होती है। मानसूनी वर्षा भी इसी पेटी में आती है।

3. उपोष्ण कटिबन्धीय न्यूनतम वर्षा पेटी –

यह पेटी 20° से 30° अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में स्थित है। यह उच्च दाब की पेटी है, जिसमें हवाएँ ऊपर से नीचे उतरती हैं। अतः प्रतिचक्रवातीय दशाएँ पाई जाती हैं। मिश्र, सहारा, थार का मरूस्थल इसी पेटी में स्थित हैं। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 25 सेमी. से भी कम होता है।

4. भूमध्य सागरीय वर्षा पेटी –

इसका विस्तार 30° से 40° अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों के पश्चिमी समुद्रतटीय भागों में पाया जाता है। इसमें कैलीफोर्निया, मध्य चिली, दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिणी–पश्चिमी भाग तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया का दक्षिणी–पश्चिमी भाग आता है। यहाँ सर्दियों में पछुआ पवनों से वर्षा होती है। वर्षा साधारण तथा चक्रवातीय होती है। वर्षा का वार्षिक औसत 100 सेमी. तक रहता है। शुष्क ग्रीष्म ऋतु इस पेटी की विशेषता है क्योंकि इस समय यह पेटी शुष्क व्यापारिक हवाओं के प्रभाव में रहती है।

5. मध्य अक्षांशीय अधिक वर्षा की पेटी –

विषुवत् रेखा के दोनों ओर 40° से 60° अक्षांशों के मध्य यह पेटी पाई जाती है। यहाँ महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में अधिक वर्षा होती है। जलीय भाग की अधिकता के कारण उत्तरी

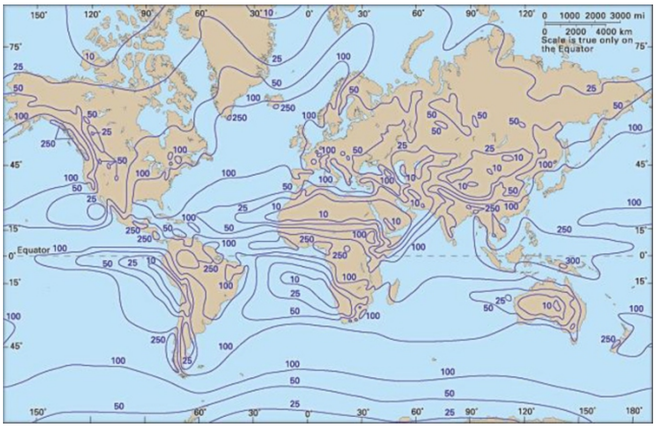

चित्र 15.4 : विश्व वर्षा वितरण (से.मी.)

गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में वर्षा अधिक होती है। यहाँ ध्रुवीय तथा पछुआ हवाओं के मिलने से चक्रवातीय वर्षा होती है। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 100 से 125 सेमी. तक होता है।

6. ध्रुवीय निम्न वर्षा पेटी –

इसका विस्तार 60° अक्षांश से ध्रुवों तक दोनों गोलार्द्धों में है। ध्रुवों की ओर वर्षा की मात्रा घटती जाती है। यहाँ अधिकांश वर्षा हिमपात के रूप में होती है। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 25 सेमी. तक होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा होती है, जिसक कारण बादल, वर्षा, हिम वर्षा, ओस, पाला, कुहरा आदि घटनाएँ होती है।
2. वायु में पाई जाने वाली जलवाष्प की मात्रा को आर्द्रता कहते है। यह निरपेक्ष एवम् सापेक्ष दो प्रकार की होती है।
3. वायु में उसकी जलवाष्प धारण की क्षमता के बराबर आर्द्रता

होती है तो उसे संतृप्त वायु कहते है। इसका तापमान से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

4. जलवाष्प के जल अथवा हिम में बदलने को संघनन कहते है। ओस, पाला, कुहरा, धुन्ध आदि संघनन के विभिन्न रूप हैं।
5. वर्षा संवहनीय, पर्वतीय और चक्रवातीय प्रकार की होती है।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. वायुमण्डलीय आर्द्रता का मापन किस यंत्र द्वारा किया जाता है?
   (अ) हाइड्रोमीटर (ब) हाइग्रोमीटर
   (स) आइसोबार (द) बैरोमीटर
2. वायुमण्डल में सर्वाधिक ऊँचाई पर स्थित मेघ है।
   (अ) पक्षाम मेघ (ब) स्तरी मेघ
   (स) कपासी मेघ (द) वर्षा मेघ
3. कोहरे की दृश्यता का मापन किया जाता है।
   (अ) हाइड्रोमीटर (ब) टांसमिसोमीटर
   (स) घन मीटर (द) मिली मीटर
4. विषुवतीय रेखिए प्रदेशों में दोपहर बाद होने वाली वर्षा कहलाती है।
   (अ) पर्वतीय वर्षा (ब) चक्रवातीय वर्षा
   (स) संवहनीय वर्षा (द) कोई नहीं
5. वायुमण्डल में मौजूद जलवाष्प की वास्तविक मात्रा कहलाती है।
   (अ) वाष्पीकरण (ब) सापेक्षिक आर्द्रता
   (स) निरपेक्ष आर्द्रता (द) संघनन

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न–

6. आर्द्रता क्या है?
7. निरपेक्ष आर्द्रता किसे कहते हैं?
8. चक्रवातीय वर्षा किसे कहते हैं?
9. वर्षण किसे कहते हैं?
10. कोहरा किसे कहते हैं?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. आर्द्रता किसे कहते हैं व इसके प्रकार बताइये?
12. सापेक्षिक आर्द्रता व निरपेक्ष आर्द्रता में अन्तर बताइये।
13. वाष्पीकरण क्या है?
14. बादलों के प्रकार बतायें?
15. समवृष्टि रेखाएँ किसे कहते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. वर्षा पर प्रभाव डालने वाले कारक बताइये।
17. संघनन किसे कहते हैं। संघनन के रूपों का वर्णन करें?
18. वर्षण को समझाते हुए वर्षा के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला – 1. ब 2. अ 3. ब 4. स 5. स

अध्याय – 16

जलवायु का वर्गीकरण
(Classification of Climate)

किसी स्थान पर ताप, वायुदाब, आर्द्रता, मेघ, वर्षा, पवनों का प्रवाह इत्यादि तत्वों को मौसम एवं जलवायु के तत्व कहते हैं। मौसम व जलवायु में अन्तर होता है।

मौसम – किसी स्थान पर किसी विशेष क्षण में मौसम के घटकों (जैसे तापमान, वायुदाब, पवन, आर्द्रता, वर्षा, मेघ) के संदर्भ में वायुमण्डल की अल्पकालीन दशाओं के योग को मौसम कहते हैं। मौसम सदैव बदलता रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो मौसम वायुमण्डल की क्षणिक अवस्था है।

जलवायु– जलवायु किसी स्थान विशेष के मौसम की औसत दशा को कहते हैं। जलवायु में एक विस्तृत क्षेत्र में दीर्घकाल की वायुमण्डलीय अवस्थाओं का विवरण होता है। अतः मौसम की तुलना में जलवायु शब्द का अर्थ व्यापक होता है। मोंकहाऊस (Monkhouse) के अनुसार ''जलवायु वस्तुतः किसी स्थान विशेष की दीर्घकालीन मौसमी दशाओं के विवरण को सम्मिलित करती है।

जलवायु का वर्गीकरण

संसार के विभिन्न क्षेत्रों पर विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक है, जिनमें सर्वप्रमुख अक्षांशों की स्थिति, सागर तट से दूरी, पर्वतीय अवरोध, समुद्री धारायें, पवनों की दिशा, सागर तल से ऊँचाई, विक्षोभ आदि है।

संसार की जलवायु के वर्गीकरण का प्रथम प्रयास प्राचीन यूनानवासियों ने किया था। उन्होंने तापमान के आधार पर संसार को तीन कटिबंधों 1. उष्ण कटिबंध, 2. शीतोष्ण कटिबंध व 3. शीत कटिबंध में विभाजित किया था। अतः जलवायु के विभिन्न आँकड़ों का संग्रह करके क्रमबद्ध रूप से गठित कर उनकी व्याख्या करना तथा इससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उनके क्षेत्रीय विवरण को स्पष्ट करना ही जलवायु का वर्गीकरण कहलाता है। कोई भी जलवायु वर्गीकरण अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसलिए सामान्यीकृत वर्गीकरण किए जाते हैं। विश्व के अनेक विद्वानों ने जलवायु का वर्गीकरण किया है जिनमें कोपेन, मिलर, थार्नवेट, टिवार्था प्रमुख हैं।

जलवायु मानव की सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं पर व्यापक प्रभाव डालती है। जलवायु इस बात का निश्चय करती है कि पृथ्वी पर मानव कहाँ रह सकता है और विकास कर सकता है। कौन–कौन से व्यापार एवं खेती कर सकता है। मनुष्य के व्यवसाय, व्यापार, स्वास्थ्य, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता आदि पर जलवायु का व्यापक प्रभाव होता है।

कोपेन के अनुसार जलवायु का वर्गीकरण

जर्मनी के प्रसिद्ध जलवायुवेत्ता ब्लॉडिमिर कोपेन ने विश्व की जलवायु का वर्गीकरण सर्वप्रथम 1900 में प्रस्तुत किया, जिसका आधार संसार के वनस्पति प्रदेश थे। उन्होंने अपने वर्गीकरण को 1900 से 1936 के दौरान कई बार संशोधित भी किया। कोपेन ने वर्गीकरण का आधार तापमान, वर्षा तथा उनके मौसमी स्वभावों को माना। उन्होंने इन तत्वों का वनस्पति के साथ संबंध जोड़ने का प्रयास किया, क्योंकि उनको विश्वास था कि जलवायु की सम्पूर्णता का सबसे अच्छा दर्शन प्राकृतिक वनस्पति में मिलता है। इस प्रकार कोपेन ने जलवायु के वर्गीकरणी की

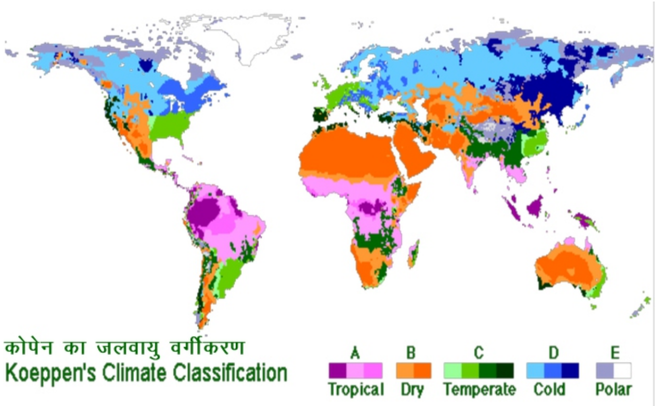

चित्र 16.1 : कोपेन के अनुसार जलवायु का वर्गीकरण

ऐसी मात्रात्मक पद्धत्ति अपनाई जो जलवायु का वनस्पति से गहरा संबंध स्थापित कर सके। कोपेन ने संसार की जलवायु को पाँच मुख्य भागों में बाँटने के लिए अंग्रेजी के बड़े अक्षरों A, B, C, D तथा E का प्रयोग करते हुए उपविभाग किये गये हैं, जिनके लिए बड़े अक्षरों के साथ छोटे अक्षरों का प्रयोग किया गया है।

कोपेन के जलवायु का वर्गीकरण का विवरण

सारणी 16.1 कोपेन के अनुसार जलवायु वर्गीकरण

जलवायु के वर्ग		लक्षण
A	उष्ण–कटिबंधीय, आर्द्र जलवायु	तापमान सभी महिनों में $18^\circ c$ से सदैव ऊँचा रहता है। शीत ऋतु का अभाव वाष्पीकरण की अपेक्षा वर्षा अधिक।
B	शुष्क जलवायु	वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक, जल का अभाव
C	उष्ण–शीतोष्ण आर्द्र जलवायु	ग्रीष्म व शीत दोनों ऋतु पाई जाती है। सबसे ठण्डे महिने का औसत तापमान $18^\circ c$ से कम तथा $3^\circ c$ से अधिक होता है।
D	शीत–शीतोष्ण जलवायु	कठोर शीत ऋतु, शरद काल में औसत तापमान– $3^\circ c$ से कम तथा ग्रीष्मकाल का औसत तापमान $10^\circ c$ से अधिक रहता है।
E	ध्रुवीय जलवायु	ग्रीष्म ऋतु का अभाव, सबसे गर्म माह का औसत तापमान $10^\circ c$ से कम रहता है।

निम्नानुसार है–

1\. A ऊष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु– यहाँ पर वर्ष के प्रत्येक महीने में औसत तापमान $18^\circ c$ से अधिक रहता है। इस जलवायु में शीत ऋतु का अभाव होता है। यहाँ वर्ष भर वर्षा होती है। यहाँ पर वाष्पीकरण की अपेक्षा वर्षा सदैव अधिक होती है। वर्षा, ताप तथा शुष्कता के आधार पर इसके तीन उप विभाग किये गये हैं।

(i) Af- ऊष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु– जहाँ पर वर्ष भर वर्षा हो, वार्षिक तापान्तर बिल्कुल नहीं होता तथा शुष्कता का अभाव है।

(ii) Am- ऊष्ण कटिबंधीय मानसूनी वर्षा– इसे मानसूनी जलवायु भी कहते हैं। यहाँ पर वर्षा की अधिकता होने के कारण वन भी अधिक मिलते हैं। यहाँ एक लघु शुष्क ऋतु पाई जाती है।

(iii) Aw- ऊष्ण कटिबंधीय आर्द्र एवं शुष्क जलवायु– इसे ऊष्ण कटिबंधीय सवाना जलवायु भी कहते हैं। यहाँ पर वर्ष भर उच्च तापमान रहता है। यहाँ पर ग्रीष्मकाल में वर्षा तथा शीतकाल शुष्क रहता है।

2\. B शुष्क जलवायु– इसमें वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक होता है। अतः यहाँ अतिरिक्त जल की कमी रहती है। तापमान तथा वर्षा के कारण इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) BS- स्टैपी प्रदेश– यहाँ वर्षा की मात्रा शुष्क घास के लिए उपयुक्त रहती है।

(ii) BW- मरूस्थलीय प्रदेश– यहाँ वर्षा की मात्रा वनस्पति के लिए अपर्याप्त होती है। ये स्टैपी तथा मरूस्थलीय जलवायु को तापमान के आधार पर दो–दो उप विभागों में बाँटा गया है।

(i) BSh- ऊष्ण कटिबंधीय स्टैपी जलवायु

(ii) BSk- शीत स्टैपी जलवायु

(iii) BWh- ऊष्ण कटिबंधीय मरूस्थलीय जलवायु

(iv) BWk- शीत कटिबंधीय मरूस्थलीय जलवायु

3\. C ऊष्ण शीतोष्ण आर्द्र जलवायु– इसे सम शीतोष्ण आर्द्र जलवायु भी कहते हैं। यहाँ पर सबसे ठण्डे महीने का औसत तापमान $18^\circ c$ से कम तथा तथा $3^\circ c$ से अधिक होता है। यहाँ पर ग्रीष्म व शीत दोनों ऋतु पाई जाती

है। इसमें शीत ऋतु कठोर नहीं होती। वर्षा के मौसमी वितरण के आधार पर निम्नलिखित तीन भाग किये गये हैं–

(i) Cf- वर्ष पर्यन्त

(ii) Cw- ग्रीष्मकाल में अत्यधिक वर्षा

(iii) Cs- शीतकाल में अधिक वर्षा

इसके अन्य उप विभाग a- गर्म ग्रीष्म काल, b- शीत ग्रीष्म काल, c- अल्पकालिक ग्रीष्म काल।

4. D शीत शीतोष्ण जलवायु– इस जलवायु में सर्वाधिक ठण्डे महिने का तापमान $-3^{\circ}c$ से कम होता है तथा सबसे गर्म महिने का औसत तापमान $10^{\circ}c$ से अधिक होता है। यहाँ पर कोणधारी वन पाये जाते हैं। इसके दो मुख्य उप विभाग है–

(i) Df- वर्ष पर्यन्त वर्षा

(ii) Dw- ग्रीष्मकाल में वर्षा, शीत ऋतु शुष्क

5. E ध्रुवीय जलवायु– (i) ET- टुण्ड्रा तुल्य जलवायु– इसमें ग्रीष्मकालीन तापमान $0^{\circ}c$ से $10^{\circ}c$ के मध्य रहता है।

(ii) EF- हिमाच्छादित जलवायु– यहाँ ग्रीष्मकालीन तापमान $0^{\circ}c$ से कम रहता है। यहाँ पर वर्ष भर बर्फ जमीं रहती है।

इस प्रकार कोपेन ने संक्षिप्त सूत्रों के आधार पर वर्षा, तापमान, संबंधी गौण विशेषताओं का समावेश कर विश्व का जलवायु वर्गीकरण प्रस्तुत किया।

कुछ विद्वानों ने कोपेन के वर्गीकरण को अपर्याप्त माना है। जलवायुवेत्ता थार्नवेट, जोन्स, एकरमेन आदि ने इसकी आलोचना की है। उनका कहना है कि यह वर्गीकरण मैदानी भागों में तो उपयुक्त लगता है लेकिन पर्वतीय प्रदेशों के लिए भ्रमित करता है। सारे विश्व को पाँच मुख्य जलवायु प्रदेशों में बाँटना पर्याप्त नहीं है। लेकिन इन सबके बावजूद भी कोपेन के जलवायु वर्गीकरण को भौगोलिक शिक्षण में मान्यता दी जाती है, क्योंकि इस वर्गीकरण की लोकप्रियता इसकी सरलता के कारण है। अध्ययन एवं अध्यापन की सुविधा इस जलवायु वर्गीकरण की सबसे बड़ी विशेषता है।

हरित गृह प्रभाव (Green House Effect)

अधिक ठण्डे प्रदेशों में, जहाँ सूर्यातप का सर्दियों में अभाव रहता है, विशेषकर फलों व सब्जी के पौधों को पैदा करने के लिए हरित गृहों का प्रयोग किया जाता है। इन हरित गृहों के शीशे से सूर्य की उष्मा अन्दर तो पहुँच जाती है, किन्तु दीर्घ तरंगों के रूप में होने वाला पुर्नविकिरण इन हरित गृहों से बाहर नहीं जा पाता है। परिणामस्वरूप हरित गृह के अन्दर तापमान बढ़ जाता है। पृथ्वी पर वायुमण्डल भी हरित गृहों के समान कार्य करता है। यह पृथ्वी पर औसत तापमान 35° सेल्शियस बनाए रखता है।

वायुमण्डल में पाई जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड गैस, जलवाष्प, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन आदि पृथ्वी पर हरित गृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं। सूर्य से आने वाली लघु तरंगीय किरणों को तो ये गैसें पृथ्वी तक आने देती हैं, किन्तु पृथ्वी से होने वाले दीर्घ तरंगीय विकिरण विशेषकर अवरक्त किरणों को सोख कर पुनः पृथ्वी की ओर भेज देती हैं। परिणामस्वरूप धरातलीय सतह निरन्तर गर्म होती रहती है। इस प्रभाव को ही हरित गृह प्रभाव कहते हैं।

जलवाष्प प्राकृतिक रूप से पृथ्वी को गर्म बनाए रखती है, परन्तु मानवीय कारणों से कार्बन डाईआक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन आदि गैसें पृथ्वी पर हरित गृह प्रभाव उत्पन्न कर रही हैं। इन गैसों को 'हरित गृह गैसें' भी कहते हैं। हरित गृह प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैसों में कार्बन डाईऑक्साइड प्रमुख है। वायुमण्डल में इसकी मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

तीव्र औद्योगिकीकरण तथा वाहनिक प्रदूषणों के कारण इसकी मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। कोयला, खनिज तेल, लकड़ी आदि के जलने, प्राणियों की श्वसन क्रिया, ज्वालामुखी उद्‌गार, वनस्पतियों के सड़ने–गलने आदि के कारण वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। मीथेन की उत्पत्ति धान की खेती, प्राकृतिक दलदली भूमियाँ, खनन, दीमक, जैवीय पदार्थों के जलने आदि से होती है। नाइट्रस ऑक्साइड मुख्यतः नाइट्रोजन युक्त खादों के प्रयोग, जैविक पदार्थों एवं जीवाश्मी ईंधनों के जलने से उत्पन्न होती है। नायलोन के औद्योगिक उत्पादन से भी इसकी मात्रा बढ़ती है। क्लोरो फ्लोरो कार्बन का निर्माण रासायनिक क्रियाओं द्वारा होता है। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों के अनुसार हरित गृह प्रभाव में कार्बन डाइ–ऑक्साइड का योगदान 57 प्रतिशत, मीथेन का योगदान 18 प्रतिशत, नाइट्रस ऑक्साइड का योगदान 6 प्रतिशत, क्लोरो

फ्लोरो कार्बन का योगदान 17 प्रतिशत होता है।

हरित गृह प्रभाव के प्रमुख दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं :

1. तापमान में वृद्धि :– पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्धि मानव जनित हरित गृह प्रभाव का एक प्रमुख दुष्परिणाम है। प्रकृति में हरित गृह गैसों का बढ़ना इसका प्रमुख कारण है। तापमान में वृद्धि के कारण पृथ्वी पर अनेक जलवायु परिवर्तन होंगे। मौसम में हो रही विसंगतियाँ इसी का परिणाम है।

2. वर्षा में वृद्धि :– पृथ्वी का तापमान बढ़ने से जलीय भागों से वाष्पीकरण अधिक होगा। परिणामस्वरूप वर्षा अधिक होगी।

3. ध्रुवों का बर्फ पिघलना :– पृथ्वी पर तापमान में वृद्धि के कारण ध्रुवों एवम् पर्वत चोटियों की बर्फ पिघलने लगेगी।

4. समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि :– विश्व के औसत तापमान में वृद्धि के कारण ध्रुवीय तथा पर्वतीय क्षेत्रों की बर्फ पिघलने से समुद्रों का जलस्तर ऊपर उठेगा। परिणामस्वरूप अनेक समुद्र तटीय भाग जल में डूब जाएंगे।

5. कृषि पर प्रभाव :– वर्षा के प्रतिरूप में परिवर्तन होने से कृषि भी प्रभावित होगी।

6. जीव जन्तुओं एवम् वनस्पतियों पर प्रभाव :– जिन जीव–जन्तुओं की ताप सहन करने की क्षमता कम है, वे नष्ट हो जाएंगे। समुद्री जलस्तर में वृद्धि होने से तटवर्ती भागों की वनस्पति जलमग्न हो जाएगी। विश्व में जैव विविधता का ह्यास होगा।

हरित गृह प्रभाव को नियंत्रित करने के उपाय

हरित गृह प्रभाव के कारण सम्पूर्ण जैव मण्डल के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। इस प्रभाव को नियंत्रित करने के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं :–

1. हरित गृह प्रभाव के लिए सर्वाधिक योगदान करने वाली गैस कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में हो रही वृद्धि पर रोक लगानी होगी। इसके लिए जीवाश्मी ईंधनों के जलाने में कमी करनी होगी। वैकल्पिक ऊर्जा साधनों का अधिक प्रयोग करना होगा।
2. बड़े स्तर पर हो रहे वन विनाश को रोकने के साथ ही वन क्षेत्रों का विस्तार किया जाना चाहिए।
3. जनसंख्या वृद्धि को रोकने के कारगर उपाय करने होंगे।
4. वाहनों तथा उद्योगों में ऐसे उपकरण लगाए जाएं, जिससे प्रदूषित गैसें कम से कम निकलें तथा वायुमण्डल में जाने से पूर्व ही उनका विघटन हो जाए।
5. क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उत्पादन को निम्नतम स्तर पर लाने का प्रयास हों।
6. रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग सीमित मात्रा में किया जाए। इनके स्थान पर जैविक खादों का उपयोग किया जाना चाहिए।

भूमण्डलीय ऊष्मन (Global Warming)

हरित गृह गैसों में वृद्धि के कारण पृथ्वी का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है। पेड़–पौधों द्वारा उपयोग की गई कार्बन डाई–ऑक्साइड से अधिक मात्रा उद्योगों एवम् मोटर वाहनों द्वारा विसर्जित की जा रही है। परिणामस्वरूप वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड गैस की मात्रा में 2 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। यह गैस भारी होने के कारण वायुमण्डल के निचले भाग में धरातल के समीप ही एक परत के रूप में जमा हो जाती है। यह परत पृथ्वी से होने वाले पार्थिव विकिरण को वापस पृथ्वी की ओर लौटा देती है। इसके कारण पृथ्वी पर तापमान में वृद्धि होती है। पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि को ही भूमण्डलीय ऊष्मन कहते हैं।

सन् 1400 के बाद से अब तक के तापमानों का अध्ययन करके वैज्ञानिकों ने पाया है कि वर्ष 1990, 1995 और 1997 अब तक के सबसे गर्म वर्ष रहे हैं। ऐसा अनुमान है कि पिछले 50 वर्षों में पृथ्वी का औसत माप 1^{0} सेल्शियस बढ़ा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि 21 वीं सदी के मध्य तक वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड गैस की मात्रा औद्योगिक युग (सन् 1860) से पूर्व की तुलना में दुगनी हो जाएगी। इसके परिणामस्वरूप सन् 2050 तक पृथ्वी का औसत तापमान 1.50 से 4.5 सेल्शियस तक बढ़ सकता है।

राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, संयुक्त राज्य अमरीका (2015, National Academy of Sciences, US) द्वारा 3000 वर्षों से अधिक काल में हुए विश्व ऊष्मन से महासागरीय जलस्तर में वृद्धि का अध्ययन किया। अकादमी अनुसार अगर विश्व ऊष्मन इसी प्रकार चलता रहा तो इस सदी के अन्त तक 1.5 मीटर महासागरों का जलस्तर बढ़ जाने की सम्भावना है। इससे विश्व में तटीय क्षेत्रों में निवास करने वाली लगभग 20 करोड़ से अधिक जनसंख्या प्रभावित होगी। इससे चीन, भारत, जापान, इण्डोनेशिया, वियतनाम, बांगलादेश, मालद्वीव एवं प्रशान्त महासागर के हजारों द्वीपीय देश सर्वाधिक प्रभावित होंगे। संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट अनुसार बांगलादेश का 16 प्रतिशत क्षेत्र तथा 15 प्रतिशत जनसंख्या इस खतरे से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े है। प्रशान्त

महासागर के अनेकों द्वीप जैसे टोरा, सोलोमन, मार्शल, नौरू, तुवालु आदि निम्नतलीय द्वीपों वाले देश जो कोरल एवं ज्वालामुखी से बनें है, इनका अस्तित्व ही खतरे में है।

> किरबाती एवं कई अन्य द्वीपीय देख **'गौरव संग स्थानान्तरण' (Migration with dignity)** की नीति अपनाते हुए विश्व रूपी मंचों पर गुहार लगा रहे है। किरबाती (Kirbati) प्रवाल द्वीप समुह देश से बाहर जाने वाले तो बहुत होंगे लेकिन महासागरीय जलस्तर बढ़ जाने के कारण अपने घर वापस आने की सम्भावना नहीं होगी। इस जलवायवीय कारणों से भविष्य में मानव जनसंख्या के स्थानान्तरण बड़े पैमाने पर होने वाले है। अतः विश्वस्तर पर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक सामन्जस्य स्थापित करना सभी की नैतिक एवं मानवीय जिम्मेदारी होनी चाहिए।

भूमण्डलीय ऊष्मन के प्रभाव (Impact of Global Warming)

पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के निम्नलिखित प्रभाव होंगे :

1. तापमान में वृद्धि के कारण जलवायु में बहुत बड़े परिवर्तन होंगे। वर्तमान में मौसम में देखी जा रही विसंगतियाँ इसी तापमान वृद्धि का परिणाम है।

2. पृथ्वी के तापमान में वृद्धि से वर्षा के प्रारूप में व्यापक परिवर्तन होगा। तापमान बढ़ने से जलीय भागों का वाष्पीकरण अधिक होगा। अधिक जलवाष्प तथा तापमान से वर्षा अधिक होती है। फलस्वरूप ऋतु चक्र बदल जाएगा। ग्रीष्मकाल की अवधि बढ़ेगी तथा शीतकाल की कम होगी।

3. भूमण्डलीय ऊष्मन के कारण एलनीनो प्रभाव में वृद्धि होगी तथा चक्रवातों की आवृति बढ़ेगी।

4. विश्व के औसत तापमान में वृद्धि के कारण ध्रुवीय क्षेत्रों तथा पर्वतीय शिखरों की बर्फ पिघलने से समुद्रों का जलस्तर ऊपर उठेगा। इसके फलस्वरूप समुद्र तटीय भाग जलमग्न हो जाएंगे। महासागरों में स्थित द्वीप डूब जाएंगे।

5. तापमान में वृद्धि के कारण हिमनदों की बर्फ अधिक मात्रा में पिघलेगी। फलस्वरूप उनसे निकलने वाली नदियों में पानी की मात्रा बढ़ने से भीषण बाढ़ आ सकती है।

6. तापमान वृद्धि के कारण होने वाले ऋतु चक्र परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव कृषि पर पड़ेगा। इससे कृषि का प्रारूप बदल जाएगा तथा कृषि प्रणालियाँ बदल जाएंगी।

7. तापमान वृद्धि के कारण पेड़–पौधों एवम् जीव–जन्तुओं का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।

भूमण्डलीय ऊष्मन को नियंत्रित करने के उपाय (Measures Preventing global Warming Effects)

विश्व के तापमान में हो रही वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए :

1. जीवाश्मी ईंधनों, जैसे – कोयला, खनिज तेल, गैस आदि के उपयोग में कमी की जानी चाहिए। इनके स्थान पर वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग किया जाना चाहिए।
2. पृथ्वी पर वृक्षारोपण करके वन क्षेत्रों का विस्तार किया जाना चाहिए।
3. जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया जाना चाहिए।
4. उद्योगों एवम् वाहनों में ऐसे उपकरण लगाए जाएं, जिससे इनके कारण होने वाला प्रदूषण कम हो।

जलवायु परिवर्तन (Climatic Change)

किसी स्थान की औसत मौसमी दशाओं को जलवायु कहते हैं। जब इन औसत मौसमी दशाओं (तापमान, वर्षा, आर्द्रता, दाब आदि) में परिवर्तन हो जाता है, तो उसे जलवायु परिवर्तन कहते हैं। पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास के अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पृथ्वी पर आरम्भ से जलवायु परिवर्तन हो रहे हैं। जहाँ वर्तमान में मरूस्थलीय प्रदेश हैं, वहाँ प्राचीनकाल में हरे–भरे खेत लहराते थे। इसी प्रकार जहाँ आज स्थलीय भाग हैं, वहाँ पहले जलीय भाग थे। इन परिवर्तनों के प्रमाण हैं। इन जलवायु परिर्तनों को शैलों के स्वरूप, शैल क्रम, झीलों व जलीय भागों में जमा निक्षेपों, जीवाश्मों, रेडियो आइसोटोप्स आदि के अध्ययनों के आधार पर प्रमाणित किया जाता है। इस बात के भी प्रमाण है कि पृथ्वी पर चुम्बकीय ध्रुवों की स्थितियों में परिवर्तन होते रहे हैं। पृथ्वी पर क्रमिक रूप से हिमयुगों का आगमन होता रहा है। इन हिमयुगों के समय पृथ्वी पर सभी भागों पर बर्फ की चादर फैल गई थी।

सन 1640 में वायुदाब मापी तथा थर्मामीटर एवम् सन् 1676 में वर्षामापी के आविष्कार के बाद जलवायु का व्यवस्थित अध्ययन किया जाने लगा। परिणामस्वरूप जलवायु परिवर्तनों का अध्ययन भी विधिपूर्वक होने लगा।

वर्तमान में पृथ्वी की जलवायु में निम्नलिखित प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं :

1. पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि हो रही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सन् 2050 तक पृथ्वी का तापमान 1.5° से 4.5°

सेल्शियस तक बढ़ जायेगा।

2. पृथ्वी पर वर्षा की मात्रा एवम् क्षेत्रीय वितरण तथा ऋतु चक्र में परिवर्तन हो रहा है।

3. हिमनदों की बर्फ पिघल रही है। फलस्वरूप वे पीछे की ओर सिकुड़ रहे हैं।

4. समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। इसके परिणामस्वरूप समुद्र तटीय भागों पर जल का विस्तार हो रहा है। मालदीव एवं असंख्य प्रशान्त महासागरीय द्वीप इस खतरे की चपेट में आ चुके हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. किसी स्थान विशेष पर किसी विशेष समय में वायुमण्डलीय दशाओं को 'मौसम' कहते हैं। किसी बड़े क्षेत्र पर लम्बी अवधि तक औसत मौसमी दशाओं को 'जलवायु' कहते हैं।
2. संसार की जलवायु का वर्गीकरण सर्वप्रथम प्राचीन यूनानियों द्वारा किया गया था। जर्मन विद्वान कोपेन ने तापमान तथा वर्षा के आधार पर जलवायु का वर्गीकरण किया। थार्नवेट ने जलवायु का वर्गीकरण तापमान, वर्षा तथा वाष्पीकरण के आधार पर किया।
3. ट्रीवार्था ने कोपेन के वर्गीकरण में संशोधन करके जलवायु का अपेक्षाकृत सरल वर्गीकरण प्रस्तुत किया। ट्रीवार्था ने विश्व की जलवायु को कुल 6 प्रमुख समूहों में विभाजित किया।
4. 'हरित गृह प्रभाव' के कारण पृथ्वी का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है। कार्बन–डाई–ऑक्साइड, जलवाष्प, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन आदि गैसें इस हरित गृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं।
5. हरित गृह प्रभाव के कारण समस्त जैवमण्डल को खतरा उत्पन्न हो गया है। पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि को 'भूमण्डलीय ऊष्मन कहते हैं।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. कोपेन ने जलवायु का वर्गीकरण कितने भागों में किया है?
   (अ) 4 (ब) 5
   (स) 7 (द) 9
2. कोपेन के अनुसार E वर्ग की जलवायु है –
   (अ) शुष्क जलवायु (ब) ध्रुवीय जलवायु
   (स) शीत शीतोष्ण (द) आर्द्र जलवायु
3. किस जलवायु में वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक होता है?
   (अ) शुष्क जलवायु (ब) ध्रुवीय जलवायु
   (स) शीत शीतोष्ण (द) पर्वतीय जलवायु
4. Am जलवायु है–
   (अ) ऊष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु
   (ब) ऊष्ण कटिबंधीय मानसूनी जलवायु
   (स) स्टेपी जलवायु
   (द) मरूस्थलीय जलवायु
5. कोपेन ने जलवायु का सर्वप्रथम वर्गीकरण प्रस्तुत किया–
   (अ) 1990 (ब) 1901
   (स) 1936 (द) 1952

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. कोपेन के अनुसार A जलवायु से क्या तात्पर्य है?
7. BW जलवायु से क्या तात्पर्य है?
8. वाष्पीकरण की अपेक्षा अधिक वर्षा किस जलवायु के लक्षण है?
9. ग्रीष्मऋतु का अभाव किस जलवायु में पाया जाता है?
10. किस जलवायु प्रदेश में वर्ष भर वर्षा होती है?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. कोपेन ने विश्व को कितने जलवायु प्रदेशों में बाँटा है, संक्षेप में बताइये?
12. मौसम व जलवायु में क्या अन्तर है?
13. जलवायु किसे कहते हैं?
14. जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक बतायें।
15. ध्रुवीय जलवायु के लक्षण बतायें।

निबंधात्मक प्रश्न –

16. कोपेन के जलवायु वर्गीकरण के आधार बताते हुए जलवायु प्रदेशों का वर्णन करें।
17. मौसम एवं जलवायु में अन्तर बताते हुए कोपेन के जलवायु के प्रमुख पाँच वर्गीकरणों के लक्षण बतायें।
18. शुष्क जलवायु एवं ऊष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु का तुलनात्मक वर्णन करें।

उत्तरमाला – 1. ब 2. ब 3. अ 4. ब 5. अ

इकाई – 5

अध्याय – 17

जलीय चक्र एवं जलराशियों का वितरण

(Hydrological Cycle and Distribution of Waterbodies)

जलीय चक्रः

इसे जल चक्र भी कहते हैं। इसमें जल की गति और उसका गैस, तरल और ठोस अवस्था में परिवर्तन सम्मिलित रहता है। इसकी मुख्य प्रक्रिया संघनन है। जिसके द्वारा वर्षा होती है। पृथ्वी पर अथवा भूमिगत जल का संचयन और प्रवाह, वाष्पीकरण और आर्द्रता का वाहन सम्मिलित है। अतः जलीय चक्र में जल की जल मण्डल, वायु मण्डल तथा स्थल मण्डल पर नियमित चक्रीय अवस्था को सम्मिलित किया जाता है। संघनन एवं वाष्पीकरण के बारे में हम पूर्व के अध्याय में पढ़ चुके हैं।

जल सागरों, झीलों, नदियों, स्थल भाग, पौधों आदि से वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायु मण्डल में पहुँचाता है तथा बदलती मौसमी दशाओं के अन्तर्गत संघनन द्वारा बादल बनकर यह जलराशि पुनः वर्षा के रूप में जल मण्डल तथा स्थल मण्डल पर पहुँचती है।

जल की विभिन्न रूपों में सम्पन्न होने वाली चक्रीय अवस्थाएँ जलीय चक्र कहलाती है। जल चक्र में जल का परिसंचरण विभिन्न परिमण्डलों में भी स्वतंत्र रूप से होता है। इसमें वायुमण्डल में वायु का उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज परिसंचरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर नमी का स्थानान्तरण, जल मण्डल में सागरीय धाराओं द्वारा जल संचलन तथा स्थल मण्डल से नदियों एवं हिमनदों द्वारा जल सागरों की ओर जाता है। इसी प्रकार मृदा से वाष्पीकृत एवं पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जित स्थल से अन्तः स्पन्दन द्वारा भूमि में पहुँचाता है। प्रतिवर्ष पृथ्वी पर उपलब्ध जल का 1 प्रतिशत जल ही जलीय चक्र में संचारित होता है। जल चक्र में सहभागी जल का बड़ा भाग ही शुद्ध जल है। शेष भाग स्थायी हिम के रूप में जमा हुआ है। जल चक्र में नदियों की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि स्थल से महासागरों तथा सागरों की ओर जल को प्रवाहित करती है। अतः महासागरों, हिम टोपियों तथा शैलों में जल लम्बे समय तक संचित रहता है, जबकि नदियों तथा वायु मण्डल में कम समय तक ही संचय रह पाता है।

जल चक्र की क्रियाविधि :

जल का वाष्प में परिवर्तित होकर वायु मण्डल में जमा होना अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिस पर मौसम परिवर्तन निर्भर करता है। पृथ्वी पर संचालित होने वाले जल चक्र के मध्य अनेक ऐसे अभिकरण होते हैं जो जल की गतिशीलता को प्रभावित करते हैं। सूर्य से प्राप्त उर्जा के कारण महासागरों का जल वाष्प का रूप धारण कर वायुमण्डल में प्रवेश करता है। महासागरों से स्थल की ओर चलने वाली पवन इस जलवाष्प को गति देती है तथा उनको एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर स्थानान्तरित करती है। इससे जलवाष्प संघनित होकर धरातल पर वर्षा कराती है तथा वर्षा से प्राप्त जल नदी–नालों के रूप में धरातल पर बहुता हुआ अन्त में सागरों में पहुँचता है। इस प्रकार वर्षा से प्राप्त इस जल का कुछ भाग वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन होने से कम हो जाता है तथा कुछ जल नदियों, झीलों, तालाबों आदि से वाष्पीकरण द्वारा पुनः वायु मण्डल में पहुँच जाता है।

जलीय चक्र की प्रमुख अवस्थाएँ– इसकी तीन प्रमुख अवस्थाएँ होती है।

(1) वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन– इनके द्वारा जल धरातल से वायु मण्डल में पहुँचता है।

(2) वर्षण– इसके द्वारा जल वायु मण्डल से पुनः पृथ्वी की सतह पर पहुँचता है।

(3) वायु संचरण– इसमें पवनें तथा मौसम तंत्र को शामिल किया गया है, जिसके द्वारा वायु मण्डल में जल का एक स्थान से दूसरे स्थान पर पुनः वितरण संभव होता है।

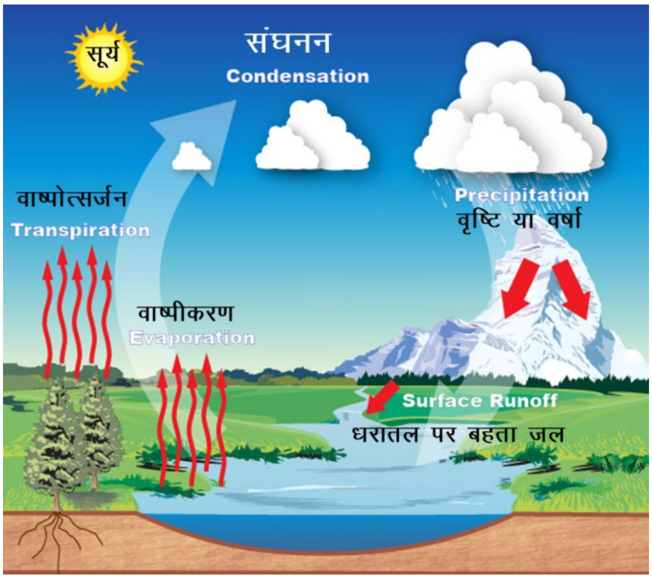

चित्र 17.1 : जलीय–चक्र

प्रकृति में जलीय चक्र का महत्व :

जल का वाष्प में परिवर्तित होकर वायुमण्डल में जमा होना अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिस पर मौसम परिवर्तन निर्भर करता है। अतः पृथ्वी तल पर जलीय चक्र अनेक जैविक क्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि जलीय संचार के बिना जल संतुलन बिगड़ जाएगा, जिससे जीवन असंभव हो जाएगा। प्रकृति में जलीय चक्र मानव, वनस्पतियों, जलवायु एवं समस्त प्राणिजगत के लिए जीने का आधार है।

जलराशियाँ (Waterbodies):

सम्पूर्ण पृथ्वी का क्षेत्रफल 50.995 करोड़ वर्ग किमी. है, जिसमें से 36.106 करोड़ वर्ग किमी. क्षेत्रफल पर जलमण्डल और 14.889 करोड़ वर्ग किमी. क्षेत्रफल पर स्थलमण्डल विस्तृत है। जलमण्डल और स्थलमण्डल के विस्तार के सम्बन्ध में सर्वप्रथम डॉ. लोंग (Dr. Long) ने सन् 1742 में पृथ्वी पर स्थल और जल का अनुपात 1:2.81 अर्थात् 26 प्रतिशत और 74 प्रतिशत बताया, जबकि वेगनर (Wegener) ने स्थल का विस्तार सम्पूर्ण पृथ्वी के 28.3 प्रतिशत और जल का विस्तार 71.7 प्रतिशत माना। वैज्ञानिकों द्वारा नवीन यंत्रों की सहायता से ध्रुवीय क्षेत्रों में किये गये अन्वेषणों के आधार पर स्थल और जल का अनुपात 1:2.43 अर्थात 29.2 प्रतिशत और 70.8 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। इन अन्वेषणों से यह भी ज्ञात हुआ है कि समस्त जलमण्डल का 43 प्रतिशत जल उत्तरी गोलार्द्ध और 57 प्रतिशत जल दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित है।

स्थल और जल के वितरण को अधिक स्पष्ट करने के लिए यदि हम पृथ्वी पर दो काल्पनिक गोलार्द्धों की रचना करें, तो स्थिति इस प्रकार होगी –

1. स्थलमण्डल को दर्शाने के लिए यदि फ्रांस के तट पर लॉयर नदी के मुहाने को केन्द्र तथा इस केन्द्र से सिंगापुर तक की दूरी को अर्द्धव्यास मानते हुए एक काल्पनिक गोलार्द्ध की रचना करें, तो इस गोलार्द्ध के 47.3 प्रतिशत भाग पर स्थल और 52.7 प्रतिशत भाग पर जल का विस्तार मिलेगा।
2. जलमण्डल को दर्शाने के लिए यदि न्यूजीलैण्ड के दक्षिणी पूर्वी भाग को केन्द्र और इस केन्द्र से सुमात्रा के उत्तरी–पूर्वी तट तक अर्द्धव्यास लेते हुए एक काल्पनिक गोलार्द्ध की रचना करें तो इस गोलार्द्ध के 90.5 प्रतिशत भाग पर जल और केवल 9.5 प्रतिशत भाग पर स्थल का विस्तार मिलेगा।

इसी प्रकार ग्लोब को ध्यान से देखने पर जल और स्थल के वितरण में निम्न दो विशेषताएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं–

1. जल और स्थल भाग एक दूसरे के विपरीत स्थित हैं, जैसे – प्रशान्त महासागर के विपरीत अफ्रीका का स्थल भाग, हिन्द महासागर के विपरीत अमेरिका का स्थल भाग और आर्कटिक महासागर के विपरीत अन्टार्कटिका का स्थल भाग स्थित है।
2. महाद्वीपों और महासागरों का आकार लगभग त्रिभुजाकार है। महासागरों का आधार दक्षिणी गोलार्द्ध में तथा शीर्ष उत्तर में है, वहीं महाद्वीपों का आधार उत्तर में और दक्षिण की ओर है।

विश्व की जलराशियों के अन्तर्गत विशाल महासागरों (प्रशान्त, अटलांटिक, हिन्द और आर्कटिक) के अतिरिक्त परावृत समुद्र जैसे भूमध्यसागर, लालसागर आदि, महाद्वीपों के किनारे स्थित खाड़ियाँ जैसे मन्नार की खाड़ी, बेफिन खाड़ी आदि और महाद्वीपों पर स्थित सागर व झीलें जैसे कैस्पियन सागर, वृहत झीलें, मृत सागर आदि सम्मिलित हैं। इन सभी का क्षेत्रफल एवम्

जलराशि के आयतन को निम्न सारणी में दर्शाया गया है।

सारणी 17.1 जलराशियों के क्षेत्रफल एवं आयतन का वितरण

क्र. सं.	जलराशि	क्षेत्रफल का प्रतिशत	आयतन का प्रतिशत
1.	महासागर (Oceans)	88.91	96.46
2.	परावृत समुद्र (Enclosed Seas)	0.63	0.03
3.	महाद्वीपों के किनारे स्थित खाड़ियाँ (Fringing Bays)	2.29	0.52
4.	महाद्वीपों पर स्थित सागर व झीलें (Inland Continental Seas & Lakes)	8.17	2.99

जिस प्रकार ऋतु विज्ञान में वायु राशियों का अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है, ठीक उसी प्रकार समुद्र विज्ञान में जलराशियों का विशिष्ट स्थान है। मध्य एवं निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों में क्षैतिजिक दिशा के विपरीत लम्बवत् दिशा में प्रवाहित जलराशियाँ विस्तृत क्षेत्रों में चलती है। गहराई के अनुसार लम्बवत् रूप में जल का घनत्व बढ़ जाता है तथा ध्रुवीय क्षेत्रों में लम्बवत् दिशा की अपेक्षा क्षैतिजिक रूप से जलराशियाँ चला करती है।

घनत्व के आधार पर विभिन्न जलराशियों के स्वभाव में अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। हेलैंड हेंसन के अनुसार समान तापमान और लवणता के जल में समान घनत्व का होना आवश्यक नहीं है। दूसरे शब्दों में भिन्न तापमान और लवणता की जलराशियों का घनत्व समान भी हो सकता है।

विभिन्न जलराशियों के स्वभाव का ज्ञान तथा उनका सीमांकन तापमान और लवणता का निरीक्षण करके किया जा सकता है। जिस प्रकार वायु मण्डल में परतें स्थित है उसी प्रकार महासागरों में भी परतें पाई जाती है। विषुवत रेखा के निकट मध्य अक्षांशों में सागर की सतह पर अधिक तापमान, कम लवणता एवं कम घनत्व की परत होती है जिसमें तीव्र गति वाली धाराऐं पाई जाती है। इसके नीचे अपेक्षाकृत अधिक घनत्व की परत होती है। अन्त में तली में तीसरी परत होती है, जिसका घनत्व सबसे अधिक होता है।

जलराशियों की संरचना में निम्न कारकों का प्रभाव पड़ता है।

(1) अक्षांशीय दूरी
(2) वर्षा अथवा हिम से स्वच्छ जल की प्राप्ति
(3) स्थायी पवनों की दिशा
(4) जल का डूबना या अपसरण
(5) समुद्री धारायें
(6) महासागरीय भँवर आदि।

जलराशियों का वितरण :

अधिकांश विद्वानों द्वारा तापमान और लवणता को ही आधार मानकर जलराशियों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। एक जलराशि में यह आवश्यक है कि उसके अधिक से अधिक भाग में तापमान और लवणता की समानता पाई जाये। विभिन्न सागरीय क्षेत्रों में एक समान तापक्रम लवण एवं घनत्व वाली जलराशियाँ प्रवाहित होती है परन्तु प्रशान्त महासागर एवं अटलांटिक महासागर की जलराशियों में काफी विभिन्नता रहती है। अटलांटिक महासागर में भूमध्यरेखीय जलराशि नहीं मिलती है। उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी भागों में भूमध्यरेखीय प्रशान्त जलराशि का विस्तार अधिक मात्रा में रहता है। इसी प्रकार उत्तरी प्रशान्त महासागर एवं उत्तरी एटलांटिक महासागर की केन्द्रीय जलराशि में काफी अन्तर है।

महासागरों में निम्न जलराशियाँ मुख्य रूप से प्रवाहित होती है जिनका विश्व वितरण निम्न प्रकार से है–

1. अन्टार्कटिक तलीय जल राशि– यह जलराशि अन्टार्कटिक महाद्वीप के निकट हिन्द एवं अन्ध महासागर के दक्षिण में पाई जाती है। महाद्वीपीय स्तर के समीप जल के द्रवणांक के कारण लवणता की मात्रा बढ़ती जाती है। इस भाग में जल की लवणता 34.62 रहती है तथा तापमान –1.9°c एवं घनत्व 27.89 होता है। हिमांक प्राप्त कर लेने से इस जल का घनत्व बढ़ जाता है तथा वह तली में बैठ जाता है क्योंकि समीपवर्ती सागर का जल अपेक्षाकृत उष्ण होता है जिसमें लवणता 34.68, तापमान 0.5°c तथा घनत्व 27.84 होता है। यह एक विशिष्ट प्रकार का जल है जो तली में फैलकर तथा मिश्रण द्वारा वह एक विशिष्ट जल राशि का रूप धारण कर लेता है।

2. उत्तरी अटलांटिक तटीय जलराशि– यह जलराशि लेब्रोडोर सागर तथा आइसलैंड व दक्षिणी ग्रीनलैंड के मध्य पाई

चित्र 17.2 : विश्व के महासागर

जाती है। यहाँ पर उत्तरी अटलांटिक सागरीय प्रवाह का उष्ण एवं लवण युक्त जल पूर्वी ग्रीनलैंड धारा के सम्पर्क में आकर ठण्डा हो जाता है और उसका घनत्व बढ़ जाता है। इस जल का अभिसरण 1,000 मीटर से भी अधिक गहराई में होता है। उस समय इसका घनत्व 27.88, लवणता 34.90 तथा तापमान $2.8^{\circ}c$ से $3.3^{\circ}c$ के मध्य होता है।

3. अन्टार्कटिक मध्यवर्ती जलराशि— यह अन्टार्कटिक झुकाव क्षेत्र के कारण उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्ति अन्टार्कटिक महाद्वीप के चारों ओर है। उत्पत्ति वास्तविक कारण रूप से विदित नहीं हो सका परन्तु इतना अवश्य है कि इसकी लवणता 33.8, तापमान $2.2^{\circ}c$ तथा घनत्व 27.0 सभी स्थानों पर समान होता है तथा व्रीव पछुआ पवनों की पेटी इसका प्रभाव क्षेत्र है।

4. उत्तरी प्रशान्त मध्यवर्ती जलराशि— यह उत्तरी प्रशान्त महासागर में उत्तर पूर्व की ओर 40° उत्तरी अक्षांश के निकट उत्पन्न होती है। इसके जल में ऑक्सीजन की कमी आँकी गई है। दक्षिणी तथा पश्चिमी दिशा में प्रसार के कारण अधःस्थल पर अन्य प्रकार का जल भी सम्मिलित हो जाती है। यही कारण है कि इस जलराशि का गुण अभिसरित होते हुए भी वैसा नहीं होता जैसा कि उसे होना चाहिए।

5. केन्द्रवर्ती जलराशियाँ— ये जलराशियाँ शीतकालीन उपोष्ण अभिसरण के क्षेत्रों में 35° से 42° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के मध्य उपस्थित मिलती है। इन जलराशियों में सतह पर तापमान व लवणता की मात्रा ऊँचे अक्षांशों की दिशा में घटती जाती है, किन्तु घनत्व बढ़ता जाता है। इन जलराशियों की मोटाई अधिक नहीं होती। इनकी अधिकतम गहराई 900 मीटर सारगोसा सागर में मिलती है। प्रशान्त, हिन्द तथा अटलांटिक महासागरों में उपस्थित इस जलराशि का तापमान व लवणता का संबंध एक समान नहीं है। इन जलराशियों में तापमान $-0.8^{\circ}c$ से $-1.2^{\circ}c$ तथा लवणता की मात्रा 34.89 से 34.92 प्रतिशत तक होती है।

6. भूमध्यरेखीय जलराशि— यह जलराशि प्रशान्त एवं हिन्द महासागर में भूमध्य रेखा के सहारे स्थित है। अटलांटिक महासागर की विशेष आकृति के कारण यह जलराशि इस सागर में बिल्कुल नहीं पाई जाती। यहाँ पर जल अधिक उष्ण पाया जाता है और जलराशि की मोटाई 100 से 200 मीटर के मध्य होती है। ऋतु परिवर्तन के साथ जल का तापमान व लवणता बदल जाते हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. जलमण्डल का कुल क्षेत्रफल 36,106 करोड़ वर्ग किमी और स्थलमण्डल का कुल क्षेत्रफल 14,889 करोड़ वर्ग किमी है, जो सम्पूर्ण धरातल का क्रमशः 70.8 प्रतिशत और 29.2 प्रतिशत है।
2. समस्त जलमण्डल का 43 प्रतिशत भाग उत्तरी गोलार्द्ध में और 57 प्रतिशत भाग दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित है।
3. जल और स्थल के वितरण की स्थिति को 2 गोलार्द्धों द्वारा स्पष्ट किया गया है।
4. जलीय चक्र प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य से जुड़ा है। इसके फलस्वरूप पृथ्वी को हमेशा स्वच्छ जल प्राप्त होता रहता है। इसमें वाष्पीकरण एवं संघनन की प्रमुख भूमिका होती है।

अभ्यास—प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न—

1. वायु मण्डल में औसत जल की मात्रा है।
   (अ) 1 इंच (ब) 2 इंच
   (स) 3 इंच (द) 4 इंच
2. जल की विभिन्न रूपों में सम्पन्न होने वाली चक्रीय अवस्थाएँ कहलाती है—
   (अ) वाष्पीकरण (ब) संघनन
   (स) जलीय चक्र (द) वर्षण
3. जलराशियों के स्वभाव में अन्तर स्पष्ट किया जाता है—
   (अ) लवणता से (ब) घनत्व से
   (स) तापमाप से (द) गहराई से

4. जल का कितना प्रतिशत भाग शुद्ध जल के रूप में मौजूद है?

(अ) 1.6 (ब) 2.6

(स) 3.6 (द) 4.6

5. केन्द्रवर्ती जलराशियाँ किन अक्षांशों के मध्य स्थित है?

(अ) 25° से 35° (ब) 35° से 45°

(स) 35° से 42° (द) 32° से 45°

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. जलराशियों को कितने भागों में विभाजित किया गया है?
7. जलीय चक्र की मुख्य प्रक्रिया क्या होती है?
8. प्रति वर्ष पृथ्वी पर उपलब्ध जल का कितना प्रतिशत जल जलीय चक्र में संचारित होता है?
9. जलीय चक्र की प्रमुख अवस्थाएँ कितनी होती है?
10. केन्द्रीय जलराशियों की अधिकतम गहराई कहाँ पर मिलती है?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. जलीय चक्र किसे कहते हैं?
12. जलीय चक्र की प्रमुख अवस्थाएँ बताईये?
13. जलीय चक्र की संरचना में किन कारकों का प्रभाव पड़ता है?
14. जलराशियों की संरचना में किन कारकों का प्रभाव पड़ता है?
15. केन्द्रवर्ती जलराशियाँ किसे कहते हैं?

निबंधात्मक प्रश्न–

16. जलीय चक्र एवं जलराशियों को समझाते हुए प्रकृति में जलीय चक्र का महत्व बताईये।
17. जलराशियों को स्पष्ट करते हुए जलराशियों का वितरण बताईये।
18. केन्द्रवर्ती जलराशि एवं भूमध्यरेखीय जलराशियों में अन्तर स्पष्ट करें।

उत्तरमाला – 1. अ 2. स 3. ब 4. ब 5. स

अध्याय – 18

महासागरीय जल की गतियाँ
(Movements of Ocean Water)

महासागरीय जल कभी भी स्थिर नहीं रहता है क्योंकि इस पर विभिन्न कारकों का प्रभाव पड़ता है। इसका संचरण एक अत्यधिक जटिल परिघटना है, जिसे नियंत्रित एवं प्रभावित करने वाले कारकों में विविधता पाई जाती है। वायु तथा महासागरीय जल के धर्षण से जल में उर्मिकाएँ या लहरें पैदा होती है। पवनों का प्रभाव सागरों के भीतर लगभग 100 मीटर की गहराई तक पड़ता है। महासागरों में तीन मुख्य प्रकार की गतियाँ होती है।

1. लहरें, 2. ज्वारभाटा 3. धाराएँ

1. महासागरीय लहरें या तरंगे– महासागरीय जल की सतह पर सदैव लहरें उठती व गिरती रहती है। रिचर्ड के मतानुसार– ''लहरें महासागर की तरल सतह का विक्षोभ है''। यह महासागरीय जल की सबसे व्यापक तथा सर्वत्र होने वाली गति है। महासागरीय लहरों की उत्पत्ति के दो मुख्य कारण है–

1. पवन का चलना तथा
2. भूपटल में गति होने से जल की सतह का तरंगित होना।

लहरें महासागरीय सतह की दोलायमान गति है। इसमें सागर के जल का स्तर नीचा या ऊँचा होता रहता है, परन्तु अपने स्थान से बहकर अन्य स्थान पर नहीं जाता। यदि कोई तैरने वाली वस्तु (जैसे– लकड़ी का टुकड़ा) जल स्तर पर फेंक दी जाए तो वह अपने ही स्थान पर ऊपर नीचे या आगे–पीछे होती रहेगी, जबकि तरंगे आगे बढ़ती दिखाई देंगी।

तरंग/लहरों की संरचना– तरंग के निम्न भाग होते हैं–

(1) तरंग श्रृंग– तरंग का एक भाग ऊपर उठा हुआ होता है जिसे तरंग श्रृंग कहते हैं।

(2) तरंग गर्त– तरंग का दूसरा भाग नीचे धँसा हुआ होता है जिसे तरंग गर्त कहते हैं।

(3) तरंग दैर्ध्य– दो तरंग श्रृंगों के बीच की दूरी को तरंग दैर्ध्य कहते हैं।

तरंग की गति– तरंग की गति उसके दैर्ध्य तथा आवृत–काल से संबंधित है और इसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है–

$$\text{तरंग की गति} = \frac{\text{तरंग–दैर्ध्य}}{\text{तरंग का आवृत–काल}}$$

लहर या तरंग बनने के कारण – लहरें मुख्यतः पवन के दबाव तथा घर्षण के कारण बनती है। तरंगों का आकार व बल तीन बातों पर निर्भर करता है।

(1) पवन की गति

(2) पवन के चलने की अवधि तथा

(3) पवन के निर्विघ्न बहने की दूरी

अतः यदि पवन की गति 160 किमी प्रति घण्टा की दर से 50 घण्टे तक 1600 किमी से अधिक दूरी तक निर्विरोध तथा निरन्तर चलती रहे तो वह जल में 15 मीटर ऊँची लहरों का निर्माण कर सकती है।

पवन द्वारा उत्पन्न तरंगे तीन प्रकार की होती है।

1. सी– जब कभी सागर में विभिन्न तरंग दैर्ध्य तथा दिशाओं वाली तरंगे एक साथ उत्पन्न हो जाती है तो एक अनियमित तरंग प्रारूप बन जाता है जिसे 'सी' कहते हैं।

2. स्वेल या महातरंग– जब तरंगे उन पवनों के प्रभाव क्षेत्र से

दूर चली जाती है जिन्होंने उन्हें बनाया है तब वे तरंगे एक समान ऊँचाई तथा आवर्त काल के साथ नियमित रूप धारण कर लेती है। इनको स्वेल या महातरंग कहते हैं।

3. सर्फ— जब तरंगे समुद्री तट के निकट पहुँचती है तो उनकी ढालें व्रीव हो जाती है और ऊँचाई बढ़ जाती है। तट पर पहुँचने के बाद ये वापस सागर की ओर आती है। तटीय क्षेत्रों में इन टूटती हुई तरंगों को सर्फ या फेनिल कहते हैं।

अन्य तरंगे— पवन निर्मित तरंगों के अलावा कई अन्य प्रकार की समुद्री तरंगे भी होती है। इनमें प्रलयकारी तरंगें (सुनामी), तूफानी तरंगे, अंतः तरंगे आदि प्रमुख है। इन तरंगों की रचना भूकम्प, ज्वालामुखी या महासागरीय भूस्खलन से होती है।

2. ज्वार भाटा (Tides)— ज्वार भाटा सागरीय जल की गतियों का महत्वपूर्ण प्रक्रम है, क्योंकि चन्द्रमा व सूर्य के आकर्षण से उत्पन्न ज्वारीय तरंगे नियमित रूप से ऊपर उठती तथा गिरती है। समुद्र का जलस्तर सदा एक सा नहीं रहता। यह समुद्री जल दिन में दो बार निश्चित अन्तराल पर ऊपर उठता तथा नीचे गिरता है। समुद्री जलस्तर के ऊपर उठने को ज्वार तथा नीचे उतरने को भाटा कहते हैं। ज्वार भाटा की उत्पत्ति पृथ्वी, चन्द्रमा तथा सूर्य की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण होती है। ज्वार भाटा का स्वभाव तथा ऊँचाई विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग होती है।

ज्वार भाटा की उत्पत्ति— ज्वार भाटा की उत्पत्ति का कारण चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी की पारस्परिक गुरूत्वाकर्षण शक्ति है। गुरूत्वाकर्षण द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी, सूर्य तथा चन्द्रमा की ओर खिंचती है। परन्तु इसका प्रभाव स्थल की अपेक्षा जल पर अधिक पड़ता है। यद्यपि सूर्य, चन्द्रमा से बहुत बड़ा है तो भी चन्द्रमा के गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव सूर्य के प्रभाव से लगभग दो गुना है। इसका कारण यह है कि सूर्य, चन्द्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से बहुत अधिक दूरी पर स्थित है।

ज्वार भाटा संबंधी विशेषताएँ :

(1) खुले सागरों एवं महासागरों में जल के निर्बाध रूप से बहने के कारण कम ऊँचा ज्वार उत्पन्न होता है। उथले समुद्रों तथा खड़ियों में ज्वारीय तरंगे अधिक ऊँची होती है।

(2) ज्वार तथा भाटा के बीच सागरीय सतह का अन्तर ज्वारीय परिसर कहलाता है।

(3) खुले सागरों में ज्वार का अन्तर कम होता है। उथले समुद्र व खाड़ियों में ज्वार का अन्तर अधिक पाया जाता है।

(4) ज्वार की ऊँचाई पर तटरेखा का प्रभाव पड़ता है।

(5) ज्वार भाटा का समय प्रत्येक स्थान पर भिन्न–भिन्न होता है।

ज्वार भाटा के समय में अन्तर

प्रत्येक स्थान पर ज्वार 12 घंटे 26 मिनट के अन्तराल के बाद आता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक चक्कर पूरा कर लेती है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर 12 घंटे बाद ज्वार उत्पन्न होना चाहिए लेकिन ऐसा नहीं होता। इस अन्तर का यह कारण यह है कि पृथ्वी का एक परिभ्रमण पूर्ण होने पर चन्द्रमा भी अपने पथ पर आगे बढ़ जाता है। चन्द्रमा 28 दिन में पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करता है। 24 घंटे या एक दिन में यह वृत का 1/28 भाग तय कर लेता है। पृथ्वी का वह स्थान चन्द्रमा के समक्ष पहुँचने में 52 मिनट लगता है। अतः प्रत्येक स्थान पर 12 घंटे 26 मिनट बाद दूसरा ज्वार आता है। इसको चित्र 18.2 की सहायता से समझा जा सकता है।

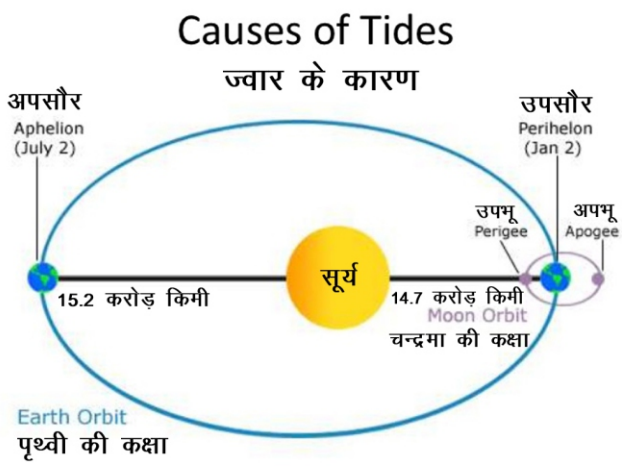

चित्र 18.1 : ज्वारभाटा व गुरूत्वाकर्षण बल के मध्य संबंध

ज्वार भाटा के प्रकार

पृथ्वी, चन्द्रमा तथा सूर्य की अपेक्षित स्थिति के अनुसार उनकी ऊँचाई घटती तथा बढ़ती रहती है। इस आधार पर ज्वार भाटे दो प्रकार के होते हैं–

(1) वृहत अथवा दीर्घ ज्वार

(2) लघु अथवा निम्न ज्वार

1. वृहत अथवा दीर्घ ज्वार– यह स्थिति पूर्णिमा तथा अमावस्या के दिन होती है। जब सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा तीनों एक सीध में होते हैं। यह स्थिति युत–वियुत अथवा सिजिगी कहलाती है। महीने में एक बार चन्द्रमा इतना पतला नजर आता है कि वह आकाश में चाँदी के एक डोरे की भाँति रह जाता है। इसके विपरीत एक बार चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होकर वह आकाश में पूर्ण रूप से खिला हुआ नजर आता है। हर महीने में इन दोनों बार सबसे वृहत अथवा दीर्घ ज्वार उत्पन्न होते हैं। जब सूर्य व चन्द्रमा दोनों पृथ्वी के एक ओर होते हैं तो उसे युति कहते हैं तथा जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच में पृथ्वी होती है तो उसे वियुति कहते हैं (Syzygy)। इस प्रकार युति की स्थिति अमावस्या को एवं वियुति की स्थिति पूर्णिमा को होती है। ऐसी स्थिति में पृथ्वी पर चन्द्रमा व सूर्य के सम्मिलित गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पड़ता है जिससे दीर्घ ज्वार का निर्माण होता है।

2. लघु ज्वार– ये साधारण ज्वार की अपेक्षा 20 प्रतिशत कम ऊँचे हाते हैं। महीने के दो दिन शुक्ल पक्ष व कृष्ण पक्ष की अष्टमी को जब सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा समकोण की स्थिति होते हैं, लघु ज्वार उत्पन्न होते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा में गुरूत्वाकर्षण एक दूसरे के विरूद्ध काम करते हैं। फलस्वरूप एक कम ऊँचाई वाले ज्वार का निर्माण होता है जिसे निम्न या लघु ज्वार कहते हैं।

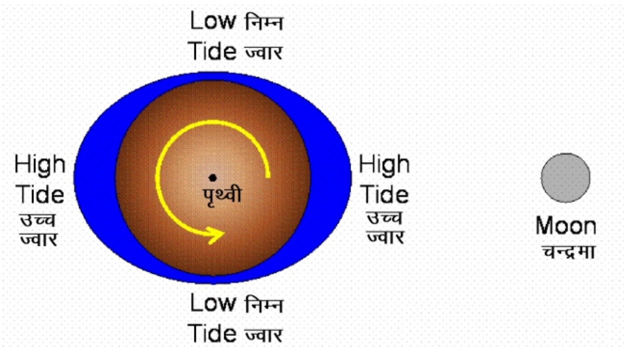

चित्र 18.2 : वृहत एवं लघु ज्वारभाटा

ज्वार भाटा के लाभ

1. ज्वार उर्जा के स्रोत हैं क्योंकि जल के ऊपर उठने तथा नीचे गिरने से उर्जा पैदा की जा सकती है। फ्रांस व जापान में ज्वारीय विद्युत का उत्पादन किया जाता है।
2. विश्व के बड़े बंदरगाह समुद्र से दूर नदी के मुहानों पर स्थित है (लंदन, कोलकाता आदि) ज्वारीय जल के साथ जलयान

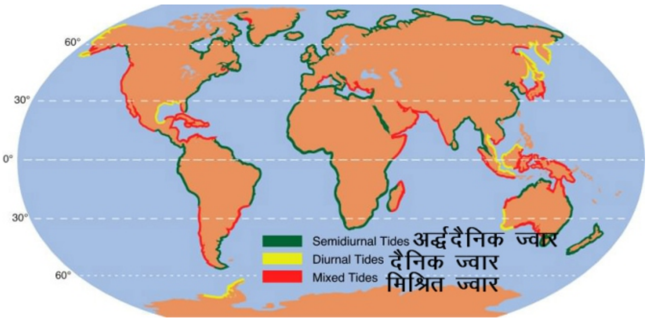

चित्र 18.3 : विश्व में ज्वार का वितरण

भीतर तक आ पाते हैं।
3. मछली पकड़ने वाले नाविक ज्वार के साथ खुले समुद्र में मछली पकड़ने जाते हैं तथा भाटा के साथ सुरक्षित तट पर लौट आते हैं।
4. ज्वार भाटे की वापसी लहर समुद्र तट पर बसे नगरों की सारी गंदगी समुद्र में बहाकर ले जाती है।
5. ज्वार भाटे की लहर वापस जाते समय कई समुद्री वस्तुएँ जैसे शंख, घोंघे आदि किनारे पर छोड़ जाती है।
6. ज्वार भाटे के कारण समुद्री जल गतिशील एवं साफ रहता है तथा जल जमता नहीं है।

3. महासागरीय धाराएँ (Ocean Currents)

महासागरों के एक भाग से दूसरे भाग की ओर विशेष दिशा में जल के निरन्तर प्रवाह को महासागरीय धारा कहते हैं। धारा के दोनों किनारों पर तथा उसके नीचे जल स्थिर रहता है। दूसरे शब्दों में महासागरीय धाराएँ स्थल पर बहने वाली नदियों के समान है, परन्तु महासागरीय धाराएँ स्थलीय नदियों की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल होती है।

मोन्क हाऊस के अनुसार "धारा के जलराशि का संचालन एक निश्चित दिशा में होता है"। धाराओं में जल केवल सतह पर ही नहीं अपितु गहराई में भी चलता है। तापक्रम के अनुसार धाराएँ दो प्रकार की होती है– (1) उष्ण धारा तथा (2) ठण्डी धारा। इनकी गति, आकार तथा दिशा में पर्याप्त अन्तर होता है।

1. उष्ण या गर्म धाराएँ– ये धाराएँ गर्म क्षेत्रों से ठण्डे क्षेत्रों की ओर चलती है। ये प्रायः भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर चलती है। इनके जल का तापमान अधिक होने के कारण ये धाराएँ जिन

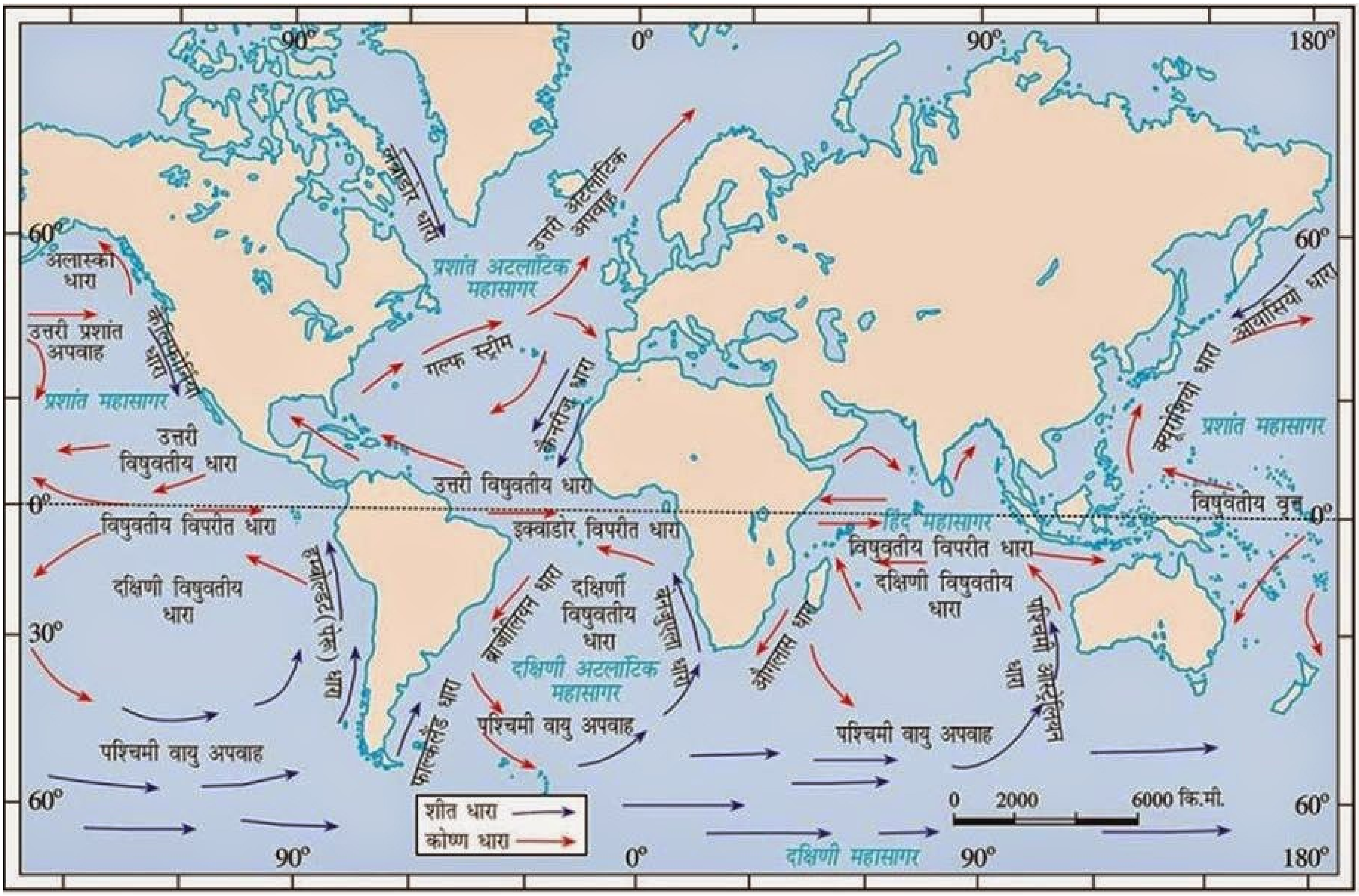

चित्र 18.4 : महासागरीय धाराएँ

क्षेत्रों में चलती है वहाँ का तापमान बढ़ा देती है।

2. ठण्डी धाराएँ– ये धाराएँ ठण्डे क्षेत्रों से गर्म क्षेत्रों की ओर चलती है। ये प्रायः ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर चलती है। इनके जल का तापमान कम होता है। अतः ये जिन क्षेत्रों में चलती है, वहाँ के तापमान को घटा देती है।

धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कारक

(1) पृथ्वी का स्वभाव– गुरूत्वाकर्षण, घूर्णन।

(2) बाहरी समुद्री कारण– वायुदाब एवं पवनें, वाष्पीकरण एवं वर्षा

(3) अन्तः समुद्री कारण– दाब, ताप, लवणता, घनत्व, हिम का पिघलना।

(4) धाराओं को रूपान्तरित करने वाले कारक– तटरेखा की आकृति, ऋतु परिवर्तन, सागर तली की रचना इत्यादि।

अटलांटिक (आन्ध्र) महासागर की धाराएँ:

अटलांटिक महासागर को दो भागों में बाँटा गया है उत्तरी अटलांटिक महासागर तथा दक्षिणी अटलांटिक महासागर,

उत्तरी अटलांटिक महासागर की धाराएँ –

1. उत्तरी भूमध्य रेखीय गर्म धारा– यह 5° से 20° उत्तरी अक्षांशों के मध्य भूमध्य रेखा के समीप बहती है। ये पूर्व में अफ्रीका के तट से पश्चिमी द्वीप समूह तक बहती है। इस धारा का उल्लेख सर्वप्रथम फिण्डले (1853) ने किया था।

2. एण्टीलीज गर्म धारा– ब्राजील के साओरॉक अंतरीप के निकट दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा दो भागों में बँट जाती है। उत्तरी शाखा उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा में मिलकर कैरीबियन सागर तथा मैक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करती है। इसका शेष भाग पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्वी किनारे पर एण्टीलीज धारा के नाम से चलती है।

3. फ्लोरिडा धारा– यह वास्तव में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा का ही विस्तार है जो युकाटन चैनल से होकर मैक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करता है। इसके लक्षण विषुवतीय जलराशि जैसे ही है।

4. उत्तरी अटलांटिक धारा– ग्रांड बैंक से दूर गल्फ स्ट्रीम पर पछुआ पवनों का प्रवाह स्पष्ट दिखाई देता है। यह पूर्व की ओर

मुड़ जाती है।

5. गल्फ स्ट्रीम गर्म धारा– हाल्टेरस अन्तरीप से ग्राण्ड बैंक तक इस धारा को गल्फ स्ट्रीम कहते हैं। गल्फ स्ट्रीम धारा को मैक्सिको की खाड़ी में पर्याप्त मात्रा में गर्म जल प्राप्त होता है, जिसको यह ठण्डे क्षेत्रों में ले जाती है।

6. कनारी धारा– यह उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी तट पर मडेरिया से केपवर्ड द्वीपों के मध्य बहती है। गल्फ स्ट्रीम का गर्म जल यहाँ तक पहुँचने पर ठण्डी धारा में बदल जाता है। यह धारा अन्त में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा में मिल जाती है। इस धारा में मौसमी परिवर्तन होते हैं।

7. लैब्रोडोर ठण्डी धारा– यह धारा उत्तरी अटलांटिक महासागर में बहने वाली ठण्डी धारा है जो बैफिन की खाड़ी से डेनिस जलडमरूमध्य तक दक्षिण की ओर बहती है। यह धारा सागर तल को संतुलित करने का कार्य करती है। गर्म तथा ठण्डे जल के मिलने से न्यूनफाउन्डलैण्ड के आसपास घना कोहरा छाया रहता है। यह मत्स्य उद्योग के लिए आदर्श अवस्था होती है।

8. सारगोसा सागर– उत्तरी अटलांटिक महासागर में गल्फ स्ट्रीम, कनारी तथा उत्तरी भूमध्यरेखीय धाराओं के चक्र के बीच में शांत जल के क्षेत्र को सारगोसा सागर कहते हैं। इसके तट पर समुद्री घास तैरती रहती है, जिसे पुर्तगाली भाषा में सारगैसम (शैवाल) कहते हैं। जिसके नाम पर इसका नाम सारगोसा सागर रखा गया है। इसका क्षेत्रफल लगभग 11,000 वर्ग किमी है।

दक्षिणी अटलांटिक महासागर की धाराएँ:

1. दक्षिणी विषुवतीय गर्म धारा– यह धारा विषुवत रेखा के दक्षिण में उसके समानान्तर पूर्व से पश्चिमी की ओर चलती है।

2. ब्राजील गर्म धारा– दक्षिणी विषुवतीय धारा पश्चिमी में पहुँचकर ब्राजील के तट के साथ बहने लगती है। यह एक कमजोर धारा है।

3. फाकलैण्ड ठण्डी धारा– दक्षिणी अमेरिका के दक्षिण पूर्व तट के साथ दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। यह अपने साथ अंटार्कटिका प्रदेश से हिम शिलाएँ बहाकर लाती है। गर्म व ठण्डे जल के मिलने से यहाँ भी कुहासा छाया रहता है।

4. बैंग्युला ठण्डी धारा– यह अफ्रीका के दक्षिणी पश्चिमी तट के सहारे उत्तर की ओर बहने वाला धारा है। यह एक अनियमित तथा कमजोर धारा है।

5. दक्षिणी अटलांटिक ड्रिफ्ट– व्रीव पछुआ पवनों के प्रभाव से 40° से 60° दक्षिणी अक्षांश के मध्य पश्चिम से पूर्व की ओर जल प्रवाहित होता है। यह वास्तव में ब्राजील धारा का ही पूर्वी विस्तार है, किन्तु इसकी प्रकृति बदल जाती है।

प्रशान्त महासागर की धाराएँ :

अध्ययन के दृष्टिकोण से प्रशान्त महासागर की धाराओं को भी उत्तरी व दक्षिणी प्रशान्त महासागर की धाराओं में बाँटा गया है जो निम्न प्रकार है–

उत्तरी प्रशान्त महासागर की धाराएँ –

1. उत्तरी विषुवतीय धारा– यह धारा मध्य अमेरिका के पश्चिमी तट से आरंभ होकर पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हुई फिलीपाइन द्वीप समूह तक पहुँचती है।

2. क्यूरोशिवो की गर्म धारा– उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा फिलीपाइन द्वीप तक पहुँचने के बाद ताइवान तथा जापान के तट के साथ उत्तरी दिशा में बहने लगती है तथा क्यूरोशिवो धारा के नाम से जानी जाती है।

3. उत्तरी प्रशान्त गर्म धारा– जापान के दक्षिणी पूर्वी तट पर पहुँचने के बाद क्यूरोशिवो धारा प्रचलित पछुआ पवनों के प्रभाव से महासागर के पश्चिम से पूर्व की ओर बहने लगती है।

4. कैलीफोर्निया की ठण्डी धारा– यह उत्तरी प्रशान्त धारा का ही विस्तार मानी जाती है, क्योंकि यह ठण्डे क्षेत्र से गर्म क्षेत्र की ओर बहती है। इसलिए इसे कैलिफोर्निया की ठण्डी धारा कहा जाता है।

5. अलास्का धारा– उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट पर उत्तरी प्रशान्त महासागर की दूसरी धारा घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में उत्तर की ओर मुड़ जाती है।

6. ओयासिवो की ठण्डी धारा– यह बैरिंग जल डमरू मध्य से शुरू होकर कमचटका प्रायद्वीप के पूर्वी तट के समीप उत्तर से दक्षिण की ओर बहने वाली ठण्डे जल की धारा है।

7. ओखोटस्क अथवा क्यूराइल की ठण्डी धारा– यह ओखोटस्क सागर से शुरू होकर सखालीन द्वीप के पूर्वी तट के साथ–साथ बहती हुई जापान के होकैडो द्वीप के ओयोसिवो धारा से मिल जाती है।

दक्षिणी प्रशान्त महासागर की धाराएँ :

1. दक्षिणी विषुवतीय गर्म धारा– यह गर्म जल धारा है जो पूर्व में मध्य अमेरिका के तट से पश्चिम में आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट तक जाती है।

2. दक्षिणी प्रशान्त धारा– यह तस्मानिया के निकट पूर्वी आस्ट्रेलिया धारा पछुआ पवनों के प्रभाव में आ जाती है और पश्चिम से पूर्व की ओर बहने लगती है। यहाँ पर इसे दक्षिणी प्रशान्त धारा के नाम से जानते हैं।

3. पूर्वी आस्ट्रेलिया गर्म धारा– यह आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के साथ बहती है। यह गर्म जल धारा है।

4. पेरू की ठण्डी धारा– दक्षिणी अमेरिका के द.प. पर पहुँचकर यह उत्तर की ओर मुड़ जाती है और पेरू के तट के साथ–साथ बहने लगती है। यह ठण्डे क्षेत्र से गर्म क्षेत्र की ओर चलती है।

हिन्द महासागर की धाराएँ :

हिन्द महासागर एक अर्ध महासागर है। यह उत्तर में भारत, पूर्व में आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम में अफ्रीका से घिरा हुआ है। भूमध्य रेखा के उत्तर में इसका विस्तार बहुत कम है। इसलिए इसकी धाराओं पर प्रचलित मानसून पवनों का प्रभाव बहुत प्रबल होता है और शीत तथा ग्रीष्म ऋतुओं में उनकी दिशा उलटने के साथ–साथ धाराओं की दिशाएँ भी उल्टी हो जाती है। मानसून पवनों द्वारा प्रभावित धाराएँ मानसून ड्रिफ्ट या मानसून अपवाह कहलाती है। प्रशान्त महासागर व अटलांटिक महासागर की भाँति हिन्द महासागर की धाराओं को भी दो भागों में विभक्त किया गया है। (1) उत्तरी हिन्द महासागर की धाराएँ तथा (2) दक्षिणी हिन्द महासागर की धाराएँ–

उत्तरी हिन्द महासागर की धाराएँ :

1. उत्तरी पूर्वी मानसून ड्रिफ्ट– इसे उत्तर पूर्वी मानसून अपवाह भी कहते हैं। यह ड्रिफ्ट मल्लका जलडमरूमध्य से शुरू होकर बंगाल की खाड़ी के तट के साथ–साथ बहती हुई अरब सागर में प्रविष्ट होती है।

2. विरूद्ध विषुवतीय धारा– पश्चिम में जंजीबार द्वीप के निकट से आरंभ होकर पूर्व की ओर प्रवाहित होती है।

दक्षिणी हिन्द महासागर की धाराएँ :

1. दक्षिणी विषुवतीय धारा– यह धारा भूमध्य रेखा के समीप दक्षिण में पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है।

2. मेडागास्कर गर्म धारा– दक्षिण भूमध्यरेखीय की मेडागास्कर द्वीप के पूर्वी तट पर बहने वाला शाखा मेडागास्कर धारा कहलाती है।

3. मोजाम्बिक गर्म धारा– मेडागास्कर द्वीप के पास पहुँचने पर दक्षिण भूमध्यरेखीय धारा दो शाखओं में बँट जाती है। एक शाखा मेडागास्कर द्वीप के परे दक्षिण की ओर तथा दूसरी मौजाम्बिक चैनल में प्रविष्ट हो जाती है।

4. अगुलाहास गर्म धारा– मेडागास्कर द्वीप के परे दक्षिण में मोजाम्बिक धारा व मेडागास्कर धारा मिलकर एक हो जाती है। यह संयुक्त धारा अगुलाहास धारा कहलाती है।

5. पछुआ पवन ड्रिफ्ट– यह हिन्द महासागर के दक्षिण में पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हुई आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के दक्षिणी सिरे के निकट तक पहुँच जाती है।

6. पश्चिमी आस्ट्रेलिया ठण्डी धारा– पछुआ पवन ड्रिफ्ट की एक शाखा आस्ट्रेलिया के दक्षिण में बहती हुई निकल जाती है तथा दूसरी शाखा आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट से उत्तर की ओर मुड़ जाती है। इस दूसरी शाखा को पश्चिमी आस्ट्रेलियाई ठण्डी धारा कहते हैं।

महासागरीय धाराओं का प्रभाव :

जलधाराएँ निकटवर्ती समुद्रतटीय क्षेत्रों की जलवायु पर गहरा प्रभाव डालती है। ये तापमान, आर्द्रता और वृष्टि को प्रभावित करती है। ठण्डी धाराएँ ध्रुवीय तथा उपध्रुवीय क्षेत्रों से अपने साथ प्लवक लाती है और मछलियों के लिए खाद्य पदार्थ की आपूर्ति करती है। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में मछलियों की वृद्धि होती है। महासागरों के व्यावसायिक समुद्री जलमार्ग यथासंभव इन जलधाराओं का अनुसरण करते हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति व दिशा को प्रभावित करने वाले कारक–(अ) भूपरिभ्रमण संबंधी कारक (ब) महासागरीय कारक–तापमान की भिन्नता व लवणता, (स) बाह्य सागरीय कारक–प्रचलित पवनों की दिशा व

द्वीपीय विरोध, (द) रूप–परिवर्तक कारक–तटीय आकार, तलीय आकृति और मौसमी परिवर्तन।

2. महासागरीय जल के ऊपर उठने को ज्वार व नीचे गिरने को भाटा कहते है। उत्पत्ति के कारण–गुरूत्वाकर्षण बल तथा अपकेन्द्रीय बल हैं।

3. चन्द्रमा की परिक्रमण गति के कारण पुनः उसी स्थान पर एक ही प्रकार का ज्वार 52 मिनट देरी से आता है। गुरूत्वाकर्षण बल के कारण प्रत्यक्ष ज्वार तथा अपकेन्द्रीय बल के कारण अप्रत्यक्ष ज्वार आता है।

4. सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी के सीधी रेखा में होने पर वृहत् ज्वार तथा परस्पर समकोण पर होने पर लघु ज्वार आता है। इसे युति–वियुति (Syzygy) कहते है। चौबीस घंटों में एक बार दैनिक ज्वार व दो बार अर्द्ध–दैनिक ज्वार आते है।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. महासागरों में जल की गतियाँ कितने प्रकार की होती है?

(अ) 1 (ब) 2

(स) 3 (द) 4

2. दीर्घ ज्वार आने का क्या कारण है?

(अ) तटरेखा का दंतुरित होना

(ब) जब सूर्य, पृथ्वी व चन्द्रमा का समकोण स्थिति में होना

(स) सूर्य, पृथ्वी व चन्द्रमा का एक सीध में होना

(द) कोई भी नहीं

3. ज्वार भाटा कितने समय के अन्तराल पर आता है?

(अ) 12 घंटे 26 मिनट

(ब) 12 घंटे 56 मिनट

(स) 12 घंटे 36 मिनट

(द) 12 घंटे 46 मिनट

4. गल्फ स्ट्रीम की धारा है?

(अ) ठण्डी (ब) गर्म

(स) आर्द्र (द) शीतोष्ण

5. कौनसी धारा अटलांटिक महासागर की धारा नहीं है?

(अ) गल्फ स्ट्रीम (ब) लैब्रोडोर

(स) फाकलैण्ड (द) क्यूरोशिवो

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. महासागरों की मुख्य गतियाँ बताईये।
7. महासागरीय लहरों की उत्पत्ति के कारण क्या हैं?
8. तरंग दैर्ध्य क्या है?
9. ज्वार भाटे के प्रकार बताईये?
10. उष्ण धाराएँ किसे कहते हैं?

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. तरंग श्रृंग व तरंग गर्त में क्या अन्तर है?
12. तरंगों के प्रकार बताईये।
13. ज्वार भाटा किसे कहते हैं?
14. दीर्घ ज्वार व लघु ज्वार में क्या अन्तर है?
15. महासागरीय धाराएँ किसे कहते हैं?

निबंधात्मक प्रश्न –

16. महासागरीय जल की गतियों एवं लहरों को समझाईये तथा तरंगों के प्रकार की व्याख्या करें।
17. ज्वार भाटा किसे कहते हैं? इसकी उत्पत्ति एवं प्रकार का वर्णन करें।
18. महासागरीय धाराओं को परिभाषित करते हुए विश्व के महासागरों की धाराओं का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला – 1. स 2. स 3. अ 4. ब 5. द

अध्याय – 19

महासागरः उच्चावच, तापमान एवं लवणता

(Ocean : Relief, Temperature and Salinity)

पृथ्वी के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर जल ही जल है जिसे जल मण्डल कहते हैं। इसमें सागर तथा महासागर सम्मिलित है। पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा ग्रह नहीं है जिस पर इतना जल मौजूद हो। इस आधार पर पृथ्वी को 'जलीय ग्रह' भी कहते हैं। स्थल खण्ड की तरह महासागरीय तल भी विषम एवं जटिल है। महासागरों की औसत एवं वास्तविक गहराई स्थल खण्ड की औसत ऊँचाई से कहीं अधिक है। जहाँ स्थल खण्ड का सर्वोच्च शिखर माउण्ट एवरेस्ट 8850 मीटर ऊँचा है वहीं महासागरों की सबसे गहरी खाई मेरियाना ट्रेन्च (प्रशान्त महासागर) 11,033 मीटर गहरी है। महाद्वीपों की औसत ऊँचाई 840 मीटर है जबकि महासागरों की औसत गहराई 3808 मीटर है।

महासागरों की स्थलाकृतियाँ

समुद्र तल के नीचे भी स्थल के समान पर्वत, पठार, मैदान और गहरी खाईयाँ पाई जाती हैं। स्थलाकृति में किसी स्थान के धरातलीय आकारों का वर्णन किया जाता है। विश्व में मौजूद महासागरों में एक समान स्थलाकृतियाँ नहीं पाई जाती।

प्रशान्त महासागर – विश्व का सबसे बड़ा महासागर है जो पृथ्वी के लगभग 1/3 भाग को घेरे हुए है। यह त्रिकोणात्मक आकृति में पूर्व से पश्चिम 18,000 किमी. चौड़ा है तथा उत्तर से दक्षिण 16,740 किमी. लम्बा है। इसके तटों पर ज्वालामुखी पर्वत श्रेणियाँ, भूकम्प प्रभावित क्षेत्र व द्वीप समूह पाये जाते हैं। इसमें 20,000 से अधिक द्वीप हैं जिनको तीन भागों में (1) मेलानेशिया (2) माइक्रोनेशिया तथा (3) पोलिनेशिया में विभाजित किया गया है। यहाँ पर अनेक द्रोणियाँ, लम्बे कटक, पठार, कगार व चबूतरे मौजूद हैं। इसी प्रकार विश्व के सबसे अधिक व्यस्त महासागर **अटलांटिक महासागर** के दोनों और विश्व के सम्पन्न देश स्थित है। इसकी आकृति अंग्रेजी के S अक्षर के समान है। इसमें मैक्सिको की खाड़ी, भूमध्य सागर, उत्तरी सागर, बिस्के की खाड़ी, बाल्टिक सागर, कैरिबीयन सागर, काला सागर आदि स्थित है। यह महासागर विषुवत् रेखा पर काफी संकरा है। इसके दो भाग है– उत्तरी व दक्षिणी अटलांटिक महासागर। उत्तरी अटलांटिक महासागर 5400 किमी तथा दक्षिणी अटलांटिक महासागर 9600 किमी चौड़ा है। यहाँ पर अनेक द्रोणियाँ हैं जिनमें ब्राजील द्रोणी, कनारी द्रोणी, गिनी द्रोणी, उत्तरी अमेरिका द्रोणी प्रमुख हैं। इसके अलावा प्यूरटोरिको गर्त, रोमांशे गर्त प्रमुख गर्त है।

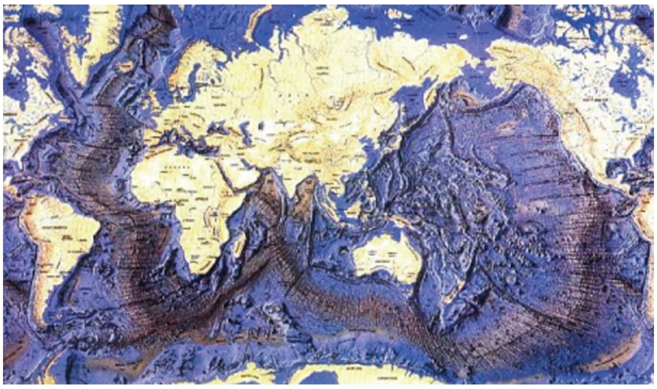

चित्र 19.1 : महासागरीय स्थलाकृति

हिन्द महासागर की स्थलाकृतियाँ– इस महासागर के उत्तर में गोंण्डवाना लैण्ड के भाग प्रायद्वीपीय भारत, अफ्रीका का पठार, आस्ट्रेलिया का पश्चिमी भाग, महाद्वीपीय मग्न स्थल रखते हैं।

प्रमुख द्रोणियों में सेडमाली द्रोणी, अरेबियन द्रोणी, मॉरीशस द्रोणी, अण्डमान द्रोणी है तथा प्रमुख गर्तों में सुण्डा गर्त है। अण्डमान–निकोबार, जंजीबार, रियूनीयम प्रमुख द्वीप मौजूद है। यहाँ पर अनेक जगह भ्रंश व दरार घाटियाँ जलमग्न रूप में पाई जाती है।

आर्कटिक महासागर की स्थलाकृतियाँ– उत्तरी ध्रुव पर स्थित इस महासागर के बारे में अभी विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं हुई है, क्योंकि इसका अधिकांश भाग वर्ष के अधिकतर समय बर्फ से ढका रहता है। इसका निमग्न स्थल काफी चौड़ा है। इस महासागर पर कई द्वीप हैं, जिनमें बेरन्टस, होप, स्पीट्स बर्जन, नोवाया आदि प्रमुख है। नार्वे सागर, लेपटेव सागर, पूर्वी साइबेरिया सागर व ग्रीनलैण्ड सागर प्रमुख है। यहाँ पर अनेक जलमग्न कटक मौजूद है।

उच्चावच

पृथ्वी के धरातल की भौतिक आकृतियाँ– पर्वत, पठार, मैदान और पठार अर्थात धरातलीय भूदृश्य को उच्चावच कहते हैं। प्रायः यह शब्द पृथ्वी के धरातल के रूप में आकृति में असमानताएँ और भिन्नताओं को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। महासागरीय नितलों पर अनेक प्रकार के उच्चावच के लिए चार प्रमुख प्रक्रियाएँ उत्तरदायी है। यह उच्चावच विर्वतनिक, ज्वालामुखी, अपरदनकारी तथा निक्षेपकारी प्रक्रियाओं के पारस्परिक क्रियाओं के कारण उत्पन्न होता है।

महासागर तल या तली के विन्यास तथा उच्चावच लक्षणों से अभिप्राय महासागरों में जल के नीचे के भू–पृष्ठ की रचना से है अर्थात समुद्रों के पेंदे पर ऊँचाईयों एवं गहराईयों का

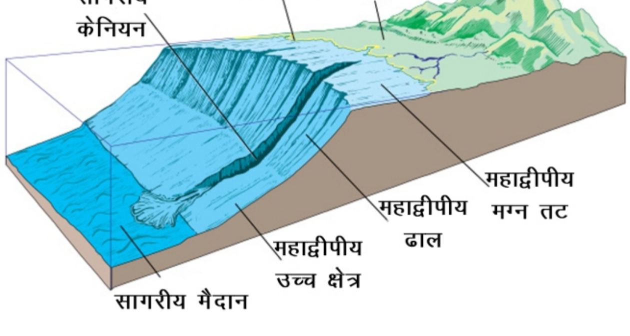

चित्र 19.2 : महासागरीय उच्चावच

विस्तार कितना–कितना है। महासागर भी महाद्वीपों की तरह प्रथम श्रेणी के उच्चावच है। स्थल की ऊँचाई व महासागरों की गहराई को उच्चतादर्शी वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस आधार पर महासागरीय तली को निम्न चार उच्चावच वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. महाद्वीपीय मग्न तट
2. महाद्वीपीय ढाल
3. गहरे सागरीय मैदान
4. महासागरीय गर्त

1. महाद्वीपीय मग्न तट : इसका अर्थ डूबे हुए तट से होता है। अतः महाद्वीपों के वे भाग जो समुद्र में डूबे हैं, महाद्वीपीय मग्न तट कहलाते हैं। इनकी अधिकतम गहराई सामान्यतः 100 फैदम और ढलान 1° से 3° तक होती है। कम ढाल वाले मग्न तट की चौड़ाई अधिक तथा अधिक ढाल वाले मग्न तट की चौड़ाई कम होती है। इसकी औसत चौड़ाई 75 किमी होती है। ये तट महासागरों के कुल क्षेत्रफल के 7.6 प्रतिशत भाग फैले हुए हैं। इस भाग में सूर्य की किरणें प्रवेश कर जाने से वनस्पति व जीव जन्तुओं की वृद्धि होती है। नदियों द्वारा लाई गई तलछट यहीं पर जमती है। इसलिए समुद्र का यह भाग मानव के लिए काफी लाभदायक है। यहाँ पर अनेक खनिज, खाद्य पदार्थ, मत्स्य, खनिज तेल, गैस इत्यादि प्रमुख रूप से पाए जाते हैं।

2. महाद्वीपीय ढालः महाद्वीपीय मग्न तट के आगे महासागरीय नितल का ढाल अचानक तीव्र हो जाता है। इन ढालों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका विस्तार 3600 मीटर से 8100 मीटर की गहराई तक होता है। यहाँ पर काँप मिट्टी का निक्षेप बहुत कम पाया जाता है। प्रकाश की कमी तथा पोषक पदार्थों के अभाव में यहाँ वनस्पति व समुद्री जीवों की मात्रा कम पाई जाती है। महासागरों के कुल क्षेत्रफल के 8.5 प्रतिशत भाग पर ये ढ़ाल पाये जाते हैं। इनका ढाल 2° से 5° तक होता है।

3. गहरे सागरीय मैदान : महाद्वीपीय ढाल के समाप्त होते ही ढाल एकदम कम हो जाती है और गंभीर सागरीय मैदान शुरू हो जाते हैं, जिसे नितल मैदान भी कहते हैं। महासागरों का यह एक विस्तृत समतल क्षेत्र होता है, जिसका ढाल बहुत कम होता है। यहाँ पर अपरदन प्रक्रमों का अभाव पाया जाता है।

4. महासागरीय गर्त : इसका तात्पर्य महासागरों के नितल पर पाये जाने वाले सबसे अधिक गहरे गर्तों से है। आकार के आधार

पर इनको दो वर्गों में विभाजित किया जाता है– 1. खाईयाँ तथा 2. द्रोणियाँ। महासागरीय नितल पर स्थित तीव्र ढाल वाले लम्बे, पतले तथा गहरे अवनमन को खाई या गर्त कहते हैं। इनकी उत्पत्ति बलन अथवा भ्रंश से होती है। इनकी औसत गहराई 5500 मीटर होती है। ये सागरीय केनियन भी कहलाते है। प्रमुख उदाहरण मेरियाना, चेलेन्जर, टोंगा और सुण्डा आदि।

महासागरीय तापमान (Oceanic Temperature)

महासागरीय जल का तापमान वनस्पति जगत तथा जीव जगत दोनों के लिए महत्वपूर्ण होता है। महासागरीय जल का तापमान न केवल महासागरों में रहने वाले जीवों तथा वनस्पतियों को प्रभावित करता है, अपितु तटवर्ती स्थलीय भागों की जलवायु को (परिणामस्वरूप जीव तथा वनस्पति को) भी प्रभावित करता है। इसी कारण सागरीय जल के तापमान का अध्ययन महत्वपूर्ण हो चला है। सागरीय जल के तापमान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत सूर्य है। सूर्य के अलावा तापमान की कुछ मात्रा सागर तली के नीचे पृथ्वी के आन्तरिक भाग तथा जल की दबाव प्रक्रिया से प्राप्त होती है, परन्तु यह मात्रा नगण्य होती है।

महासागरीय जल के तापमान को प्रभावित करने वाले कारक–

1. अक्षांश – भूमध्यरेखा से उत्तर या दक्षिण अर्थात् ध्रुवों की ओर जाने पर सतही जल का तापक्रम घटता जाता है, क्योंकि सूर्य की किरणें ध्रुवों की ओर तिरछी होती जाती हैं, परिणामस्वरूप सूर्यातप की मात्रा भी ध्रुवों की ओर घटती जाती है। भूमध्यरेखा से 40^0 से उ. तथा द. अक्षांशों के मध्य महासागरीय जल का तापक्रम वायु के तापक्रम से कम किन्तु 40^0 से ध्रुवों के बीच अधिक रहता है।

2. जल एवम् स्थल के वितरण में असमानता – उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल की अधिकता तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में जल की अधिकता के कारण तापक्रम के वितरण में असमानता पाई जाती है।

3. दिन की अवधि – दिन की लम्बाई अधिक होने पर सूर्यातप की मात्रा अधिक प्राप्त होने के कारण महासागरीय जल अपेक्षाकृत अधिक गरम होता है। इसके विपरीत दिन की अवधि छोटी होने पर महासागरीय जल में सूर्यातप की मात्रा कम ग्रहण हो पाती है।

4. वायुमण्डल की स्वच्छता – वायुमण्डल स्वच्छ होने पर सूर्यातप अधिक मात्रा में जल तल तक पहुँचने के कारण महासागरीय जल को अधिक गरम करता है। वायुमण्डल के पारगम्यता में कमी के कारण सूर्यातप कम प्राप्त होने से महासागरीय जल कम गरम होता है। क्योंकि सूर्यातप की काफी मात्रा वायुमण्डल के उथलेपन को बढ़ाने वाले धूलकण अवशोषित कर लेते हैं।

5. सूर्य से पृथ्वी की दूरी – जब पृथ्वी सूर्य के निकटतम होती है तो सूर्यातप अधिक प्राप्त होने से महासागरीय जल अधिक गरम होता है।

6. सौर्य कलंकों की संख्या – पृथ्वी की ओर सौर्य कलंकों की संख्या अधिक होने पर सूर्यातप अधिक व इनकी संख्या कम होने पर सूर्यातप कम प्राप्त होता है। कलंकों का सम्बन्ध सूर्य की चुम्बकीय शक्ति से होता है।

7. समुद्री धाराएँ – समुद्री धाराएँ अपने प्रवाह क्षेत्र के सागरीय तापमान को प्रभावित करती हैं। ठण्डी धाराएँ अपने प्रवाहित क्षेत्र में सागरीय जल के तापमान को कम तथा गरम धाराएँ तापमान को बढ़ाती हैं।

महासागरीय तापमान का क्षैतिज वितरण

महासागरीय जल में तापमान सामान्यतः बढ़ते अक्षांशों के साथ साथ घटता जाता है। महासागरीय जल के तापमान के

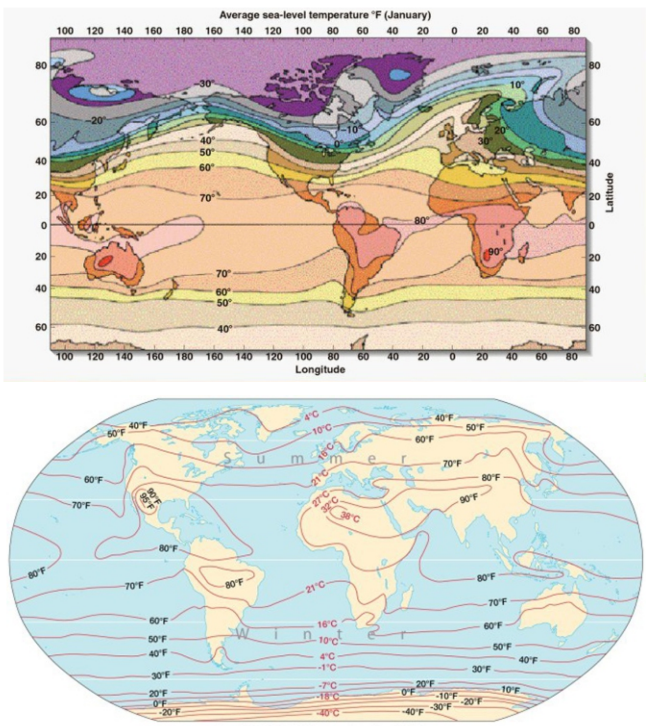

चित्र 19.3 : जनवरी एवम् जुलाई का तापमान

क्षैतिज वितरण का विस्तृत रूप निम्नानुसार तालिका में दिया है–

सारणी–19.1 : महासागरीय सतह का तापमान
(डिग्री सैल्सियस में)

अक्षांश	आन्ध्र अटला. महासागर	हिन्द महासागर	प्रशान्त महासागर
70–60 उ.	5.60	–	–
60–50 उ.	8.66	–	5.74
50–40 उ.	13.16	–	9.99
40–30 उ.	20.40	–	18.62
30–30 उ.	24.16	26.14	23.38
20–10 उ.	25.81	27.23	26.42
10–0 उ.	26.66	27.88	27.20
0–10 द.	25.18	27.41	26.01
10–20 द.	23.16	25.85	25.11
20–30 द.	21.20	25.53	21.53
30–40 द.	16.90	17.00	16.98
40–50 द.	8.68	8.67	11.16
50–60 द.	1.76	1.63	5.00
60–70 द.	1.30	1.53	1.03

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि तापमान सामान्यतः ध्रुवों की ओर घटता जाता है। केवल अटलाण्टिक महासागर में 20^0 से 30^0 उत्तरी अक्षांशों के मध्य तापमान में थोड़ी वृद्धि होकर पुनः गिरावट का क्रम जारी रहता है। हिन्द महासागर में बीस से तीस डिग्री अक्षांशों तक विस्तार कम होने के कारण तापमान की गिरावट की दर काफी कम रहती है। मोटे रूप में ध्रुवों की ओर तापमान के कम होने की दर आधा डिग्री सैल्शियस प्रति अक्षांश है।

तापमान का लम्बवत् वितरण

महासागरीय जल में तापमान का लम्बवत् वितरण ताप अवशोषण की मात्रा, जल धारा द्वारा उसके क्षैतिज विस्थापन तथा जल की लम्बवत् गति पर निर्भर करता है।

महासागरीय जल में सूर्य की किरणें 25 मीटर तक प्रवेश करके ऊष्णता प्रदान करती हैं। इस गहराई के बाद सूर्य विकिरण का प्रभाव नगण्य हो जाता है। अतः सूर्यातप के कारण महासागरीय सतही जल अधिक गरम होता है। ध्रुवीय क्षेत्रों में ठण्डा जल भारी होने के कारण नीचे बैठता है और भूमध्य रेखीय क्षेत्रों का उष्ण जल हल्का होने के कारण सतही धाराओं के ध्रुवों की ओर प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार महासागरीय जल के तापमान का संचरण होता रहता है।

महासागरीय जल की सतह से गहराई की ओर तापमान 2000 मीटर की गहराई तक तीव्र गति से गिरता है। उस गहराई के पश्चात् तापमान की गिरावट दर काफी कम हो जाती है। यह तथ्य खुले महासागरों में देखने को मिलता है। आंशिक रूप से घिरे हुये महासागरों में जैसे भूमध्य सागर व लाल सागर आदि में तापमान की गिरावट निकटवर्ती खुले महासागरों की अपेक्षा काफी कम होती है।

महासागरीय लवणता (Oceanic Salinity)

सामान्य रूप से 'सागरीय जल के भार एवम् उसमें घुले हुए पदार्थों के भार के अनुपात को सागरीय लवणता कहते हैं।'

महासागरीय जल में उपस्थित लवणता के कारण समुद्र का जल खारा होता है। एक घन किलोमीटर समुद्री जल में लगभग 4.10 करोड़ टन नमक होता है। इस आधार पर यदि सारे जलमण्डल के नमक को पृथ्वी पर समान रूप से बिछाया जाए तो संपूर्ण पृथ्वी पर 150 मीटर मोटी नमक की पर्त बिछ जाएगी। सामान्य रूप से सागरीय लवणता को प्रति हजार ग्राम जल में स्थित लवण की मात्रा (‰) में व्यक्त किया जाता है। समुद्री जल की लवणता लगभग 35 प्रति हजार (‰) है, अर्थात समुद्र के एक हजार ग्राम जल में लगभग 35 ग्राम लवण होता है। महासागरीय लवणता का मुख्य स्रोत पृथ्वी ही है। मुख्य रूप से लवण इकठ्ठा करने के साधनों में नदियाँ, सामुद्रिक लहरें, हवाएँ, ज्वालामुखी विस्फोट प्रमुख है।

यद्यपि महासागरीय जल में लवणों की मात्रा में भिन्नता पाई जाती है तो भी लवणों का सापेक्षिक अनुपात लगभग एक सा ही रहता है।

डिटमार (W.Dittmar, 1884) के अनुसार समुद्र के जल में 47 विभिन्न प्रकार के लवण है। प्रमुख लवणों का प्रतिशत सारणी 19.2 में दिया गया है।

अनुमानतः महासागरीय जल में विभिन्न प्रकार के लवणों की कुल मात्रा 50 लाख अरब टन है जिसमें सर्वाधिक मात्रा सोडियम क्लोराइड की है।

सारणी–19.2 : महासागरों में पाये जाने वाले लवण

क्र.	लवण का नाम	मात्रा (प्रति हजार ग्राम	कुल लवणों का प्रतिशत
01	सोडियम क्लोराइड	27.213	77.8
02	मैग्नेशियम क्लोराइड	3.807	10.9
03	मैग्नेशियम सल्फेट	1.658	4.7
04	कैल्शियम सल्फेट	1.260	3.6
05	पोटेशियम सल्फेट	0.863	2.5
06	कैल्शियम कार्बोनेट	0.123	0.3
07	मैग्नेशियम ब्रोमाइन	0.076	0.2
कुल		35,000	100

लवण प्राप्ति के स्त्रोत

नदियाँ महासागरीय जल में लवण प्राप्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत हैं जो प्रति वर्ष स्थलीय क्षेत्रों से 16 करोड़ टन लवण बहाकर महासागरों में जमा करती हैं। महासागरीय जल का वाष्पीकरण होता रहता है किन्तु लवणता उसमें बनी रहती है। लवणता के गौण स्त्रोत लहरें व पवनें हैं जो स्थलीय भागों से लवण समुद्रों में जमा करती रहती हैं। ज्वालामुखी उद्‌गार से भी विभिन्न प्रकार के लवण निकलकर महासागरीय जल में मिलते रहते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार अधिकतर लवण सागरों के निर्माण के समय भूपटल की शैलों से ही प्राप्त हुए हैं।

महासागरीय जल में लवणता को प्रभावित करने वाले कारक–

1. वाष्पीकरण – वाष्पीकरण तथा लवण की मात्रा में सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् जितना ही वाष्पीकरण तीव्र तथा अधिक होता है, लवणता उतनी ही बढ़ती जाती है। वाष्पीकरण के साथ पवन में आर्द्रता की न्यूनता का होना अनिवार्य होता है। जहाँ पर तापक्रम ऊँचा रहता है और वाष्पीकरण अधिक होता है, वहाँ पर लवणता अधिक होती है, जैसे कि कर्क तथा मकर रेखाओं के पास।

2. वर्षा द्वारा जल की आपूर्ति – स्वच्छ जल की अधिक मात्रा के कारण लवणता कम हो जाती है। जिन भागों में अत्यधिक जल वर्षा होती है, वहां पर लवणता कम हो जाती है। भूमध्यरेखीय प्रदेशों में उच्च तापक्रप के होते हुए भी घनघोर वृष्टि के कारण लवणता कम पायी जाती है, जबकि अयनवर्ती भागों में अपेक्षाकृत न्यून वर्षा तथा उच्च तापक्रम के कारण अधिक लवणता पायी जाती है। ध्रुवीय तथा उप ध्रुवीय भागों में अत्यधिक हिम वर्षा के कारण निर्मित हिमनद सागरों में हिम पहुँचाते रहते हैं, जोकि शीतोष्ण प्रदेशों में पहुंचने पर पिघलकर सागर की लवणता को कम कर देते हैं।

3. नदी के जल का आगमन – यद्यपि नदियाँ सागर में अपने साथ लवण लाती हैं, तथापि उनके साथ स्वच्छ जल की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उनके मुंहाने के पास लवणता में कमी आ जाती है। उदाहरण के लिए गंगा, कांगो, नाइजर, अमेजन, सेण्ट लारेन्स आदि नदियों के मुंहाने वाले भागों में कम लवणता पाई जाती है।

4. प्रचलित पवनें – उष्ण व शुष्क क्षेत्रों में महासागरों की ओर चलने वाली तथा तीव्र गामी पवनों से वाष्पीकरण अधिक होता है। अतः महासागरों के ऐसे भागों में लवणता अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत शीत व आर्द्र तथा मन्दगामी पवनों वाले क्षेत्रों में वाष्पीकरण कम होता है, फलस्वरूप लवणता भी कम होती है।

5. महासागरीय धाराएँ – कम लवणता वाले क्षेत्रों से बहने वाली धाराएँ अपने साथ न्यून लवणता युक्त जल लाती हैं और प्रवाह मार्ग पर लवणता की मात्रा को कम करती हैं। इसके विपरीत अधिक लवणता वाले महासागरीय क्षेत्रों से चलने वाली धाराओं के मार्ग पर लवणता अधिक रहती है।

6. महासागरीय जल का संचरण – खुले महासागरों में लवणता का वितरण महासागरीय जल के संरचरण से सामान्य होता रहता है। अधिक खारा जल भारी होकर नीचे बैठता है तथा कम खारे जल की ओर गहराई में गति करता है। इसका स्थान लेने के लिए कम खारा जल सतही प्रवाह के रूप में गति करता है। इस प्रकार इस संचरण से महासागरीय जल के खारेपन का सन्तुलन बना रहता है।

महासागरीय जल में लवणता का क्षैतिज वितरण

अयनरेखीय क्षेत्रों में लवणता का असमान वितरण पाया जाता है। खुले समुद्रों, घिरे हुए सागरों एवम् आंशिक रूप से घिरे हुए सागरों में भी लवणता का वितरण समान नहीं है।

खुले महासागरों में लवणता का वितरण–

अयनरेखीय क्षेत्रों में लवणता की मात्रा सर्वाधिक (36 प्रति हजार) पायी जाती है। उच्च तापमान, प्रचलित उष्ण व शुष्क पवनें, वाष्पीकरण की अधिकता, वर्षा का अभाव एवम् स्वच्छ जल की कम आपूर्ति के कारण इस क्षेत्र में लवणता अधिक पाई जाती है। अयनरेखीय क्षेत्रों से दोनों ओर अर्थात् भूमध्य रेखा एवम् ध्रुवों की ओर लवणता की मात्रा कम होती जाती है। किन्तु लवणता की मात्रा भूमध्यरेखीय क्षेत्रों की अपेक्षा ध्रुवीय क्षेत्रों में कम पायी जाती है। इसका कारण यह है कि ध्रुवीय प्रदेशों में हिम से पिघले हुए जल की आपूर्ति अधिक एवम् वाष्पीकरण कम होता है। भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में स्वच्छ जल की आपूर्ति एवम् वाष्पीकरण दोनों ही अधिक रहते हैं। महासागर के तटीय क्षेत्र में लवणता के वितरण में भी स्थानीय भिन्नताएँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए अमेजन, कांगो, नाइजर, सिन्धु आदि नदियों के मुहानों पर स्वच्छ जल की आपूर्ति होते रहने के कारण लवणता कम पाई जाती है।

उत्तरी अटलाण्टिक महासागर के सारगैसो क्षेत्र में लवणता38 प्रति हजार मिलती है। इस उच्च लवणता का कारण यह है कि यहाँ महासागरीय धाराओं के चक्रीय प्रवाह से मध्यवर्ती जल का मिश्रण अन्य क्षेत्रों के जल से नहीं हो पाता।

महासागरीय क्षेत्रों में समान लवणता वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखाएँ समलवणता (Isohaline) रेखाएँ कहलाती हैं।

आंशिक रूप से घिरे सागरों में लवणता का वितरण –

आंशिक रूप से घिरे सागरों में लवणता का वितरण स्थानिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। भूमध्य सागर में लवणता का वितरण काफी भिन्न पाया जाता है। इसके उत्तर–पूर्वी भाग में लवणता 39 प्रति हजार एवम् दक्षिण–पूर्व में 41 प्रति हजार पायी जाती है। लाल सागर के उत्तरी भाग में 41 प्रति हजार एवम् दक्षिणी भाग में 36 प्रति हजार लवणता की मात्रा मिलती है। फारस की खाड़ी में लवणता की मात्रा 48 प्रति हजार

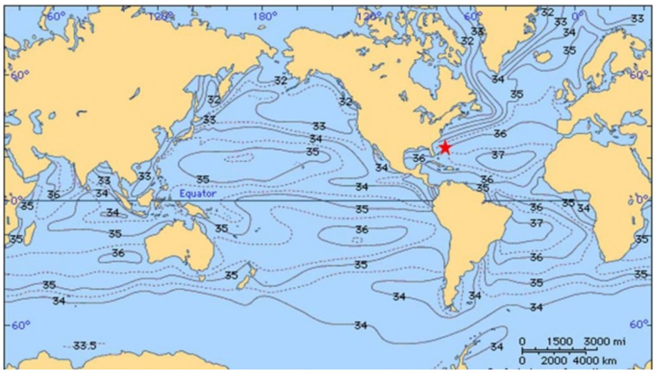

चित्र 19.4 : महासागरों में लवणता का वितरण

पायी जाती है। वर्षा का अभाव, स्वच्छ जल की कम आपूर्ति, उच्च तापमान, वाष्पीकरण की अधिकता आदि कारणों से यहाँ लवणता अधिक रहती है।

नदियों द्वारा प्रचुर स्वच्छ जल की आपूर्ति, हिम से पिघले हुए जल की आपूर्ति, निम्न तापमान, निम्न वाष्पीकरण दर आदि कारणों से काला सागर में लवणता की मात्रा 18 प्रति हजार, बाल्टिक सागर में 15 प्रति हजार, बोथनिया की खाड़ी में 8 प्रति हजार और फिनलैण्ड की खाड़ी में केवल 2 प्रति हजार ही पाई जाती है।

आन्तरिक सागरों में लवणता का वितरण

आन्तरिक सागर एवम् झील पूर्णतः स्थल से घिरे रहते हैं। उच्च तापमान, अत्यधिक गर्म एवम् शुष्क पवनें, वाष्पीकरण की अधिकता, वर्षा का अभाव आदि कारणों से मृत सागर में लवणता की मात्रा 238 प्रति हजार पाई जाती है। कैस्पियन सागर के दक्षिणी भाग में लवणता की मात्रा 170 प्रति हजार एवम् उत्तरी भाग में केवल 14 प्रति हजार पाई जाती है। कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग में यूराल, वोल्गा आदि नदियाँ स्वच्छ जल की आपूर्ति करती हैं। विश्व में सर्वाधिक लवणता टर्की की वॉन झील में 330 प्रति हजार मिलती है।

महासागरीय जल में लवणता का ऊर्ध्वाधार वितरण (Vertical Distribution of Oceanic Salinity)

गहराई की ओर लवणता के वितरण में कोई निश्चित प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती। फिर भी लवणता के गहराई की ओर वितरण से कुछ प्रवृत्तियाँ उभरकर आती हैं –

1. ध्रुवीय क्षेत्रों में सतह पर लवणता कम तथा गहराई की ओर बढ़ती है। हिम के पिघले हुए स्वच्छ जल की आपूर्ति होते रहने से लवणता सतह पर कम रहती है।
2. मध्य अक्षांशों में 400 मीटर की गइराई तक लवणता बढ़ती है, तत्पश्चात् गहराई के साथ इसकी मात्रा कम होती जाती है। सतह पर स्वच्छ जल की आपूर्ति कम व वाष्पीकरण अधिक होने से ऐसा होता है।
3. भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में सतह पर लवणता कम, एक हजार मीटर तक वृद्धि तत्पश्चात् पुनः कम होती जाती है।

उपरोक्त प्रवृत्तियाँ सामान्यीकृत हैं। वैसे विभिन्न महासागरों में भिन्न–भिन्न प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए दक्षिणी अटलाण्टिक महासागर में सतही लवणता 33 प्रति हजार, 400 मीटर पर 34.5 प्रति हजार तथा 1200 मीटर पर 34.8 प्रति हजार हो जाती है, किन्तु 20° दक्षिणी अक्षांश के निकट

सतह पर 37 तथा तली पर 35 हजार लवणता रहती है। भूमध्य रेखीय भाग में सतह पर 34 व तली पर 35 एवम् उत्तरी अटलाण्टिक महासागर में सतह पर 35.5 व तली पर 34 प्रति हजार लवणता रहती है। आंशिक रूप से घिरे सागरों में लवणता के वितरण में काफी विभिन्नताएँ मिलती हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. महासागरीय तली के चार मुख्य भाग–महाद्वीपीय निमग्नतट, महाद्वीपीय ढाल, गहन महासागरीय मैदान व महासागरीय गर्त।
2. अटलाण्टिक महासागर – फैलाव विश्व के 16 प्रतिशत भाग पर, प्रशान्त महासागर का आधा, औसत गहराई 3 किमी. से अधिक, आकृति 'S' अक्षर के समान, महाद्वीपीय निमग्नतट अपेक्षाकृत चौड़े, डॉगर व ग्रांड बैंक मुख्य, इसकी तली पर कई कटकें – मध्य अटलाण्टिक कटक मुख्यतः कई द्रोणियाँ गहराई में गायना द्रोणी व विस्तार में उत्तरी अमेरिकी द्रोणी सर्वाधिक, गर्तों की संख्या 19, कई द्वीप;
3. प्रशान्त महासागर – सबसे बड़ा महासागर, विश्व के एक–तिहाई क्षेत्र पर फैलाव, त्रिभुजाकार, नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ, महाद्वीपीय निमग्नतट कम विस्तृत, विस्तार को देखते हुए कटकों की संख्या कम, द्रोणियाँ अधिक व गहरी, फिलीपीन द्रोणी सबसे गहरी, गर्तों की संख्या 32 व गहराई भी अधिक, मैरियाना गर्त सबसे गहरा, द्वीपों की संख्या भी सर्वाधिक–लगभग 20 हजार।
4. हिन्द महासागर–छोटा व कम विस्तृत, उत्तर में स्थल से घिरा हुआ, सभी ओर प्राचीन पठारों से घिरा हुआ, चौड़े महाद्वीपीय निमग्नतट, चैगोस–लक्षद्वीप कटक सबसे लम्बी, 90 डिग्री पूर्व कटक महत्त्वपूर्ण व उत्तर–दक्षिण दिशा में विस्तृत, अनेक द्रोणियां, द्वीप व 6 गर्त।
5. महासागरीय जल के तापमान को प्रभावित करने वाले कारक – सूर्य की किरणों का तिरछापन, दिन की अवधि, वायुमण्डल की स्वच्छता, सूर्य से पृथ्वी की दूरी, सौर्य कलंकों की संख्या आदि।
6. महासागरीय जल में औसत लवणता 35 प्रति हजार। मुख्य लवण – सोडियम क्लोराइड, मैग्निशियम क्लोराइड, मैग्निशियम सल्फेट, कैल्शियम सल्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट व पोटेशियम सल्फेट।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. पृथ्वी के लगभग कितने प्रतिशत भाग पर जल मौजूद है?
   (अ) 29 (ब) 67
   (स) 71 (द) 81
2. महाद्वीपों की औसत ऊँचाई है?
   (अ) 10 मीटर (ब) 400 मीटर
   (स) 840 मीटर (द) 1000 मीटर
3. समुद्र के एक किलोग्राम जल में लवणता पाई जाती है।
   (अ) 35 ग्राम (ब) 45 ग्राम
   (स) 15 ग्राम (द) 25 ग्राम
4. मेरियाना ट्रेन्च कहाँ पर स्थित है?
   (अ) प्रशान्त महासागर
   (ब) हिन्द महासागर
   (स) अटलांटिक महासागर
   (द) भूमध्य सागर
5. महासागरीय जल को उष्मा प्राप्त होती है?
   (अ) सूर्य से
   (ब) चन्द्रमा से
   (स) गर्म धाराओं से
   (द) स्वयं से

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. मेरियाना ट्रेन्च किस महासागर में है?
7. स्थलाकृत्ति किसे कहते हैं?
8. उच्चावच किसे कहते हैं?
9. महासागरीय जल की औसत लवणता कितनी होती है?
10. महासागरीय जल में लवणता कहाँ से प्राप्त होती है?

लघुउत्तरीय प्रश्न–

11. प्रशान्त महासागर की स्थलाकृतियाँ बताईये।
12. महासागरीय तली को कितने उच्चावचों में बाँटा गया है?
13. महाद्विपीय मग्न ढ़ाल क्या हैं?
14. तापमान को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौनसे हैं?
15. लवणता को प्रभावित करने वाले कारक बताईये।

निबंधात्मक प्रश्न–

16. उच्चावच को समझाते हुए महासागरीय तली के उच्चावचों का वर्णन कीजिए।
17. महासागरीय जल के तापमान को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
18. लवणता को समझाते हुए महासागरीय जल में लवणता को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला : 1. स 2. स 3. अ 4. अ 5. अ

अध्याय – 20

महासागरीय संसाधन

(Oceanic Resources)

पृथ्वी के धरातल के कुल क्षेत्रफल के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर महासागरों का तथा शेष 29 प्रतिशत भाग पर स्थल का विस्तार है। पृथ्वी की सतह पर महासागरों का फैलाव पाया जाता है जिसमें महाद्वीपों की उपस्थिति से विश्व महासागरों को तीन मुख्य तथा एक गौण महासागरों में विभक्त किया गया है। इनमें प्रशान्त महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिन्द महासागर मुख्य है। चौथा महासागर आर्कटिक महासागर है जिसकी गहराई तथा क्षेत्रफल अन्य महासागरों की अपेक्षा बहुत कम है। सभी महासागरों में प्रशान्त महासागर विश्व का सबसे बड़ा तथा सर्वाधिक गहरा महासागर है।

महासागर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रूपों में मानव को प्रभावित करते हैं। महासागरों की विशाल जल राशि हमारे लिए कई चुनौतियाँ एवं संसाधन प्रस्तुत करती है। महासागरों में अनेक प्रकार के खनिज तथा ऊर्जा के संसाधन मौजूद है।

महासागरों का महत्व:

महासागर हमें अनेक प्रकार के संसाधन उपलब्ध करवाते हैं। साथ ही महासागर हमारी जलवायु पर प्रभाव डालते हैं तथा परिवहन के सबसे सस्ते साधन है। समुद्री खनिज, भोजन, ऊर्जा तथा महासागरीय परिवहन महासागर के प्रत्यक्ष लाभ है जबकि महासागरों से जलवायु पर प्रभाव परोक्ष लाभ है। स्थल से प्राप्त संसाधन समाप्त प्राय है। ऐसी स्थिति में महासागर ही भविष्य के भण्डार है। महासागरों की समीपता मानव के स्वास्थ्य के लिए अनुकूल है। सागरों द्वारा मनोरंजन, दृश्यावलोकन, खेल, तैराकी, नौकायन आदि होता है। महासागरों का मानव सभ्यता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। महाद्वीपों पर वर्षा का मूल स्रोत महासागर ही है। अतः महासागरों का मनुष्य के लिए अपार महत्व है।

महासागरों की उपयोगिता:

विश्व में जनसंख्या की त्रीव वृद्धि से खाद्यान तथा प्राकृतिक संसाधनों के अभाव का संकट उत्पन्न होना निश्चित है। महासागर मानव जाति को इस भयावह संकट से निकालने में सक्षम है।

महासागरीय संसाधनः महासागरीय संसाधनों को निम्न भागों में बाँटा गया है :

(1) महासागर एवं खनिज संसाधन
(2) महासागर एवं खाद्य संसाधन
(3) महासागर एवं ऊर्जा संसाधन
(4) महासागर एवं पेयजल संसाधन
(5) महासागर एवं यातायात, व्यापार
(6) महासागर एवं सामरिक महत्त्व

1. महासागर एवं खनिज संसाधन :

सागर की तली एवं उसके जल में अनेक प्रकार के खनिज संसाधन मौजूद है परन्तु उनका विदोहन बहुत सीमित है। एक अनुमान के अनुसार एक घन किलोमीटर समुद्री जल में 50 टन चाँदी, 25 टन सोना, 11 से 35 टन ताँबा, मैगनीज, जिंक तथा सीसा, 8 टन यूरेनियम, 42 टन पौटेशियम सल्फेट, 185 लाख टन मैग्नीशियम क्लोराइड, अनेक खनिज व रासायनिक तत्व विद्यमान है। प्रमुख खनिज संसाधन निम्नांकित है।

खनिज तेल: यह महासागरों से प्राप्त होने वाला सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है। विश्व के 40 प्रतिशत खनिज तेल भण्डार समुद्री नितल में है। विश्व के अनेक देश समुद्रों से तेल प्राप्त कर रहे हैं। भारत में भी समुद्र तट से 150 किमी दूर बोम्बे हाई पर 2000 मीटर की गहराई से खनिज तेल निकाला जा रहा है।

फॉस्फेट : खनिज से युक्त असंगठित तलछटी निक्षेप को फास्फोराइट कहते हैं। महासागरों में यह सामान्यतः गाँठों के रूप में मिलता है।

मैंगनीज : इसकी गाँठों से उतना ही निकिल तथा ताँबा प्राप्त होता है जितना ही स्थलीय संसाधनों से प्राप्त हो सकता है। यह प्रशान्त महासागर में सबसे अधिक पाया जाता है।

नमक : समुद्रों से प्राप्त होने वाला एक महत्वपूर्ण खनिज है। महासागरीय जल खारा होता है। इसमें धुले लवणों की मात्रा 3.5 प्रतिशत होती है। कुल लवणों का 78 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड़ (खाने योग्य नमक) होता है जिसे वाष्पीकृत करके खाने का नमक बनाया जाता है। विश्व में प्रतिवर्ष 200 मिलियन डॉलर मूल्य का नमक बनाया जाता है।

अन्य खनिज : अन्य खनिज संसाधनों में रेत, बजरी, सोना, प्लेटिनम, टिन, मैग्नेटाइट, लोहा, टंग्स्टन, थोरियम महत्वपूर्ण है।

2. महासागर एवं खाद्य संसाधनः

विश्व के कुल खाद्य पदार्थों का लगभग 10 प्रतिशत महासागरों से प्राप्त किया जाता है। मछली एक उत्तम प्रोटीनयुक्त आहार है जो महासागरीय संसाधन है। मत्स्य उत्पादन विश्व का प्रमुख व्यवसाय है। विश्व के अनेक समुद्रतटीय देश इस व्यवसाय में प्रमुख रूप से जुड़े हैं। उनकी आजीविका का प्रमुख साधन मत्स्य संसाधन है। मछली के अलावा अनेक प्रकार के शैवाल, पादप, प्लवक, मोलस्क, अनेक समुद्री जीव भी समुद्रों से प्राप्त किये जाते हैं। महासागरों में पाये जाने वाले कोरल (मूंगा/प्रवाल) जीवों को आश्रय एवं खाद्य पदार्थ प्रदान करते है। बढ़ते प्रदुषण के कारण कोरल (Coral) भण्डार का अस्तित्व खतरे में है। रासायनिक प्रदुषण के कारण इनका प्राकृतिक रंग बदल रहा है।

3. महासागर एवं ऊर्जा संसाधनः

महासागर पृथ्वी द्वारा प्राप्त सूर्यातप का लगभग तीन–चौथाई भाग अवशोषित करते हैं। इस ऊर्जा से पवनें एवं समुद्री धाराएँ चलती है तथा समुद्री जल के तापमान में वृद्धि करती है। इससे ऊर्जा प्राप्त होती है। महासागरों से प्राप्त ऊर्जा में ज्वारीय ऊर्जा, सागरीय ताप ऊर्जा तथा भू–तापीय ऊर्जा प्रमुख है। ज्वारभाटा से ज्वारीय ऊर्जा प्राप्त कर विद्युत उत्पादन किया जाता है। भारत में खम्भात की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी से विद्युत उत्पादन की जा सकती है। समुद्र से उठने वाली तरंगों से भी विश्व के अनेक देशों में ऊर्जा प्राप्त की जा रही है। ज्वालामुखी के विस्फोट से भूतापीय ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

4. महासागर एवं पेयजल संसाधनः

महासागरों का जल पीने योग्य नहीं होता, किन्तु भविष्य में इसका उपयोग पीने व घरेलू कार्यों के अतिरिक्त उद्योगों आदि में भी किया जा सकेगा। इस खारे जल को पीने योग्य बनाया जाना आवश्यक होगा। इसके लिए विश्व में लगभग 500 संयंत्र लगाये जा चुके हैं। खाड़ी देशों में इस प्रकार के संयत्र बड़ी संख्या में लगाये गये हैं।

5. महासागर एवं यातायात व व्यापार :

प्राचीन काल में महासागर दो भू–भागों के मध्य बाधक माने जाते थे, परन्तु अब ये सबसे सरल और सस्ते यातायात की सुविधा प्रदान करते है। ये प्रकृति द्वारा प्रदत्त हाई–वे हैं। जल की सतह समतल होती है, अतः इस पर प्रवर्तक बल कम खर्च करना पड़ता है। महासागर ऐसे आवागमन के मार्ग प्रस्तुत करते हैं, जिनका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि इन पर किसी देश का अधिकार नहीं होता। विश्व में कई प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय जल मार्ग है। अन्तर्राष्ट्रीय जलमार्गों में उत्तरी अटलाण्टिक जलमार्ग सबसे प्रमुख है। यह जलमार्ग उत्तरी अमेरिका को पश्चिमी यूरोपीय देशें से जोड़ता है। भार के अनुसार विश्व में किये गये कुल सामुद्रिक व्यापार का चौथाई व्यापार केवल इसी जलमार्ग पर होता है। इस सामुद्रिक व्यापार का सर्वोच्च महत्त्व इसलिए भी है कि यह दो उद्योग प्रधान क्षेत्रों को परस्पर जोड़ता है। विश्व का प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय जलमार्ग स्वेज जलमार्ग है जो लन्दन को टोकियो से जोड़ता है। आशा अन्तरीप से होकर यह जल मार्ग काफी लम्बा पड़ता है।

6. महासागर एवम् सामरिक महत्त्व :

महासागर विभिन्न महाद्वीपों के मध्य सम्पर्क में अवरोध माने जाते थे, किन्तु नौसंचालन के विकास के साथ–साथ इनके व्यापारिक एवम् सामरिक महत्त्व में वृद्धि हुई है, इसके कई कारण है। विभिन्न देश महासागरों में खनिजों के दोहन के लिए अपना प्रभुत्व बढ़ाना चाहते है। आज के युग में बढ़ती आर्थिक गतिविधियों एवम् प्रतिस्पर्द्धाओं के कारण नौसेना के महत्त्व में काफी वृद्धि हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत हिन्द महासागर को नौसैनिक प्रतिस्पर्धाओं से स्वतन्त्र रखने के लिए प्रयासरत है। वर्तमान में बढ़ते अन्र्राष्ट्रीय तनावों के कारण नौसैनिक गतिविधियों का काफी विस्तार हुआ है। पाकिस्तान को मोहरा बनाकर कई बड़े देश विशेषकर अमेरिका, चीन व रूस हिन्द महासागर में अपना प्रभुत्व बढ़ाने में लगे हुए है। इन बाहरी एवम् दूरस्थ देशों का हिन्द महासागर में अनावश्यक रूप से बढ़ता प्रभुत्व हमारे देश के लिए संकटपूर्ण व चुनौतीपूर्ण हो सकता है तथा इस क्षेत्र में अस्थिरता पैदा कर सकता है, हमारे देश को इस प्रकार की बदनियत के प्रति सतर्क रहना चाहिए। ताकि हमारे देश की प्रगति बाधित हो सके।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. महासागर पृथ्वी की जलवायु एवं मौसम को बहुत गहराई तक प्रभावित करते है। सभी प्रकार के संचलन में महासागरों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।
2. महासागर संसाधनों के भण्डारगृह है। यहां जैविक एवं अजैविक दोनो प्रकार के संसाधन पाये जाते है।
3. महासागर उर्जा, यातायात एवं व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यहाँ से खनिज तेल प्राप्त किया जाता है।
4. औद्योगिक विकास के कारण वर्तमान में महासागर विभिन्न प्रदुषण के शिकार हो रहे है। इससे जैविक संसाधनों को हानि हो रही है।
5. महासागरों में पाये जाने वाले प्रवाल / मूंगा जीव तथा प्रवाल भित्ति का रासायनिक प्रदुषण के कारण मूल रंग बदल रहा है तथा इनकी वृद्धि भी प्रभावित हो रही है।

अभ्यास–प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. विश्व का सबसे बड़ा महासागर कौनसा है?
   (अ) प्रशान्त महासागर
   (ब) हिन्द महासागर
   (स) आर्कटिक महासागर
   (द) अटलांटिक महासागर
2. किस महासागर को प्रायः समुद्र कहा जाता है?
   (अ) हिन्द महासागर
   (ब) प्रशान्त महासागर
   (स) आर्कटिक महासागर
   (द) अटलांटिक महासागर
3. महासागरीय नितल में विश्व का कितना प्रतिशत तेल भण्डार है?
   (अ) 20 प्रतिशत
   (ब) 30 प्रतिशत
   (स) 40 प्रतिशत
   (द) 50 प्रतिशत
4. ज्वारभाटा से प्राप्त ऊर्जा क्या कहलाती है?
   (अ) भू–तापीय ऊर्जा
   (ब) ज्वारीय ऊर्जा
   (स) पवन ऊर्जा
   (द) सौर ऊर्जा
5. भारत में समुद्र में किस स्थान पर खनिज तेल निकाला जाता है?
   (अ) कच्छ की खाड़ी
   (ब) खम्भात की खाड़ी
   (स) बोम्बे हाई
   (द) केरल तट

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

6. समुद्र से प्राप्त होने वाला सबसे महत्वपूर्ण खनिज कौनसा है?
7. समुद्र में गाँठों के रूप में प्राप्त होने वाला खनिज कौनसा है?
8. समुद्र से प्राप्त होने वाली ऊर्जा के दो नाम लिखो।
9. भू–तापीय ऊर्जा किससे प्राप्त होती है?
10. महासागरों से प्राप्त खाद्य पदार्थों के नाम बताओ।

लघुउत्तरीय प्रश्न –

11. महासागरों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ बतायें।
12. महासागरों का महत्व क्या है?
13. महासागरों से किन–किन आवश्यकताओं की पूर्ति होगी?
14. महासागरीय संसाधनों के नाम लिखिये।
15. महासागरों से प्राप्त प्रमुख खनिज संसाधनों का उल्लेख करें।

निबंधात्मक प्रश्न –

16. महासागरों के महत्व को समझाते हुए मानव के लिये उनकी उपयोगिता का वर्णन करें।
17. महासागरीय संसाधनों को कितने भागों में बाँटा गया है, विस्तार से वर्णन कीजिए।
18. ''महासागर पृथ्वी के अस्तित्व के लिए महत्त्वपूर्ण कड़ी है।'' इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तरमाला– 1. अ 2. स 3. स 4. ब 5. स

इकाई – 6

अध्याय – 21

जैवविविधता
(Biodiversity)

जैवमण्डल की संकल्पना (Concept to Biosphere)

पृथ्वी पर स्थित सभी स्थान, जहाँ किसी न किसी रूप में जीवन पाया जाता है, जैवमण्डल में सम्मिलित किए जाते हैं। अभी तक प्राप्त वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में केवल पृथ्वी पर ही जीवन के लिये अनुकूल दशायें पाई जाती हैं। यद्यपि पृथ्वी पर जीवन के विभिन्न रूप समुद्र की अधिकतम गहराई से लेकर उच्चतम पर्वतीय चोटियों तक पाये जाते हैं, किन्तु वास्तव में अधिकांश प्रभावशाली जीवन पृथ्वी के धरातल से कुछ ही मीटर की ऊँचाई और निचाई तक पाया जाता है।

पृथ्वी पर उपलब्ध जैव विविधता में सूक्ष्म प्रोटोजोआ से लेकर विशालकाय व्हेल (Whale) तक के जीव और सूक्ष्म लाइकेन से लेकर विशाल आकार के वृक्ष पाए जाते हैं। यह जैव विविधता पृथ्वी विकास की निरन्तर प्रक्रिया का परिणाम है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जीव–जन्तु उस स्थान के पर्यावरण में उपलब्ध भोजन स्त्रोतों पर निर्भर रहते हैं, जिससे उन्हें ऊर्जा एवम् पोषक तत्त्व प्राप्त होते हैं। यह ऊर्जा और पोषक एक उपभोक्ता स्तर से दूसरे उपभोक्ता स्तर में प्रवाहित होते रहते हैं। इसीलिये जैवमण्डल को ऊर्जा और पोषक तत्त्व एक उपभोक्ता स्तर से दूसरे उपभोक्ता स्तर में प्रवाहित होते रहते हैं। इसीलिये जैवमण्डल को ऊर्जा और पोषक तत्त्वों के चक्रीय प्रवाह पर आधारित जैव–तंत्र माना गया है।

जैवमण्डल पृथ्वी के धरातल पर पाये जाने वाले जैविक और अजैविक घटकों की परस्पर जटिल क्रियाओं का परिणाम होता है। इन घटकों की इन्हीं पारस्परिक जटिल क्रिया–प्रतिक्रियाओं का अध्ययन पारिस्थितिकी विज्ञान में किया जाता है। सभी जैविक घटक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील होते हैं और उनकी अधिकांश गतिविधियाँ उपयुक्त पारिस्थितिक पर्यावरण खोजने तथा अनुपयुक्त उद्दीपनों (Stimulation) से अलग रहने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार सभी जीव पर्यावरण के प्रति अनुकूलित होते हैं। जीवों में अनुकूलन दो प्रकार का पाया जाता है :–

1. वंशानुगत (Inherited)
2. उपार्जित (Acquired)

वंशानुगत अनुकूलन जन्म से प्राप्त होता है जैसे संवेदनग्राही अंग (Sense Organs), जबकि उपार्जित अनुकूलन किसी विशेष उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया से उत्पन्न होता है, जैसे किसी बीमारी से बचाव के लिये प्रतिरक्षियों (Antibotics) का निर्माण करना।

इसी प्रकार समस्त जीवों में पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति संवेदनशीलता के साथ–साथ उन परिवर्तनों से समायोजन की क्षमता भी होती है, जिसके फलस्वरूप उनका अस्तित्व और जैवमण्डलीय सन्तुलन बना रहता है।

जैवमण्डल की संरचना (Structure of Biosphere)

जैवमण्डल की संरचना का अध्ययन स्थलमण्डल, जलमण्डल और वायुमण्डल के आधार पर निम्न प्रकार किया जा सकता है :–

(अ) **स्थलमण्डल** :– स्थलमण्डल पृथ्वी का ठोस भाग है, जो सम्पूर्ण पृथ्वी के लगभग 29.2 प्रतिशत भाग पर महाद्वीपों और द्वीपों के रूप में विस्तृत है। इसकी ऊपरी सतह असंगठित मिट्टी से निर्मित है, जिसके नीचे चट्टानें पायी जाती हैं। किन्तु जैवमण्डल की दृष्टि से पृथ्वी के धरातल की ऊपरी सतह ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सभी जीव स्थलमण्डल पर प्राप्त मिट्टी से ही पोषण प्राप्त करते हैं।

(ब) **जलमण्डल** :— सम्पूर्ण पृथ्वी के 70.8 प्रतिशत भाग पर महासागर विस्तृत हैं। यदि इसमें नदियों, तालाबों व अन्य जलीय स्त्रोतों को भी सम्मिलित कर लिया जाये, तो पृथ्वी सतह का लगभग 72 प्रतिशत क्षेत्र जल से ढका है, जिसे जलमण्डल कहते हैं। प्राणवायु के बाद जल ही जीव की दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, इसीलिये जल को जीवन कहा गया है। शरीर की आक्सीजन और हाइड्रोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति जल से ही होती है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी सतह पर लगभग 1360 मिलियन क्यूबिक किलोमीटर जल उपलब्ध है, जिसमें से 97 प्रतिशत अर्थात 1320 मिलियन क्यूबिक किलोमीटर जल महासागरों में स्थित है, लगभग 30 मिलियन क्यूबिक किलोमीटर जल बर्फ के रूप में स्थित है और शेष 1 प्रतिशत से भी कम भूमिगत जल के रूप में उपलब्ध है। पृथ्वी की सतह पर उपलब्ध जल एक चक्रीय प्रवाह के रूप में परिवर्तित होता है और फिर संघनन की प्रक्रिया द्वारा वृष्टि के रूप में पृथ्वी पर बरसता है।

(स) वायुमण्डल :— पृथ्वी की सतह के चारों ओर गैसों का एक आवरण पाया जाता है, जिसे वायुमण्डल कहते हैं। यह वायुमण्डल पृथ्वी की सतह से हजारों किलोमीटर की ऊँचाई तक विस्तृत है। इसमें अनेक प्रकार की गैसें, जलवाष्प और धूलिकण मिश्रित होते हैं। इन तत्त्वों का मिश्रण सर्वत्र समान रूप से नहीं पाया जाता, बल्कि ऊँचाई, अक्षांश, मौसम आदि के साथ बदलता रहता है। वायुमण्डल की सबसे निचली परत क्षोभमण्डल में जलवाष्प और धूलिकणों को छोड़कर अन्य गैसों का औसत प्रतिशत सर्वत्र लगभग समान पाया जाता है, क्योंकि हवायें, वायुधाराएँ और गैस का प्लवनशील स्वभाव उनके अनुपात को लगातार समान बनाए रखते हैं।

वायुमण्डल की गैसों में सबसे अधिक मात्रा नाइट्रोजन (78%) और आक्सीजन (21%) की पाई जाती है। शेष 1 प्रतिशत में अन्य गैसें जैसे कार्बन डाईआक्साइड, नियोन, आरगन, ओजोन आदि सम्मिलित हैं। विभिन्न परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि क्षोभमण्डल में 50 किलोमीटर की ऊँचाई तक वायुमण्डलीय गैसों के प्रतिशत अनुपात में भिन्नता आती जाती है। भारी एवम् सघन गैसें जैसे कार्बन डाईआक्साइड केवल 20 किलोमीटर की ऊँचाई तक ही पाई जाती है। ऑक्सीजन और नाइट्रोजन गैसें भी 140 किलोमीटर की ऊँचाई के बाद लगभग लुप्त हो जाती हैं। 150 किलोमीटर की ऊँचाई के बाद केवल हाइड्रोजन गैस ही महत्त्वपूर्ण गैस के रूप में पाई जाती है।

आक्सीजन अर्थात् प्राणवायु सभी जीवों के श्वसन के लिए अत्यन्त आवश्यक गैस है, जबकि कार्बन डाईआक्साइड पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया के लिए अति आवश्यक गैस है। इसी प्रकार सभी जीवों में नाइट्रोजन एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है, जो उन्हें भोजन से प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैवमण्डल के समस्त जैविक घटक तीनों मण्डलों से जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व प्राप्त करते हैं। वायुमण्डल से जहाँ प्राणवायु प्राप्त होती है, वहीं जलमण्डल से जल की प्राप्ति होती है, जो जीवों के प्रोटोप्लाज्म का 75 प्रतिशत भाग बनाता है। स्थल मण्डल से जीवों को भोज्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसीलिये यह कहा जा सकता है कि जैवमण्डल से बाहर जीवन की सम्भावना नगण्य है।

जैवविविधता (Biodiversity)

किसी प्राकृतिक प्रदेश में उपलब्ध जीव जन्तुओं और पादपों की प्रजातियों की संख्या को जैव विविधता कहा जाता है। जैव विविधता शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी कीट वैज्ञानिक ई. ओ. विल्सन ने 1986 में किया, जिसे बाद में एक संकल्पना के रूप में अन्य वैज्ञानिकों एवम् पर्यावरणविदों ने अपनाया।

पृथ्वी पर अनगिनत जीव–जन्तु मिलते हैं, जिनमें आनुवांशिक (Genetic) जातीय (Species) और पारिस्थितिकीय (Ecologial) विविधता देखने में मिलती है। पारिस्थितिक तंत्र में सन्तुलन बनाये रखने के लिये जीवों में जैविक विविधता होना आवश्यक है।

(i) **आनुवांशिक विविधता** :— प्रत्येक जीव–जन्तु के गुण आनुवांशिक स्तर पर जीन (Gene) द्वारा निर्धारित होते हैं। किसी भी प्रजाति के जीवों में एक समान जीन के अलग–अलग रूपों का आकलन आनुवांशिक विविधता कहलाती है। एक प्रजाति के पर्यावरणीय परिवर्तनों में अपने आपको अच्छी तरह ढाल सकने में सक्षम होगी। इसके विपरीत आनुवांशिक विविधता कम होने पर उस प्रजाति के विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा, क्योंकि वह प्रजाति, पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुसार स्वयं को अनुकूलित करने में विफल रहेगी। पादपों में आनुवांशिक विविधता के द्वारा ही विभिन्न प्रजातियों का जन्म होता है।

(ii) **जातीय विविधता** :— एक पारिस्थितिक तंत्र में उपलब्ध विभिन्न प्रजातियों के जीवों की संख्या का

विवरण जातिगत विविधता कही जाती है।

(iii) **पारिस्थतिकीय विविधता** :– किसी क्षेत्र में प्राकृतिक वास्य (habitat) की विविधता जैसे– वन, मरूस्थल घास के मैदान आदि को पारिस्थितिकीय विविधता कहते है। पारिस्थितिकीय विविधता में एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में ऊर्जा स्थानान्तरण, सन्तुलित खाद्य, जल और खनिज पदार्थों के चक्रीकरण की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। जैसे समुद्र के लवणीय जलीय तंत्र और अलवणीय जलीय तंत्र में भिन्न–भिन्न जैव विविधता पाई जाती है। लवणीय जल में जहाँ व्हेल, शार्क जैसी बड़ी मछलियाँ मिलती हैं, वहाँ अलवणीय जल में ऐसी मछलियाँ नहीं मिलती हैं। इसी प्रकार वन, घास प्रदेश और मरुस्थल में पादप व जीव–जन्तु अलग–अलग प्रकार के मिलते हैं।

भारत में जैवविविधता (Biodiversity in India)

समस्त संसार में जैवविविधता समान रूप से वितरित नहीं पाई जाती है। यह कुछ स्थानों पर अनुपस्थित, कुछ स्थानों पर अत्यन्त अल्प और कुछ स्थानों पर बहुत अधिक पाई जाती है। भारत के विशाल आकार में पाई जाने वाली भौगोलिक विषमताओं और जलवायु की भिन्नताओं के कारण पादप और जीव जन्तुओं की विस्तृत जैव विविधता पाई जाती है। भारत की जलवायु मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय है, किन्तु भौगोलिक विषमताओं जैसे उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण में विस्तृत समुद्र, पूर्व में आर्द्र क्षेत्र और पश्चिम में शुष्क क्षेत्र के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है।

सम्पूर्ण धरातल का लगभग 2.4 प्रतिशत भू भाग हमारे देश में स्थित है, जबकि यहाँ विश्व की 6.5 प्रतिशत जीव प्रजातियाँ और 8 प्रतिशत पादप प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इसीलिये हमारा देश विश्व के 12 विशाल जैविक विविधता वाले देशों में से एक है। अभी तक देश के लगभग 70 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रफल के सर्वेक्षण के बाद यहाँ 46,000 पादप प्रजातियाँ और 81,000 जीव प्रजातियाँ वर्गीकृत की जा चुकी हैं।

राष्ट्रीय जैविक विविधता नीति एवम् कार्य रणनीति 6 जनवरी 2000 को जारी की गई, जिसका उद्देश्य जैविक विविधता के संरक्षण और निरन्तर प्रयोग के वर्तमान प्रयासों को पुष्ट करना है। जैविक विविधता विधेयक लोकसभा में 2 दिसम्बर और राज्य सभा में 11 दिसम्बर, 2002 को पारित हुआ। इस विधेयक का प्रमुख उद्देश्य भारत की विशाल जैव विविधता का संरक्षण, विदेशी संगठनों तथा लोगों को इसके एक पक्षीय प्रयोग से रोकना तथा जैव पायरेसी को रोकना है।

भारत के जैव विविधता के तप्त स्थल (Hot Spot of Biodiversity in India)

विश्व के ऐसे भागों को जहाँ जीव–जन्तुओं की अधिकता तथा दुर्लभ प्रजातियों की अधिकता मिलती है, किन्तु अति दोहन के कारण इनका अस्तित्व खतरे में है, तप्त स्थल कहलाता है। विश्व का कुल 1.4 प्रतिशत भाग तप्त स्थल है, किन्तु विश्व की 60 प्रतिशत जैव विविधता यहाँ पाई जाती है। सर्वप्रथम ब्रिटिश पर्यावरणविद् नोरमन मेयर्स ने 1988 में तप्त स्थल की संकल्पना का सूत्रपात किया। विश्व में अभी तक 25 तप्त स्थलों का पता लगाया गया है, जिनमें से दो तप्त स्थल भारत में स्थित है :–

(i) **पश्चिमी घाट तप्त स्थल** :– इस तप्त स्थल का विस्तार देश के पश्चिमी समुद्र तट के सहारे लगभग 1600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल राज्यों में पाया जाता है। यहाँ देश के कुल भू भाग का मात्र 5 प्रतिशत क्षेत्र है, किन्तु यहाँ देश की लगभग 25 प्रतिशत पादप प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ जैव विविधता की दृष्टि से दो केन्द्र उल्लेखनीय हैं–

(अ) अमामबलम रिजर्व (Amambalam Reserve)

(ब) अगस्थमलई पर्वत (Agasthymalai Hills)

(ii) **पूर्वी हिमालय तप्त स्थल** :– यहाँ शीतोष्ण वन 1700 से 3500 मीटर की ऊँचाई तक विस्तृत हैं, जिनमें 11540 पादप प्रजातियाँ स्थित हैं। इनमें से 4052 स्थानीय प्रजातियाँ हैं।

जैवविविधता के खतरे (Threats To Biodiversity)

प्राचीनकाल से ही विभिन्न प्रजातियाँ प्राकृतिक रूप से विलुप्त होती रही हैं और आनुवांशिक विविधता के कारण उनके स्थान पर बदलते हुए पर्यावरण के अनुसार नयी प्रजातियाँ जन्म लेती रही हैं। किन्तु गत शताब्दी में मानव द्वारा वैज्ञानिक एवम् तकनीकी विकास के माध्यम से अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रकृति का अत्यधिक दोहन करके उसे बहुत नुकसान पहुँचाया गया है। जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिक तंत्रों में विभिन्न प्रजातियों की प्राकृतिक विलोपन दर एक प्रजाति प्रति दशक से बढ़कर 100 प्रजाति प्रति दशक हो गई है। यदि विलोपन की यह दर इसी प्रकार बढ़ती रही, तो निकट भविष्य में ही पादपों और जीव–जन्तुओं की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो जायेंगी। अतः मानवीय प्रभाव के कारण वर्तमान समय में बची हुई प्रजातियों को जीवित रहने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

वर्तमान समय में जीव–जन्तुओं के प्राकृतिक आवासों का विनाश, शिकार, मानवीय आर्थिक क्रियाओं के फलस्वरूप बढ़ता प्रदूषण जैवविविधता के ह्यास के प्रमुख मानवीय कारण हैं। इन प्राकृतिक कारणों के फलस्वरूप भी जैवविविधता की ह्यास दर में बढ़ोतरी हुई है। इन प्राकृतिक कारणों में भूमण्डलीय

तापमान में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, ओजोन परत का छिछला होना, अम्लीय वर्षा आदि महत्त्वपूर्ण है।

जैवविविधता का संरक्षण (Conservation of Bioversity)

जैवविविधता में लगातार हो रहे ह्यास को रोकने तथा मानव–हित को ध्यान में रखते हुए जैवविविधता एवम् प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखने के लिये उचित प्रबन्धन को जैवविविधता का संरक्षण कहा जाता है।

हमारे देश की संस्कृति प्राचीन काल से ही वन एवम् वन्यजीव प्रेमी रही है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वृक्ष महिमा का विस्तृत विवरण मिलता है। मत्स्य–पुराण में वृक्ष महिमा के सम्बन्ध में लिखा है–

दश कूप–समापवापी, दशवापी समोह्रदः।
दश ह्रद समः पुत्रो, दश पुत्र समोद्रुमः।।

अर्थात् दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब होता है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र होता है, जबकि दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।

यही नहीं हमारी संस्कृति में वृक्षों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये उनमें विभिन्न देवताओं का निवास बताया गया है। जैसे पीपल में विष्णु, आंवला में मां लक्ष्मी, बरगद में जगतपिता ब्रह्मा, बेलपत्र में भगवान शिव, कदम्ब में श्रीकृष्ण, पलास में गंधर्व, कपूर में चन्द्र, अशोक में इन्द्र आदि देवता निवास करते हैं।

हमारे देश के दो बहुमूल्य महाकाव्य रामायण एवम् महाभारत में अरण्य संस्कृति का विस्तृत वर्णन मिलता है। बौद्ध एवम् जैन धर्म का प्रमुख आधार अहिंसा परमोधर्मः रहा है। महान सम्राट अशोक ने वन्य जीवों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया था, जिसका उल्लेख उनके शिलालेखों में पाया जाता है। बाद के शासनकालों में भी प्रकृति संरक्षण पर पर्याप्त जोर दिया गया।

हमारी संस्कृति में वृक्ष महिमा के साथ–साथ अहिंसा परमोधर्मः के मूलमंत्र द्वारा जीवों की रक्षा की ओर भी समाज का ध्यान आकर्षित किया गया है। विभिन्न जीवों को देवत्व स्थान प्रदान कर उनके वध पर प्रतिबन्ध की व्यवस्था की गई। जैसे विष्णु भगवान के वाहन गरुड़, शिव के वाहन नंदी, दुर्गा के वाहन सिंह, इन्द्र के वाहन हाथी, कार्तिकेय के वाहन मयूर, गणेश के वाहन चूहा, लक्ष्मी के वाहन उल्लू, सरस्वती के वाहन हंस आदि को देवत्व स्थान दिया जाता हैं इसी प्रकार विष्णु भगवान के विभिन्न अवतारों जैसे कूर्मावतार, वाराहावतार, मत्स्यावतार, नृसिंहावतार को देवत्व रूप दिया गया है।

विश्व के अन्य किसी देश में ऐसी समृद्ध प्रकृति प्रिय संस्कृति देखने को नहीं मिलती।

वर्तमान में तीव्र गति से हो रहे जैवविविधता के ह्यास के संरक्षण हेतु निम्न उपाय किया जाना आवश्यक है –

(i) कृत्रिम संग्रहण (Artificial Stocking) – कृत्रिम संग्रहण के अन्तर्गत ऐसी प्रजातियों का संरक्षण आता है, जिनके विलुप्त होने का खतरा बढ़ रहा है। ऐसी प्रजातियों का उन्हीं क्षेत्रों में आसानी से संरक्षण किया जा सकता है, जहाँ वे विलुप्त होने के कगार पर हैं।

(ii) आवास स्थल में सुधार (Improvement in Dwelling Place) – मानव ने अपनी उन्नति और समृद्धि के लिये जीवों के प्राकृतिक आवासों को या तो नष्ट कर दिया है अथवा इन्हें विकृत कर दिया है। जीवों के ऐसे विकृत या नष्ट प्राकृतिक आवासों के सुधार की आवश्यकता है ताकि उनमें निवास करने वाली प्रजातियों को भोजन एवम् अन्य आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध हो सकें। भारत में अब तक 18 जैवमण्डलीय आरक्षित क्षेत्र स्थापित किए जा चुके हैं। ये नीलगिरी, नंदादेवी, नोकरेक, ग्रेट निकोबार, मन्नार की खाड़ी, मानस, सुन्दरवन, सिमलीपाल, पचमढ़ी, कंचनजोंगा, अगस्थ्यमल्गह, पन्ना, अचनकमर–अमर कंटक, सेशाचेलम, लाम दाफा, उत्तराखण्ड, थार का रेगिस्तान, कच्छ का छोटा रन, कान्हा, काजीरंगा, उत्तरी अंडमान, आदि हैं। इन 18 आरक्षित जैवमण्डलों में से नौ (09)–नीलगिरी, सुन्दरवन, मन्नार की खाड़ी, नन्दादेवी, नेफरेक, ग्रेट निकोबार, सिमलीपाल, पचमढ़ी और अचनकमर–अमरकंटक को यूनेस्को ने मान्यता प्रदान कर दी है।

(iii) प्रतिबन्धित आखेट (Restricted Hunting):– जिन जैव प्रदेशों में वन्यजीवों की अधिकता के साथ ही उनमें उच्च प्रजनन दर पायी जाती है, वहाँ प्रतिबंधित आखेट किया जा सकता है अन्यथा संवेदनशील क्षेत्रों को प्रतिबन्धित किया जाना चाहिए।

(iv) वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम (Wildlife Conservation Act) :– अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवम् प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन (International Union of Conservation of Nature and natural Resources-IUCN) तथा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme-UNEP) ने विश्व के समस्त राष्ट्रों को पर्यावरण संरक्षण नियमों की ऐसी प्रभावी प्रणाली विकसित करने को कहा है, जिससे मानवाधिकार सुरक्षित रह सकें और साथ ही भावी पीढ़ी के हितों पर भी कुठाराघात नहीं हो।

हमारा देश उन गिने चुने देशों में से है, जहाँ 1894 से ही वननीति लागू है। इस वननीति में 1952 और 1988 में संशोधन किया गया। संशोधित वन नीति, 1988 का मुख्य आधार वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास है। यही नहीं आगामी 20 वर्षों के लिये राष्ट्रीय वन्य कार्यक्रम के अन्तर्गत एक वृहत् योजना तैयार

की गई है, जिसका उद्देश्य वनों की कटाई को रोकना और देश के एक–तिहाई भाग को वृक्षों / वनों से आवृत करना है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय वन्यजीव कार्यशाला, 1983 को संशोधित करके नई वन्यजीव कार्ययोजना (2000–2016) बनाई गई है, जिसके अन्तर्गत वन्यजीवन संरक्षण और विलुप्त होती जा रही प्रजातियों के संरक्षण के लिये कार्यक्रम बनाये जाते हैं।

(v) राष्ट्रीय उद्यान एवम् अभयारण्यों की स्थापना (Establishment of National Park and Sancturies) :–

हमारे देश में अब तक 89 राष्ट्रीय उद्यानों और 490 अभ्यारण्यों की स्थापना की जा चुकी है, जो देश के कुल क्षेत्रफल के लगभग 150,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य वन्यजीवों का संरक्षण, अवैध तरीके से वन्य जीवों के शिकार और वन्यजीव उत्पादों के अवैध व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना, राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों के समीपवर्ती क्षेत्र में पारिस्थितिकी विकास करना है।

राजस्थान में वन्यजीवों के संरक्षण के लिये 4 राष्ट्रीय उद्यानों, 26 अभ्यारण्यों, 35 निषेध क्षेत्रों तथा 5 चिड़ियाघरों की स्थापना की जा चुकी है। राष्ट्रीय उद्यानों में राजीव गांधी राष्ट्रीय उद्यान, रणथम्भौर, (सवाईमाधोपुर), घना केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी उद्यान, (भरतपुर), राष्ट्रीय मरू उद्यान, (जैसलमेर) और सरिस्का वन्य जीव राष्ट्रीय उद्यान, (अलवर) में स्थित है। राज्य के प्रमुख अभ्यारण्य दर्रा (झालावाड़), तालछापर (चूरू), नाहरगढ़ (जयपुर), जयसमन्द (उदयपुर), कुम्भलगढ़ (पाली), बंध बारेठा (भरतपुर), वन विहार (धौलपुर), सीतामाता (चित्तौड़गढ़), माउन्ट आबू (सिरोही), रावली टाड़गढ़ (अजमेर), चम्बल (कोटा), जवाहर सागर (कोटा), जमुवा रामगढ़ (जयपुर), केलादेवी (करौली), गजनेर (बीकानेर) हैं।

प्रकृति में विविधताएँ :–

विभिन्नताएँ (Variations) प्रकृति का नियम है तथा ये प्रकृति के लगभग सभी जीवधारियों (Organisms) में सार्वभौमिक (Universal) रूप से उपस्थित होती है। जीवधारियों में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की विभिन्नताएँ लाखों–करोड़ों वर्षों में हुए जैविक उद्विकास (Organic Evolution) की परिणति है। सारा जैवमण्डल (Biosphere) इन्हीं विभिन्नताओं के माध्यम से संचरित एवं नियंत्रित होता है। इनको ही वैज्ञानिक भाषा में ''जैव विविधता'' (Biodiversity) के नाम से पुकारा जाता है।

जैवविविधता को जैविकविविधता (Biological diversity) भी कहते हैं तथा इसका साधारण शब्दों में सीधा सादा अर्थ है– एक क्षेत्र के जीन्स, जातियों तथा पारिस्थितिक तंत्र की संख्या (The totality of genes, species and ecosystem of a region) अथवा विश्व में पाए जाने वाले विभिन्न जीवधारी एवं उनकी विविध जातियाँ। जैवविविधता स्थान दर स्थान विभिन्न होती है।

जैवविविधता को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है–

''जीवधारियों में उपस्थित विभिन्नता, विषमता तथा पारिस्थितिकी जटिलता ही जैव विविधता कहलाती है।''

जैवविविधता की कुछ अन्य परिभाषाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। जैसे –

(अ) कन्वेंशन ऑन बॉयलॉजिकल डायवर्सिटी (Convention on Biological Diversity-CBD); जॉनसन, 1993 के अनुसार ''जैविक विभिन्नताएँ स्थल, समुद्र व जलीय (मीठे) पारिस्थितिक तंत्रों में पायी जाती हैं। यह विभिन्नता समष्टि (Population) की जातियों में (within species), जातियों के बीच में (between spcies) एवं पारिस्थितिक तंत्र की जातियों में हो सकती है।''

(ब) ''पृथ्वी रूपी, वासोपयोगी जहाज (Habitat ship) पर मनुष्य के जीवन का आधार ही जैव विविधता है।''

वनों की सघनता जैव विविधता में अभिवृद्धि करती है। विश्व में ब्राजील देश के सघनतम भूमध्यरेखीय वनों में जीव–जंतुओं व पशु पक्षियों की सर्वाधिक जातियाँ पाई जाती है। ब्राजील के पश्चात् विश्व में हमारा देश भारत ऐसा भाग्यशाली देश है, जहाँ पर सर्वाधिक जैव–विविधता पाई जाती है। विश्व में सबसे अधिक जैवविविधता भूमध्य रेखा (equator) के दोनों ओर तथा ध्रुवों (poles) पर सबसे कम जैव विविधता होती है।

पारिस्थितिक तंत्र अथवा पारितंत्र (Ecosystem) में संतुलन हेतु जीवधारियों (प्राणियों, वनस्पतियों, सूक्ष्मजीवधारियों) में जैव विविधता अनिवार्य रूप से होनी चाहिए अन्यथा समष्टि अथवा जनसंख्या (population) में जीन स्तर पर विविधता अल्प होती है तथा उसके विलुप्त (Extinct) होने की प्रबल संभावना बनी रहती है।

जैवविविधता एक अद्‌भुत प्राकृतिक स्रोत है। इसका विलोपन सदा के लिए होता है, जैसे– हम अब 'डायनासोर' को पुनः उत्पन्न नहीं कर सकते हैं।

सन् 1992 में ब्राजील देश के शहर रियो दि जेनेरो (Rio de Janeiro) में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन (Earth summit) में हुए पारस्परिक विचार विमर्श में जैव विविधता को जातियों में पायी जाने वाली परिवर्तनीयता (Variability) माना गया है। इस विविधता के अंतर्गत वे सभी स्थलीय, जलीय और सागरीय पारितंत्र आते हैं, जो इन प्राणियों का आवास है। दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग शहर में सन् 2002 में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन द्वितीय में यह चिन्ता व्यक्त की गई थी कि वैश्विक पर्यावरणीय साझेदारी पर्यावरण दोहन का नया लाभोन्मुखी जरिया न बन जाए।

विश्व में अधिकतम जैव विविधता प्रवाल भित्तियों (Coral reefs), नम प्रदेश (Wet lands), मैंग्रोव पारिस्थितिक तंत्र (Mangrove ecosystem) तथा उष्णकटिबन्धीय पारिस्थितिक तंत्र में व्याप्त होती है। प्रवाल भित्तियों के क्षेत्र की जैवविविधता

अधिकतम पायी जाती है। महासागरीय तलीय क्षेत्र के एक प्रतिशत प्रवाल क्षेत्रों में महासागरीय 25 प्रतिशत जीवों को संरक्षण प्राप्त होता है।

जैवविविधता की संकल्पना (Concept of biodiversity) – प्रत्येक जीवधारी का शरीर उसके जीनों से

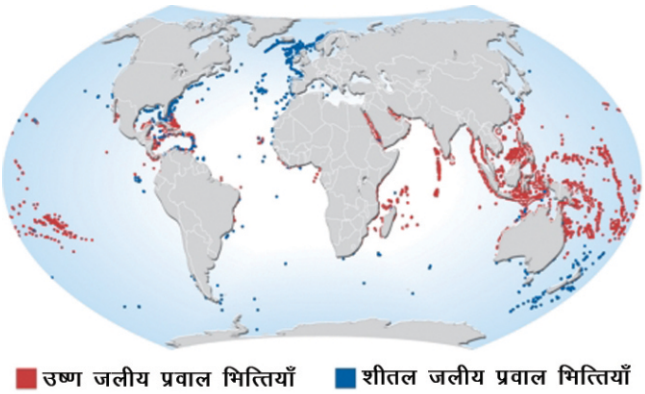

चित्र 21.1 : विश्व में प्रवाल भित्तियों का वितरण

निर्मित होता है एवं उसके शरीर की कार्यिकी भी इन्हीं जीनों के द्वारा नियंत्रित होती है। जीन ही जैवमण्डल की जैवविविधता का मूलभूत आधार होता है। पर्यावरणीय ह्रास के फलस्वरूप विगत वर्षों में जैवविविधता की संकल्पना/अवधारणा विकसित हुई है। जैविक विविधता एवं सम्पन्नता प्रकृति का एक अति महत्वपूर्ण गुण है, जो पृथ्वी पर विकास की प्रक्रिया का परिणाम है तथा सतत् संरक्षण हेतु प्रार्थी है। प्राकृतिक आवासों के अकल्पनीय विनाश के कारण ही गत वर्षों में जैव विविधता के ह्रास का संकट प्रकट हुआ है। उदाहरणार्थ– हमारे प्रांत राजस्थान में कृष्ण (काले) मृगों का शिकार, उत्तरांचल प्रांत के विश्व विख्यात जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क में लगभग आधा दर्जन हाथियों का शिकार, ट्राईपाइनासिमियोसिस नामक बीमारी के कारण नंदन कानन अभ्यारण्य में 13 बाघों की अकाल मृत्यु इत्यादि ऐसी असहनीय घटनाएँ ही इस वास्तविकता का पुरजोर समर्थन करती हैं कि हमारे देश में भी जैव विविधता का क्षेत्र आसन्न संकटों से अछूता नहीं है।

मानव के जीवन निर्वाह हेतु जैवविविधता का अस्तित्व हर सूरत में बना रहना अति आवश्यक है। प्रदूषण (Pollution) का उद्गम मानवीय क्रियाकलापों की ही देन है। निरंतर उत्तरोत्तर रूप में अपने पैर पसार रहा प्रदूषण जैव विविधता का ग्राफ निश्चित तौर पर घट रहा है। मनुष्य अब तक लगभग एक लाख प्राणी जातियों तथा लगभग 76% वन्य प्राणियों को अपने लाभ हेतु उपभोग करते हुए उनका संपूर्ण रूप से अस्तित्व ही समाप्त कर चुका है।

जैवविविधता में कमी, वर्तमान विश्व की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। इसकी कमी जीवों की उद्विकासीय (Evolutionary) समर्थता को प्रभावित करती है और वे पर्यावरणीय बदलावों से संघर्ष करने में अपने आपको असहाय पाते हैं।

जैवविविधता की संकल्पना में जातियों (Species) की एक निर्णायक स्थिति (Crucial position) होती है। प्रकृति में वंश वृद्धि के योग्य (able to breed), उत्पादक जीवन तथा पुनः उत्पादक संतान (Fertile offspring) वाले समान प्रकार के जीवों को जाति कहते हैं। प्रकृति में जातियाँ मिलकर संकरण (Hybridization) के द्वारा नवीन जाति को जन्म देती हैं। इस प्रकार जैव विविधता जीवन की निरंतरता तथा पर्यावरण की दीर्घावधि, टिकाऊपन हेतु एक अति आवश्यक महत्त्वपूर्ण शर्त है।

जैवविविधता का मूल्य/महत्त्व (Value of biodiversity) – प्रकृति में विद्यमान प्राणी एवं वनस्पति मानव मात्र (Human beings) हेतु नाना प्रकार से लाभदायक हैं। प्राचीन समय से ही मानव अपने भोजन, कपड़े, निवास, औषधियों इत्यादि हेतु प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जैव विविधता पर निर्भर रहा है। हमारी बौद्धिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विविधता भी जैव विविधता का ही अंग है। प्राकृतिक संसाधनों पर ही राज्य, राष्ट्र और विश्व की आर्थिक व्यवस्था निर्भर करती है। जिस देश की जैवविविधता उच्च कोटि की होती है, तदनुरूप वह राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से भी पूर्ण आत्मनिर्भर होता है। इस प्रकार जैव विविधता हमारे लिए उपभोगात्मक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, वरन् इसका उत्पादक महत्त्व भी है।

(I) खाद्य मूल्य (Food value)– प्रसिद्ध पारिस्थितिकीविद् (Ecologist) नॉमर्न मेयर्स के मतानुसार मनुष्य के द्वारा लगभग 80,000 पौधों की जातियों का उपभोग खाद्य के रूप में किया जाता है। संसार की संपूर्ण भोजन प्राप्ति मुख्य रूप से गेहूं, चावल, मक्का, जौ, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन, चुकन्दर, अरहर, नारियल, आलू, कसावा, शकरकन्द, चिकबीन्स, फिल्डबीन्स, गन्ना इत्यादि पर अवलम्बित है। इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के फल जैसे केला, आम, सीताफल (शरीफा), पपीता, अंगूर, सेब, संतरा, तरबूज, खरबूजा इत्यादि तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ जैसे– बैंगन, भिण्डी, गोभी, टमाटर आदि एवं विभिन्न प्रकार की मछलियाँ संसार की खाद्य आपूर्ति में मुख्य भूमिका का निर्वहन करती हैं। वनस्पतियों की कुछ जातियाँ जैसे अदरक, हल्दी, केसर, धनिया, हींग, सौंफ, जीरा, अजवायन, तेजपत्ता, कालीमिर्च आदि का उपयोग मुख्यतः घरेलू एवं व्यापारिक तौर पर किया जाता है।

(II) औषधीय मूल्य (Medicinal value) – विभिन्न प्रकार की औषधियाँ प्राणियों एवं वनस्पतियों से प्राप्त की जाती हैं। इनका विवरण अग्र प्रकार है।

मेडागास्कर पेरिविकल (Madagascar Periwinkle, Catharanthus roseus) या सदाबहार के पौधे से विनब्लास्टीन एवं विन्क्रिस्टीन नामक कैंसर रोधी औषधियाँ

निर्मित की जाती हैं। इन औषधियों से बाल्यकाल में होने वाले रक्त कैंसर 'ल्यूकेमिया' (Leukemia) पर 99 प्रतिशत नियंत्रण कर लेने में सफलता अर्जित हुई है। कवक (Fungi) द्वारा पैनीसिलीन, सिनकोना पेड़ की छाल से कुनैन, बैक्टीरिया से एरिथ्रोमाइसिन, टेट्रासाइक्लिन नामक प्रतिजैविक औषधियाँ निर्मित की जाती हैं।

(III) सामाजिक मान (Social value) – जैव विविधता का सामाजिक मूल्य चिरकाल से ही मनुष्य के जीवन का अंग रहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा जीवन की विविधता विभिन्न रूपों में सामाजिक मान को प्रतिबिम्बत करती हैं उदाहरणार्थ – तुलसी, केला, पीपल आदि ऐसे पौधे हैं, जो हमारे घरों में आयोजित प्रत्येक धार्मिक समारोहों का अविभाज्य अंग होते हैं। अशोक, आम्र (आम) ऐसे वृक्ष हैं, जिनकी पत्तियों की 'वन्दनवार' यज्ञ, विवाह, धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान अनिवार्य रूप से लगाई जाती है। निःसंदेह, मनुष्य की इस प्रकार की मनोवृत्ति प्रकृति की वानस्पतिक सम्पदा को सुरक्षित रखती है।

(IV) नीति मान (Ethical value) – भारतीय समाज आदिकाल से सदैव वृक्षों की पूजा करके उन्हें संरक्षित करने में अग्रणी रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation - U.N.O.) की साधारण सभा के दृष्टिकोण के अनुसार 'प्रत्येक जाति को स्वतंत्र रूप से जीने का नैतिक आधार है।' हमारे समाज, धर्म तथा सभ्यता ने हमें नैतिक रूप से बलिष्ठ किया है, जिससे जैव विविधता को संरक्षित करने में भरपूर मदद मिली है। उदाहरणार्थ – हमारे देश के राजस्थान प्रांत में कदम्ब; उड़ीसा में आम, इमली; मध्यप्रदेश में ढाक तथा बिहार में महुआ की पूजा की जाती है। इसी क्रम में नैतिकता का एक अन्य अनूठा तथा अनुकरणीय उदाहरण हमारे सामने है। संयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America - U.S.A.) के नागरिकों ने ऐसी ट्यूना मछलियों को नहीं खरीदने का प्रण कर लिया था, जिनका शिकार एक छोटे जलीय जंतु 'परपोइसेस' (Porpoises) की सहायता से किया जाता हो।

(V) सौन्दर्यात्मक मूल्य (Aesthetic value)– विविधता में ही सुन्दरता का वास होता है। प्रकृति में जितनी ज्यादा विविधता होगी, यह उसी अनुरूप उतनी ही सुन्दर होगी। प्रकृति को सुन्दर रूप प्रदान करने में जैवविविधता की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जंतुआलय (Zoo) में जितनी ज्यादा जैव विविधता होती है, वह दर्शकों को उतना ही ज्यादा मनोरंजक लगती है। वर्तमान पीढ़ी को प्रकृति प्रदत्त जीवधारियों का महत्त्व दिग्दर्शित कराना अत्यावश्यक है ताकि वे आने वाली भविष्य की पीढ़ी हेतु इनको संरक्षित रख सकें। पर्यटन के फैलाव में प्राकृतिक सुन्दरता की एक अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जिससे आर्थिक क्षेत्र को सम्बल मिलता है। 'वन्य प्राणियों' (Wild Animals) को उनके ही प्राकृतिक परिवेश में स्वतंत्र, निर्बाध रूप से विचरण करते हुए देखने को ही इकोटूरिज्म (Eco-Tourism) कहते हैं।' यह आधुनिक पर्यटन (Modern Tourism) का एक अविभाज्य क्षेत्र है। इसके साथ ही साथ दूरदर्शन, सिनेमा, साहित्यिक पाठ्य–पुस्तकें, उपन्यास, मनोरंजक पुस्तकें आदि भी जैव विविधता के सौन्दर्यात्मक पहलू को उजागर करते हैं। कुछ पौधे सुन्दरता हेतु सड़कों के दोनों सिरों पर रोपित किए जाते हैं। जैसे– कचनार, अमलतास (पीले फूल), बोगनविलिया (सफेद, गुलाबी फूल), गुलमोहर (लाल, नारंगी फूल), कनेर (गुलाबी, पीले फूल), इराइथ्रिया (लाल फूल) इत्यादि।

(VI) आनुवांशिक मूल्य (Genetic value)– जीवधारियों में से ऐसे अनेक विशेषक (Traits) हैं, जिनका अनुसंधान होना अभी तक शेष है। विशेषक, जाति (Species) विशेष को जीवित रखने हेतु उत्तरदायी होते हैं। किसी भी समष्टि में जीन–कोश (Gene pool) संबंधित जाति का प्रतिनिधि (Representative) होता है। जीन कोश से तात्पर्य है – 'किसी भी समष्टि के जीवधारियों के जीनों (Genes) का साथ–साथ जुड़ना।' इनका संरक्षित रहना परम आवश्यक होता है ताकि निकट भविष्य में इनका लाभदायक उपयोग किया जा सके। कृषि के क्षेत्र में भी जीन कोश का महत्त्व है, क्योंकि भविष्य की खाद्य समस्याओं का त्वरित निराकरण इनके माध्यम से सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion) – उपर्युक्त विवरण के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप यह लिपिबद्ध किया जा सकता है कि प्रकृति प्रदत्त जैव विविधता मानव के लिए एक वरदान है। जैवविविधता प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को महत्त्वपूर्ण अवयवों की आपूर्ति करती ही है, स्वयं कुछ भी लेती नहीं है। वह सिर्फ मानव समाज से अपने संरक्षण की आशा प्रतिपल संजोएँ रहती है। शुक्राणु बैंक (Sperm bank) एवं बीज भण्डार (Seed store) बनाकर लुप्तप्राय प्रजातियों की जैव विविधता को संरक्षित किया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. विभिन्नताएँ (Variations) प्रकृति का नियम है तथा प्रकृति के लगभग सभी जीवधारियों (Organism) में सार्वभौमिक (Universal) रूप से उपस्थिति होती है। जैवविविधता (Biodiversity) को जैविक विविधता (Biological diversity) भी कहते हैं। जैवविविधता का साधारण शब्दों में अर्थ है – एक क्षेत्र के जीनों, जातियों तथा पारिस्थितिक तंत्र की संख्या अथवा विश्व में पाए जाने वाले विभिन्न जीवधारी एवं उनकी विविध प्रजातियाँ। जीवधारियों में उपस्थित विभिन्नता, विषमता तथा पारिस्थितिकी जटिलता ही जैव विविधता कहलाती है। वनों की सघनता जैव विविधता में अभिवृद्धि करती है।
2. जैवविविधता एक प्राकृतिक स्रोत है तथा इसका विलोपन हमेशा के लिए होता है। सन् 1992 में ब्राजील देश के शहर

रियो दी जेनेरो (Rio de Janeiro) में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन (Earth summit) में हुए पारस्परिक विचार विमर्श में जैव विविधता को जातियों में पायी जाने वाली परिवर्तनीता (Variability) माना गया है। दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग शहर में सन् 2002 में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन द्वितीय में यह चिन्ता व्यक्त की गई थी कि वैश्विक पर्यावरणीय साझेदारी, पर्यावरण दोहन का नया लाभोन्मुखी जरिया न बन जाए। विश्व में अधिकतम जैवविविधता प्रवाल भित्तियों, नम प्रदेश, मैंग्रोव पारिस्थितिक तंत्र एवं उष्ण कटिबन्धीय पारिस्थितिक तंत्र में उपस्थित होती है। प्रत्येक जीवधारी का शरीर जीनों से निर्मित होता है एवं उसके शरीर की कार्यिकी भी इन्हीं जीनों के द्वारा नियंत्रित होती है। जीन ही जैव मण्डल (Biosphere) की जैव विविधता का मूलभूत आधार होते हैं। पर्यावरणीय ह्रास के कारण ही विगत वर्षों में जैव विविधता की संकल्पना विकसित हुई है।

3. निरंतर उत्तरोत्तर रूप में अपने पैर पसार रहा प्रदूषण जैव विविधता का ग्राफ निश्चित तौर पर घट रहा है। जैवविविधता में अल्पता उद्विकासीय समर्थता को प्रभावित करती है और वे पर्यावरणीय बदलावों से संघर्ष करने में अपने आपको असहाय पाते हैं। जैवविविधता की संकल्पना में जातियों की एक निर्णायक स्थिति होती है। प्रकृति में वंश वृद्धि के योग्य उत्पादक जीव तथा पुनः उत्पादक संतान वाले, समान प्रकार के जीवों को जाति कहते हैं। प्रकृति में जातियां परस्पर मिलकर संकरण के द्वारा नई जातियों को जन्म देती हैं।

4. हमारी बौद्धिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विविधता भी जैवविविधता का ही अंग है। सिनकोना पेड़ की छाल से कुनैन नामक औषधि प्राप्त की जाती है। अशोक, आम्र ऐसे पाद हैं, जिनकी पत्तियों की 'वन्दनवार' धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान लगाई जाती है। राजस्थान प्रांत में कदम्ब; उड़ीसा में आम, इमली, मध्यप्रदेश में ढाक तथा बिहार में महुआ को पूजा जाता है। वन्य प्राणियों को उनके ही प्राकृतिक परिवेश में स्वतंत्र, निर्बाध रूप से विचरण करते हुए देखने को ही इकोटूरिज्म (Eco-Tourism) कहते हैं। सुन्दरता हेतु सड़कों के किनारों पर जो पौधे मुख्यतः रोहित किये जाते हैं, ये हैं – अमलतास, कचनार, गुलमोहर, बोगनविलिया, कनेर, इरइथ्रिना आदि।

5. विशेषक (Traits), जाति विशेष को जीवित रखने हेतु उत्तरदायी होते हैं। किसी भी समष्टि में जीन कोश (Gene pool) संबंधित जाति का प्रतिनिधि होता है। जीन कोष से तात्पर्य है– 'किसी भी समष्टि के जीवधारियों के जीनों का साथ–साथ जुड़ना। इसका संरक्षित रहना परम आवश्यक होता है, ताकि निकट भविष्य में इनका लाभदायक उपयोग किया जा सके। कृषि (Agriculture) के क्षेत्र में भी जीन कोष का महत्त्व है, क्योंकि भविष्य की खाद्य समस्याओं का त्वरित निराकरण इसके माध्यम से सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. विश्व में सर्वाधिक जैव विविधता किस देश में पायी जाती है?
   (अ) ब्राजील
   (ब) भारत
   (स) दक्षिण अफ्रीका
   (द) जर्मनी
2. 'वन्दनवार' हेतु कौनसे वृक्षों की पत्तियाँ सामान्यतः प्रयुक्त की जाती है?
   (अ) अशोक एवं पीपल
   (ब) आम एवं जामुन
   (स) अशोक एवं आम
   (द) बरगद एवं पीपल
3. जिसमें अधिकतम जैव विविधता मिलती है?
   (अ) नम प्रदेश
   (ब) प्रवाल भित्तियाँ
   (स) मैंग्रोव पारिस्थितिक तंत्र
   (द) उष्ण कटिबंधीय पारिस्थितिक तंत्र
4. रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान स्थित है–
   (अ) भरतपुर
   (ब) अलवर
   (स) जयपुर
   (द) सवाईमाधोपुर
5. राजस्थान का राज्य वृक्ष है?
   (अ) ढाक
   (ब) खेजड़ी
   (स) इमली
   (द) कदम्ब

अतिलघूतरात्मक प्रश्न –

6. जैवविविधता को परिभाषित कीजिए।
7. मुख्यरूप से किसकी संघनता से जैवविविधता में अभिवृद्धि होती है?
8. जैवविविधता की संकल्पना विकसित होने का क्या आधार है?
9. कुनैन नामक औषधि किससे प्राप्त होती है?
10. 'इकोटूरिज्म' से क्या आशय है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

11. जैव विविधता के खाद्य मूल्य पर टिप्पणी दीजिए।

12. वनस्पतियों के सामाजिक मूल्य को सोदाहरण प्रस्तुत कीजिए।
13. कृषि के क्षेत्र में जीन कोष का क्या महत्त्व है?
14. जॉनसन (1993) के शब्दों में जैव विविधता की परिभाषा लिखिए।
15. जैव विविधता के औषधीय मूल्य पर संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. जैव विविधता को परिभाषित कीजिए। इसकी अवधारणा का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत कीजिए।
17. जैव विविधता के मूल्य पर सविस्तार चयनित शब्दों में एक लेख लिखिए।
18. प्रकृति प्रदत्त जैव विविधता मानव के लिए वरदान है? समझाइये।

उत्तरमाला– 1. अ 2. स 3. ब 4. द 5. ब

अध्याय – 22

पारिस्थितिकीय तंत्र की संकल्पना
(Concept of Ecosystem)

पारिस्थितिकी शब्द भले ही उन्नीसवीं शताब्दी की देन हो, किन्तु पारिस्थितिकी की संकल्पना हमारी संस्कृति की दृष्टि से अति प्राचीन है। पुरातन काल से ही भारतीय ऋषियों एवम् मनीषियों ने प्रकृति एवम् जीव के अन्तर्सम्बन्धों को जनमानस का अंग बनाने के लिये इन्हें विभिन्न प्रतीकों के रूप में धर्म, सामाजिक नियम और आचरण से जोड़ दिया था। जैसे गाय को माता का स्थान प्रदान किया गया। फलस्वरूप हजारों वर्षों से ये अन्तर्सम्बंध मित्रवत् चले आ रहे थे, किन्तु आधुनिक युग में मानव की प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की आकांक्षा ने सनातन नियमों और आचरण को त्याग कर केवल भौतिक सुख को जीवन का आधार मान लिया। फलस्वरूप प्रकृति और जीव के अन्तर्सम्बन्धो में विकृति पैदा हो गई और पारिस्थितिकी की संकल्पना का उदय हुआ।

पारिस्थितिकी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हैकल (1869) द्वारा वनस्पति के क्षेत्रों के लिये किया गया। हैकल द्वारा पारिस्थितिकी अर्थात् इकोलॉजी (Ecology) शब्द की रचना ग्रीक भाषा के Oikos अर्थात् आवास तथा Logos अर्थात् अध्ययन को मिलाकर की गई। हैकल से पूर्व भी अनेक विद्वानों ने अप्रत्यक्ष रूप से पारिस्थितिकी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये। हम्बोल्ट (1769) ने बताया कि पृथ्वी जड़ पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार कार्ल रिटर (1779–1859) ने लिखा कि पृथ्वी धरातल पर विभिन्न तत्त्वों के स्थानिक वितरण में सामंजस्य होता है। ये तत्त्व आपस में इतने अन्तर्सम्बन्धित होते हैं, कि उस क्षेत्र को एक विशिष्टता प्रदान कर देते हैं। रिटर ने आगे बताया कि पृथ्वी उत्पत्ति के नियम मानव नहीं बनाता बल्कि पृथ्वी के अपने नियम होते हैं, जिनका अध्ययन मानव कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि हैकल ने पारिस्थितिकी अध्ययन का प्रारम्भ किया, किन्तु वास्तव में सन् 1935 में ए.जी. टेन्सले द्वारा किये गये जीवमण्डल के अध्ययन में ''पारिस्थितिकी तंत्र'' शब्द का प्रयोग किये जाने पर ही विश्व का ध्यान इस ओर गया। तांसले के अनुसार ''वह तंत्र जिसमें पर्यावरण के जैविक और अजैविक कारक अन्तः सम्बन्धित होते हैं, पारिस्थितिकी तंत्र कहलाता है।'' (The System resulting from the integration of all the living and non-living factors of the environment.) आर. डजोज (R. Dajoz) ने पारिस्थितिकी को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''पारिस्थितिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध जीवों के जीवन की दशाओं और जिस पर्यावरण में यह निवास करते हैं, उस पर्यावरण तथा उन जीवों के बीच के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करना है।'' (Ecology is the science concerned with the study of the condition of existence of living organism and the inter-relation between the organism and the environment in which they live.)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी तंत्र एक ऐसी व्यवस्था है, जो जीव और पर्यावरण की अन्तःप्रक्रिया का परिणाम होती है। यह व्यवस्था प्राकृतिक नियमों के तहत विकसित होती है। अतः पारिस्थितिकी के अध्ययन में इसी व्यवस्था के रहस्यों का पता लगाया जाता है। यह व्यवस्था इतनी जटिल है कि जैसे–जैसे विद्वान इन रहस्यों की खोज कर रहे हैं, वैसे–वैसे नये रहस्य उद्घटित होते जा रहे हैं। यद्यपि वैज्ञानिक उपलब्धियों और तकनीकी विकास के मद में चूर मानव यह मानने लगा है कि वह प्रकृति का दास नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार प्रकृति का उपयोग और उपभोग करने के लिये स्वतंत्र है। मानव की इसी प्रवृत्ति का दुष्परिणाम अब पर्यावरण ह्रास के विभिन्न रूपों में सामने आने लगा है।

पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा
(Concept of Ecosystem)

एक भौगोलिक इकाई में निवास करने वाले जीवों और उस इकाई के पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों का समयबद्ध और क्रमबद्ध अध्ययन पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है। ए.जी. तांसले (1935) के अनुसार ''वह तंत्र जिसमें पर्यावरण के समस्त जैविक और अजैविक कारक अन्तःसम्बन्धित होते हैं, पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।

पारिस्थितिक तंत्र से सम्बन्धित अन्य विद्वानों द्वारा इसकी परिभाषा निम्न प्रकार प्रस्तुत की गई है–

आर.एल. लिंडमैन (1942) के अनुसार ''वह तंत्र जो किसी भी परिमाण वाले एक विशिष्ट समय इकाई में भौतिक – रासायनिक – जैविक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित हो, पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।

फासबर्ट (F.R. Fosbert, 1963) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र एक कार्यशील एवम् परस्पर क्रियाशील तंत्र होता है, जिसका संगठन एक या अधिक जीवों तथा उनके प्रभावी पर्यावरण से होता है।''

ओडम (E.P. Odum, 1971) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र ऐसे जीवों तथा उनके पर्यावरण की आधारभूत कार्यात्मक इकाई है, जो दूसरे पारिस्थितिक तंत्रों से तथा अपने अवयवों के मध्य निरन्तर अन्तःक्रिया करते रहते हैं।''

पीटर हेगेट (P. Haggett, 1975) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र ऐसी पारिस्थितिक व्यवस्था है, जिसमें पादप तथा जीवजन्तु अपने पर्यावरण से पोषण श्रृंखला द्वारा जुड़े रहते हैं।

स्ट्राहलर (A.N. Strahler & A.H. Strahler, 1976) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र ऐसे घटकों का समूह है, जो जीवों के समूह के साथ परस्पर क्रियाशील रहता है। इस क्रियाशीलता में पदार्थों तथा ऊर्जा का निवेश होता है, जो जैविक संरचना का निर्माण करते हैं।''

पार्क (C.C. Park, 1980) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र एक निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त प्राकृतिक जीवों तथा तत्वों का सकल योग होता है।''

एक पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिक अध्ययन की आधारभूत इकाई होता है, जिसका आकार और विस्तार अलग–अलग हो सकता है। उदाहरणार्थ एक पारिस्थितिक तंत्र सम्पूर्ण भूमण्डल पर व्याप्त पारिस्थितिक तंत्र (Global Ecosystem) हो सकता है, तो दूसरा पारिस्थितिक तंत्र एक चिड़ियाघर में निर्मित पिंजरे के समान छोटा हो सकता है अथवा किसी झील तक भी सीमित हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक भी हो सकता है अथवा मानव निर्मित भी हो सकता है।

पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार
(Types of Ecosystem)

(अ) ऊर्जा के स्रोत के आधार पर –

पारिस्थितिक तंत्र दो प्रकार के होते हैं –

(i) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र (Natural Ecosystem):– प्राकृतिक अवस्थाओं के विकसित पारिस्थितिक तंत्र को प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है, ये तंत्र दोनों प्रकार के हो सकते हैं– स्थलीय और जलीय। स्थलीय प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों में जंगल, घास के मैदान, तालाब, नदी, रेगिस्तान, पर्वतीय क्षेत्र आदि सम्मिलित किये जाते हैं। सामुद्रिक पारिस्थितिक तंत्र सबसे बड़ा और स्थायी पारिस्थितिक तंत्र होता है। वन, घास के मैदान, रेगिस्तान, खुले सागर आदि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र है।

(ii) मानव निर्मित या कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र – (Man-made or artificial Ecosystem):– मानव निर्मित एवम् अनुरक्षित तंत्र को कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है। जैसे खेत, पार्क, रसोई–उद्यान, चिड़ियाघर, एक्वेरियम आदि।

(ब) आवास के आधार पर – (i) स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र (i) जलीय पारिस्थितिक तंत्र।

(स) उपयोग के आधार पर – (ii) कृषि पारिस्थितिक तंत्र (ii) अकृषित पारिस्थितिक तंत्र।

(द) विकास के आधार पर – (i) प्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र (ii) अपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र (iii) मिश्रित पारिस्थितिक तंत्र (iv) निष्क्रिय पारिस्थितिक तंत्र।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना
(Structure of Ecosystem)

एक पारिस्थितिक तंत्र की संरचना पर्यावरण के जैविक और अजैविक घटकों की पारस्परिक अन्तःक्रियाओं द्वारा होती है।

जैविक घटक (Biotic Components)

किसी पारिस्थितिक तंत्र के समस्त जीवित जीव उस तंत्र के जैविक घटक कहलाते हैं, ये सभी जीव विभिन्न पारस्परिक अन्तःक्रियाओं द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। ये जीव एक दूसरे से कार्यात्मक रूप से भी जुड़े रहते हैं। अतः किसी भी पारिस्थितिक तंत्र से एक प्रकार के जीवों को अलग कर देने पर उस तंत्र के शेष जीवों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो सकता है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र का सन्तुलन ही बिगड़ सकता है।

जैविक घटकों को उनकी पोषण क्षमता एवम् कार्यशीलता के आधार पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. पोषण क्षमता के आधार पर जैविक घटकों का वर्गीकरण :–

पोषण क्षमता के आधार पर जैविक घटकों को दो भागों में बाँटा गया है –

(i) स्वपोषी घटक (Autotrophs Components):– स्वपोषी घटक, जिन्हें प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers) भी कहा जाता है, सौर ऊर्जा से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा और मृदा से जड़ों द्वारा स्वयं अपना भोजन बनाते हैं तथा अन्य शाकाहारी जीवों के लिये भोज्य पदार्थ प्रदान करते हैं। प्रकाश संश्लेषण में समर्थ हरे पौधे, नील हरित शैवाल (Blue green algae), प्रकाश संश्लेषी जीवाणु (Photosynthetic bacteria) आदि पारिस्थितिक तंत्र के स्वपोषी घटक हैं।

(ii) परपोषी घटक (Hterotrophs Components):– ये वे परपोषी सजीव घटक हैं, जो स्वपोषित प्राथमिक उत्पादकों द्वारा प्रदत्त भोजन ग्रहण करते हैं। परपोषी घटकों द्वारा स्वपोषियों द्वारा निर्मित भोजन का उपयोग किये जाने के कारण इन्हें उपभोक्ता (Consumers) भी कहा जाता है। आहार ग्रहण करने की प्रक्रिया के आधार पर इन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है –

(अ) मृत जीवी (Saprophyte) :– मृत जीवी घटक मृत पौधों और जन्तुओं से प्राप्त कार्बनिक यौगिकों को घोल के रूप में ग्रहण करके जीवित रहते हैं।

(ब) परजीवी (Parasite) :— ये घटक अपने भोजन और जीवन निर्वाह के लिये दूसरे जीवित जीवों पर आश्रित रहते हैं।

(स) प्राणी समभोजी (Holozonic) :— ये घटक अपने मुख द्वारा आहार ग्रहण करते हैं। मानव सहित सभी बड़े जन्तु इस वर्ग में आते हैं।

2. कार्यशीलता के आधार पर जैविक घटकों को तीन भागों में बाँटा जाता है —

(**i**) उत्पादक (Producers) :— इनमें सौर ऊर्जा से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा और मृदा से जड़ों द्वारा स्वयं अपना भोजन बनाने वाले पादप आते हैं, जिन्हें प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है।

(**ii**) उपभोक्ता (Consumers) — ये परपोषी जीव होते हैं, जो स्वपोषी पादपों द्वारा निर्मित भोजन ग्रहण करते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं :—

(अ) शाकाहारी या प्राथमिक उपभोक्ता (Herbivores or Primary Consumer) :— पौधों की पत्तियों अथवा उनके उत्पादों से भोजन प्राप्त करने वाले समस्त जीव–जन्तु जैसे खरगोश, हिरण, बकरी, गाय आदि, कीड़े तथा जलीय जीवों में विभिन्न प्रकार के मौलस्क जीव आते हैं।

(ब) मांसाहारी या द्वितीयक उपभोक्ता (Carnivores or Secondary Comsumers) :— ये शाकाहारी जन्तुओं को मारकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इन्हें द्वितीयक उपभोक्ता भी कहा जाता है। जैसे मेंढ़क, बिल्ली, लोमड़ी, कुत्ता, शेर आदि।

(स) सर्वाहारी या तृतीयक उपभोक्ता (Omnivores or Tertiary Consumers) :— इस श्रेणी में वे जीव आते हैं, जो पादपों, शाकाहारी व मांसाहारी जीवों को खाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इनमें मानव, बाज, गिद्ध, मछलियाँ, शेर आदि सम्मिलित हैं। इसलिये इन्हें तृतीयक उपभोक्ता या उच्च श्रेणी उपभोक्ता (Top Consumers) कहा गया है।

(iii) अपघटक (Decomposers) :—

इनमें मुख्यतः सूक्ष्म जीवाणु तथा कवक सम्मिलित हैं, जो मृत पादपों और जन्तुओं सहित जैविक पदार्थों को सड़ा गलाकर उनका अपघटन कर देते हैं। ये जीव अपघटन की प्रक्रिया में अपना आहार ग्रहण करते हुए जैविक तत्वों को पुनर्व्यवस्थित करते हैं और प्राथमिक उत्पादकों के प्रयोग हेतु पुनः सुलभ करवाते हैं।

उपर्युक्त सभी घटक सम्मिलित रूप से पारिस्थितिक तंत्र के सन्तुलन में सहायक होते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना

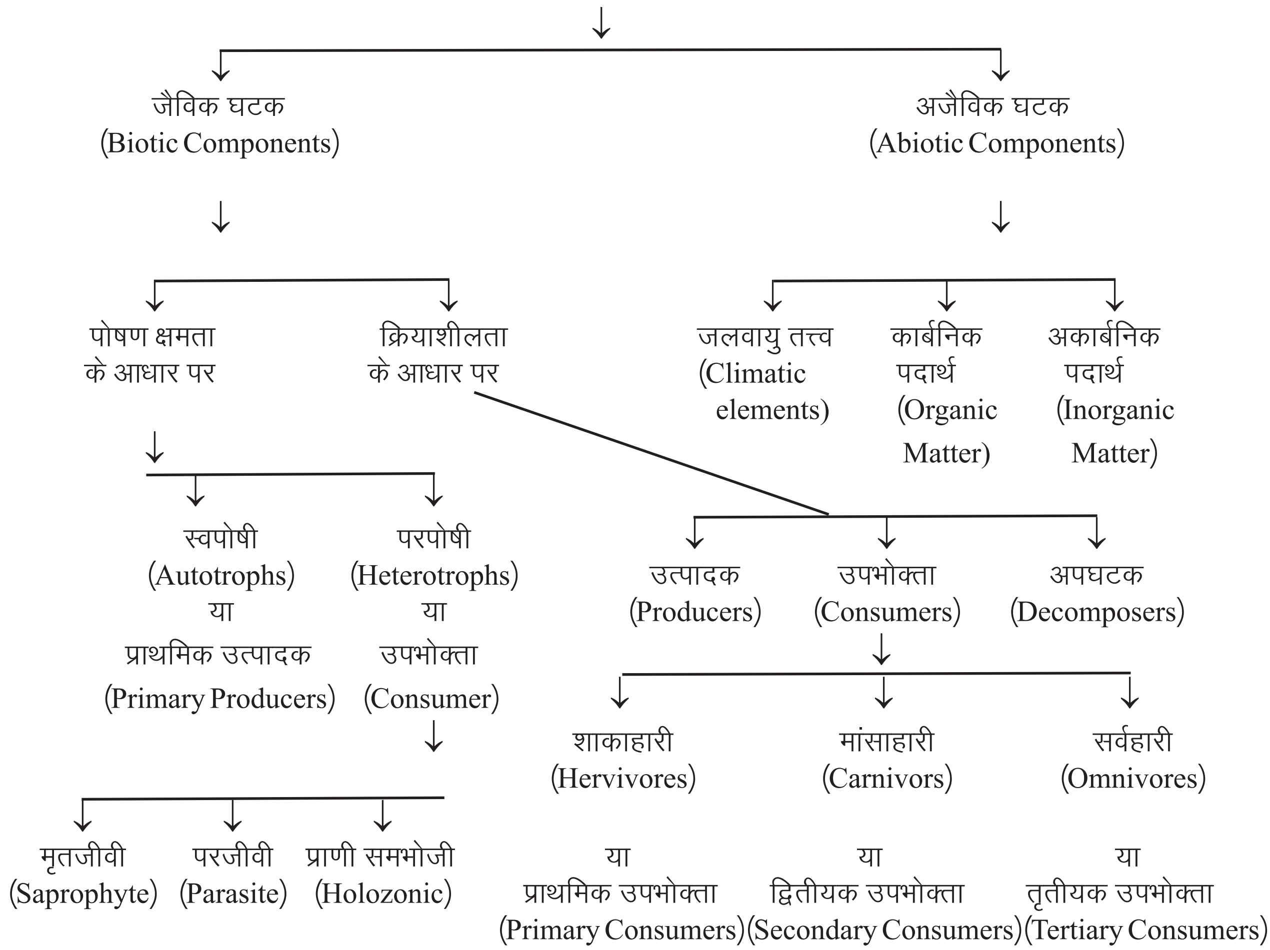

अजैविक घटक (Abiotic Components)

अजैविक घटक तीन प्रकार के होते हैं :–

(i) जलवायु तत्त्व :– जैसे सूर्य का प्रकाश, तापमान, वर्षा, आर्द्रता, जलवाष्प आदि।

(ii) कार्बनिक पदार्थ :– जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, तरल पदार्थ आदि। इन्हें शरीर निर्माणक पदार्थ कहा जाता है।

(iii) अकार्बनिक पदार्थ :– जैसे ऑक्सीजन, कार्बन डाई–ऑक्साइड, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, जल, कार्बन, सल्फर, कैल्शियम, खनिज लवण आदि। ये तत्त्व पारिस्थितिक तंत्र में पदार्थों के चक्रण में विशेष भूमिका अदा करते हैं और जीवों को शक्ति प्रदान करते हैं।

खाद्य श्रृंखला (Food Chain)

पारिस्थितिकी तंत्र में सभी जीव जो उत्पादक एवं उपभोक्ता की श्रेणी में आते है एक क्रम या श्रृंखला में व्यवस्थित रहते हैं, जीवों की इस व्यवस्थित श्रृंखला को जिसके द्वारा खाद्य ऊर्जा एवं पोषक पदार्थों का स्थानान्तरण होता है, खाद्य श्रृंखला कहते है।

पोष स्तर (Tropic Level)

खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर या कड़ी को पोष स्तर कहते है–

घास	→	टिड्डा	→	छिपकली	→	बाज
↑		↑		↑		↑
पोष स्तर प्रथम		पोष स्तर द्वितीय		पोष स्तर तृतीय		पोष स्तर चतुर्थ

खाद्य जाल (Food Web)

प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में एक साथ कई खाद्य श्रृंखलाएँ क्रियाशील रहती है। शाकाहारी व मांसाहारी जीवों को भोजन के कई विकल्प उपलब्ध होते है, जिससे खाद्य श्रृंखलाएँ आपस में अन्तर्ग्रथित होकर खाद्य जाल का निर्माण करती हैं। खाद्य जाल जितना जटिल होगा, पारिस्थितिकी तंत्र उतना ही स्थायी होगा एवं लम्बे समय तक बना रहेगा।

पारिस्थितिकी पिरामिड (Ecopyramids)

उत्पादकों, शाकाहारियों, मांसाहारियों को क्रमशः उनकी संख्या, जैवभार व ऊर्जा प्रवाह की मात्रा को आयतों द्वारा निरुपित करने पर निर्मित पिरामिड रुपी संरचना पारिस्थितिकी पिरामिड कहलाते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecosystem)

एक पारिस्थितिक तंत्र के जैविक और अजैविक घटक उस तंत्र की पर्यावरणीय पारिस्थितिक से नियंत्रित होकर एक निश्चित प्रक्रिया में क्रियाशील रहते हैं। क्रियाशील रहने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यही ऊर्जा एक पारिस्थितिक तंत्र को गतिशील बनाये रखती है। इस समस्त प्रक्रिया को ही ऊर्जा प्रवाह कहा जाता है। इस ऊर्जा प्रवाह को प्रकृति प्राकृतिक रूप से नियंत्रित रखती है, जिसके फलस्वरूप उस पारिस्थितिक तंत्र में सन्तुलन बना रहता है। इस प्रक्रिया में मानवीय अथवा प्राकृतिक कारणों से थोड़ा भी परिवर्तन होने पर उस पारिस्थितिक तंत्र में संकट उत्पन्न हो सकता है।

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र को सुचारु रूप से गतिशील बनाये रखने के लिये निरन्तर ऊर्जा प्रवाह की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य है, किन्तु वास्तव में सौर ऊर्जा का बहुत सूक्ष्म भाग ही पारिस्थितिक तंत्रों में उपयोग में आ पाता है। जैसे सौर ऊर्जा का मात्र 0.02 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है और कुछ भाग पारिस्थितिक तंत्र के अन्य कार्यों में उपयोग हो पाता है। सौर ऊर्जा का यही सूक्ष्म भाग एक पारिस्थितिक तंत्र को गतिशील बनाये रखने में सक्षम होता है।

पौधों में पाये जाने वाला हरित लवक (क्लोरोफिल) सौर ऊर्जा को अवशोषित करके उसे कार्बनिक जैव कणों (Organic Molecules) में बदल देता है। इस प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहा जाता हैं। पौधे कार्बनडाई ऑक्साइड एवम् जल की सहायता से सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण विधि द्वारा भोज्य पदार्थ में बदलने का कार्य निम्न रासायनिक सूत्र के द्वारा करते हैं:–

$$(6\,CO_2 + 6H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{सौर ऊर्जा (उष्मा)}} C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2)$$

इस प्रकार प्रकाश संश्लेषण के लिये सौर ऊर्जा, कार्बन डाइ–ऑक्साइड और जल पौधों की पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं तथा आणविक क्रिया द्वारा जैव तत्त्वों ऑक्सीजन, ग्लूकोज और कार्बोहाइड्रेट्स में बदल दिये जाते हैं। ग्लूकोज और कार्बोहाइड्रेट्स से पौधे का विकास होता है और ऑक्सीजन तथा जलवाष्प पौधों की श्वसन क्रिया द्वारा वायुमण्डल में छोड़ दी जाती है।

पौधों में संचित रासायनिक ऊर्जा को शाकाहारी जीव भोजन के रूप में प्राप्त करते हैं। पौधों से शाकाहारी जीवों में स्थानान्तरण के समय ऊर्जा का ह्यास होता है। इसके बाद मांसाहारी जीव शाकाहारी जीवों को खाते हैं, उस समय भी ऊर्जा का ह्यास होता है। इस प्रकार एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है, साथ ही ऊर्जा के इस स्थानान्तरण में उसका ह्यास भी होता रहता है। इस प्रकार प्रत्येक उपपोषण स्तर पर ऊर्जा की मात्रा निरन्तर रूप से कम होती जाती है।

ओडम के अनुसार सूर्यातप से औसतन प्रतिदिन प्रति वर्गमीटर 3000 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। इसमें से 1500 किलो कैलोरी ऊर्जा पौधों द्वारा अवशोषित की जाती है, जिसका केवल 1 प्रतिशत (15 किलो कैलोरी) रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होती है। द्वितीय एवम् तृतीय पोषण स्तर पर यह

घटकर क्रमशः 1.5 किलो कैलोरी और 0.3 किलो कैलोरी (औसत 10 प्रतिशत) रह जाती है। सामान्यतः एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में स्थानान्तरण के समय अधिकांश ऊर्जा का ह्मास होता रहता है, किन्तु उसकी गुणवत्ता बढ़ती जाती है। यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक है कि प्रकृति में सर्वत्र ऊर्जा संरक्षण का नियम लागू होता है, जिसके अनुसार ऊर्जा का न तो सृजन होता है न ही विनाश, यद्यपि ऊर्जा का रूप परिवर्तित हो सकता है। इस प्रकार किसी पारिस्थितिकी तंत्र में अन्तःगमित व बर्हिगमित ऊर्जा की मात्रा समान रहती है।

मानवीय प्रभाव (Human Influence)

पारिस्थितिक तंत्र किसी एक भौगोलिक इकाई में निवास करने वाले जीव और वहाँ के पर्यावरण के बीच अन्तःप्रक्रिया का प्रतिफल हैं। इन जीवों में मानव ही ऐसा जीव है जो अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा पर्यावरण से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये अन्य जीवों की तुलना में पर्यावरण को अधिक प्रभावित करता है। वास्तव में मानव सभ्यता के विकास का आधार ही प्रकृति का शोषण रहा है। प्रकृति कुछ पदार्थों को स्वतः पुनःपूर्ण कर लेती है, किन्तु अनेक तत्त्व ऐसे होते हैं, जिन्हें पुनःपूर्ण नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन पैदा हो जाता है, जो मानव और पर्यावरण दोनों के लिये हानिकारक होता है। पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के प्रभाव अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के देखे जा सकते हैं। मानव के अनुकूल प्रभावों द्वारा मानव और पर्यावरण दोनों को लाभ होता है, किन्तु प्रतिकूल प्रभावों द्वारा एक को किसी न किसी प्रकार की हानि होती है।

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के अनुकूल प्रभाव (Positive Impact of Man on Ecosystem)

मानव ने प्रारम्भ से ही अपनी बुद्धि, ज्ञान और तकनीकी विकास के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग और उनको नियंत्रित करने का प्रयास किया है। मानव ने अपने ज्ञान द्वारा अपनी समस्याओं के समाधान हेतु भूमि उपयोग, कृषि के विकास, वानिकी, वन्यजीव प्रबन्ध आदि में सफलता अर्जित की है। उदाहरणार्थ विश्व की तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि की कमी, खाद्यान्नों की कमी, विभिन्न बीमारियाँ आदि की समस्याएँ उत्पन्न हुई तो मानव ने भूमि के बेहतर उपयोग, खाद्यान्नों के अधिकतम उत्पादन के लिये रासायनिक उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज, कृषि उपकरणो का विकास तथा अनेक उन्नत औषधियों का आविष्कार करके विभिन्न बीमारियों को रोकने के प्रयास द्वारा इन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया और उसमें सफलता प्राप्त की है।

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के प्रतिकूल प्रभाव (Negative Impact of Man on Ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के अनुकूल प्रभावों की तुलना में प्रतिकूल प्रभाव कहीं अधिक और महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके कारण वर्तमान समय में पर्यावरणीय समस्याएँ विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। यदि समय रहते इन समस्याओं पर नियंत्रण नहीं किया गया, तो एक दिन पृथ्वी से मानव जीवन ही समाप्त हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के प्रतिकूल प्रभावों को निम्न शीर्षकों में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. कृषि क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव
2. वनोन्मूलन के प्रतिकूल प्रभाव
3. खनन क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव
4. औद्योगीकरण के प्रतिकूल प्रभाव
5. जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव
6. प्राकृतिक आपदाओं के प्रतिकूल प्रभाव

(1) कृषि क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Agricultural Activities) :– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु मानव ने जहाँ कृषि भूमि के विस्तार, रासायनिक उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज, कृषि यंत्रों एवम् उपकरणों का विकास किया, वहीं इनके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव भी उत्पन्न हुए हैं।

मानव ने कृषि भूमि के विस्तार के लिए न केवल वनों और घास के मैदानों को साफ किया है, बल्कि समुद्र से भी भूमि निकालने का प्रयास किया है, जिसका सीधा एवम् प्रतिकूल प्रभाव वन्य जीवों, चारागाहों तथा सामुद्रिक पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ा है। इसी प्रकार खाद्यान्नों के अधिक उत्पादन के लिये रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करके न केवल भूमि को कृषि के अनुपयुक्त बनाने का कार्य किया है, बल्कि रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं के निरन्तर भूमिगत जल में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं। फसलों के अधिक उत्पादन के लिए सिंचाई हेतु भूमिगत जल के निरन्तर प्रयोग से भूमिगत जल के स्तर में गिरावट आई है, जिससे राजस्थान जैसे कम वर्षा वाले प्रदेशों में पेय जल संकट उत्पन्न हो गया है।

(2) वनोन्मूलन के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Deforestation) :– मानव द्वारा कृषि क्षेत्र के विस्तार एवम् अन्य आर्थिक क्रियाओं हेतु वनों की अनियंत्रित कटाई किए जाने का प्रतिकूल प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र की जलवायु, मिट्टी, वन्य जीवों, पक्षियों आदि पर स्पष्ट देखा जा सकता है। वनोन्मूलन के फलस्वरूप जलवायु गर्म होने लगती है, वर्षा की मात्रा में कमी आ जाती है, भूमि का कटाव होने लगता है और वन्यजीवों का विनाश होने लगता है। वनों की अनियंत्रित कटाई के फलस्वरूप ही आज विश्व के अनेक भागों में, जिसमें भारत भी सम्मिलित है, अनेक वन्यजीव प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्त होने के कगार पर है। इससे वानिकी पारिस्थितिक तंत्र असन्तुलित हो गया है, क्योंकि प्राकृतिक वनस्पति ही वानिकी पारिस्थितिक तंत्र का प्रमुख आधार है।

वन रिपोर्ट 2015 के अनुसार देश में कुल वन क्षेत्र लगभग 7,01,673 वर्ग किलोमीटर है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 22.02 प्रतिशत है। इसमें से सघन वनक्षेत्र 4,80,214 वर्ग किलोमीटर (13.92 प्रतिशत) तथा खुला वन क्षेत्र

2,21,459 वर्ग किलोमीटर (8.10 प्रतिशत) है। इसमें पेड़ों से ढका क्षेत्र 92,572 वर्ग कि.मी. है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.82 प्रतिशत है। भारत उन कतिपय देशों में से है, जहाँ 1894 से ही वननीति लागू है। इसे 1952 और 1988 में संशोधित किया गया है। संशोधित वननीति, 1988 का मुख्य आधार वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास है। आगामी 20 वर्षों के लिये लम्बी अवधि की एक वृहत् रणनीति योजना के रूप में राष्ट्रीय वन्य कार्यक्रम भी तैयार किया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वनों की कटाई को रोकना तथा देश के एक तिहाई भाग को वृक्षों/वनों से ढकना है।

(3) खनन क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Mining Activities) :– औद्योगिक और तकनीकी प्रगति के साथ खनन प्रक्रिया में भी वृद्धि हुई, किन्तु इससे अनेक पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो गए। खनन प्रक्रिया के अन्तर्गत विस्तृत क्षेत्र में भूमि को खोदा जाता है, जिसके कारण भू सतह पर विस्तृत गढ्ढों का निर्माण हो जाता है और उस क्षेत्र की प्राकृतिक वनस्पति तथा जीव जन्तुओं का विनाश हो जाता है। लाखों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की भूमि अनुपयोगी हो जाती है। भू–स्खलन घटनाओं में वृद्धि हो जाती है। खनन क्रिया के लिए किए जाने वाले भूमिगत विस्फोटों से वायुमण्डल में धूलकणों की मात्रा बढ़ जाती है, जिसका सीधा एवम् प्रतिकूल प्रभाव वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। फलस्वरूप ऐसे क्षेत्रों के पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

(4) औद्योगीकरण के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Industrialisation) :– औद्योगीकरण के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण में अत्यधिक वृद्धि हुई। औद्योगिक इकाइयाँ वायु और जल प्रदूषण का प्रमुख स्रोत हैं। एक ओर इन इकाइयों से निकलने वाली विषैली गैसों के कारण वायुमण्डल निरन्तर प्रदूषित हो रहा है, तो दूसरी ओर अनेक औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला रासायनिक अपशिष्ट द्रव नदियों, भूमिगत जल और समुद्री जल को प्रदूषित कर रहा है। नदियों और भूमिगत जल के प्रदूषित होने के कारण औद्योगिक शहरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में पेय जल की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। पाली शहर के नलकूपों में रसायनयुक्त जल का निकलना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। विषैली गैसों के प्रभाव के कारण ओजोन परत का पतला होना और औद्योगिक क्षेत्रों के समीप अम्लीय वर्षा होना सामान्य हो गया है। ये सभी प्रक्रियाएँ पारिस्थितिक तंत्र को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

हमारे देश में जल एवम् वायु प्रदूषण के आकलन, निगरानी और नियंत्रण के लिए एक शीर्ष राष्ट्रीय संस्था 'केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' की स्थापना की गई है, जिस पर जल प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण अधिनियम (1971), वायु प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण अधिनियम (1981) तथ जल उपकर अधिनियम (1977) को लागू करने का दायित्व है। बोर्ड पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के प्रावधानों को लागू करने के लिए भी उत्तरदायी है। इस अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न श्रेणी के उद्योगों के निस्सरण और उत्सर्जन के मानक अधिसूचित किए गए हैं। सीमेन्ट, ताप–बिजली संयंत्र, शराब बनाने वाले कारखाने, चीनी, उर्वरक, समन्वित लौह व इस्पात उद्योग, तेल शोधन शालाएँ, लुग्दी और कागज उद्योग, पैट्रो रसायन उद्योग, कीटनाशक, चर्म शोधन शालाएँ, औषध एवम् भेषज निर्माण उद्योग, रंजक और उसके मध्यवर्तियों का निर्माण उद्योग, कास्टिक सोडा तथा जस्ता, तांबा और एल्यूमिनियम प्रगलन उद्योग को अत्यधिक प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों की श्रेणी में रखा गया है। इन उद्योगों की कुल 1551 औद्योगिक इकाइयों में से 1350 इकाइयों ने प्रदूषण नियंत्रण के लिए पर्याप्त सुविधाएँ लगा ली हैं।

खतरनाक रसायनों और खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के सुरक्षात्मक तरीके से उपयोग करने, उनके प्रबन्धन और रखरखाव करने के लिए खतरनाक अपशिष्ट प्रबन्धन विभाग की स्थापना की गई है, ताकि स्वास्थ्य और पर्यावरण को नुकसान से बचाया जा सके। इस विभाग की गतिविधियाँ तीन क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण हैं– रासायनिक सुरक्षा, खतरनाक अपशिष्टों और नगरपालिका ठोस अपशिष्ट पदार्थों का बेहतर प्रबन्धन। ऐसा अनुमान है कि देश में लगभग 4.4 मिलियन टन खतरनाक पदार्थ उत्सर्जित होते हैं। नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबन्ध और हैंडलिंग) नियम 2000, फ्लाई–एश अधिसूचना 1999 तथा पुनर्चक्रीय प्लास्टिक (उत्पादन एवं उपयोग) नियम 1999/2000 आदि के द्वारा देश में खतरनाक पदार्थों तथा अपशिष्टों के प्रबन्धन को कानूनी स्वरूप प्रदान किया गया है।

(5) जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Climate Change) :– जलवायु किसी भी पारिस्थितिक तंत्र को नियन्त्रित करती है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से मानव की अनेक क्रियाओं द्वारा जलवायु में परिवर्तन हो रहा है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहा है। जलवायु के परिवर्तन के लिये मानव की निम्न क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण कारण हैं –

1. वनोन्मूलन :– मानव अपनी सुख सुविधा एवम् लाभ के लिये वनों का अतिदोहन कर रहा है, जिससे वर्षा में अनियमितता आई है और तापमान में वृद्धि हुई है।

2. औद्योगीकरण :– औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाली विषैली गैसें न केवल वायु को प्रदूषित करती हैं, बल्कि इनके प्रभाव से ओजोन परत विरल होने लगती है। ओजोन परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी और अवरक्त किरणों को अवशोषित कर भू सतह पर पहुँचने से रोकती है। विषाक्त गैसों के परिणामस्वरूप विश्व में चर्म एवम् श्वास के रोगियों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

3. अणुशक्ति का आविष्कार :– मानव का सबसे अधिक विध्वंसात्मक वैज्ञानिक आविष्कार अणुबम की खोज है, जिसके भूमिगत या समुद्र में किए जाने वाले विस्फोटों से जलवायु प्रभावित होती है। पोकरन विस्फोट के बाद बाड़मेर क्षेत्र में अधिक वर्षा का होना इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

मानव वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर जो कुछ कर रहा है,

उससे जलवायु तंत्र प्रत्यक्ष रूप से और पारिस्थितिक तंत्र अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहा है।

6 से 17 दिसम्बर, 2004 तक ब्यूनस आयर्स में जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी बैठक में मौसम में हो रहे परिवर्तनों और इनके कारणों का निर्धारण करके उन्हें नियंत्रित किए जाने के प्रयासों पर कोई सहमति नहीं बन पाई। इसके पीछे विकसित देशों संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, इटली आदि स्रोत है। यही नहीं सउदी अरब, ओमान, कतर जैसे देश भी कार्बन उत्सर्जन को रोकने के विरोध में हैं क्योंकि ऐसा करने से उनकी अर्थव्यवस्था को संकट उत्पन्न हो सकता है।

आज विश्व के प्रत्येक देश में मौसम का व्यवहार असामान्य हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वर्षा का कोई निश्चित मौसम नहीं रहा। बर्फवर्षा के लिये कोई जगह निश्चित नहीं रही, क्योंकि दुबई में बर्फवर्षा हो चुकी है, फूलों के खिलने का कोई निश्चित मौसम नहीं रह गया है, गर्मी का मौसम कब प्रारम्भ होगा और तापमान किस ऊँचाई तक पहुँच जाएगा, यह निश्चित करना भी सम्भव नहीं हो पा रहा है। मौसम के इस असामान्य व्यवहार का प्रमुख कारण वैश्विक तापमाप में वृद्धि है। इन्टरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज ने ग्लोबल वार्मिंग को लेकर गम्भीर चेतावनी दी है, कि अगर इसे नहीं रोका गया तो बड़ी संख्या में तूफान और बाढ़ आयेंगे। गर्मी बढ़ेगी और लू व गर्म थपेड़ों से मरने वालों की संख्या भी बढ़ेगी। इसे कम करने का एक ही उपाय है कि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर से 50 से 70 प्रतिशत तक कम किया जावे।

जून 2004 में भारत सरकार ने क्लाइमेट चेंज पर पहली नेशनल कम्यूनीकेशन रिपोर्ट जारी की। जिसमें पहली बार ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन और उनके प्रभाव के बारे में अधिकाधिक रूप से बताया गया। इस रिपोर्ट के अनुसार पिछले 100 वर्षों में औसत तापमान में 0.4 डिग्री सेल्सियस की दर से वृद्धि के परिणामस्वरूप देश के पश्चिमी, उत्तरी–पश्चिमी भाग और उत्तरी आन्ध्र प्रदेश में वर्षा में 10–12 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

(6) प्राकृतिक आपदाओं के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Influences of Natural Disasters) :– मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप बाढ़, सूखा, अकाल, भूस्खलन आदि प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई हैं। नदियों पर बड़े बांधों के निर्माण से भूकम्पीय क्रियाओं में वृद्धि देखी गई है। महाराष्ट्र में आये लाटूर भूकम्प के लिए कोयना बांध को भी उत्तरदायी माना गया है। 1980 के दशक में विश्व में प्राकृतिक आपदाओं के कारण औसतन दो अरब डालर की सम्पत्ति की हानि हुई, जबकि 1990 के दशक में यह औसत बढ़कर 12 अरब डालर हो गया। 26 दिसम्बर, 2004 को सुनामी लहरों के फलस्वरूप दो लाख से अधिक व्यक्ति काल के ग्रास बन गए। अंडमान–निकोबार तट पर समुद्री तल की ऊँचाई बढ़ गई है। अतः स्पष्ट है प्राकृतिक आपदाओं से पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन पैदा होता है।

पारिस्थितिकीय सन्तुलन

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव क्रियाओं के प्रभावों के वर्णन से स्पष्ट है कि मानवीय क्रियाएँ ही पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मानव वैज्ञानिक विकास को रोक दे और हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाएं। अपितु आवश्यकता इस बात की है कि मानवीय क्रियाओं और पर्यावरण के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाए। वनों को नष्ट होने से बचाया जाए, वृक्षारोपण कर वन क्षेत्र में वृद्धि की जाए, प्रदूषण नियंत्रण के समुचित और प्रभावकारी उपाय किए जावें, पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न करने वाली क्रियाओं पर नियंत्रण किया जावे, जिससे पारिस्थितिक तंत्र में सन्तुलन बना रहे और भावी पीढ़ी के भविष्य को सुरक्षित बनाया जा सके।

(i) प्राकृतिक संतुलन – संसार में विविध प्रकार के जीवधारी पाए जाते हैं। किसी भी पारिस्थितिकीय समुदाय में किसी भी प्राणी जाति की समष्टि का आकार तब तक स्थिर बना रहता है, जब तक कि कोई प्राकृतिक प्रकोप इसकी स्थिरता को भंग न कर देवें। इस स्थिरता को ही पारिस्थितिकी के क्षेत्र में, प्रकृति में संतुलन कहते हैं।

वर्तमान समय में सूखा, बाढ़, वर्षा की अनियमितता, भूकम्प इत्यादि प्रकृति में संतुलन नहीं होने के परिणाम है।

(ii) प्रकृति में संतुलन की व्यवस्था :– प्रकृति में जैविक समुदाय तथा पर्यावरण के मध्य संतुलन करने हेतु निम्न व्यवस्थाएँ होती हैं–

(क) प्रतिस्पर्धा – जीवधारियों के मध्य प्रतिस्पर्धा उनकी आबादी को नियंत्रित करने में सहायक होती है। सामान्यतः पारिस्थितिक तंत्र में भोजन के स्रोत सीमित होते हैं। भोजन की प्राप्ति हेतु जीवधारियों में परस्पर संघर्ष होता है। परभक्षी (Predator), स्वयं के शिकार की समष्टि को नियंत्रित करता है। इसी तरह शिकार भी अपनी उपलब्धता के आधार पर परभक्षी की समष्टि को नियंत्रित करता है।

(ख) पारिस्थितिक तंत्र / पारितंत्र :– पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक तथा जैविक घटक परस्पर अंतर्सम्बन्धित रहते हुए तंत्र का संतुलन बनाए रखते हैं। ये जटिल संबंधों का इस प्रकार का जालक (Network) बनाते हैं, जो जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करता है। प्रत्येक प्राणी जाति अपनी जीवन शैली द्वारा एक कार्यात्मक छवि बनाती है, जिसे निकेत (Niche) कहते हैं। संक्षेप में निकेत किसी जाति की पारिस्थितिकीय भूमिका होती है तथा पारिस्थितिक तंत्रों के बीच ऊर्जा (Energy) और पदार्थों के स्थानांतरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक जाति अपनी ही कार्यशैली में पारिस्थितिक तंत्र को स्थायित्व / संतुलन प्रदान करती है। जाति पादप की हो अथवा प्राणी की, पारिस्थितिक तंत्र के लिए उसके कार्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रत्येक जाति खाद्य–जाल (Food-web) तथा ऊर्जा प्रवाह (Energy flow) के माध्यम से नैसर्गिक संतुलन बनाये रखती है। प्रत्येक उच्च क्रम का उपभोक्ता (Comsumer) अपने से निचले

क्रम के जीवों का भक्षण करके जैव भार (Biomass) तथा संख्या के पिरामिड (Pyramid of numbers) को संतुलित रखकर जैव नियंत्रण के माध्यम से पारिस्थितिकीय व्यवस्था को स्वनियंत्रित प्रणाली का रूप देते हैं।

(ग) व्यवहार – कुछ जीवधारियों की जनसंख्या उनके व्यवहार के माध्यम से प्रभावित होती है।

(iii) प्राकृतिक संतुलन में अवरोध – मानव ने अपने क्रियाकलापों द्वारा प्राकृतिक संतुलन में अत्यधिक अवरोध पैदा किया है। एक समय ऐसा भी था जब आस्ट्रेलिया महाद्वीप में खरगोशों का नामो निशान नहीं था। 19वीं शताब्दी में कुछ पर्यटक (Tourist) यहाँ पर अपने खरगोश लाए। क्योंकि आस्ट्रेलिया में खरगोश का भक्षण करने वाले प्राणी नहीं थे, फलस्वरूप वहाँ पर खरगोश की संख्या निरंतर रूप में तेजी के साथ बढ़ी, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि खरगोशों ने वहाँ की कृषि–फसलों को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसे व्यवस्थित करने हेतु वहाँ पर लोमड़ियों (Foxes) का प्रवेश करवाया गया, जिन्होंने सफलतापूर्वक वहाँ पर खरगोशों की संख्या को नियंत्रित किया। तत्पश्चात् ये लोमड़ियाँ भी वहाँ पर आबाद पक्षियों के साथ–साथ अन्य प्राणियों का शिकार करने लगी। इससे इस तथ्य को बल मिलता है कि प्रकृति में संतुलन की प्रक्रिया 'स्वतः नियंत्रित' होती है।

(iv) कुंजी–शिला (की स्टोन) जातियों की प्रकृति संतुलन में भूमिका– ''कुंजी–शिला जातियाँ, ऐसी जातियाँ हैं जो किसी क्षेत्र विशेष के पारितंत्र (Ecosystem) को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं।''

की–स्टोन जातियाँ पारितंत्र को स्थायित्व (Stability) प्रदान करती हैं तथा इनके अभाव में ऐसे बदलाव होते हैं, जिनसे पारितंत्र का स्वरूप एकदम परिवर्तित हो जाता है तथा इसके समाप्त होने की संभावना भी बनी रहती है। इस प्रकार पारितंत्र में की–स्टोन जातियों की भूमिका अत्यधिक कारगर होती है।

प्रमुख परभक्षी (Predator) जातियाँ की–स्टोन जातियाँ हैं तथा ये पारिस्थितिक समुदाय (Ecological community) पर अपना प्रभाव दृष्टिगोचर करती है। परभक्षी की संख्या में बढ़ोतरी इस बात का सूचक होती है कि ये शिकार (Prey) जातियों को अपने भोजन के रूप में उपयोग करते हुए उनकी संख्या को सीमित बनाए रखें। परभक्षी जातियों के अभाव में शिकार जातियों की संख्या में अभिवृद्धि होगी तथा इस स्थिति में सारे पारिस्थितिक तंत्र के नष्ट होने की संभावना बनी रहती है। इस प्रकार की–स्टोन जातियाँ ही समुदाय में अन्य जातियों की संख्या को निर्धारित करती हैं।

हाथी एक की–स्टोन जाति है। यह घास के मैदानों में जीवन यापन करता है। हाथी शाकाहारी प्राणी है, लेकिन घास का उपयोग अपने भोजन हेतु नहीं करता है। इसका प्रमुख भोजन झाड़ियाँ एवं वृक्ष होते हैं, फलस्वरूप वृक्ष तथा झाड़ियों में अभिवृद्धि नहीं हो पाती है, परिणामस्वरूप घास के मैदानों का अस्तित्व बना रहता है अर्थात् यह घास के मैदान को वन में परिवर्तित होने से रोकता है।

इसी प्रकार मेंढ़क भी एक की–स्टोन जाति है, जो मच्छरों एवं कीट पतंगों को खाकर उनकी संख्या को सीमित रखती है। मेंढ़क की अनुपस्थिति में निःसंदेह इनकी संख्या में बढ़ोतरी होगी तथा जीवधारियों का जीवन कष्टपूर्ण हो जायेगा।

इस प्रकार की–स्टोन जातियाँ प्रकृति में संतुलन को बनाए रखती हैं तथा इसी में मनुष्य का हित भी है।

(v) प्रकृति संतुलन में वन्य जीवों का योगदान – वन्य जीव प्रकृति संतुलन में अपना अलग से विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व रखते हैं। वन्य जीव प्रकृति में पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखते हैं तथा एक बार भी संतुलन में व्यवधान आ जाये तो उसका प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जाति पर दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ – यदि शिकारियों के द्वारा मांसाहारी (Carnivorous) वन्य जीवों को समाप्त कर दिया जाये तो शाकाहारी (Herbivorous) वन्य जीवों की संख्या में इतनी अकल्पनीय बेहताशा वृद्धि हो जायेगी कि वे जंगल के सभी पेड़–पौधों को चट कर जायेंगे तथा अंततः जंगलों का नामोनिशान भी शेष नहीं रहेगा। फलस्वरूप वर्षा अल्प होगी तथा वर्षा के अभाव में फसलें अच्छी नहीं होगी, फलस्वरूप मनुष्य को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार यह तथ्य उजागर होता है कि वन्य जीव प्रकृति संतुलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवरण इस बात को इंगित करता है कि प्रमुख रूप से की–स्टोन जातियाँ तथा वन्य–जीव प्रकृति संतुलन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान निर्धारित करते हैं। इनके संरक्षण से पर्यावरण में संतुलन स्थापित होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. पारिस्थितिकी शब्द की रचना ग्रीक भाषा के Oikos अर्थात् आवास और Logos अर्थात् अध्ययन को मिलाकर की गई।
2. पारिस्थितिक तंत्र जीव और पर्यावरण की अन्तःप्रक्रिया का प्रतिफल है। पारिस्थितिक तंत्र के प्रवर्तक ए.जी. टांसले हैं।
3. पारिस्थितिक तंत्र वह तंत्र है, जिसमें पर्यावरण के समस्त जैविक और अजैविक कारक अन्तःसम्बन्धित होते हैं।
4. पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक तथा मानव निर्मित हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र की संरचना पर्यावरण के जैविक और अजैविक घटकों की पारस्परिक अन्तःक्रियाओं द्वारा होती है।
5. एक पारिस्थितिक तंत्र के जैविक और अजैविक घटकों को क्रियाशील रहने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है, और यही ऊर्जा उस पारिस्थितिक तंत्र को गतिशील बनाये रखती है। इस प्रक्रिया को ऊर्जा प्रवाह कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. जैवविविधता शब्द सर्वप्रथम किसने प्रतिपादित किया –
   (अ) ई.ओ. विल्सन
   (ब) डेसिड टिलमेन
   (स) नोरमन मेयर्स
   (द) कोई नहीं
2. विश्व में जैवविविधता के कितने तप्त स्थलों का पता लगाया गया है –
   (अ) 12 (ब) 20
   (स) 25 (द) 34
3. भारत में राष्ट्रीय उद्यानों की संख्या है–
   (अ) 103 (ब) 72
   (स) 89 (द) 96
4. पारिस्थितिक तंत्र शब्द के प्रवर्तक हैं –
   (अ) ए.जी. टांसले (ब) फासवर्ग
   (स) ई.पी. ओडम (द) पीटर हेगेट
5. पारिस्थितिकी के सम्बन्ध में कौन सा कथन सत्य है –
   (अ) पारिस्थितिकी जीवों पर पर्यावरण के प्रभावों का अध्ययन है।
   (ब) पारिस्थितिकी वायु, जल और मृदा के प्रदूषण का अध्ययन है।
   (स) पारिस्थितिकी मानव पर्यावरण का अध्ययन है।
   (द) पारिस्थितिकी जीवों एवम् पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. सम्पूर्ण पृथ्वी का कितना प्रतिशत भाग स्थल मण्डल है?
7. जैव मण्डल किन क्रियाओं का प्रतिफल है?
8. हमारे देश में सम्पूर्ण विश्व की कितनी प्रतिशत पादप विविधता पाई जाती है?
9. पौधों में पाये जाने वाले हरे रंग के द्रव्य का नाम बताइए।
10. ओडम के अनुसार सूर्यातप से औसतन प्रतिदिन प्रति वर्गमीटर कितनी ऊर्जा प्राप्त होती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

11. जैव मण्डल की परिभाषा दीजिए।
12. भारत में जैवविविधता पर टिप्पणी लिखिए।
13. राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों की स्थापना के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
14. टांसले के अनुसार पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा लिखिए।
15. ऊर्जा प्रवाह को परिभाषित कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा पर लेख लिखिए।
17. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह पर लेख लिखिए।
18. पारिस्थितिक तंत्र पर औद्योगीकरण के प्रभावों को विस्तार से समझाइये।

उत्तरमाला– 1. अ 2. द 3. अ 4. अ 5. द

अध्याय – 23

गंगा नदी के पारिस्थिकीय तंत्र का अध्ययन
(Study of Ecosystem of River Ganga)

पारिस्थिकीय तंत्र (Ecosystem) या पारितंत्र एक विशेष जैविक एवं अजैविक पहचान का भूदृश्य होता है। पारितंत्र को स्थलीय एवं जलीय तंत्रों में विभाजित किया जा सकता है। ये तंत्र पृथ्वी पर जीवन के निवास की प्रमुख दशाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक पारितंत्र के जैविक एवं अजैविक घटकों में गहरा पारस्परिक सम्बन्ध होता है। स्थलीय पारितंत्र में वन, चरागाह, रेगिस्तान, पर्वत, द्वीप आदि तथा जलीय पारितंत्र में तालाब, झील, दलदल, नदी, डेल्टा एवं महासागरों को सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक पारितंत्र में कुछ बुनियादी तत्वों जैसे पारितंत्र की प्रकृति, संरचना, कार्य प्रणाली, उपयोग, पारितंत्र का ह्रास, ह्रास के बचाव कार्य एवं संरक्षण को प्रमुखता दी जाती है। जलीय संरक्षण से मानव को जैविक एवं अजैविक संसाधनों की प्राप्ति होती है। ये संसाधन मानव विकास में सहायक होते हैं। जलीय संसाधनों के दुरूपयोग से मानव को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जल के अति उपयोग के कारण पीने के पानी की गम्भीर समस्या पैदा हो रही है। रासायनिक खादों, उर्वरकों, बढ़ती जनसंख्या, प्रदूषण, अपशिष्ट पदार्थों का जल में मिलने से कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो गई है। ये प्रदूषित जल जलीय जीवन एवं मानव दोनों के लिए खतरनाक है।

सारणी – 23.1
गंगा बेसिन के तथ्य

गंगा की लम्बाई	2,071 कि.मी.
कुल जलप्रवाह क्षेत्र	9.51 लाख वर्ग कि.मी.
भारत में	8.61 लाख वर्ग कि.मी.
कुल देश के क्षेत्रफल का	26%
कुल देश की जनसंख्या निवास	45%

सारणी – 23.2
गंगा नदी के जलप्रवाह क्षेत्र का राज्यवार वितरण

राज्य	नदी किनारे बसे नगरों की संख्या	प्रवाह क्षेत्र (कि.मी.)
उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश	890	294,364
मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़	394	198,962
बिहार एवं झारखण्ड	130	143,961
राजस्थान	222	112,491
पश्चिम बंगाल	373	71,485
हरियाणा	106	34,341
हिमाचल प्रदेश	57	4,317
दिल्ली	01(01)	1,484
कुल	2073	861,404

स्त्रोत : सीडब्ल्यूसी प्रकाशन संख्या 50/59 ''भारत के प्रमुख नदी जल प्रवाह'' 1990

जलीय पारितंत्र को स्थिर एवं प्रवाहमान तथा खारे एवं ताजे या मीठे जल में विभाजित किया जा सकता है। नदियों के पारितंत्र को ताजे या मीठे एवं प्रवाहमान जल की श्रेणी में रखा जाता है। इसमें कई प्रकार की वनस्पति एवं जीव–जन्तु पाये जाते हैं। विश्व की सभी सभ्यताओं का जन्म बहती ताजे पानी की नदी घाटियों में हुआ है। ये मानव 'सभ्यता के पालने' माने जाते हैं। इसलिए सभी सभ्यताओं में स्वच्छ पानी की नदियाँ को 'माँ' का द्योतक माना गया है। भारत में सदियों से नदी घाटियों पर मानव निवास कर रहा है। विश्व की प्राचीनतम मानव सभ्यता भारत वर्ष की सिन्धु, सरस्वती एवं संबंधित नदियों की घाटियों में जन्मी है। भारत वर्ष के उत्तर का उपजाऊ मैदान सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गंगा, ब्रह्मपुत्र एवं उनकी सहायक नदियों द्वारा निर्मित हैं इस उपजाऊ मैदान में विश्व जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग निवास करता है।

गंगा नदी का पारितंत्र –

1. पर्वतीय क्षेत्र – गंगा भारत की राष्ट्रीय एवं सबसे पवित्र नदी मानी जाती है। इस नदी पर सदियों से आर्य भारतवासी निवास करते रहे हैं। गंगा नदी ने राम, कृष्ण, गौतम, महावीर, नानक आदि अवतारों को अपने आँचल में पाला है। इसलिए यह पवित्र नदी पाप मुक्त कर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करती है। गंगा नदी का आरम्भ भागीरथी एवं अलकनन्दा के रूप में होता है। इस नदी के उदगम स्थल की औसत समुद्र तट से औसत ऊँचाई 3140 मीटर है। गंगा नदी की प्रधान शाखा भागीरथी है जो कुमायूँ हिमालय के गोमुख स्थान से गंगोत्री हिमनद से निकलती है। इसका अवतरण एक छोटे से गुफानुमा मुख से होता है जिसका जल स्त्रोत 5000 मीटर ऊँचाई पर स्थित एक बेसिन है। गंगा नदी के आकार लेने में अनेक छोटी–बड़ी सहायक नदियों (धाराओं) का महत्वपूर्ण स्थान है। देव प्रयाग में संगम कर सम्मिलित जल धाराएँ गंगा नदी के रूप में बनती है। लगभग 200 कि.मी. का संकीर्ण पहाड़ी रास्ता (शिवालिक हिमालय) तय करते हुए गंगा नदी ऋषिकेश होते हुए प्रथम बार हरिद्वार में मैदान को स्पर्श करती है। इस यात्रा में नदी तीव्र मोड़ों से होती हुई, गहरी घाटियों का निर्माण करती है। कई स्थानों पर 600 मीटर से अधिक गहरी घाटियाँ पायी जाती है। दोनों किनारों पर बड़ी–बड़ी चट्टानें, गोलाश्म, कंकड़–पत्थर और रेत भारी मात्रा में

चित्र 23.1 : गंगा प्रवाह क्षेत्र

जमे होते हैं। दोनों तरफ के ढाल बहुत तीव्र होते हैं।

2. ऊपरी मैदानी क्षेत्र – इस क्षेत्र में जैव विविधता तथा सांस्कृतिक–आध्यात्म रूपी पहलू बहुत महत्व रखते हैं। इस क्षेत्र में 'महाशीर' (Tor) प्रजाति की मछलियाँ पायी जाती है तथा शिवपुरी के आस–पास का क्षेत्र विपुल जैव विविधता रखता है। गढ़मुक्तेश्वर क्षेत्र में रेत के टीले, बाढ़ मैदान एवं गौखुर झीलों का निर्माण होता है। इन क्षेत्रों में डॉलफिन (सूँस), घड़ियाल एवं कछुए पाये जाते हैं। यह 'रामसर' स्थल कहलाता है। फरूखाबाद पहुँचने पर गंगा नदी में मलबा बढ़ता जाता है। बाढ़ के मैदानों का स्वरूप बहुत चौड़ा हो जाता है। इन क्षेत्रों में कृषि, मत्स्य व्यवसाय, पशु पालन एवं मानव जनसंख्या तथा अधिवासों की संख्या बढ़ जाती है। नदी घाटों पर स्नान एवं अन्तिम संस्कार रूपी धार्मिक कर्म–काण्ड बढ़ जाते हैं। इससे नदी में प्रदूषण बढ़ने लगता है। विभिन्न प्रजातियों के पक्षी, कीट–पतंगों, रेंगने वाले जीवों की संख्या अधिक पायी जाती है।

बिठुर से कानपुर तक का क्षेत्र गंगा को अत्यधिक प्रदूषित करता है। विशेष रूप से कानपुर के चमड़ा उद्योग ने इस नदी को बहुत प्रदूषित किया है। नदी के दोनों तरफ बसे नगरों द्वारा छोड़ा जाने वाला मलमूत्र नदी की पवित्रता को गहराई से प्रभावित करता है। यहाँ प्लवक (प्लैंकटन) तथा नितलस्थलीय अकेशरूकी जीवों की मात्रा नदी में अधिक पायी जाती है। ये बहुत संवेदनशील होते हैं जो मानवीय क्रियाकलापों जैसे स्नान, धार्मिक क्रियाओं तथा नौकावाहन से बहुत प्रभावित होते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रजातियों के पक्षी, कीट–पतंगे, मछलियाँ, कछुए आदि पाये जाते हैं। कृषि एवं पशुपालन प्रमुख व्यवसाय है। यह पुरातात्विक एवं धार्मिक महत्व वाला स्थल है। बिठुर में एक प्राचीन ब्रह्मा जी का मन्दिर विशेष महत्व रखता है। इस क्षेत्र में मिएण्डर (नदी विसर्प), बाढ़ के मैदान, गौखुर झीलें आदि स्थलरूप पाये जाते हैं। ये 'खादर' और 'भांगर' विशिष्टि स्थलाकृतियों वाले प्रदेश हैं। दोआब एवं तराई पेटियों में घने वन पाये जाते हैं तथा दलदली क्षेत्र प्रधान है। इस क्षेत्र की गोमती एवं घाघरा प्रमुख नदियाँ हैं।

3. मध्य गंगा मैदान– मध्य गंगा मैदान में पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार राज्य के क्षेत्र आते हैं। ये जनसंख्या की दृष्टि से घने बसे क्षेत्र हैं। यहाँ के निवासियों के प्रमुख व्यवसाय कृषि, पशुपालन, मत्स्य व्यवसाय तथा इन पर आधारित कुटीर उद्योग हैं। इस क्षेत्र में घाघरा, गण्डक, कोसी एवं सोन आदि प्रमुख सहायक नदियाँ है। यहाँ गंगा की गति मन्द हो जाती है तथा रेत, मिट्टी, कचरा, मलमूत्र, रसायन आदि मिलने से प्रदूषण बहुत बढ़ जाता है। इन क्षेत्रों में भी मिएण्डर (नदी विसर्प), कांप, मिट्टी के मैदान, गौखुर झीलें आदि स्थलरूपों का निर्माण होता है। प्रदूषण अधिक हो जाने से नदी का जल नहाने एवं पीने योग्य भी नहीं रहता। कोसी नदी में बाढ़ आने से जनधन का बहुत नुकसान होता है। शार्क, डॉलफिन, कछुए, मगरमच्छ, ऐलिगेटर (घड़ियाल), मछलियाँ आदि नदी के प्रमुख जीव हैं। बिहार का 'विक्रम शिला डॉलफिन अभ्यारण्य' भागलपुर जिले में 50 कि.मी. के क्षेत्र में स्थापित किया गया है। इसी क्रम में 'डॉलफिन' (सूँस) को 'राष्ट्रीय जलीय जीव' भी 5 मई, 2010 में घोषित किया गया। 'डॉलफिन' को 'ताजे पानी का टाइगर' भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में भी घने वन एवं वन्य जीव पाये जाते हैं।

4. निचला गंगा मैदान – किशनगंज (पूर्णिमा–बिहार) से सम्पूर्ण पश्चिम बंगाल (ऊपरी पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर) एवं बांग्लादेश इसके अन्तर्गत आते हैं। इस क्षेत्र में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ असंख्य छोटी–छोटी धाराओं में विभाजित हो जाती है। अति मन्द ढाल और कांप मिट्टी की उपस्थिति के कारण डेल्टाई प्रदेश एक अतुलनीय दृश्य प्रस्तुत करता है। इस डेल्टाई भाग का कुल क्षेत्रफल 60,000 वर्ग कि.मी. है जिसके सागरमुखी दलदली क्षेत्र में पाये जाने वाले वन 'सुन्दरवन' कहलाते हैं। यह भारत एवं बांग्लादेश दोनों देशों में संरक्षित भाग है। यह क्षेत्र 'जैवविविधता' की दृष्टि से विश्व के अग्रणी क्षेत्रों में एक है। यहाँ 'मैंग्रोव' (Mangrove) एवं 'ज्वारिय प्रकार' वनस्पति पायी जाती है। यहाँ बड़ी संख्या में 'सुन्दरी पेड़' की प्रजाति पाये जाने के कारण ही, इस वन का नाम 'सुन्दरवन' रखा गया। यहाँ के पारितंत्र की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ वनस्पति एवं जीव जन्तु मीठे व खारे पानी के मिश्रण में रह सकते हैं। इस विश्व के सबसे बड़े डेल्टाई प्रदेश का निरन्तर सागर की तरफ विस्तार हो रहा है। इन वनों में विश्व प्रसिद्ध 'रॉयल बंगाल टाईगर' पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त सभी प्रकार के मांसाहारी एवं शाकाहारी जीव–जन्तु, पक्षी आदि सुन्दरवन में पाये जाते हैं। यह क्षेत्र चावल उत्पादन एवं विश्व में सर्वाधिक जूट उत्पादन के लिए विख्यात है। यह क्षेत्र उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों से प्रभावित रहता है, जिससे भारी जन–धन का नुकसान होता है। इस क्षेत्र में गर्म एवं आर्द्र मानसूनी जलवायु पाया जाता है। इसलिए 'मैंग्रोव' आर्द्र उष्ण प्रजाति के वन पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में चावल एवं मत्स्य व्यवसाय अधिक होने से 'चावल–मछली' यहाँ का प्रमुख आहार है।

चित्र 23.2 : सुन्दरबन डेल्टाई प्रदेश

गंगा नदी पर बाँध एवं बैराज –

गंगा नदी पर बने अनेक बाँध और बैराज भारतीय जनजीवन एवं अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग है। इनमें सबसे प्रमुख 'फरक्का बैराज' (2,240 मीटर लम्बाई, 21 अप्रेल 1975 को शुभारंभ) भारत–बांग्लादेश सीमा पर बना है। इससे सिंचाई, मत्स्यपालन, हुगली में जल (ग्रीष्म ऋतु में) तथा कोलकाता बन्दरगाह को गाद (सिल्ट) से बचाने के लिए बनाया गया था। इसी प्रकार भागीरथी नदी पर' टिहरी बाँध' बहुपरियोजनाओं की आपूर्ति के लिए तैयार किया गया है। इसकी ऊँचाई 261 मीटर है। इससे 2400 मेगावाट विद्युत उत्पादन, 2,70,000 हैक्टर क्षेत्र की सिंचाई और प्रतिदिन 102.20 करोड़ लीटर पेयजल दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड को उपलब्ध कराया जा रहा है। तीसरा बड़ा बाँध हरिद्वार में स्थित 'भीमगोडा बाँध' है जिसे अंग्रेजों ने 1940 में बनवाया था। इस बाँध का जल सिंचाई, मत्स्य पालन, पेयजल में उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त शारदा, कोसी एवं गण्डक नदियों पर नेपाल सीमा के निकट बैराज बनाये गये हैं। यह विद्युत उत्पादन, सिंचाई व पेयजल के काम आते है। इन बाँधों से बहुत फायदे हुए हैं लेकिन इस क्षेत्र में गाद (सिल्ट) जमाव की बहुत बड़ी समस्या है जिससे 'फरक्का बैराज' सबसे अधिक प्रभावित है।

गंगा नदी में प्रदूषण –

गंगा नदी की कुल लम्बाई 2,071 कि.मी. है। इसकी बड़ी संख्या में छोटी–बड़ी सहायक नदियाँ है जो उत्तर से हिमालयी क्षेत्र एवं दक्षिण में प्रायद्वीपीय क्षेत्र से आकर मुख्य नदी में मिलती है। गंगा नदी के दोनों किनारों पर 2500–3000 नगरों का बसाव है जिनमें बड़ी संख्या में सघनता से मनुष्य निवास करता है। दोनों तरफ कृषि एवं पशुपालन के कार्य किये जाते हैं। नगरों में कई प्रकार के उद्योग–धन्धे स्थापित किये गये हैं। रासायनिक, चमड़ा, उर्वरक एवं अन्य उद्योगों से अपशिष्ट पदार्थ तथा नगरों से निकले मलजल, कचरे आदि का गंगा नदी में मिलने से उसमें प्रदूषण बहुत तेजी से बढ़ा है। इस पानी का उपयोग नहाने एवं पीने के लिए भी नहीं किया जा सकता। यह प्रदूषित जल नदी के पारितंत्र को तेजी से खराब कर रहा है। नदी के जल में विलीन आक्सीजन (DO) की मात्रा 6.8-7.2 एमजी/लीटर मापी गई। यह मात्रा बहुत अधिक है। सामान्य रूप में यह मात्रा 4.0 एमजी/लीटर होनी चाहिए। हरिद्वार, इलाहबाद, वाराणसी एवं पटना में सर्वाधिक पायी गई। इसी प्रकार जैव रासायनिक ऑक्सीजन की उपस्थित (BOD) कन्नौज से वाराणसी तक अधिक पायी गई। कानपुर के आस–पास 16.39 एमजी/लीटर, सर्वाधिक रिकार्ड की गई। पर्वतीय क्षेत्रों में ये सबसे कम 3 एमजी/लीटर रिकार्ड की गई। इसी प्रकार पटना के नीचे डेल्टाई प्रदेशों में 15.58 एमजी/लीटर रिकार्ड की गई। डी.ओ. एवं बी.ओ.डी. की मात्रा मानसून पूर्व एवं पश्चात अलग–अलग पायी गई। इसी प्रकार कन्नौज, कानपुर, इलाहाबाद एवं वाराणसी में 'कॉलीफार्म' (Coliform) नदी के जल में सर्वाधिक पाया गया। डीओ, बीओडी एवं कॉलीफार्म की मात्रा अधिक होने के कारण नदी जल में प्रदूषण की मात्रा बढ़ी हुई पायी गई।

चित्र 23.3 : गंगा की डॉलफिन (सूँस)

संरक्षण एवं उपाय –

गंगा एक्शन प्लान प्रथम एवं द्वितीय में नदी के प्रदूषण उपचारण एवं उसकी सफाई तथा शुद्धिकरण प्लान्ट आदि की व्यवस्था की गई है। 1985 से अब तक अरबों रुपये लगाये गये हैं। लेकिन परिणाम अच्छे नहीं प्राप्त हुए हैं। राजनैतिक एवं प्रशासनिक इच्छा शक्ति एवं दूरदर्शिता की कमी पायी गई। इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार देश के सामने बहुत बड़ी समस्या है। गंगा नदी के संरक्षण से नदी ही नहीं, मानव, वनस्पति, जीव–जन्तुओं, पर्यावरण और सर्वोच्च पारितंत्र को सुचारू रूप से चलाने में मदद प्राप्त होगी। डॉलफिन, शार्क, महाशीर मछली, ऐलिगेटर, बंगाल टाईगर, मैंग्रोव एवं ज्वारिय वन आदि को बचाने की आवश्यकता है। गंगा नदी पर विकास के नाम पर बाँधों एवं बैराज का जंजाल खड़ा कर दिया गया है। इसी प्रकार 'बाढ़ के मैदानों' में अधिवास बसा दिये गये हैं। वनों की कटाई के कारण मिट्टी अपरदन, लैण्ड स्लाइड, बाढ़ की समस्या तेजी से बढ़ी है। मानव के अस्तित्व के लिए गंगा को संरक्षित करना एवं बचाना अति आवश्यक कार्य है। विश्व तापमान बढ़ने से हिमानी तेजी से पिघल रहे हैं। इससे गंगा और अन्य नदियों के अस्तित्व पर गहरा संकट आ सकता है। गंगा नदी की स्वच्छता की जितनी जिम्मेदारी सरकार की है, उससे कहीं अधिक समाज एवं गंगा प्रवाह क्षेत्र में बसे व्यक्तियों की है। हम गंगा को जब तक मां का सम्मान वास्तव में नहीं देगें, तब तक कोई भी सरकारी तंत्र इसकी पवित्रता को बनाये नहीं रख सकता है।

महाकुम्भ मेला

प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा, यमुना एवं सरस्वती नदियों का संगम पर प्रत्येक 12 साल के अन्तराल पर महाकुम्भ का मेला भरता है। जिसमें देश–विदेश से लाखों की संख्या में पर्यटक आते हैं। यह पृथ्वी पर श्रद्धा और विश्वास से ओतप्रोत मानव समुदाय का सबसे बड़ा पड़ाव होता है। इस मेले का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व है। पौराणिक कथाओं के अनुसार इस स्थान पर 'सागर मंथन' से प्राप्त 'अमृत' की बूंदें गिरी थी। ये विशेष खगोल स्थिति में आयोजित किया जाता है। पूर्ण कुम्भ 144 सालों में होता है। यह मान्यता है कि इस महाकुम्भ मेले में स्नान से सभी पापों से मुक्ति मिलती है। 2013–14 संयुक्त राज्य अमेरिका के हावर्ड विश्वविद्यालय ने 'महाकुम्भ पर्व' को अपने पाठ्यक्रमों में अध्ययन एवं शोध के लिए सम्मिलित किया है। इस मेले की व्यवस्थाओं के बड़े गुणगान किये गये हैं, तथा शोध दल ने यहाँ की व्यवस्थाएँ 'फीफा फुटबाल विश्वकप' से बेहतर बताई है। अगला महाकुम्भ 2025 में आयोजित होगा।

सागर मंथन व महाकुम्भ – प्रयाग

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पारितंत्र जैविक एवं अजैविक घटकों का पर्यावरण विशेष के रूप में अध्ययन किया जाता है।
2. गंगा भारत की राष्ट्रीय नदी है। इसमें बढ़ते प्रदूषण के कारण इसका पारितंत्र असन्तुलित हो रहा है। डॉलफिन (सूँस) एवं महशीर मछली प्रजाति के जीवों को बचाना आवश्यक है।
3. भागलपुर में गंगा नदी पर डॉलफिन संरक्षण के लिए 'विक्रमशीला डॉलफिन उद्यान' बनाया गया है। देश में नदी डॉलफिन 2000–2500 तक की संख्या में ही बची है।
4. गंगा नदी कुँमायु हिमालय से जन्म लेकर ऋषिकेश हरिद्वार में मैदानी भागों में आकर बहती हुई उत्तर प्रदेश, बिहार, प. बिहार एवं बांग्लादेश में प्रवाहित होकर 'सुन्दरवन डेल्टा' का निर्माण करती है।
5. 'सुन्दरवन' विश्व में जैव–विविधता के क्षेत्र में अग्रणी स्थान रखते हैं। यहाँ 'रॉयल बंगाल टाईगर' पाये जाते हैं। यह क्षेत्र पूरी तरह से संरक्षित क्षेत्र घोषित है।
6. देव प्रयाग में भागीरथी एवं अलकनन्दा का संगम होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. 'विक्रमशिला उद्यान' में कौनसा जीव संरक्षित किया गया है?
   (अ) डॉलफिन (ब) शार्क
   (स) ऐलिगेटर (द) महशीर मछली
2. गंगा की उत्पत्ति स्त्रोत है–
   (अ) शिवपुरी (ब) प्रयाग
   (स) देव प्रयाग (द) गंगोत्री
3. 'सुन्दरवन' में पाये जाते हैं–
   (अ) शेर (ब) रॉयल बंगाल टाईगर
   (स) ऊँट (द) गेंडा
4. भागीरथी और अलकनन्दा है?
   (अ) उत्तरप्रदेश में बहने वाली नदियाँ
   (ब) बिहार में गंगा की शाखाएँ
   (स) उत्तराखण्ड की हिमनदों से निकलने वाली धाराएँ
   (द) असम में बहने वाली ब्रह्मपुत्र नदी की शाखाएँ
5. 'टिहरी बाँध' किस नदी पर बना है?
   (अ) यमुना (ब) अलकनन्दा
   (स) मंदाकिनी (द) भागीरथी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. गंगा नदी की कुल लम्बाई बताइये।
7. गंगा नदी मैदानी भाग में कहाँ प्रवेश करती है?
8. गंगा नदी के सबसे प्रदूषित क्षेत्र का नाम बताइये।
9. पारितंत्र के घटकों के नाम बताइये।
10. 'फरक्का बैराज' कहाँ स्थित है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

11. पारितंत्र का महत्व बताइये।
12. ताजे पानी के पारितंत्रों के नाम बताइये।
13. गंगा नदी में सबसे शुद्ध पानी किस क्षेत्र में पाया जाता है?
14. 'सुन्दरबन' क्या है?
15. विस्तारित डेल्टा से क्या तात्पर्य है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. नदी पारितंत्र को स्पष्ट करते हुए मध्य गंगा घाटी क्षेत्र के पारितंत्र को समझाइये।
17. गंगा प्रदूषण को स्पष्ट करते हुए, इसके कारणों और उपायों की समीक्षा कीजिये।
18. 'जैव–विविधता' को स्पष्ट करते हुए, सुन्दरबन की जैवविविधता को समझाइये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. द 3. ब 4. स 5. द

इकाई – 1

अध्याय –1

भारत की स्थिति, विस्तार व अवस्थिति

(Location, Extent & Situation of Bharat)

आर्यों की **भरत** नाम की शाखा अथवा महामानव **भारत** के नाम पर हमारे देश का नामकरण **भारत** हुआ। प्राचीन काल में आर्यों की भूमि के कारण यह आर्यावर्त के नाम से जाना जाता था। ईरानियों ने सिन्धु नदी के तटीय निवासियों को **हिन्दू** एवं इस भू–भाग को **हिन्दूस्तान** का नाम दिया। रोम निवासियों ने सिन्धु नदी को **इण्डस** तथा यूनानियों ने **इण्डोस** व इस देश को **इण्डिया** कहा। यही देश विश्व में आज **भारत** के नाम से विख्यात है।

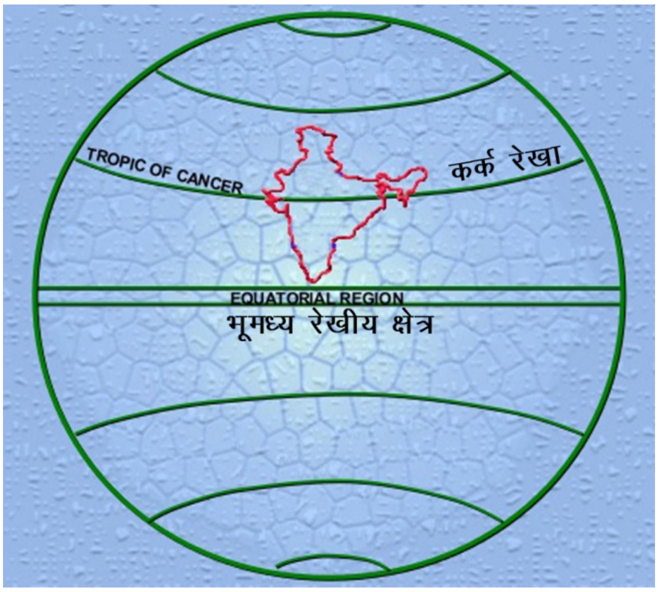

हमारे देश में सभ्यता और संस्कृति का उदय अतीत काल में ही हो गया था, जबकि विश्व के अधिकांश देश असभ्य अथवा अर्द्धसभ्य ही थे। हमने ही संस्कृति व ज्ञान का प्रकाश विश्व के विभिन्न भागों में फैलाया। भारत एक महान, सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत देश है। हमारी प्राचीन संस्कृति भारत को एकता का वरदान प्रदान करती है। इस गौरवशाली अतीत के पीछे भारत के भौगोलिक व्यक्तित्व का विशेष योगदान रहा है। मध्य युग में विदेशियों के आक्रमण, लूटपाट व आधिपत्य से हमारी प्रगति एवं प्रतिष्ठा कुण्ठित हुई। तत्पश्चात् सौभाग्य से भारत की जनता में जागरण आया और हम महात्मा गाँधी के नेतृत्व में शांति व अहिंसा के अद्वितीय मार्ग पर चलकर स्वतन्त्र हुए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारा देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, किन्तु हम स्वतन्त्रता–पूर्व के आर्थिक शोषण, तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के भार तथा विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं के स्वदेशी संस्कृति व राष्ट्रीय धारा में विलय की कठिन संक्रमण परिस्थितियों से जूझ रहे हैं। भारत का अतीत स्वर्णिम था, वर्तमान संक्रमण में है, किन्तु हम देश–प्रेम, धार्मिक

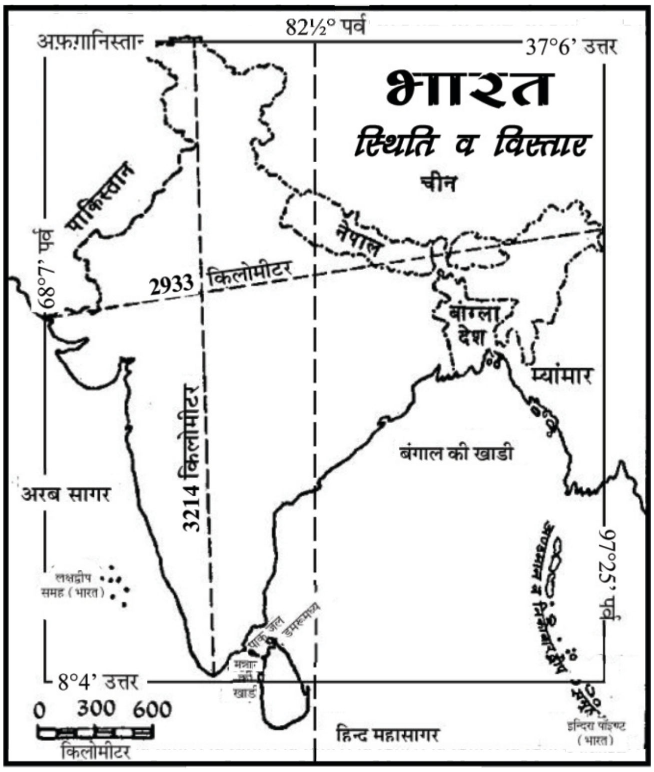

चित्र 1.1 – भारत : स्थिति व विस्तार

सहिष्णुता, सूझबूझ, ईमानदारी व कठोर परिश्रम के द्वारा अपने खोये हुए गौरव को प्राप्त करके सम्पन्न हो सकते हैं तथा एकता सूझ में बंधे हुए सुसंस्कृत समाज का निर्माण कर सकते हैं। इस चहुमुखी उत्थान के भागीरथ प्रयत्न में भारत का भौगोलिक व्यक्तित्व हमें उज्ज्वल भविष्य की आशा प्रदान करता है।

भारत की स्थिति, आकार और विस्तार

भारत भूमध्य रेखा के उत्तर में 8° 4′ से 37° 6′ अक्षांश तक तथा 68° 7′ से 97° 25′ पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है। कर्क रेखा अर्थात् 23½° उत्तरी अक्षांश हमारे देश के लगभग मध्य से गुजरती है। यह रेखा भारत को दो भागों में विभक्त करती है **(1) उत्तरी भारत**, जो शीतोष्ण कटिबन्ध में फैला है तथा **(2) दक्षिणी भारत**, जिसका विस्तार उष्ण कटिबन्ध है। भारत का सबसे उत्तरी छोर बर्फीले हिमालय पर्वत तन्त्र का अंग है जो एशिया के हृदय-स्थल में स्थित **संसार की छत** - पामीर के दक्षिण की ओर फैला हुआ है। कन्याकुमारी इसका दक्षिणतम छोर है। ये दोनों सिरे लगभग 30° अक्षांशीय दूरी पर स्थित हैं। यह दूरी भूमध्य रेखा से उत्तरी ध्रुव की दूरी का लगभग एक-तिहाई है। भारत की स्थिति उत्तरी गोलार्द्ध में है। कन्याकुमारी से भूमध्य रेखा केवल 876किलोमीटर दक्षिण में है। यहाँ भारत से मन्नार की खाड़ी व पाक जलडमरूमध्य द्वारा श्रीलंका अलग होता है। कर्क रेखा के दक्षिण में कुमारी अन्तरीप की ओर प्रायद्वीपीय भारत धीरे-धीरे संकड़ा होता जाता है। यह हिन्द महासागर को दो भागों में विभक्त करता है। पश्चिमी भाग अरब सागर एवं पूर्वी भाग बंगाल की खाड़ी कहलाता है।

भारत का सुदूर पश्चिमी बिन्दु कच्छ के रन का क्षारीय दलदली छोर है। अछूते वनों से आच्छादित पर्वतीय क्षेत्र इसका सुदूरपूर्वी बिन्दु है जहाँ इसकी सीमा म्यांमार (बर्मा) तथा चीन से मिलती है। इन दोनों छोरों के मध्य लगभग 30° देशान्तरीय दूरी है। यह दूरी ग्लोब के कुल देशांतरीय विस्तार का लगभग 1/12 वां भाग है। इतने विस्तार के कारण ही अरूणाचल प्रदेश में सूर्योदय के दो घण्टे पश्चात् काठियावाड़ में सूर्य के दर्शन होते हैं। अत: 82½° पूर्वी देशान्तर रेखा का स्थानीय समय भारत का प्रामाणिक समय (Indian Standard Time) माना जाता है। यह रेखा इलाहाबाद के पास से गुजरती है।

भारत की उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई लगभग 3214 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 2933 किलोमीटर है। सम्पूर्ण देश का क्षेत्रफल लगभग 32.88लाख वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल के अनुसार भारत का विश्व में सातवां स्थान है। रूसी गणराज्य, कनाडा, चीन, यू.एस.ए., ब्राज़ील व ऑस्ट्रेलिया भारत से बड़े देश हैं। भारत का आकार जापान से नौ गुना तथा इंग्लैण्ड से 14 गुना बड़ा है। भारत सम्पूर्ण विश्व का लगभग 1/46वां भाग है। इसकी स्थलीय सीमा लगभग 15,200 किलोमीटर तथा तटीय सीमा लगभग 6,100 किलोमीटर है।

तट रेखा

भारत के क्षेत्रफल की दृष्टि से इसकी तट रेखा बहुत ही कम लम्बी है। इसकी लम्बाई केवल 6100 कि.मी. है। यह तट रेखा प्राय: सीधी एवं सपाट है। यही कारण है कि तट रेखा पर सामान्यत: अच्छे बन्दरगाहों की कमी है। तट के समीप द्वीप भी बहुत कम है। पूर्वी तट के द्वीपों में हेयर द्वीप, पामबन द्वीप और हरिकोटा द्वीप तथा पश्चिमी तट के द्वीपों में लक्षद्वीप व ट्रॉम्बे द्वीप मुख्य हैं। अण्डमान और निकोबार द्वीप बंगाल की खाड़ी के द्वीपों में उल्लेखनीय हैं। मुम्बई साल्सेट नामक द्वीप पर बसा है और इसके निकट ही ऐलीफैन्टा नामक द्वीप भी है। चिल्का झील और बंगाल की खाड़ी के बीच पारिकुद द्वीप मिलते हैं।

भारत की तट रेखा को दो भागों में बांटा जा सकता है -

(1) पूर्वी तट - इसका विस्तार गंगा नदी के डेल्टा से कुमारी अन्तरीप तक है। इसके उत्तरी भाग को **उत्तरी सरकार तट** तथा दक्षिणी भाग को **कारोमण्डल तट** कहते हैं। उत्तरी सरकार तट कृष्णा नदी के डेल्टा से लेकर गंगा नदी के डेल्टा तक विस्तृत है। यह तट उथला है। यहाँ स्थित कोलकाता बन्दरगाह छिछला है जिसके कारण बड़े जहाजों के लिये अनुपयुक्त है। इस कमी को दूर करने के लिये हल्दिया बन्दरगाह का विकास कोलकाता के सहायक बन्दरगाह के रूप में किया गया है। यहाँ मशीनीकृत डॉक पद्धति और अधिक ड्राफ्ट वाले जहाजों के प्रवेश की सुविधा है। विशाखापट्टनम और पाराद्वीप बन्दरगाहों की स्थिति व्यापारिक दृष्टि से अच्छी है क्योंकि इनके समीप समुद्र शान्त है तथा बड़े-बड़े जहाजों के ठहरने की सुविधा है। इस तट पर काकीनाडा, वाल्टेयर, विमलीपट्टम, गोपालपुर व पुरी अन्य बन्दरगाह हैं।

कारोमण्डल तट कृष्णा नदी के डेल्टा से कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत एक सपाट, छिछला और बलुई तट है। इस तट पर चेन्नई एक महत्त्वपूर्ण कृत्रिम बन्दरगाह है। कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, धनुषकोटि, कारीकल, पांडिचेरी, कुड्डालोर, पुत्तुच्चोरि, नागापट्टम तथा तूतीकोरन आदि भी इस तट पर प्रमुख बन्दरगाह हैं। इस तट पर स्थित सेतुबन्ध व रामेश्वरम् तीर्थयात्रियों के लिए मुख्य आकर्षण हैं।

(2) पश्चिमी तट - यह खम्भात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक फैला है। इस तट को तीन भागों में बाँटा जा सकता है -

(अ) मलाबार तट - इसका विस्तार गोआ से कुमारी अन्तरीप तक है। यह तट रेखा कटी-फटी होने के कारण यहाँ प्राकृतिक बन्दरगाह हैं, लेकिन तेज हवाओं के कारण इसके समीप बालू एकत्रित हो जाती है। अनूप झीलें इस तट की विशेषता हैं। कोचीन ऐसी ही एक अनूप झील पर स्थित होने के कारण एक श्रेष्ठ बन्दरगाह है। यहाँ जलयान बनाने का

कारखाना है। मंगलौर, एलेप्पी, कोजीकोड, तिरूवनन्तपुरम आदि इस तट पर अन्य बन्दरगाह हैं।

(ब) कोंकण तट – यह गोआ से सूरत तक फैला है। यह तट सपाट और कठोर चट्टानों से बना हुआ है। द्वीपों और पश्चिमी तट के वनों से व नदी–घाटियाँ ही आवागमन के मार्ग थे। किन्तु भारत पर चीन के आक्रमण ने सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक तकनीकी विकास तथा वायु–परिवहन के प्रगतिशील चरणों के द्वारा यह पर्वतीय सीमा अब अभेद्य व अप्रवेश्य नहीं रह गई है। अत: हमारी उत्तरी व पूर्वी सीमाओं

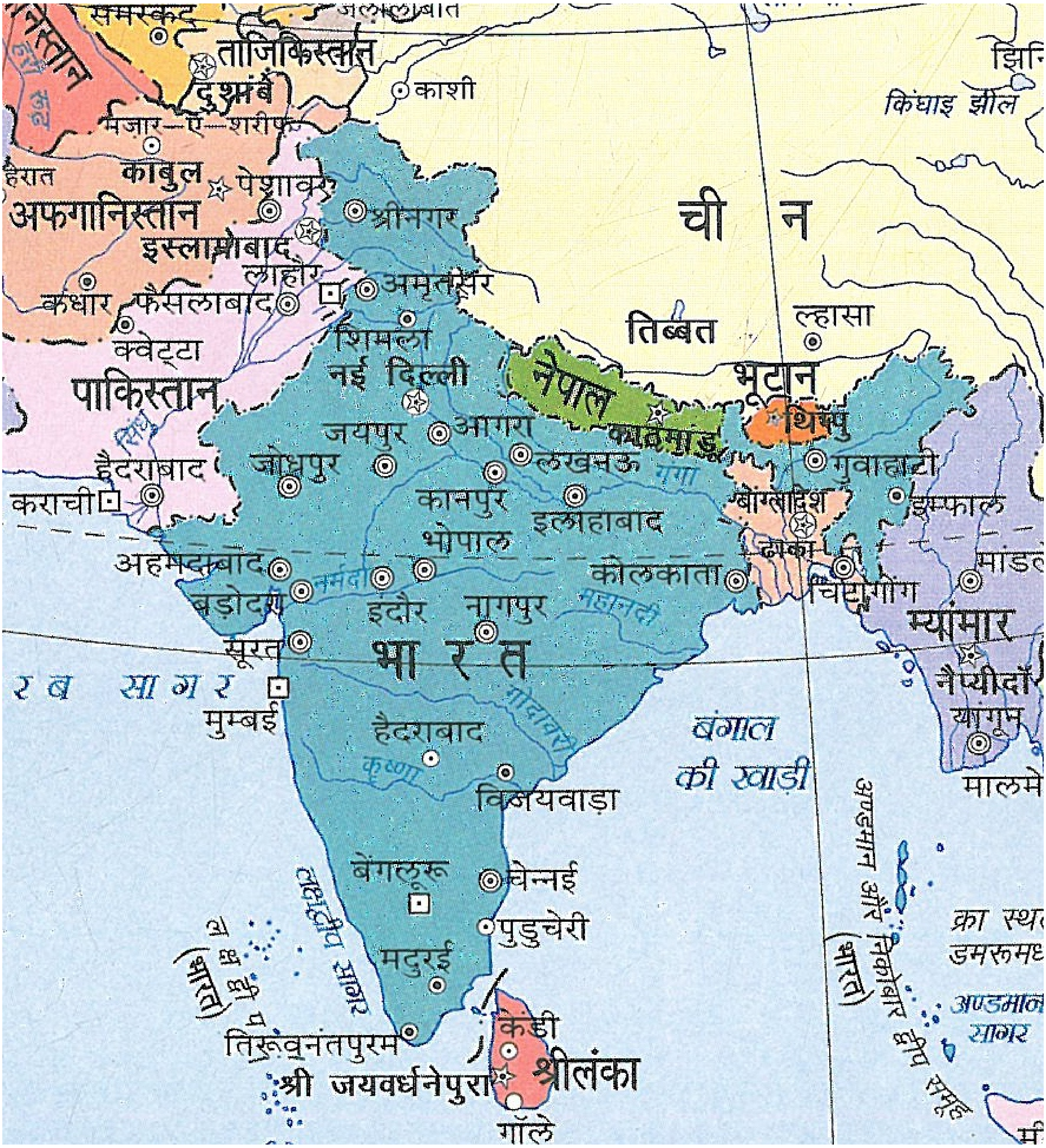

चित्र 1.2 – पड़ौसी देशों के सन्दर्भ में भारत की उपमहाद्वीपीय अवस्थिति

का सामरिक महत्व बढ़ गया है।

पूर्व में हमारी सीमाएँ बांग्लादेश से भी मिलती हैं। भारत के पांच राज्य – मिज़ोरम, त्रिपुरा, मेघालय, असम व पश्चिमी बंगाल, बांग्लादेश की सीमा पर स्थित हैं।

सन 1947 में विभाजन के फलस्वरूप हमारी भूमि से अलग हुआ पाकिस्तान हमारी पश्चिमी सीमा बनाता है। उस भूमि से हमारे सांस्कृतिक सम्बन्ध के प्रमाण आज भी सिन्ध के मोहनजोदड़ो में उपलब्ध हैं। पाकिस्तान के साथ हमारी पश्चिमी सीमा स्थलीय एवं कृत्रिम है। पाकिस्तान के साथ हमारे देश की सीमा जम्मू-कश्मीर,

चित्र 1.3 – भारत : राजनैतिक

पंजाब, राजस्थान व गुजरात राज्यों से मिलती है। हमारे जम्मू-कश्मीर राज्य के कुछ भाग पर पाकिस्तान अवैधानिक रूप से अधिकार किये हुए है। भारत-पाक सम्बन्धों में तनाव का कारण भी यही है। शांति-प्रियता भारतीय संस्कृति का मूल है। मध्य एशिया के कुछ शहरों में खुदाई से प्राप्त भारतीय वस्तुएँ, चीनी मठों में रखी बौद्ध पांडुलिपियाँ, दक्षिणी-पूर्वी एशिया के कई देशों के मन्दिर हमारी शांतिप्रियता और सह-अस्तित्व के प्रमाण हैं। इतिहास में इस बात के कोई प्रमाण नहीं है कि भारतीय सेनाओं ने कभी किसी देश पर आक्रमण किया हो। किन्तु हम अपने देश की स्वतन्त्रता व सीमाओं की रक्षा के प्रति निष्ठावान हैं। राष्ट्रीय एकता हमारी सबसे बड़ी शक्ति है।

भारत की अवस्थिति - एक कारक

उपमहाद्वीपीय अवस्थिति - दक्षिणी एशिया में तीन प्रायद्वीप हैं। इन तीनों प्रायद्वीपों (Peninsulas) में भारतीय उपमहाद्वीप (Indian Sub-continent) सबसे बड़ा है। विश्व के सबसे बड़े महाद्वीप - एशिया के दक्षिण-मध्य भाग में स्थित भारत एक उपमहाद्वीप के रूप में विस्तृत है। इसके उत्तर में चीन, नेपाल व भूटान, दक्षिण में श्रीलंका व हिन्द महासागर, पूर्व में बांग्लादेश, म्यांमार (बर्मा) व बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में पाकिस्तान व अरब सागर है।

विश्व में कदाचित प्रकृति द्वारा इतना स्पष्ट रूप से परिभाषित व सीमांकित क्षेत्र अन्य कोई नहीं है जितना भारत। इसीलिये इसे उपमहाद्वीप की संज्ञा दी गई है। यह उपमहाद्वीप उत्तर में विशाल हिमालय पर्वतीय श्रृंखला, पश्चिम में मरूस्थल, पूर्व में सघन वनों से आच्छादित पर्वत श्रेणियों व गहरी घाटियों तथा अन्यत्र विशाल जलराशि द्वारा सीमांकित है। वैसे भारतीय उपमहाद्वीप में कई प्राकृतिक व सांस्कृतिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। सर्वोच्च पर्वत श्रेणियाँ व विशाल समतल मैदान, नवीन मोड़दार पर्वत व प्राचीन पठार, उष्ण मरूस्थल व सदाबहार वन, विश्व के सर्वाधिक आर्द्र व अति शुष्क क्षेत्र, झूमिंग व विकसित यांत्रिक कृषि, हस्तकला की वस्तुएँ व आधुनिकतम औद्योगिक उत्पाद, घोड़ा-खच्चर, बैलगाड़ी व आधुनिक आवागमन के साधन, वन-क्षेत्रीय आवास व महानगरीय संस्कृति, विभिन्न स्वदेशी व विदेशी धर्मों का सहअस्तित्व तथा भाषा, वेशभूषा, रीति-रिवाज आदि की भिन्नताएँ कुछ उदाहरण हैं। किन्तु इन सभी व्यापक **भिन्नताओं के बावजूद भारतीय उपमहाद्वीप प्राकृतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से एकता के सूत्र में बंधी हुई एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई है।** इसलिये **विविधताओं में एकता (Unity in diversity)** भारत की अनूठी विशेषता मानी जाती है।

पड़ौसी देशों के सन्दर्भ में भारत की अवस्थिति - इस दृष्टि से भारत के महत्व को बढ़ाने में हिन्द महासागर की उपयोगी भूमिका रही है। हिन्द महासागर भारत सहित प्राच्य विश्व (पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया) को एकता के सूत्र में बांधता है। पिछले चार हजार वर्षों से भी अधिक समय से भारत के व्यापारिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध पश्चिम में बैबीलोन, मिस्र आदि देशों से तथा पूर्व में हिन्दचीन व दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों से रहे हैं। महासागरीय व्यापारिक मार्गों के विकास से काफी पहले भारत के क्षेत्रीय सम्बन्धों के विस्तार में स्थलीय मार्गों ने योगदान किया। यद्यपि अप्रवेश्य व अभेद्य हिमालय हमारे देश की उत्तरी सीमा बनाते हैं, तथापि इन्हीं में दर्रों व घाटियों से होकर आवागमन के मार्ग विकसित हुए। इन्हीं मार्गों से होकर हमारे देश में आक्रमणकारी आये और इन्हीं से होकर बौद्ध भिक्षु तिब्बत, चीन, कोरिया व जापान तक अपना शान्ति संदेश ले गये। पश्चिमी, मध्य पूर्वी व दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मध्य सम्पर्क सूत्र वाली अवस्थिति के कारण भारत के लिये यह सम्भव हुआ।

विश्व के परिप्रेक्ष्य में अवस्थिति - पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य में हिन्द महासागर के शीर्ष पर भारत की अवस्थिति ग्लोबीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अवस्थिति के कारण ही भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों का संगम बन गया है। स्वेज़ मार्ग, अटलाण्टिक समुद्री मार्ग, आशा अन्तरीप मार्ग एवं प्रशान्त महासागरीय मार्ग भारत में आकर मिलते हैं, जिससे देश के आयात व निर्यात व्यापार में वृद्धि हुई है। पश्चिमी देशों से सुदूरपूर्व को जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री मार्ग ही नहीं, बल्कि वायुमार्ग भी भारत से होकर गुजरते हैं। दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई और कोलकाता अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों का मिलन स्थल होने के कारण यहाँ वाणिज्यिक, व्यापारिक एवं संचार सुविधाओं का भी तीव्र गति से विकास हुआ है।

अवस्थिति जन्य लाभ

भारत को अपने गौरवशाली अतीत, सम्मानपूर्ण वर्तमान एवं आशातीत भविष्य पर गर्व है। भारत के गौरवपूर्ण इतिहास की आधारशिला इसकी भौगोलिक स्थिति ही है। भारत की भौगोलिक स्थिति पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य में है जिसका विशेष महत्व है-

1. भारत हिन्द महासागर के शीर्ष पर स्थित होने के कारण व्यापारिक मार्गों का संगम बन गया है। अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री मार्ग जैसे स्वेज़ मार्ग, आशा अन्तरीप मार्ग, अटलाण्टिक मार्ग एवं प्रशान्त महासागरीय मार्ग भारत में आकर मिलते हैं जिससे देश के आयात व निर्यात में वृद्धि हुई है।
2. पश्चिमी देशों से सुदूरपूर्व को जाने वाले वायुमार्ग भी भारत से होकर गुजरते हैं। दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई और कोलकाता आदि अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे हैं। अत: यहाँ संचार एवं सर्म्पक की सुविधा है।
3. भारत के उष्ण व शीतोष्ण दोनों ही कटिबन्धों में स्थित होने का कारण

यहाँ प्राय: दोनों प्रकार की कृषि फसलें पैदा की जाती हैं।

4. भारत की स्थिति के कारण ही देश के बन्दरगाह वर्ष भर खुले रहते हैं।

5. भारत के पड़ौसी देश, जैसे – नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और अफ्रीका के देश अविकसित हैं। अत: भारत का निर्मित माल निकट के बाजारों में ही खप जाता है।

6. भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत है जो उत्तर से आने वाली ठण्डी हवाओं से देश की रक्षा करते हैं तथा दक्षिणी–पश्चिमी मानसून को रोककर देश में वर्षा होने में सहायक होते हैं।

7. इस विशिष्ट स्थिति के कारण ही भारत का क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व बढ़ा है। अत: ईर्ष्यावश एवं इस क्षेत्र में अपना महत्त्व बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ विदेशी ताकतें हमारे देश में अस्थिरता उत्पन्न करने का प्रयास करती रहती हैं। इनसे हमें सावधान रहना चाहिए।

8. भारत की स्थिति का महत्व इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है कि इसके निकटवर्ती महासागर का नाम इसी के आधार पर हिन्द महासागर पड़ा है।

9. हिन्द महासागर में भारत की विशिष्ट स्थिति इसे **उपमहाद्वीप** बनाती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत का अतीत गौरवपूर्ण रहा है।
2. **विविधताओं में एकता** के सूत्र के द्वारा हमारे देश का भविष्य भी उज्ज्वल है।
3. स्थिति – $8^\circ 4'$ से $37^\circ 6'$ उत्तरी अक्षांश तथा $68^\circ 7'$ से $97^\circ 25'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य भारत स्थित है।
4. कर्क रेखा हमारे देश के लगभग मध्य से होकर गुजरती है।
5. हमारे देश में $82\frac{1}{2}^\circ$ पूर्वी देशान्तर के स्थानीय समय को प्रामाणिक समय माना जाता है।
6. भारत की अधिकतम लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक 3214 कि.मी. तथा अधिकतम चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक 2933 कि.मी. तथा क्षेत्रफल 32.88लाख वर्ग कि.मी. है।
7. क्षेत्रफल की दृष्टि से रूस, कनाडा, चीन, यू.एस.ए., ब्राज़ील व ऑस्ट्रेलिया भारत से बड़े देश है।
8. हमारे देश की स्थलीय सीमा 15,200 कि.मी. तथा जलीय सीमा 6100 कि.मी. है।
9. पूर्वी तट – उत्तरी सरकार तट व कारोमण्डल तट।
10. पश्चिमी तट – मलाबार तट, कोंकण तट व सौराष्ट्र तट।
11. भारत की अवस्थिति एक कारक के रूप में अति महत्वपूर्ण है।
12. भारत को अवस्थिति जन्य अनेक लाभ हैं।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. कन्याकुमारी से गोआ के बीच के तट को कहते हैं –
   (अ) कोंकण तट (ब) मलाबार तट
   (स) सौराष्ट्र तट (द) कारोमण्डल तट।
2. भारत के जिस राज्य की सीमा किसी अन्य देश से नहीं मिलती है, वह है–
   (अ) पंजाब (ब) मेघालय
   (स) त्रिपुरा (द) हरियाणा।
3. निम्नांकित में से उन देशों के समूह को चुनिये जिसमें सम्मिलित सभी देश क्षेत्रफल में भारत देश से छोटे हैं –
   (अ) पाकिस्तान, ऑस्ट्रेलिया, म्यांमार और अफ़ग़ानिस्तान।
   (ब) चीन, ऑस्ट्रेलिया, क्यूबा और ब्राज़ील।
   (स) फ्रांस, कनाडा, अफ़ग़ानिस्तान और ईराक।
   (द) म्यांमार, पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और ईराक।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

4. किस देशान्तर रेखा का स्थानीय समय भारत का प्रामाणिक समय माना जाता है?
5. कौनसी मुख्य अक्षांश रेखा भारत को लगभग दो बराबर भागों में बांटती है?
6. हमारे देश के आकार को देखते हुए इसकी जलीय सीमा की लम्बाई कम क्यों है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

7. उत्तर–पूर्वी भारत में किन तीन देशों की सीमाएँ मिलती हैं?
8. भारत का उत्तरी शीर्ष सामरिक व सुरक्षात्मक दृष्टि से क्यों महत्वपूर्ण है?
9. भारतीय जलीय सीमान्त की क्या विशेषताएं हैं?
10. पड़ौसी देशों के सन्दर्भ में भारत की अवस्थिति की क्या विशेषताएं हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

11. उपमहाद्वीप किसे कहते हैं? भारत को उपमहाद्वीप कहने का क्या औचित्य है?
12. भारत की स्थिति व अवस्थिति के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

आंकिक प्रश्न–

13. पड़ौसी देशों के सन्दर्भ में भारत की अवस्थिति दर्शाने हेतु एक मानचित्र बनाइये।
14. भारत का एक मानचित्र बनाकर उसमें अक्षांशीय व देशान्तरीय विस्तार तथा तटों के नाम लिखिये।

उत्तरमाला– 1. ब 2. द 3. द

अध्याय -2

भारत की विविधताओं में एकता

(Unity in Diversity in Bharat)

भारत विश्व में प्राकृतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। छोटे से क्षेत्र की यात्रा करने पर ही हमारे देश में निहित क्षेत्रीय विलक्षणताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ये विविधताएँ प्राकृतिक स्वरूपों, जलवायु, वनस्पति, मृदा, कृषि, उद्योग, आवागमन के साधन, लोगों के जीवन स्तर, वेशभूषा, भाषा, बोली, गीत-संगीत, रीति-रिवाज, भोजन, सामाजिक व्यवहार, धार्मिक आस्थाओं, पूजा-पाठ की विधियों आदि विभिन्न पक्षों में स्पष्ट रूप से झलकती हैं। संक्षिप्त सी यात्रा करने पर ही हमें विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ - पर्वत श्रेणियाँ, पठार, मैदान, घाटियाँ, मरूस्थल आदि दिखाई दे सकते हैं। मृदा का रंग बदलता हुआ स्पष्ट दृष्टिगोचर हो सकता है। विभिन्न प्रकार की वनस्पति, भांति-भांति की फसलें आदि दिखाई दे सकती हैं। लोगों की बोली, उच्चारण एवं अभिव्यक्ति की विधियों में अन्तर स्पष्ट झलकता है। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार की वेश-भूषा एवं भांति-भांति के भोज्य पदार्थ भी आकर्षित करते हैं। लेकिन इन सभी विविधताओं के बावजूद हमारी यात्रा में हमें यह महसूस नहीं होता कि हम किसी अपरिचित क्षेत्र में आ गये हैं। हमें हमारे देश में हर जगह एक अनूठे अपनेपन का अहसास होता है। यह हमारे देश की एक विलक्षणता है। यह विलक्षणता **विविधताओं में एकता** की है।

विविधताएँ

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में अनेक प्रकार की विविधताएँ पाई जाती हैं। ये सभी विविधताएँ न केवल हमारे समाज को विभिन्न रंग प्रदान करती हैं बल्कि भारतीय समाज को एक अनोखे समरस समाज के सूत्र में बांधती है। भारत में मिलने वाली विविधताओं को पूर्ण रूप से समझने के लिए इन्हें तीन प्रधान वर्गों में बांटा जा सकता है -

क. प्राकृतिक विविधताएँ (Natural Diversities),
ख. आर्थिक विविधताएँ (Economic Diversities), तथा
ग. जनसांख्यिकीय विविधताएँ (Demographic Diversities)

क. प्राकृतिक विविधताएँ (Natural Diversities)

1. स्थलाकृतिक विविधता (Topographical Diversity) - हमारे देश में अनेक प्रकार की स्थलाकृतियाँ पाई जाती हैं। इन विविध स्थलाकृतियों का अनुपम प्राकृतिक, आर्थिक, पर्यटक तथा दार्शनिक महत्व है। एक ओर जहाँ हमारी उत्तरी सीमा पर गगनचुम्बी एवं उच्च हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ विस्तृत हैं वहीं दूसरी ओर इनके पदीय क्षेत्र में ब्रह्मपुत्र-गंगा-सतलज नदी का विस्तृत मैदान फैला हुआ है। ब्रह्मपुत्र व सिन्धु नदियों की गहरी एवं संकीर्ण घाटियाँ (Gorge), अरावली के रूप में अवशिष्ट पर्वत, विशाल उष्ण एवं शुष्क थार का मरूस्थल, नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के खुले नद-मुख (Estuaries), तटीय मैदान, विभिन्न आकारों के द्वीप एवं द्वीपसमूह हमारे देश की उच्चावच सम्बन्धी विविधताओं के आभूषण हैं। पौराणिक काल से ही हमारे देश के उत्तरी प्रहरी हिमालय पर्वत एकान्त स्थल के रूप में सन्त-महात्माओं के लिए साधना स्थल रहे हैं। इसी क्षेत्र से हमारे देश की नित्यवाही नदियाँ जल प्राप्त करती हैं। यहाँ की उच्च हिमाच्छादित एवं चित्ताकर्षक पर्वत श्रेणियाँ तथा पर्वत चोटियाँ बड़ी संख्या में पर्यटकों को न केवल मनोरम दृश्य उपलब्ध कराती हैं बल्कि ग्रीष्म ऋतु की झुलसती गर्मी में आनन्द एवं सुख की अनुभूति भी कराती है।

2. संरचनात्मक विविधता (Structural Diversity) - संरचना की दृष्टि से पूरे विश्व में भारत कुछ गिने-चुने देशों में से एक है जहाँ सभी युगों की शैलें पाई जाती हैं। एक ओर दक्षिण का पठार विश्व के

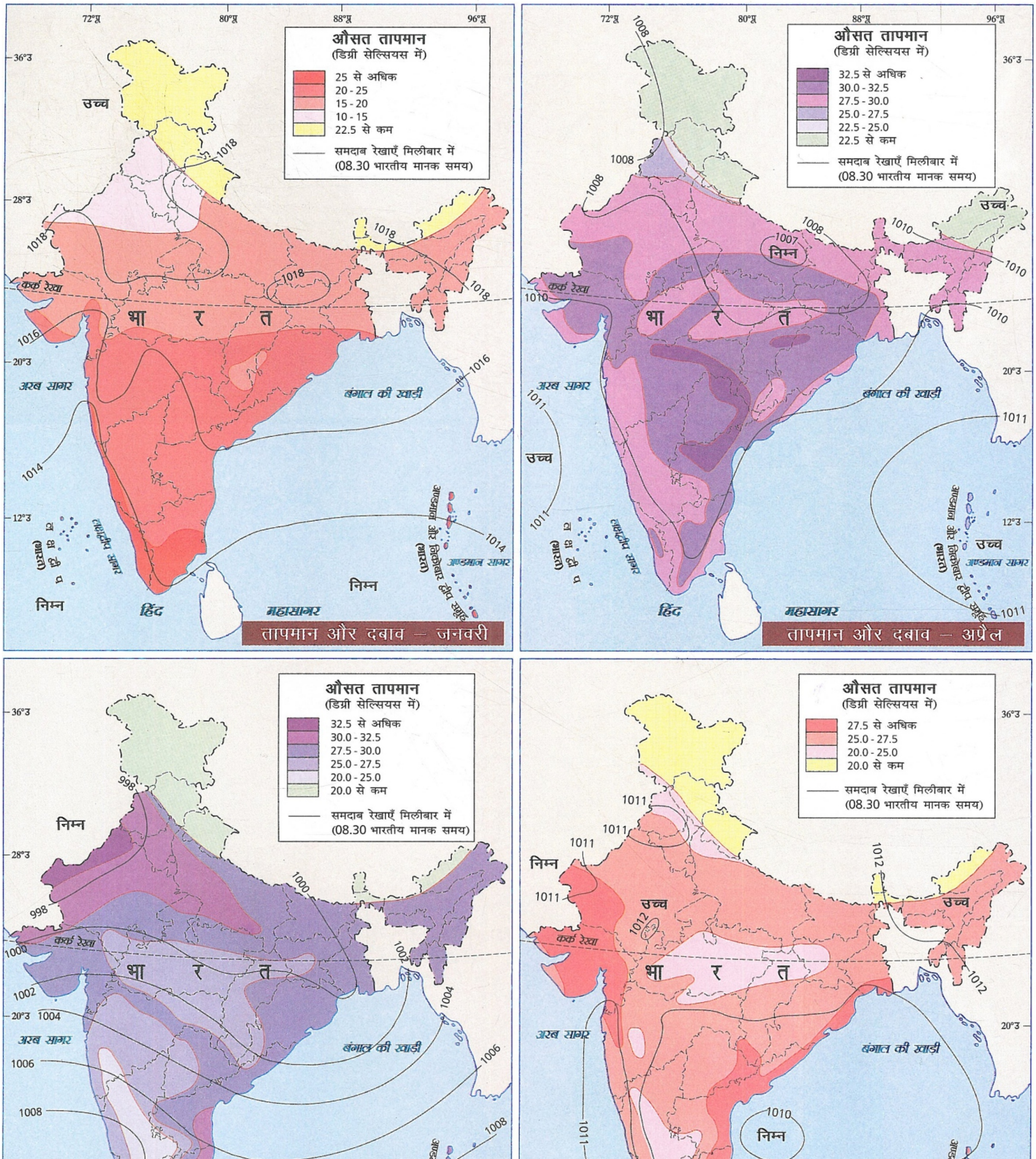

चित्र 2.1 – भारत में विविधताएँ

प्राचीनतम पठारों (**प्राचीन पिण्डों - Old Massifs**) में से एक है। इसी प्रकार अरावली, सतपुड़ा, विन्ध्याचल आदि पर्वतश्रेणियाँ विश्व के प्राचीनतम पर्वतों में सम्मिलित की जाती हैं। इसके विपरीत हमारी उत्तरी सीमा पर विस्तृत विशाल हिमालय पर्वत विश्व के नवीन मोड़दार पर्वतीय क्रम (Newly folded mountain system) के अंग हैं। विशाल गंगा-सतलज का मैदान, नदियों के डेल्टा प्रदेश एवं बाढ़ के मैदान नवीनतम कांप मिट्टी से निर्मित हैं।

3. जल प्रवाह सम्बन्धी विविधता (Diversity of Drainage) - हमारे देश में जल प्रवाह सम्बन्धी काफी विविधताएँ पाई जाती हैं। इसका प्रमुख कारण हमारे देश का मानसूनी जलवायु है, जिसके अन्तर्गत वर्ष का अधिकांश भाग शुष्क बीतता है तथा वर्षाकाल की अवधि बहुत छोटी होती है। इसके परिणामस्वरूप हमारे देश की अधिकांश नदियाँ वर्षाकाल में ही प्रवाहित होती हैं। इन्हें मौसमी नदियाँ (Seasonal Rivers) कहते हैं। हिमालय से निकलने वाली सभी नदियाँ नित्यवाही हैं क्योंकि इनमें शुष्क काल में हिम का पिघला हुआ जल प्रवाहित होता रहता है। इसी प्रकार झीलों में भी विविध प्रकृति पाई जाती है। एक ओर राजसमन्द, जयसमन्द आदि मीठे पानी की झीलें हैं जबकि सांभर, डीडवाना, लूणकरणसर, पचपद्रा आदि खारे पानी की झीलें हैं, जिनसे नमक का उत्पादन किया जाता है।

4. जलवायु सम्बन्धी विविधता (Climatic Diversity) - हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु सम्बन्धी अनेक विविधताएँ पाई जाती हैं। ये विविधताएँ ऋतुओं के अनुसार भी महत्वपूर्ण हैं। ग्रीष्म ऋतु में हमारे देश में सर्वाधिक तापमान थार के मरूस्थल में पाया जाता है जहाँ कई स्थानों पर तापमान 45° सेल्शियस से भी अधिक हो जाता है। इस ऋतु में सामान्यत: दक्षिण की ओर तथा तटीय क्षेत्रों की ओर तापमान कम होता जाता है। इन क्षेत्रों में तापमान 28° से 30° सेल्शियस तक मिलता है। इसके विपरीत सर्दियों में उत्तरी भारत के कई स्थानों में तापमान शून्य से नीचे गिर जाता है तथा दक्षिण एवं तटीय क्षेत्रों की ओर तापमान बढ़ता-बढ़ता 25° से 30° सेल्शियस के मध्य पाया जाता है। इस प्रकार मौसम के अनुसार इन तापमान सम्बन्धी परिस्थितियों में काफी विविधताएँ पाई जाती हैं (चित्र संख्या 2.2)।

तापमान से जुड़ा हुआ मुख्य पहलू वायुदाब एवं पवनें हैं। **वायुदाब तथा तापमान का विपरीत सम्बन्ध** होता है। अत: ग्रीष्म ऋतु में थार के मरूस्थल में वायुदाब न्यूनतम तथा सागरीय क्षेत्र में अधिकतम पाया जाता है (चित्र संख्या 2.1)। इसके विपरीत सर्दियों में उत्तरी भारत में उच्च दाब तथा सागरीय क्षेत्रों में न्यून दाब पाया जाता है। इस प्रकार ऋतुओं के अनुसार वायुदाब में विपरीत परिवर्तन हो जाता है। इसी के परिणामस्वरूप मौसम के अनुसार पवनों की दिशा में भी विपरीत परिवर्तन होता है। ग्रीष्म ऋतु में पवनें सागर से स्थल की ओर तथा शीत ऋतु में स्थल से सागर की ओर चलती हैं।

भारत में मौसमी तथा क्षेत्रीय वितरण प्रारूप के रूप में वर्षा सम्बन्धी भी अत्यधिक विविधताएँ पाई जाती हैं। हमारे देश की वर्षा का 90 प्रतिशत भाग ग्रीष्म ऋतु में प्राप्त होता है जबकि शीत ऋतु कुछ क्षेत्रों को छोड़कर शुष्क बीतती है। इस ऋतु में हमारे देश की वर्षा का लगभग 10 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है (चित्र संख्या 2.2)। क्षेत्रीय वितरण प्रारूप के रूप में एक ओर जहाँ मॉसिनराम में वार्षिक वर्षा का औसत 1300 से.मी. से भी अधिक रहता है, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी राजस्थान में यह औसत घटकर 5 से.मी. से भी कम रह जाता है।

5. जलीय आवश्यकताओं की विविधता (Diversity of Water Requirement) - भारत एक कृषि प्रधान देश है। मानसूनी जलवायु के कारण कृषि सम्बन्धी कार्यों के लिए हमारे देश के अधिकांश भागों में उपयुक्त मात्रा में जल उपलब्ध नहीं हो पाता। इस कारण देश के विभिन्न भागों में कृषि कार्यों के लिए जलीय आवश्यकताओं की व्यापक भिन्नताएँ पाई जाती है। जलीय आवश्यकताएँ वर्षा की विषमता पर निर्भर करती है। किसी क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा से कम या अधिक होने वाली वर्षा की मात्रा **विषमता** कहलाती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा की विषमता सबसे अधिक होती है उन क्षेत्रों में जलीय आवश्यकता भी सबसे अधिक होती है। उसका कारण यह है कि जहाँ वर्षा का औसत कम होता है वहाँ वर्षा की विषमता सर्वाधिक पाई जाती है। यदि किसी क्षेत्र में वार्षिक वर्षा का औसत 10 से.मी. है तथा वहाँ किसी वर्ष में यदि वर्षा 15 से.मी. हो जाती है, तो वर्षा की विषमता +50 प्रतिशत हो जायेगी। जबकि 100 से.मी. औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र में यदि किसी वर्ष 5 से.मी. वर्षा अधिक अर्थात 105 से.मी. हो जाये तो वर्षा की विषमता केवल +5 प्रतिशत होगी।

वर्षा की इन विशेषताओं के कारण अनेकों बार भारत के कुछ क्षेत्रों में सूखा पड़ता है तथा कुछ क्षेत्रों में बाढ़ें आती रहती हैं। इन्हें क्रमश: **सूखा प्रवृत** व **बाढ़ प्रवृत** क्षेत्र कहते हैं। ये भी जलीय उपलब्धि के आधार पर विविधताओं के प्रतीक हैं।

6. मृदा सम्बन्धी विविधता (Soil Diversity) - हमारे देश में स्थलाकृतिक, संरचनात्मक एवं जलवायु सम्बन्धी विविधताओं के कारण अनेक प्रकार की मृदाएँ पाई जाती हैं। हमारे देश में मिलने वाली मुख्य मृदाएँ काँप, काली, लाल, पीली, भूरी, बलुई, चीका, लैटराइट आदि हैं। इन मिट्टियों की उर्वरकता सम्बन्धी भिन्नताएँ भी प्रमुख हैं।

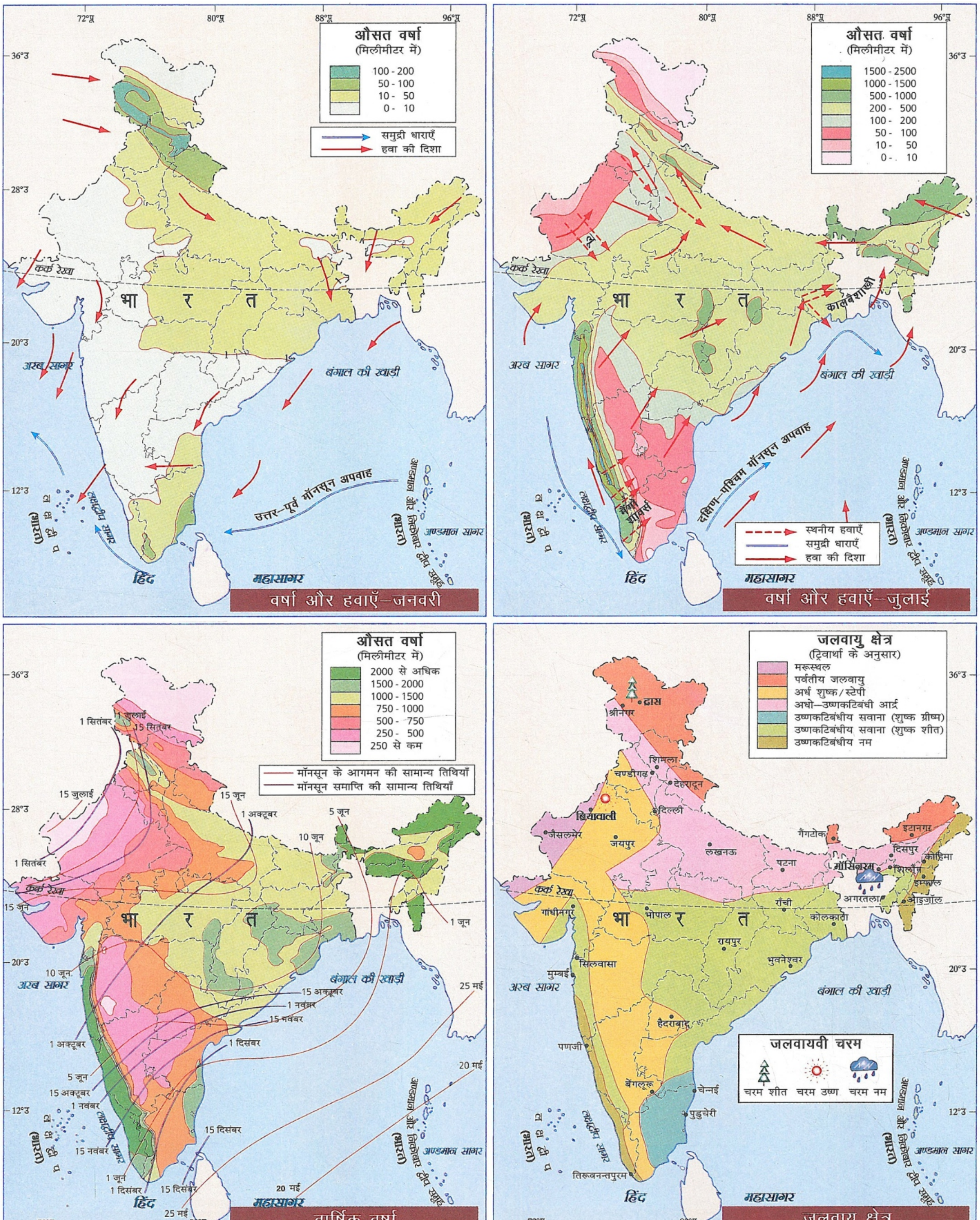

चित्र 2.2 – भारत में विविधताएँ

काँप एवं काली मृदा हमारे देश की सबसे अधिक उपजाऊ मिट्टियाँ हैं। लैटराइट मृदा अपेक्षाकृत कम उपजाऊ होती है। बलुई मिट्टी जल के अभाव के कारण कृषि कार्यों के लिए उपयोग में नहीं आ पाती।

7. वनस्पतिक विविधता (Vegetational Diversity) - प्राकृतिक विविधताओं के कारण हमारे देश में विविध प्रकार की वनस्पतियाँ एवं वन पाये जाते हैं। हमारे देश के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र में ऊँचाई पर नुकीली पत्ती वाले वन एवं निचले ढालों पर चौड़ी पत्ती वाले वन पाये जाते हैं। पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढालों पर उष्ण-आर्द्र सदाबहार वन पाये जाते हैं। उत्तरी-पूर्वी भारत में भी सदाबहार वन पाये जाते हैं। शेष भारत के अधिकांश भागों में पतझड़ी वन का विस्तार है। अत्यन्त शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में क्रमशः कंटीले वन एवं घास पाई जाती है। जैसलमेर का **सम** क्षेत्र तो वनस्पति रहित है।

ख. आर्थिक विविधताएँ (Economic Diversities)

1. कृषि सम्बन्धी विविधता (Agricultural Diversity) - हमारे देश में अनेक प्रकार की कृषि के विकास की अवस्थाएँ देखने को मिलती है। सुदूर पर्वतीय एवं वन क्षेत्रों में आज भी हमारे देश के कई भागों में **स्थानान्तरित कृषि** (Shifting Cultivation) की जाती है, जो कि कृषि का सबसे अविकसित रूप है। आसाम में इस प्रकार की कृषि को **झूमिंग** कहते हैं। उत्तरी पूर्वी भारत के अनेक पर्वतीय ढालों पर विकसित **बागाती कृषि** (Plantation Agriculture) की जाती है। यह सुनियोजित उन्नत कृषि है, जिसमें प्रबन्ध कौशल की प्रमुखता होती है। अधिकांश भारत में छोटे कृषक **आत्मनिर्भरता मूलक मिश्रित कृषि** करते हैं। इसके अन्तर्गत वे कृषि के साथ-साथ अपने जीवन निर्वाह के लिए पशुपालन भी करते हैं। सम्पन्न एवं विकसित क्षेत्रों में कृषक बड़े पैमाने पर **व्यापारिक कृषि** करते हैं।

प्राकृतिक विविधताओं के कारण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में एवं विभिन्न ऋतुओं में विविध प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। हमारा देश इस मामले में अनुपम है जहाँ उष्णकटिबन्धीय फसलें जैसे - चावल, चाय, कॉफी, जूट आदि, शीतोष्ण कटिबन्धीय फसलें जैसे - गेहूँ, कपास, मक्का, तम्बाकू आदि तथा शुष्क प्रदेशीय फसलें जैसे - ज्वार, बाजरा आदि उगाये जाते हैं। इस प्रकार हमारे देश में विविध फसलें उगाई जाती हैं।

विकास की अवस्थाओं के प्रतीक के रूप में कृषि औजार एवं कृषि कार्यों के तरीकों में भी विविधता पाई जाती है। हमारे देश के अधिकांश छोटे कृषक आज भी हल चलाकर, पशुओं की सहायता से तथा गोबर की खाद का उपयोग करके कृषि कार्य करते हैं। यह सामान्यतः **आत्मनिर्भरतामूलक कृषि** होती है। इसके विपरीत बड़े एवं सम्पन्न कृषक यान्त्रिक सहायता से कृषि कार्य करके अधिक उत्पादन प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की कृषि में अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होता है जिसका व्यापार किया जाता है।

2. सिंचाई के साधनों की विविधता (Diversity of Means of Irrigation) - हमारे देश के विभिन्न भागों में सिंचाई की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ हैं। ये आवश्यकताएँ वर्षा की मौसमी प्रकृति, अधिकांश नदियों का भी मौसमी प्रवाह आदि कारणों से उत्पन्न होती है। हमारे देश में सर्वाधिक प्रचलित सिंचाई के साधन कुए, तालाब, नलकूप तथा नहरें हैं। दक्षिणी भारत में कठोर धरातल के कारण तालाब बनाकर सिंचाई करना आसान होता है। उत्तरी भारत के विशाल मैदान में नहरों से सिंचाई करना अधिक सुविधाजनक है। इस क्षेत्र में कुए व नलकूप भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

3. ऊर्जा के संसाधनों की विविधता (Diversity of Power Resources) - भारत में लकड़ी तथा कच्चा कोयला पारम्परिक शक्ति के साधन रहे हैं। विकास के साथ-साथ एवं आवागमन के साधनों की सुलभता, अधिक एवं विविध स्रोतों की खोज तथा तकनीकी विकास के कारण अब देश के विभिन्न क्षेत्रों में उत्तम किस्म का कोयला, जल विद्युत, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस, परमाणु ऊर्जा, सौर ऊर्जा आदि का उपयोग बढ़ रहा है। ऊर्जा के इन विविध स्रोतों के उपयोग का स्तर भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है।

4. खनिज सम्बन्धी विविधता (Diversity of Minerals) - भारत में व्यापक संरचनात्मक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। यही कारण है कि भारत की गिनती विश्व के कुछ ऐसे देशों में की जाती है जहाँ विविध प्रकार के खनिज प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अनेक प्रकार के खनिजों के उत्पादन में तो भारत को लगभग एकाधिकार प्राप्त है। अभ्रक इसका एक उदाहरण है। भारत में अनेक प्रकार के धात्विक एवं अधात्विक खनिज तथा ईंधन खनिज पाये जाते हैं। लगातार नई-नई खोजों से हमारे देश में खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस का उत्पादन भी काफी बढ़ रहा है। तकनीकी विकास के साथ-साथ भारत में परमाणु ऊर्जा, सौर ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा के और भी विकसित होने की विपुल सम्भावनाएँ हैं।

5. औद्योगिक विविधता (Industrial Diversity) - कृषि की भांति हमारे देश में औद्योगिक विकास की अवस्थाओं के विविध रूप भी देखने को मिलते हैं। भारत पारम्परिक रूप से कुटीर उद्योगों की दृष्टि से विख्यात रहा है, यद्यपि आज हमारे देश के कुटीर उद्योग संकट की अवस्था में हैं। हमारे देश के विभिन्न भागों में विविध प्रकार के कुटीर उद्योग, हथकरघा उद्योग, लघु उद्योग एवं वृहत पैमाने के उद्योग

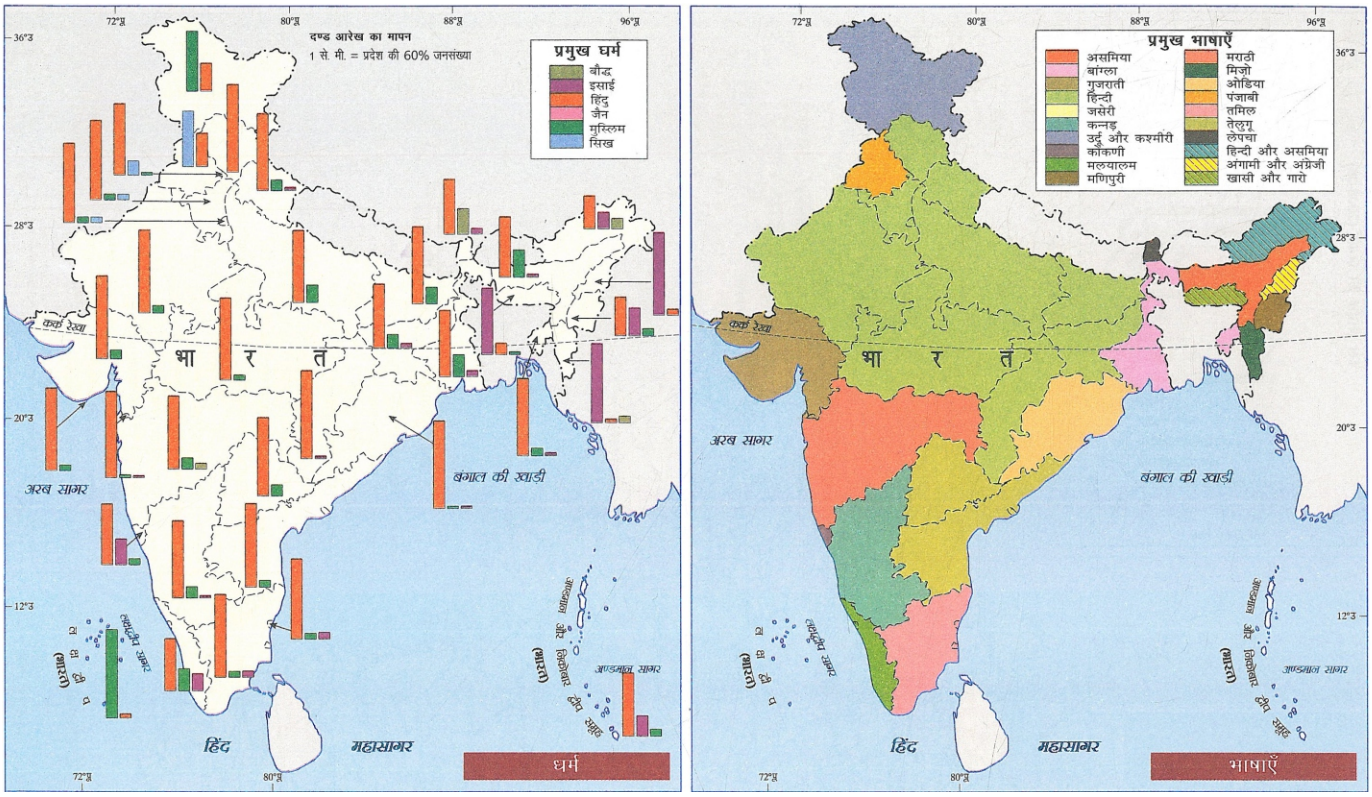

चित्र 2.3 - भारत में विविधताएँ

विकसित हो रहे हैं।

6. आवागमन के साधनों की विविधता (Diversity of Means of Transportation) - भारत के बड़े-बड़े शहरों में विविध प्रकार के आवागमन के साधनों का सम्मिश्रण बड़ा ही रोचक दृश्य उपस्थित करता है। हमारे कई शहरों में आज भी साईकिल रिक्शा, तांगा, बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी, ऑटो रिक्शा, टैक्सियाँ, कारें, ट्रक, बस, रेलें, वायुयान आदि एक साथ उपयोग में आते हुए देखे जा सकते हैं।

7. संचार के साधनों की विविधता (Diversity of Means of Communication) - आवागमन के साधनों की तरह हमारे देश में संचार के साधनों में भी व्यापक विविधताएँ पाई जाती हैं। हमारे देश की अनेक जनजातियाँ आज भी ढोल बजाकर अथवा विभिन्न प्रकार की आवाजों के माध्यम से संदेशों का आदान-प्रदान करते हैं। वहीं दूसरी ओर विकास के पथ पर अग्रसित भारत ने सैटेलाइट के माध्यम से संचार के क्षेत्र में विशिष्ट सफलताएँ अर्जित की हैं। नवीनतम संचार के साधनों में टैलिफोन, मोबाइल फोन, टैलीग्राफ, फैक्स, रेडियो, टैलिविज़न, इन्टरनैट आदि हमारे देश में अब लोकप्रिय संचार के साधन बन गये हैं।

ग. जनसांख्यिकीय विविधताएँ (Demographic Diversities)

इस दृष्टि से भारत विश्व में एक अनूठा देश है। विश्व के किसी भी देश में इतनी अधिक जनसांख्यिकीय विविधताएँ नहीं पाई जाती हैं जितनी भारत में। यहाँ न केवल विभिन्न प्रजातियों, जातियों, जनजातियों, धर्मों व सम्प्रदायों के लोग एक साथ अनूठी एकता के सूत्र में बंधे हुए निवास करते हैं बल्कि यहाँ के निवासियों की विविध भाषाएँ, उत्सव, कला, नृत्य-संगीत, वेश-भूषा, रीति-रिवाज आदि इस विविधता में मनमोहक रंग घोलते हैं। यह हमारे देश की ही विशेषता है कि विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के लोग हमारे देश में शान्ति, सहयोग और सद्भाव के साथ मिलकर रहते हैं। विभिन्न भागों में होने वाले विविध प्रकार के मेले, उत्सव, नृत्य, संगीत आदि हमारे देश की सांस्कृतिक समृद्धि के प्रतीक हैं। होली, दीपावली, लोढ़ी, ईद, क्रिसमस आदि के उत्सव हमारे समाज में देखते ही बनते हैं।

हमारे देश की सांस्कृतिक एवं जनसांख्यिकीय विविधताएँ इतनी अधिक हैं कि उन सबको केवल एक बिन्दु में समाविष्ट करना सम्भव नहीं है। इन विविधताओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध देश के सांस्कृतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक पहलुओं से भी है। अतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष से सम्बन्धित विविधता का विस्तार से विवरण अलग इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

विविधता में एकता (Unity in Diversity)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हमारे देश को अनेकानेक प्राकृतिक, आर्थिक एवं जनसांख्यिकीय विविधताएँ उपहार के रूप में प्राप्त हुई हैं। प्रकृति ने हमारे देश को इससे भी अधिक अनुपम उपहार **विविधता में एकता** दिया है। हमारे दैनिक जीवन के अनुभवों से यह पक्ष इतना अधिक सहज लगता है कि ये विविधताएँ होते हुए भी व्यवहार में हमें एकरूपता एवं समरसता का प्रतीक लगती हैं। इसीलिये हम सारी विविधताओं के बावजूद **भारतीय** के रूप में सदैव एक रहे हैं। **हमारी राष्ट्रीय शक्ति हमारी एकता में ही निहित है**। एकता के इसी सद्‌भाव और समरस भाव में हम सबका कल्याण एवं हमारी सम्पन्नता निहित है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब विदेशियों एवं स्वार्थी तत्वों ने हमारी इस एकता में सैंध लगाने में आंशिक सफलता प्राप्त की है, तब-तब हमारा देश कमजोर, राजनैतिक दासता एवं आर्थिक शोषण का शिकार हुआ है। किन्तु जब-जब हमारे देश पर किसी प्रकार का खतरा आया है तब-तब हमारे देशवासियों ने अद्‌भुत एकता का परिचय दिया है। इन सभी दुर्भाग्यशाली घटनाओं ने हमें यह सीखने की प्रेरणा दी है कि सभी विविधताओं के बावजूद एकता में ही हमारी शक्ति, सामर्थ्य, राजनैतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक सम्पन्नता निहित है। हमारी सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा एवं राष्ट्रीय गौरव इसी एकता को बनाये रखने से सम्भव है। अत: हमें इसे हर कीमत पर बनाये रखना है।

कुछ स्वार्थी तत्व एवं विदेशी ताकतें हमारे देश की विविधताओं को **अपकेन्द्रीय शक्ति (Centrifugal Force)** के रूप में प्रक्षेपित करने का प्रयास करती रहती हैं। भारतीय के रूप में हमें उनकी इन कुत्सित भावनाओं और षड्‌यन्त्रों से सावधान रहना चाहिये। ये ताकतें एवं स्वार्थी तत्व हमारे देश की प्रगति एवं निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से ईर्ष्या रखते हैं, इसलिये हमारे देश को विभाजित करना, कमजोर करना अथवा आर्थिक दृष्टि से नुकसान पहुँचाना ही इनका उद्देश्य है। अत: यदि हमें सम्पन्नता एवं गौरव के साथ रहना है और हमारे देश को सशक्त और सम्पन्न बनाना है, तो हमें हमारे देश की इस **अनुपम एकता** को सदैव बनाए रखना होगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. हमारे देश में अनेकानेक विविधताएँ पाई जाती हैं।
2. भारत में पाई जाने वाली विविधताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - प्राकृतिक, आर्थिक एवं जनसांख्यिकीय विविधताएँ।
3. प्राकृतिक विविधताएँ - स्थलाकृतिक, संरचनात्मक, जलवायुविक, जल प्रवाह सम्बन्धी, जलीय आवश्यकताओं सम्बन्धी, मृदा सम्बन्धी तथा वनस्पतिक विविधताएँ।
4. आर्थिक विविधताएँ - कृषिगत, सिंचाई के साधनों सम्बन्धी, ऊर्जा के संसाधन सम्बन्धी, खनिज सम्बन्धी, औद्योगिक, आवागमन के साधनों से सम्बन्धित एवं संचार के साधनों से सम्बन्धित।
5. जनसांख्यिकीय विविधताएँ।
6. **विविधता में एकता** - भारत को **अनोखा प्राकृतिक उपहार**, **राष्ट्रीय एकता एवं गौरव का परिचायक।**

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. हमारे देश का प्राचीनतम स्थलाकृतिक स्वरूप है -
   (अ) थार का मरूस्थल
   (ब) तटीय मैदान
   (स) दक्षिण का पठार
   (द) हिमालय।
2. भारत में प्रचलित विभिन्न प्रकार की कृषि में प्राथमिक रूप है -
   (अ) स्थानान्तरित
   (ब) बागाती
   (स) व्यापारिक
   (द) मिश्रित।
3. भारत में शीतकालीन मानसून जिस दिशा में चलते हैं, वह है -
   (अ) स्थल से जल की ओर
   (ब) जल से स्थल की ओर
   (स) पश्चिम से पूर्व
   (द) दक्षिण से उत्तर।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न -

4. हमारे देश में पाई जाने वाली किसी अवशिष्ट श्रेणी का नाम बताइये।
5. भारत में नवीनतम निक्षेप जिन स्थलाकृतिक प्रदेशों में पाये जाते हैं उनके नाम बताइये।
6. हमारे देश में नवीन मोड़दार पर्वतीय क्रम से सम्बन्धित कौनसी श्रृंखला है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न -

7. हमारे देश में ऋतु के अनुसार पवनों की दिशा में विपरीत परिवर्तन क्यों होता है?
8. थार के मरूस्थल में ग्रीष्म ऋतु में न्यून वायुदाब क्यों विकसित होता है?
9. भारत में संचार के साधनों से सम्बन्धित क्या विविधताएँ पाई जाती हैं?

10. भारत में जलीय आवश्यकताओं की विविधता से क्या आशय है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

11. भारत में प्राकृतिक विविधताओं पर एक लेख लिखिये।
12. भारत में आर्थिक विविधताएँ बताते हुए उनकी एकता का स्पष्टीकरण दीजिये।

आंकिक प्रश्न –

13. जलीय आवश्यकताओं से सम्बन्धी विविधताओं को भारत के रूपरेखा मानचित्र में प्रदर्शित कीजिये।
14. भारत के रूपरेखा मानचित्र में स्थानान्तरित कृषि एवं ज्वार, बाजरा की कृषि के क्षेत्र प्रदर्शित कीजिये।

उत्तरमाला – 1. स 2. अ 3. अ

अध्याय -3

भारत : भौगोलिक विविधता में सांस्कृतिक एकता

(Bharat : Cultural Unity in Geographical Diversity)

पूर्व अध्यायों में हम भारत की भौगोलिक विविधताओं तथा सामाजिक व सांस्कृतिक विशिष्टताओं को जान चुके हैं। इन्हें जानने व समझने के बाद लगता है कि भारत भौगोलिक विविधताओं में कितना धनी है। इन भौगोलिक विविधताओं ने भारतीयों को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरह के क्रिया कलाप करने के लिए प्रेरित किया है। इस कारण विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न तरह के सांस्कृतिक भू-दृश्य दिखाई देते हैं। इस सांस्कृतिक विविधता ने इस देश को बहुआयामी संस्कृति का धनी बनाया है। यही कारण है कि हमारे देश का स्थान विश्व पटल पर सदैव महत्वपूर्ण रहा है।

भौगोलिक परिस्थितियाँ मानव शरीर की संरचना व उसकी सोच दोनों को प्रभावित करता है। भारत में रहने वाले लोग चाहे कन्याकुमारी के निकट के हों या कश्मीर में रहने वाले हों, भौगोलिक कारकों के प्रभाव के कारण उनके रंग-रूप, व कद-काठी में अन्तर है, लेकिन इस देश के प्रति उनका जुड़ाव सर्वत्र एकसा है। इसका कारण है इस देश के लोगों की सोच (दर्शन) अथवा संस्कृति।

सभ्यता-संस्कृति व भूगोल

किसी क्षेत्र की सभ्यता व संस्कृति के निर्माण में उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों का बहुत बड़ा योगदान होता है। किसी क्षेत्र में रहने वाले लोगों का खान-पान, रहन-सहन, यहाँ तक कि उनका दर्शन भी भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। सभ्यता का विकास मानव की भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप होता है जब कि संस्कृति का निर्माण मानव के आध्यात्मिक विकास के अनुरूप होता है।

भारत में धरातल, जलवायु, वनस्पति, मिट्टी व जल की उपलब्धता के आधार पर बहुत भिन्नताएँ हैं। इन भिन्नताओं ने भारत के सामाजिक ढाँचे को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग रूप दिया है, लेकिन इस देश की संस्कृति व सांस्कृतिक विरासतों ने सभी को सदैव एक सूत्र में पिरोया है।

संस्कृति का अर्थ है संस्कारयुक्त होना, परिष्कृत होना, परिमार्जित होना, परिस्थितियों के अनुसार विवेक का उपयोग कर स्वयं को ढालना तथा ऐसे कार्य व विचार अपनाना जो सृजनात्मक हो, जो स्वयं व दूसरों के लिए जीवनदायी हों।

किसी क्षेत्र की संस्कृति के निर्माण में उस क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। यह प्रभाव खान-पान, चिकित्सा पद्धति, रहन-सहन आदि पर प्रत्यक्ष रूप से एवं मेलों, त्यौहारों, भाषा, साहित्य, धर्म व दर्शन पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। इस प्रभाव को अलग-अलग क्षेत्रों में देखा व अनुभव किया जा सकता है। भूगोल का प्रभाव सभ्यता व संस्कृति के विभिन्न तत्वों पर किस तरह से पड़ता है इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है -

1. खान-पान - भारत के खान-पान में भूगोल का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भारत में विभिन्न तरह की जलवायु, मिट्टियाँ व अन्य परिस्थितियाँ हैं। इसी के अनुरूप भारत में अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग कृषि उत्पाद पैदा होते हैं, जैसे - खाद्यान्नों में जहाँ उष्ण व नम जलवायु है एवं पर्याप्त जल उपलब्ध है वहाँ चावल, शीतोष्ण क्षेत्रों में गेहूँ, जहाँ जल की कमी है वहाँ बाजरा व जहाँ जल सामान्यत: उपलब्ध है वहाँ मक्का व ज्वार की कृषि की जाती है।

खाद्यान्नों की यह विविधता भौगोलिक विविधता की देन है, लेकिन सांस्कृतिक रूप से परिष्कृत होना इस बात का प्रमाण है कि भारत की पहचान शाकाहारी समाज के रूप में है। जो इस देश के **जीयो व जीने दो** के विचारों के अनुरूप है। शाकाहार को अपनाने वाले लोग देश के सभी क्षेत्रों में रहते हैं। विश्व खाद्य संगठन ने भी शाकाहार को सर्वोत्तम भोजन पद्धति माना है। अब पाश्चात्य समाज भी इसे अपनाने की ओर अग्रसर है। भारतीय भोजन में दूध को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इसमें भी

गाय के दूध को प्रथम स्थान पर माना गया है। यही कारण है कि पूरे देश में गाय को माँ का स्थान प्राप्त है।

शिक्षा व संचार के साधनों ने इस सांस्कृतिक एकता को ओर दृढ़ता प्रदान की है जैसे – पंजाबी भोजन, गुजराती भोजन, राजस्थानी भोजन, बंगाली भोजन, दक्षिणी भारतीय भोजन व अन्य कई तरह के भोजन आज क्षेत्र विशेष की पहचान तो हैं ही इसके साथ ही भारत के किसी भी कोने में होने वाले सामाजिक व सांस्कृतिक समारोहों में इनका मिला–जुला रूप खाने–पीने की टेबलों पर नजर आता है। अपने रसास्वादन के साथ–साथ यह भोजन व्यक्तियों के दिलों को और निकट लाता है।

2. चिकित्सा – भारत में कई तरह की चिकित्सा पद्धति अस्तित्व में है – आयुर्वेदिक, यूनानी, ऐलोपेथी, होम्योपेथी आदि। चिकित्सकीय दृष्टिकोण से देखा जाये तो ज्ञात होता है कि भारत की आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति सदियों पुरानी है व प्रामाणिक भी है। विशाल जैव विविधता के भण्डारों के कारण पूरे भारत में जड़ी–बूटियाँ उत्पन्न होती हैं। जिस क्षेत्र में जो जड़ी–बूटी पैदा होती है उसे उस क्षेत्र में तो महत्व प्राप्त है ही उसे देश के अन्य भागों में भी भेजकर उसका उपयोग किया जाता है। इसीलिये भारतीय संस्कृति में वृक्षों को देवता का रूप माना गया है। वृक्ष लगाना व उनकी रक्षा करना पुण्य का कार्य माना गया है।

आयुर्वेद ने पूरे देश को जहाँ सांस्कृतिक एकता प्रदान की है वहीं अब विश्व समाज भी इसके महत्व को मान गया है। विविध तरह की जड़ी–बूटियों के लिए भारत विश्व में प्रसिद्ध है। कई असाध्य रोगों के इलाज भारतीय जड़ी–बूटियों द्वारा किये जा सकते हैं, यह तथ्य कई अन्तर्राष्ट्रीय डॉक्टर / चिकित्सक भी स्वीकार कर चुके हैं। अतः कई देश भारतीय जड़ी–बूटियों को पेटेन्ट कानून के अन्तर्गत लाकर उन पर अपना अधिकार जमाने का प्रयास कर रहे हैं जबकि आयुर्वेद के द्वारा भारत हजारों वर्षों से इन वनस्पतियों का उपयोग कर रहा है व इनके उपयोग को प्रतिपादित करता आ रहा है। भारतीय संस्कृति में चिकित्सा को सेवा का रूप माना गया है न कि व्यापार का। भारतीय संस्कृति के अनुसार इस क्षेत्र में किये गये सेवा व शोध कार्यों का प्रतिफल सदैव समाज को मानव सेवा के रूप में मिलना चाहिए न कि व्यापार के रूप में चिकित्सा कार्य किया जाना चाहिये।

3. रहन–सहन – यही बात रहन–सहन में दृष्टिगोचर होती है। भारतीय धोती कुर्ता, पंजाबी सलवार सूट, मुस्लिम भाइयों का पठानी सूट, लखनवी कुर्ता पायजामा, राजस्थानी घाघरा लूगड़ी, गुजराती लहंगा चुनरी आदि आज देश के प्रत्येक कोने में पहनी जाती है। किसी भी समारोह में इस विविधता को एक साथ देखा जा सकता है। भारतीय पुरूष सामान्यतः धोती–कुर्ता व कुर्ता–पायजामा को अपनी प्रमुख परम्परागत वेश–भूषा मानते हैं जबकि साड़ी स्त्रियों की सदियों से परम्परागत वेश–भूषा है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ अपनी संस्कृति के अनुसार साड़ी पहनती हैं। बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, केरल आदि राज्यों में साड़ी पहनने का अपना एक अलग तरीका है। महिलाओं के साड़ी पहनने के तरीके को देखकर ही पता लग जाता है कि वे किस क्षेत्र विशेष की हैं। अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर साड़ी को भारतीय महिला के प्रमुख पहनावे के रूप में पहचाना जाता है।

भौगोलिक वातावरण का प्रभाव पहनावे पर किस तरह पड़ता है इसे विशेष रूप से दक्षिण भारत की वेश–भूषा को देखकर समझा जा सकता है। दक्षिण भारत में दक्षिणी कर्नाटक, केरल व तमिलनाडु में वर्ष के अधिकांश माहों में वर्षा का मौसम रहता है, धरातल पठारी है व छोटी–छोटी नदियों व नालों का जाल सा बिछा है। अतः आवागमन के समय वहाँ के नागरिकों को सदैव जल भरे मार्गों का सामना करना पड़ता है, इस कारण वहाँ पहनावे के रूप में लुंगी को प्रमुखता प्राप्त है और व्यक्ति जूतों की जगह चप्पल पहनता है।

अपनी सांस्कृतिक एकता के अंकुरण छोटे–छोटे बच्चों में बाल्यावस्था में ही उत्पन्न हो जाते हैं, जब वह विभिन्न तरह के परिधान पहनकर इस देश को पहचानने लगते हैं। अपने विद्यालय के समारोहों में विभिन्न क्षेत्रों की वेश–भूषा पहन कर सांस्कृतिक समारोह में प्रस्तुतियाँ देते हैं व स्वयं को एकता के सूत्र में मनकों की तरह पिरो देते हैं।

रीति–रिवाजों के दृष्टिकोण से चाहे जन्म संस्कार हों या विवाह संस्कार आदि, पूरे भारत में इन संस्कारों व रिवाजों में समानता दिखाई देती है। समाज में कन्या को विशेष आदर प्राप्त है। कन्यादान महादान माना जाता है। क्योंकि कन्या भविष्य में समाज में बहन, पत्नी, माँ के रूप में अपनी सृजनात्मक भूमिका निभाती है। स्त्री को भारतीय समाज में कितना महत्व प्राप्त है यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज के आदर्शों में सीता–राम, राधा–कृष्ण, लक्ष्मी–नारायण आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके उच्चारणों में भी नारी का नाम पहले लिया जाता है।

4. मेले–त्यौहार – मेले, त्यौहार व लोक कलाएँ भारतीय संस्कृति की ऐसी विशेषताएँ हैं जो सभी को अभिभूत कर देती हैं। भारतीय सदैव उमंग व ऊर्जा से ओत–प्रोत होते हैं। मेले व त्यौहारों में जब भिन्न–भिन्न पंथों व सम्प्रदायों के लोग मिलते हैं मानों भिन्न–भिन्न सरिताओं में बह–बहकर आने वाला जल समुद्र में समा रहा है व एकाकार हो रहा है।

भारत में सभी त्यौहार सभी धर्मों के लोगों द्वारा मिलजुल कर मनाये जाते हैं चाहे वह हिन्दुओं के दीपावली, होली व दशहरा हो, मुस्लिमों के ईदुलफितर, ईदुल जुहा, बारावफात हो, ईसाइयों का क्रिसमस हो, पंजाबियों का लोहड़ी या वैशाखी हो या दक्षिण भारतीयों का पोंगल हो।

इसी तरह सभी महापुरूषों के जन्मदिन व विभिन्न जयन्तियाँ भी सभी वर्गों के लोगों द्वारा मिलकर मनाई जाती हैं। नई फसल के आगमन पर सभी क्षेत्रों में उमंग का वातावरण होता है फिर चाहे वह उत्तर शक्तियों को देवी देवताओं का रूप दिया गया है। नदियों को जीवनदायिनी माना है (क्योंकि सभ्यता का विकास नदी घाटियों में ही हुआ है) अतः इन्हें माँ का रूप माना है। इसीलिये भारतीय संस्कृति में

चित्र 3.1 – भारत : पर्यटन एवं सांस्कृतिक केन्द्र

गंगा, जमुना, नर्मदा, शिप्रा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों का विशिष्ट स्थान है। इन नदियों के किनारे लगने वाले मेले व मनाये जाने वाले उत्सव इसके प्रमाण हैं। अपने जीवन में प्राकृतिक शक्तियों के सकारात्मक प्रभाव को अनुभव कर भारतीय जनमानस अप्रत्यक्ष रूप में सकारात्मक सोच का जीवन जीना सीख गया है। इस कारण वह आस्तिक भी है व सात्विक भी है। अत: उसमें उदारता, सहनशीलता,

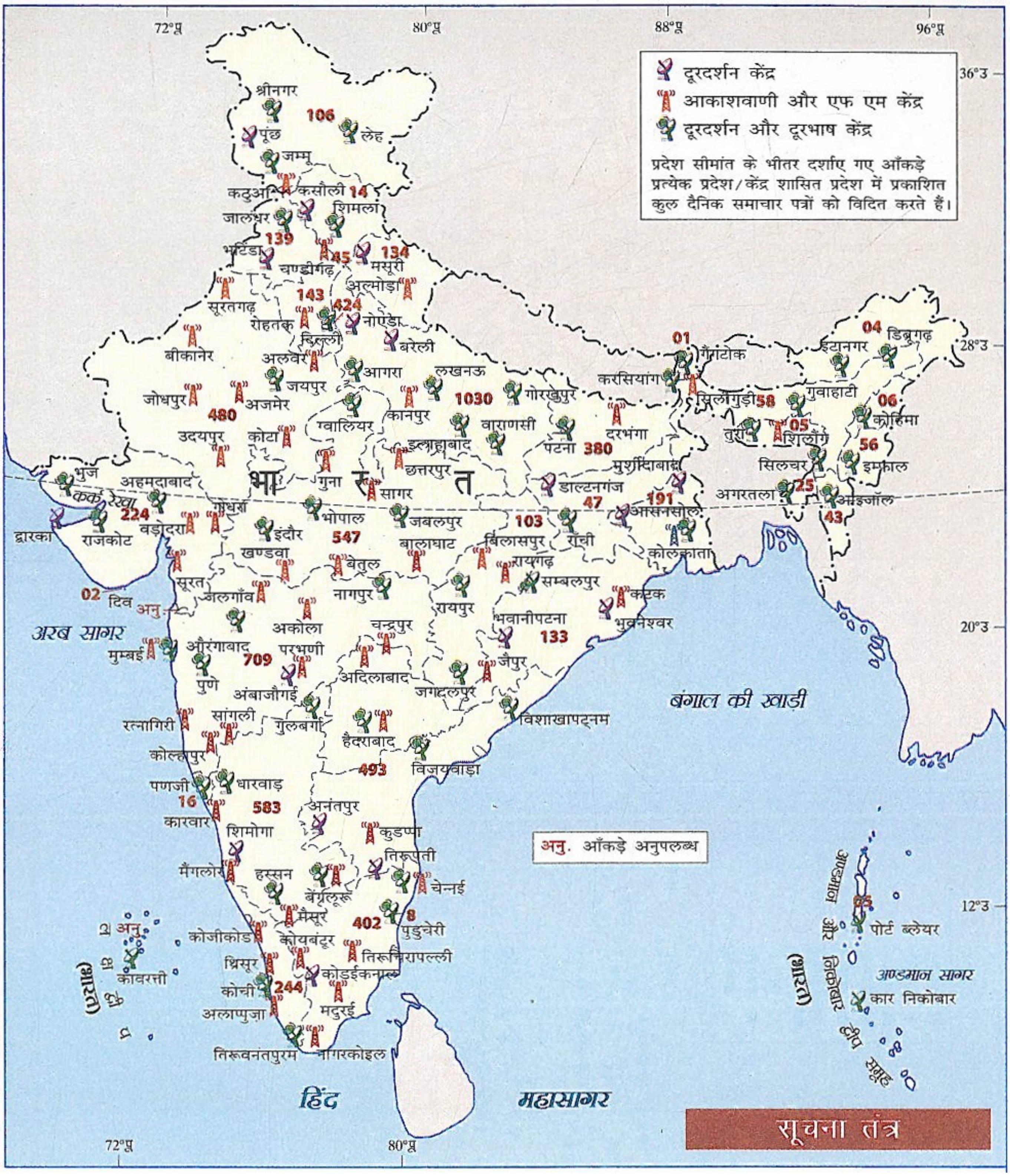

चित्र 3.2 – भारत : सूचना तंत्र

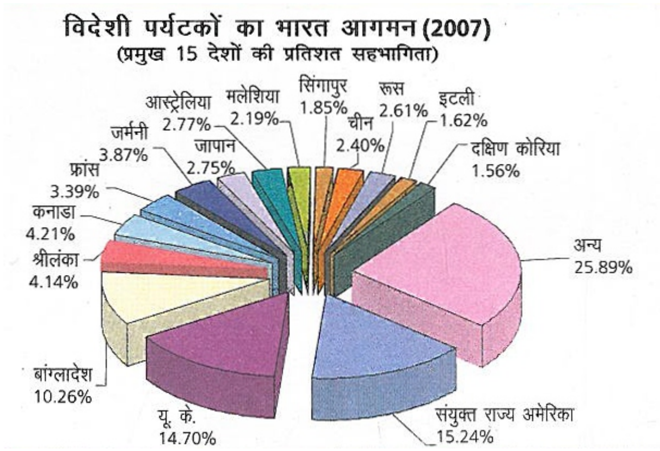

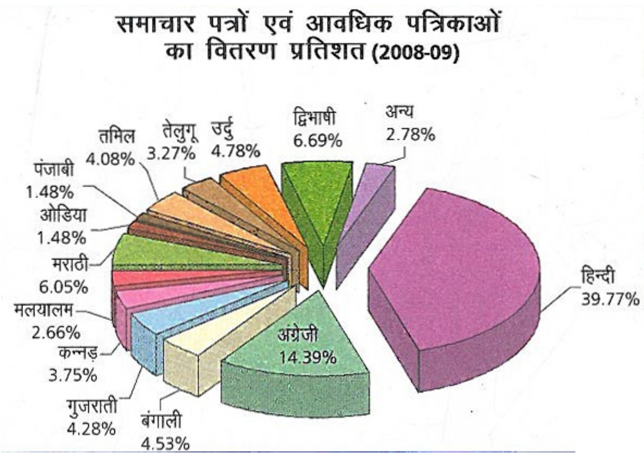

चित्र 3.3 – भारत : पर्यटन व साहित्य

समन्वयवादिता एवं ग्रहणशीलता आदि गुणों का विकास होता गया है।

भारत की सांस्कृतिक एकता में तीर्थ स्थलों का महत्वपूर्ण योगदान है। जो स्थल किसी चिंतक, मनीषी व महापुरूष के जन्म, निर्वाण या अन्य किसी कारण से जुड़ गये हैं, उन्हें पुण्य स्थल या पवित्र स्थल माना गया है। यही स्थान लोगों के जुड़ाव के साथ धीरे–धीरे तीर्थ स्थल बन गये हैं।

इस तरह के तीर्थ स्थल नदियों के किनारे, पर्वतीय क्षेत्रों, समुद्र तटों, गुफाओं व सरोवरों के किनारे बने हुए हैं। देश के चारों कोनों से तीर्थ यात्री वर्ष पर्यन्त यहाँ आते रहते हैं व देश की सांस्कृतिक एकता के ताने बाने को मजबूत करते हैं। भारत के कुछ प्रमुख तीर्थ स्थल निम्नलिखित हैं, इनमें सभी धर्मों के तीर्थ स्थल सम्मिलित हैं।

सप्त सिन्धु (सात पवित्र नदियाँ)– गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, सिन्धु व कावेरी।

पाँच प्रमुख सरोवर – मानसरोवर (हिमालय), कुरूक्षेत्र (पंजाब), गल्ताजी व पुष्कर (राजस्थान) तथा पम्पा सरोवर (दक्षिण भारत)।

प्रमुख गुफाएँ – अजन्ता–एलोरा व एलिफैन्टा (महाराष्ट्र), बाघ (मध्य प्रदेश), उदयगिरि, खान्डगिरि (उड़ीसा)।

प्रमुख तीर्थ नगर – वाराणसी, हरिद्वार, अयोध्या, प्रयाग, अजमेर (पुष्कर), उज्जैन, मथुरा, नासिक, अमृतसर, पटना, द्वारका, सारनाथ, नालंदा, सांची आदि।

पर्वतीय क्षेत्रों के तीर्थ स्थल – कैलाश, बद्रीनाथ, केदारनाथ, जमनोत्री, गंगोत्री, पावागढ़, पालिताणा, सम्मेदशिखर, गिरिनार पर्वत, पावापुरी, देलवाड़ा, रणकपुर आदि।

शंकराचार्य के चार मठ – ज्योतिर्मठ (हिमालय), श्रृंगेरी मठ (मैसूर), शारदा मठ (द्वारका) तथा गोवर्धन मठ (पुरी)।

चार धाम – बद्रीनाथ, द्वारकापुरी, जगन्नाथपुरी व रामेश्वरम्।

तीर्थ स्थल भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रमुख ताने बाने हैं। चार मठ चारों दिशाओं की मजबूती के प्रतीक हैं। चार धाम स्थापित होने का सबसे बड़ा लाभ यह रहा है कि देश के सभी क्षेत्रों से लोग यहाँ वर्षभर आते रहते हैं। लोगों का यहाँ एकत्रित होते रहना प्रत्यक्ष रूप से सर्वोच्च सत्ता के दर्शन व उसके अस्तित्व के प्रति लोगों का समर्पण भाव प्रदर्शित करता है जबकि अप्रत्यक्ष रूप से देश अपनी एकीकृत सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करता है।

नदियों के किनारे, पर्वतीय क्षेत्रों व गुफाओं में स्थापित तीर्थ स्थल समाज को प्रकृति के समीप ले जाते हैं। चारों ओर बिखरी प्राकृतिक छटा से मानव के मन में प्रकृति व उसको बनाने वाले के बारे में सकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं। यही विचार मानव को जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने में सहायक होते हैं, जैसे – नदियाँ – नदियों के बारे में व्यक्ति सोचता है कि यह मेरी नदी है। यह विचार उसके मन में तब तक रहता है जब तक वह नदी को अपने गाँव अथवा नगर के समीप देखता है। जब वह तीर्थ स्थल के रूप में उसी नदी को कई जगह महत्वपूर्ण पाता है तो उसके मन में विचार आता है हमारी नदी अथवा हमारी नदियाँ। ये ही नदियाँ जब कई क्षेत्रों व राज्यों में से होकर गुजरती हैं तो देश की नदियाँ बन जाती हैं। यही विचार व्यक्ति को राष्ट्र के प्रति समर्पित होने की सोच प्रदान करता है। व्यक्ति की सोच मैं की जगह हम में बदल जाती है व सभी जगह देश प्रमुख हो जाता है, जैसे – मेरी नदी से हमारी नदी व मेरा देश की जगह हमारा देश की भावना बलवती होती है। यही भावना पर्वतों के लिये भी समान रूप से उत्पन्न होती है।

यही भाव जो मैं की जगह हम के रूप में अंकुरित होता है यही भारतीय संस्कृति की एकता का भाव है। इस भाव के मजबूत होते रहने पर नदी जल विवाद जैसे विषय स्वतः समाप्त हो जाते हैं। कारण देश की नदियों का जल देश के सभी नागरिकों के विकास में सहायक है। जैसे माँ अपने सभी पुत्रों का लालन पालन समान

दृष्टि से और प्यार से करती है, उसी प्रकार नदियाँ जो हमारी माँ के रूप में है उनका आशीर्वाद सभी को समान रूप से मिले यह भावना बलवती होती है।

अन्त में कहा जा सकता है कि भारत अपने विशाल आकर एवं विशिष्ट अवस्थिति के कारण भौगोलिक विविधताओं का खजाना समेटे हुए है जिस कारण यहाँ जन-जीवन में विविधता दिखाई देती है, लेकिन अपनी विशिष्ट संस्कृति के कारण भारत एक राष्ट्र के रूप में विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान सदियों से बनाये हुए है। अपनी सभ्यता-संस्कृति व दर्शन के कारण भारत को विश्व में गुरू का स्थान प्राप्त है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भूगोल मानव शरीर की बनावट व उसकी सोच दोनों को प्रभावित करता है।
2. किसी क्षेत्र की सभ्यता व संस्कृति के निर्माण में उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों का बहुत बड़ा योगदान होता है।
3. संस्कृति का अर्थ है संस्कारयुक्त होना, परिमार्जित होना तथा ऐसे कार्य करना व विचार अपनाना जो स्वयं व दूसरों के लिए जीवनदायी हो।
4. भारत की पहचान शाकाहारी समाज के रूप में है।
5. भारत की आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति सदियों पुरानी एवं प्रामाणिक है।
6. विविध तरह की जड़ी बूटियों के लिए भारत विश्व में प्रसिद्ध है।
7. भारत में धोती-कुर्ता व कुर्ता-पायजामा पुरूषों की व साड़ी स्त्रियों की परम्परागत वेशभूषा है।
8. बैशाखी पंजाबियों का प्रमुख त्यौहार है।
9. संस्कृत भाषा के शब्द भारत की लगभग सभी भाषाओं में पाये जाते हैं।
10. वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता आदि भारतीय संस्कृति के प्रमुख ग्रन्थ है।
11. भारतीय संस्कृति में नदियों को माता के रूप में माना व पूजा गया है।
12. चार मठ व चार धाम देश की सांस्कृतिक एकता के प्रतीक रहे हैं।
13. तीर्थ स्थलों ने भारत, भारतीयता व भारतीय संस्कृति को अप्रत्यक्ष रूप से एक सूत्र में पिरोया है।
14. भारतीय संस्कृति में वृक्षों को देवता का रूप माना गया है। वृक्ष लगाना व उनकी रक्षा करना पुण्य का कार्य माना गया है।
15. अपनी सहिष्णुता, सहनशीलता, उदारता, समन्वयवादिता एवं आध्यात्मिक ज्ञान के कारण भारत को विश्व गुरू माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. सप्त सिन्धु में जितनी नदियाँ शामिल हैं, वे हैं -
   (अ) सत्रह (ब) सौ
   (स) ग्यारह (द) सात।
2. भारत की मूल चिकित्सा पद्धति है -
   (अ) एलोपेथी (ब) होम्योपेथी
   (स) आयुर्वेदिक (द) यूनानी।
3. बैशाखी जिस राज्य का प्रमुख त्यौहार है, वह है -
   (अ) मध्य प्रदेश (ब) बिहार
   (स) आन्ध्र प्रदेश (द) पंजाब।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न -

4. संस्कृति का क्या अर्थ है?
5. वेद-पुराण किस भाषा में लिखे गये हैं?
6. शंकराचार्य के चार मठ कौन-कौन से हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न -

7. तीर्थ स्थल किसे कहते हैं व कैसे बनते हैं?
8. भूगोल खान-पान को कैसे प्रभावित करता है?
9. सप्त सिन्धु तथा पाँच सरोवरों के नाम बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न -

10. ''भौगोलिक विविधता में सांस्कृतिक एकता'' पर निबन्ध लिखिए।
11. सांस्कृतिक एकता में तीर्थ स्थलों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला - 1.द 2. स 3. द

इकाई – 2

अध्याय –4

भारत : संरचना, उच्चावच व स्थलाकृतिक प्रदेश
(Bharat : Structure, Relief & Physiographic Regions)

संरचना (Structure)

भारत के उच्चावच तथा स्थलाकृतिक स्वरूपों को समझने से पूर्व यहाँ की भूगर्भिक संरचना का ज्ञान होना आवश्यक है। हमारे देश के विभिन्न भागों की शैलें भिन्न-भिन्न कल्पों और युगों में निर्मित हुई हैं। प्रत्येक देश के उच्चावच और स्थलाकृतिक स्वरूप वहाँ की भूगर्भिक संरचना पर काफी निर्भर करते हैं। यही नहीं, खनिज संसाधन, मृदा संसाधन, प्राकृतिक वनस्पति, भूमिगत जल संसाधन आदि भी भूगर्भिक संरचना पर निर्भर करते हैं। भारत का भूगर्भिक इतिहास आद्य कल्प (Archean Era) से लेकर वर्तमान के नवीन नवजीवी कल्प (Quarternary Era) तक विस्तृत है। अत: इसमें कई क्रमों (Systems) की शैलें पाई जाती हैं। इन्हें मुख्यत: चार वर्गों में बांटा जाता है –

1. आद्य कल्प (Archean Era)

इस कल्प की शैलों को दो प्रमुख उपभागों में विभक्त किया जाता है –

आद्यक्रम की शैलें (Archean System) – इस क्रम की शैलें अत्यन्त प्राचीन व रवेदार शैलें हैं जिनमें जीवावशेषों का अभाव पाया जाता है। इस क्रम की शैलों के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं – (क) बंगाल नाइस, (ख) बुन्देलखण्ड नाइस तथा (ग) नीलगिरि नाइस।

धारवाड़ क्रम की शैलें (Dharwar System) – आद्य क्रम की शैलों के ऊपर धारवाड़ क्रम की शैलें मिलती हैं। कुछ स्थानों में इन दोनों क्रमों की शैलें पास-पास भी पाई जाती हैं। आद्यक्रम की शैलें बनने के बाद उनका कायान्तरण तथा अपरदन होता रहा। अपरदित पदार्थों के निक्षेप से तलछट शैलों की रचना हुई। यही धारवाड़ क्रम की प्राचीनतम तलछट शैलें हैं। दीर्घ भूगर्भिक इतिहास में इनका भी कायान्तरण हुआ है। ये शैलें मुख्यत: (क) मैसूर-धारवाड़-बल्लारी क्षेत्र, (ख) छोटा नागपुर के पठारी क्षेत्र, (ग) राजस्थान में अरावली क्षेत्र, (घ) पंजाब तथा (ण) उपहिमालय के कुछ क्षेत्रों में मिलती हैं। इस क्रम की शैलों में न केवल धात्विक खनिज बल्कि संगमरमर जैसी कायान्तरित शैलें भी पाई जाती हैं।

2. पुराण कल्प (Purana Era)

इस कल्प की शैलों को भी दो उपभागों में बांटा गया है।

कुडप्पा क्रम की शैलें (Cudappah System) – आद्यक्रम तथा धारवाड़ क्रम की शैलों के अपरदित पदार्थों का निक्षिप्त रूप कालान्तर में परतदार शैलों का रूप धारण करता गया। इनका काफी अंश कायान्तरण की लम्बी प्रक्रिया से गुजर चुका है। इनको कुडप्पा क्रम की संज्ञा दी गई है। इनमें स्लेट, क्वार्ट्ज़ाइट तथा चूने के पत्थर के जमाव मिलते हैं। इस क्रम की शैलें अधिकांशत: कृष्णा व पेन्नर नदियों के मध्य स्थित पर्वतीय श्रेणी, कुडप्पा (पापकनी नदी) की घाटी, नल्लामलाई तथा वेनीकोण्डा पर्वतश्रेणियों, गोदावरी घाटी, दिल्ली क्रम तथा कश्मीर के कई क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

विन्ध्ययन क्रम की शैलें (Vindhayayan System) – इस क्रम की अधिकांश शैलें विन्ध्याचल पर्वत के सहारे स्थित हैं। इस क्रम की शैलें कुडप्पा क्रम की शैलों के ऊपर मिलती हैं। इनका विस्तार बिहार के सासाराम एवं रोहतास क्षेत्रों से लेकर अरावली में चित्तौड़गढ़ से होते हुए विन्ध्याचल पर्वतों तक पाया जाता है। इन शैलों में बालुका पत्थर, शेल, क्वार्ट्ज़ाइट व चूना पत्थर मिलते हैं। इसी क्रम में पन्ना, अनन्तपुर एवं गोलकुण्डा के हीरे भी प्राप्त होते हैं। इस क्रम में विभिन्न रंगों के बालुका पत्थर तथा सीमेन्ट बनाने के काम में आने वाला चूना पत्थर मिलता है।

3. द्रविड़ कल्प (Dravid Era)

इस कल्प में गौण्डवाना क्रम की शैलें पाई जाती हैं। इनका विस्तार अधिकांशत: दामोदर घाटी, महानदी घाटी, गोदावरी घाटी, सतपुड़ा श्रेणी, राजमहल पहाड़ी, कच्छ, काठियावाड़, पश्चिमी राजस्थान, कश्मीर, स्पीति आदि में है। इन शैलों का अधिकांश विस्तार

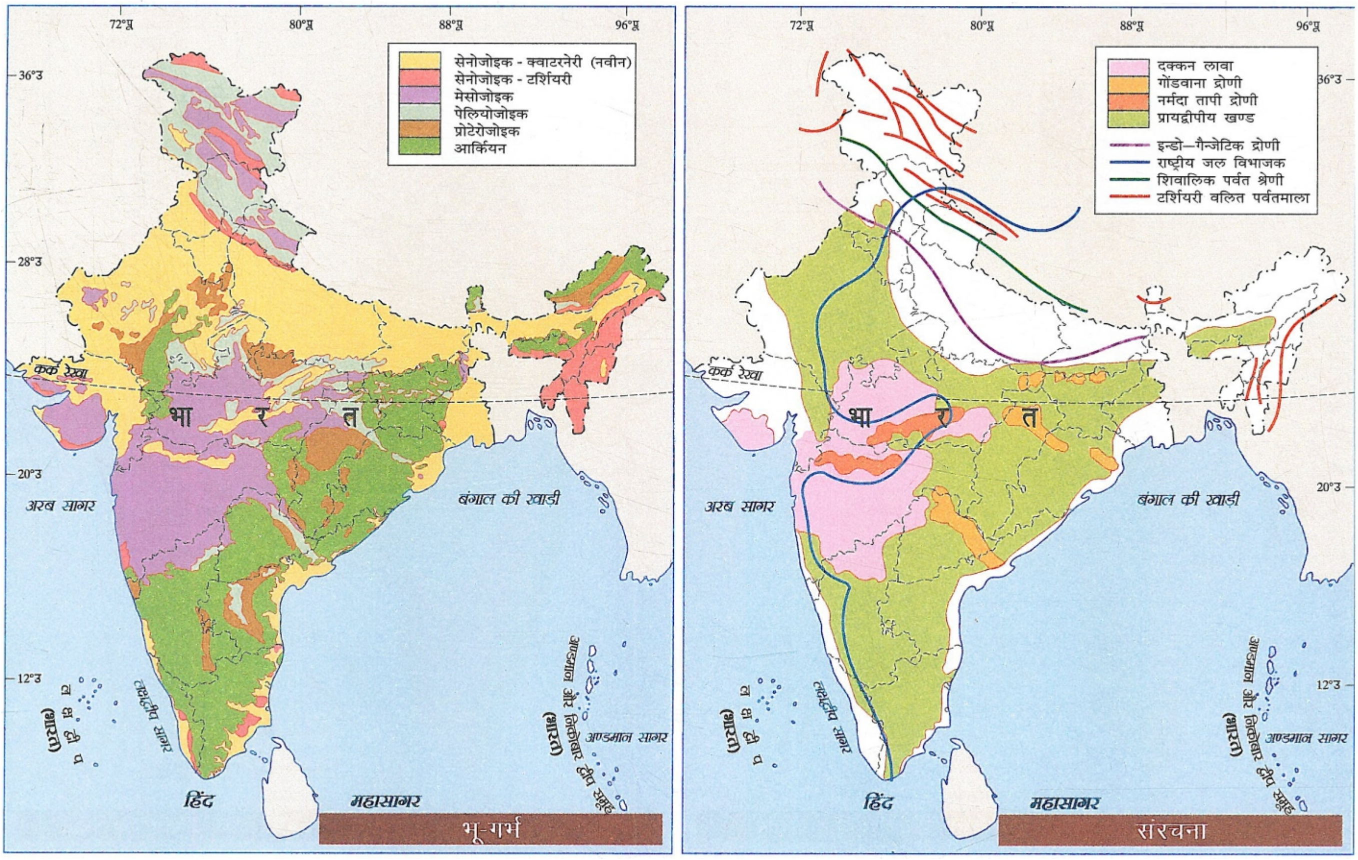

चित्र 4.1 – भारत : भूगर्भिक संरचना

दक्षिणी भारत में है।

4. आर्य कल्प (Aryan Era)

इस कल्प की शैलों का निर्माण कार्बोनिफैरस युग से प्रारम्भ हुआ। अत: इन शैलों का कार्बनिक खनिज अर्थात कोयला, खनिज तेल व प्राकृतिक गैस की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस क्रम की शैलें नवीनतम शैलें हैं।

उच्चावच (Relief)

यहाँ प्राकृतिक स्वरूपों की विविधता पाई जाती है। एक ओर इस विविधता के फलस्वरूप प्राकृतिक नीरसता न होकर सजीवता रहती है, वहीं दूसरी ओर इसके कारण हमारे देश के लोगों, उनकी जीवन शैली, भोजन, वेशभूषा, भाषा, रीति-रिवाज, संसाधनों की उपलब्धि, विकास के स्तर आदि में आकर्षक किन्तु समायोज्य भिन्नताएँ पाई जाती है। उच्चावच की विविधता के कारण ही जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, जीव-जन्तुओं आदि की भी भिन्नताएँ उत्पन्न हुई हैं।

भारत में उच्चावच की विषमता के बावजूद अधिकांश क्षेत्र मानवोपयोगी हैं। हमारे देश की कुल भूमि का लगभग 33.4 प्रतिशत भाग समुद्रतल से 200 मीटर से कम ऊंचा है। देश के कुल क्षेत्रफल के

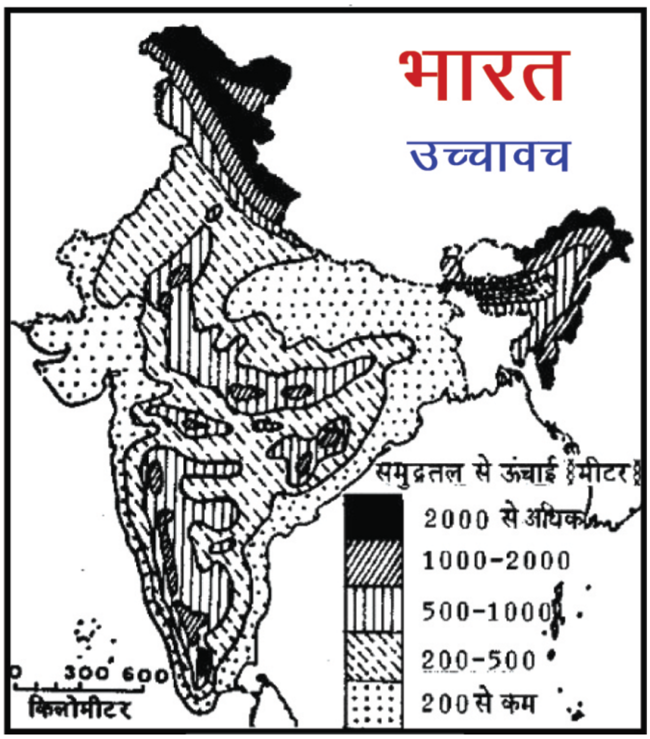

चित्र 4.2 – भारत : उच्चावच

हमारे देश की उत्तरी सीमा पर हिमालय पर्वत पश्चिम से पूर्व की ओर एक वृहत् चाप के रूप में 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। यह क्षेत्र लगभग 2400 किलोमीटर लम्बाई में तथा 250 से 400 किलोमीटर की चौड़ाई में विस्तृत है। यह विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत है। हिमालय शब्द का अर्थ **हिम का घर** है। औसतन 5000 मीटर से अधिक ऊँचे उठे भाग सदा हिमाच्छादित रहते हैं। वैसे हिमालय के पश्चिमी भाग में हिमरेखा की ऊँचाई 5700 मीटर तथा पूर्वी भाग में 4200 मीटर है। इन नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियों की चौड़ाई पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ती जाती है, लेकिन ऊँचाई कम होती जाती है। यह पर्वत श्रृंखला कई श्रेणियों से बनी है। इन श्रेणियों के मध्य में पठार तथा घाटियाँ मिलती हैं। इन श्रेणियों का ढाल भारत की ओर तीव्र तथा तिब्बत की ओर धीमा है। हिमालय के पूर्वी भाग उत्तर प्रदेश व पश्चिमी बंगाल के मैदान से एकदम ऊँचे उठे हुए हैं। अत: एवरैस्ट तथा कंचनजंघा चोटियाँ इस मैदान से दृष्टिगोचर होती हैं तथा कम दूरी पर ही स्थित हैं। किन्तु पश्चिमी हिमालय मैदान से धीरे-धीरे ऊपर उठा हुआ हैं, अत: पर्वतीय चोटियाँ काफी दूरी पर स्थित हैं तथा नंगा पर्वत, बद्रीनाथ, नन्दादेवी आदि चोटियाँ मैदान से दिखाई नहीं देती हैं।

हिमालय की उत्पत्ति

नवीन मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति के विषय में कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं, किन्तु भूसंनतियों (Geosynclines) से नवीन मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति का मत अधिक मान्य है। यही बात हिमालय की उत्पत्ति पर भी लागू होती है। हॉग (Haug), हॉल (Hall), डाना (Dana), स्टीअर्स (Steers) आदि विद्वानों ने लम्बे, संकड़े, छिछले व कमजोर तली वाले सागरीय भागों को भूसंनति कहा है। करोड़ों वर्ष पूर्व विश्व के सभी महाद्वीप एक बड़े स्थलखण्ड के रूप में थे, जिसे **पैन्जिया** नाम दिया गया है। इसका उत्तरी भाग **लॉरेशिया** तथा दक्षिणी भाग **गोंडवानालैण्ड** के नाम से जाना जाता है। यूरेशिया वाले भाग को **अंगारालैण्ड** कहा जाता है। आज जहाँ हिमालय है वहाँ अंगारालैण्ड व गौंडवानालैण्ड के मध्य **टिथिस सागर (Tethys Sea)** नामक विशाल भूसंनति थी। इसमें दोनों ओर से बहकर आने वाली नदियों द्वारा तलछट जमा होती रही। यद्यपि भूसंनति छिछली होती है, किन्तु निक्षिप्त तलछट के दबाव से इसकी तली धंसती रहती है तथा तलछट जमा होती रहती है। इस प्रकार टिथिस सागर में हजारों फीट की गहराई तक तलछट जमा होती रही। तत्पश्चात विभिन्न कारणों से इस तलछट पर दबाव पड़ने से इसमें वलन या मोड़ पड़े, जिसके परिणामस्वरूप हिमालय की उत्पत्ति हुई। दबाव पड़ने की दिशा व कारणों के बारे में काफी मत भिन्नताएँ हैं।

कोबर (Kober) का मानना है कि भूसंनति में निक्षिप्त तलछट पर दोनों ओर से दबाव पड़ने के कारण मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति होती है। दबाव डालने वाले दोनों ओर के इन प्रदेशों को उन्होंने **अग्र प्रदेश (Foreland)** कहा। अग्र प्रदेशों के दबाव के कारण इनके तटीय क्षेत्रों में वलन पड़ते हैं, तथा मध्यवर्ती भाग साधारणत: इस वलन-प्रक्रिया से अछूता रहने के कारण समतल उच्च भूमि के रूप में रह जाता है, जिसे कोबर **मध्य पिण्ड (Median Mass)** कहते हैं। उनके अनुसार हिमालय के संदर्भ में अंगारालैण्ड व गोण्डवानालैण्ड दोनों ही अग्र प्रदेश हैं तथा तिब्बत का पठार एक मध्य पिण्ड है, जैसा कि चित्र संख्या 4.5 में दर्शाया गया है। यद्यपि दोनों ओर से दबाव पड़ने की प्रक्रिया को डेली (Daly) व होम्स (Holmes) ने भी स्वीकार किया है, किन्तु इसके लिये उन्होंने भिन्न-भिन्न कारण बताये हैं। डेली ने मोड़दार पर्वतों के निर्माण के लिये दोनों ओर से महाद्वीपीय स्खलन (Continental Sliding) को उत्तरदायी बताया है। होम्स ने दो अग्र प्रदेशों के बीच भूसंनति बनने, उसके निरन्तर गहरा होने तथा उसमें जमा हुई तलछट पर दोनों ओर से महाद्वीपीय दबाव पड़ने के लिये पृथ्वी के अन्दर उत्पन्न होने वाली संवाहनिक तरंगों (Convectional currents) को उत्तरदायी माना है।

कुछ विद्वानों का मत इससे भिन्न है। वे महाद्वीपीय दबाव एक ही दिशा से मानते हैं। इन विद्वानों ने दबाव डालने वाले या धक्का देने वाले महाद्वीपीय पिण्ड को **पृष्ठ प्रदेश (Hinterland)** तथा स्थिर भूभाग अर्थात् प्रतिरोधक महाद्वीपीय पिण्ड को **अग्र प्रदेश (Foreland)** कहा, जैसा कि चित्र संख्या 4.5 में दर्शाया गया है। किन्तु इन विद्वानों में भी वलन के लिये उत्तरदायी धक्का आने की दिशा के बारे में मत भिन्नता है। कुछ विद्वान धक्का आने की दिशा उत्तर से (अंगारालैण्ड की ओर से) मानते हैं, जबकि कुछ अन्य विद्वान अंगारालैण्ड को स्थिर मानते हुए दक्षिण की ओर से (गोण्डवानालैण्ड से) दबाव पड़ने में विश्वास रखते हैं। स्वैस (Suess) सिद्धान्तत: मानते हैं कि पर्वतीय वलन के लिये एक ही दिशा से दबाव पर्याप्त है, जिसे पृष्ठ प्रदेश कहा गया है, तथा दूसरी ओर महाद्वीपीय पिण्ड (अग्र प्रदेश) इस दबाव का प्रतिरोध करता है। आरगण्ड (Argand) व वैगनर (Wegner) की मान्यता है कि गोण्डवानालैण्ड का कुछ भाग टिथिस सागर की ओर प्रवाहित हुआ तथा अंगारालैण्ड स्थिर रहा (चित्र संख्या 4.4)। ऑस्ट्रेलियाई भूगर्भशास्त्रियों पॉवेल व कॉनैघन (Powell & Conaghan) ने भी बताया कि टिथिस सागर की ओर खिसकते भारतीय उपमहाद्वीप तथा तिब्बतीय भूखण्ड के प्रतिरोध के फलस्वरूप हिमालय बना। जब कि वाडिया (Wadia) की मान्यता है कि हिमालय की उत्पत्ति उत्तर से आने वाले धक्कों के सम्मुख भारतीय प्रायद्वीप द्वारा प्रस्तुत प्रतिरोध (Resistance) के कारण हुई है।

हिमालय का भौगोलिक वर्गीकरण

हिमालय कई पर्वत श्रेणियों से मिलकर बना है। इसे भौगोलिक दृष्टि से तीन मुख्य भागों में बांटा जाता है (चित्र 4.7)-

1. महा हिमालय (Greater Himalayas) - यह सबसे उत्तरी पर्वतमाला है, जिसे **मुख्य हिमालय** (Main Himalayas), **हिमाद्री** (Himadri), **आन्तरिक हिमालय** (Inner Himalayas), **बर्फीले**

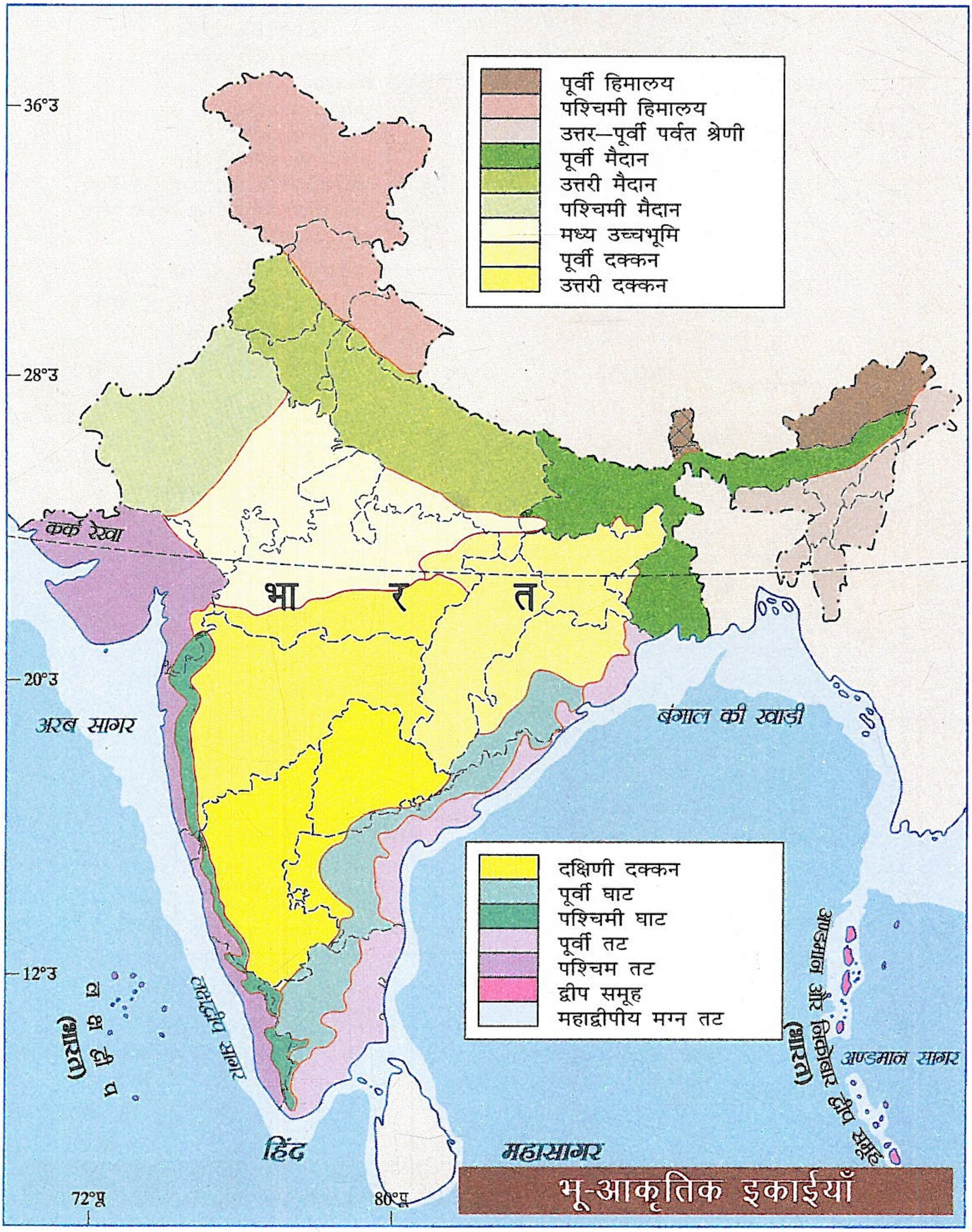

चित्र 4.3 – भारत : स्थलाकृतिक प्रदेश

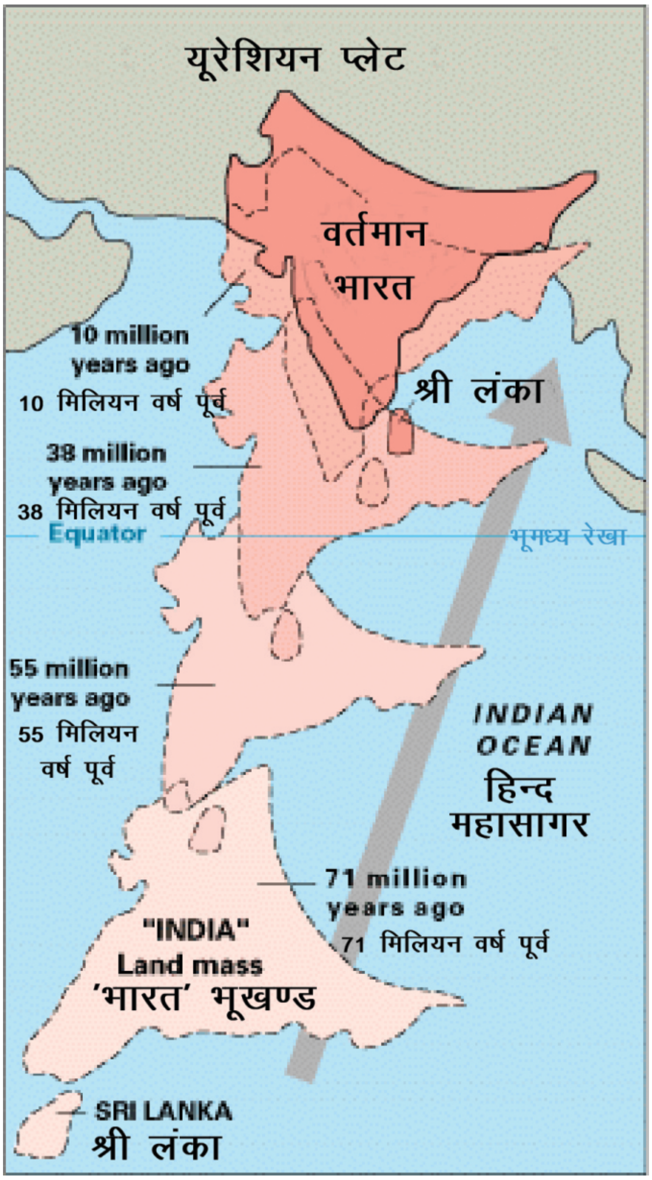

चित्र 4.4 - गोण्डवानालैण्ड (भारत) का उत्तर दिशा की ओर प्रवाह

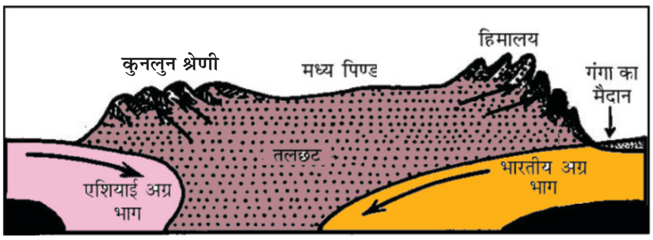

चित्र 4.5 - कोबर के अनुसार हिमालय की उत्पत्ति

हिमालय (Snowy Himalayas) आदि नामों से भी जाना जाता है। यह श्रेणी उत्तर-पश्चिम में सिन्धु नदी के मोड़ से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ तक लगभग 2500 किलोमीटर लम्बाई में फैली हुई है। **चाप की आकृति** में फैली हुई यह **सर्वोच्च श्रेणी** लगभग 73° पूर्व से 97° पूर्व देशान्तर तक विस्तृत है। इसकी औसत ऊँचाई लगभग 6000 मीटर तथा चौड़ाई 100 से 200 किलोमीटर तक है। यहाँ 40 पर्वतीय चोटियाँ 7000 मीटर से भी अधिक ऊँची हैं। देश की सबसे ऊँची चोटियाँ इसी पर्वत श्रेणी में हैं। माउण्ट एवरैस्ट (8848मीटर), गॉडविन ऑस्टिन (8611 मीटर), कंचनजंघा (8585 मीटर), मकालू (8481 मीटर), धौलागिरि (8172 मीटर), नंगा पर्वत (8126मीटर), अन्नपूर्णा (8078मीटर), नन्दा देवी (7818मीटर) आदि हिमाच्छादित चोटियाँ इसी श्रेणी में स्थित हैं। यह श्रेणी विवर्तनिक दृष्टि से सक्रिय है, अत: अभी भी ऊँची उठ रही है। भारत की ओर इस श्रेणी का ढाल तीव्र होने के कारण नदियों की घाटियाँ संकीर्ण एवं खड़े ढालों वाली हैं। सिन्धु, सतलज, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ यहाँ से निकलती हैं। यद्यपि ऊबड़-खाबड़ व तीव्र ढाल के कारण यह श्रेणी आवागमन में बाधक है, किन्तु जोजीला, कराकोरम, शिपकी, मानानीति आदि दर्रे इसमें आवागमन की सुविधा प्रदान करते हैं।

महा हिमालय की दक्षिणी पूर्वी शाखा भारत की पूर्वी सीमा पर होती हुई म्यानमार (बर्मा) तक चली गई है। गारो, खासी, जयन्तिया, पटकोई, नागा, बुम व लुशाई आदि पहाड़ियाँ इसी का भाग हैं। ये सभी पहाड़ियाँ बहुत ही दुर्गम हैं तथा घने वनों से ढकी हैं। ये भारत की पूर्वी भौगोलिक सीमा बनाती हैं।

महा हिमालय की उत्तरी-पश्चिमी शाखा पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान की सीमा पर फैली है। सुलेमान, किरथर, हिन्दुकुश व कराकोरम आदि इसकी प्रमुख श्रेणियाँ हैं। इनमें खैबर, गोमल, टोची, बोलन आदि दर्रे हैं, जिनका उपयोग स्थलीय मार्गों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये होता है।

2. लघु हिमालय (Lesser Himalayas) - यह पर्वत श्रृंखला महा हिमालय के दक्षिण में स्थित है। इसे **मध्य हिमालय (Middle Himalayas)** या **हिमाचल हिमालय (Himachal Himalayas)** के नाम से भी जाना जाता है। यह श्रेणी महा हिमालय के दक्षिण में उसके समानान्तर फैली हुई है। इसकी चौड़ाई 80 से 100 किलोमीटर तक है। इसकी औसत ऊँचाई 3000 मीटर है, किन्तु अधिकतम ऊँचाई 5000 मीटर तक पाई जाती है। इसमें कई छोटी-छोटी श्रेणियाँ हैं, जिनमें धौलाधर, पीर पंजाल, नाग टीबा, महाभारत, मसूरी आदि मुख्य हैं। यहाँ शीत ऋतु में 3-4 महीने तक बर्फ गिरती है, किन्तु ग्रीष्म ऋतु सुहावनी व स्वास्थ्यवर्द्धक रहती है। अत: इस श्रेणी के निचले भागों में कई पर्वतीय पर्यटक स्थान जैसे शिमला, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग, रानीखेत आदि स्थित हैं। इस श्रेणी के उच्च ढालों पर कोणधारी वन तथा निम्न ढालों पर घास के क्षेत्र पाये जाते हैं, जिन्हें **कश्मीर में मर्ग** (जैसे गुलमर्ग, सोनमर्ग आदि) तथा उत्तरांचल में **बुग्याल** व **पयार** कहते हैं। लघु हिमालय विवर्तनिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित व स्थिर हो गया है। यहाँ **नदियों के हड़पने (River Capture)** के कई उदाहरण मिलते हैं।

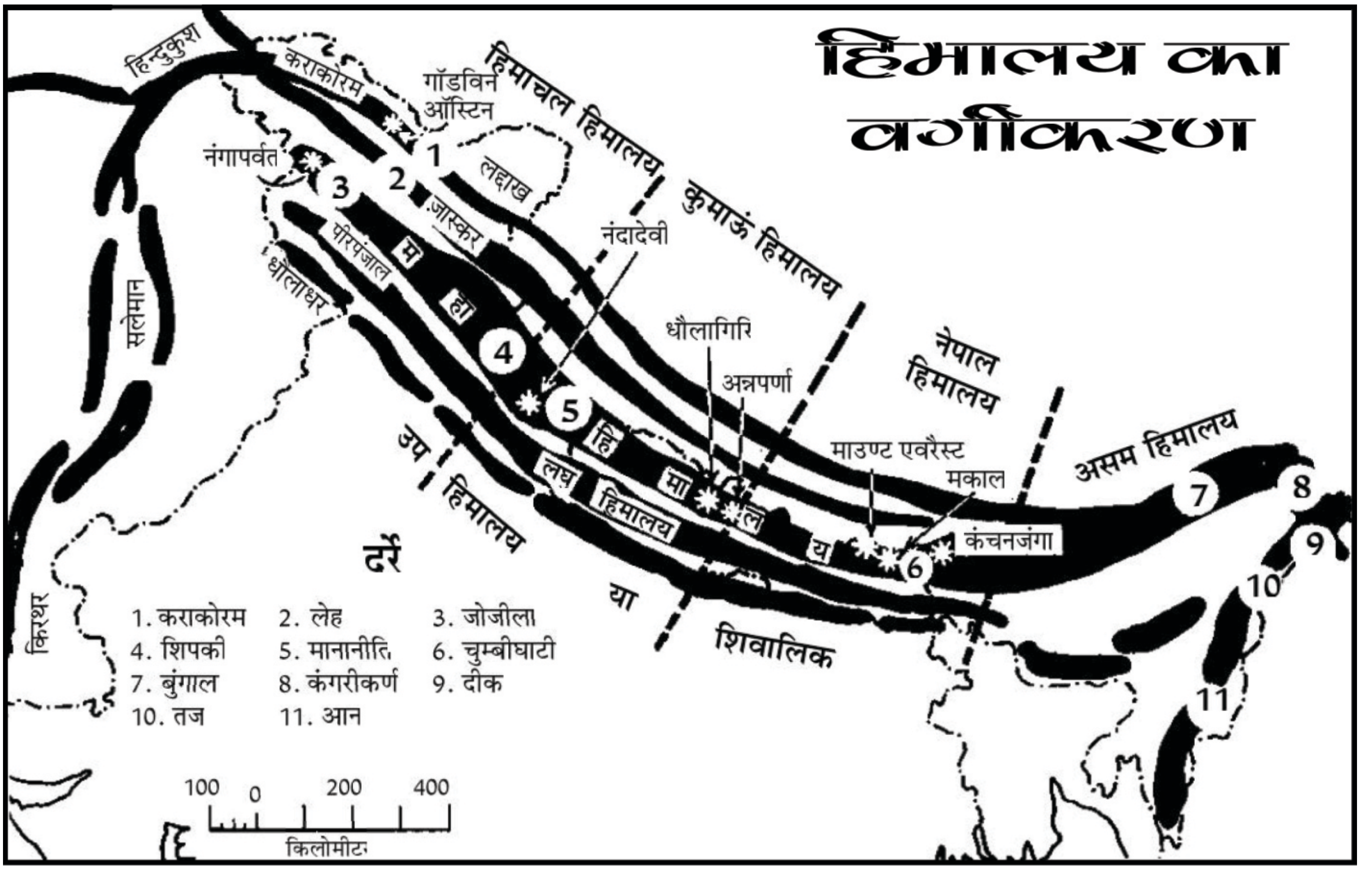

चित्र 4.7 – हिमालय का वर्गीकरण

3. उप-हिमालय (Sub-Himalayas) – हिमालय की यह सबसे दक्षिणी श्रेणी है। इसे **बाह्य हिमालय (Outer Himalayas)** या **शिवालिक श्रेणी** के नाम से जाना जाता है। हिमालय की सभी श्रेणियों में यह नवीनतम रचना है। यह श्रेणी पोटवार बेसिन से प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर कोसी नदी तक विस्तृत है। यह श्रेणी 10 से 50 किलोमीटर चौड़ी है तथा इसकी औसत ऊँचाई 1000 मीटर है। इस

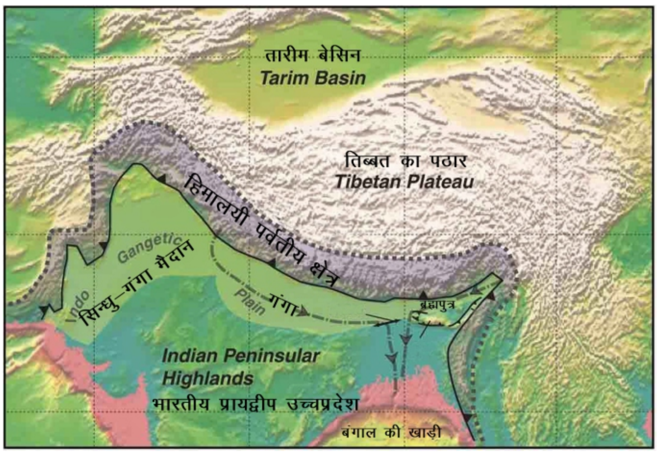

चित्र 4.6 – हिमालय, सिन्धु, गंगा व ब्रह्मपुत्र मैदान

श्रेणी को विभिन्न भागों में विभिन्न नाम दिये गये हैं, जैसे गोरखपुर के निकट **डूंडवा** तथा पूर्व की ओर **चूरियाँ** व **मूरियाँ**। शिवालिक श्रेणी से नदियाँ संकीण घाटियाँ या गॉर्ज बनाती हुई मैदान में प्रवेश करती हैं, जहाँ अनेक जलोढ़ पंख मिलते हैं। इन्हें स्थानीय रूप से **भाबर** नाम से जाना जाता है। भाबर का दक्षिणी भाग दलदली है, जो **तराई** कहलाता है। यह सम्पूर्ण भाग वनाच्छादित है। मध्यवर्ती भाग में हिमालय व शिवालिक के बीच नदियों की मिट्टी व बालू से निर्मित कुछ ऊँचे घाटी-मैदान भी मिलते हैं, जिन्हें पूर्व में **द्वार** (जैसे हरिद्वार) तथा पश्चिम में **दून** (जैसे देहरादून) कहते हैं।

हिमालय का प्रादेशिक वर्गीकरण

प्रादेशिक आधार पर हिमालय पर्वतीय क्षेत्र को निम्न चार भागों में विभाजित किया जाता है (चित्र संख्या 4.7) –

1. हिमाचल हिमालय – इसका विस्तार सिन्धु नदी से सतलज नदी तक है। यह भाग 570 किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत है। इसका अधिकांश भाग जम्मू-कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में विस्तृत है। इस भाग की मुख्य पर्वत श्रेणियाँ पीर पंजाल, धौलाधर, जास्कर तथा लद्दाख हैं। इनके उत्तरी ढाल ऊबड़-खाबड़, निर्जन व शुष्क हैं तथा दक्षिणी

ढाल वनाच्छादित हैं। काँगड़ा, लाहुल व स्पीति घाटियाँ यहीं स्थित हैं, जिनमें फलों की कृषि की जाती है।

2. कुमाऊँ हिमालय – यह भाग लगभग 320 किलोमीटर लम्बाई में फैला है। हिमालय का यह भाग सतलज नदी से काली नदी तक विस्तृत है। यह हिमाचल हिमालय से अधिक ऊँचा है। इसमें बद्रीनाथ (7040 मीटर), केदारनाथ (6831 मीटर), त्रिशूल (6707 मीटर), गंगोत्री (6508मीटर) आदि प्रमुख चोटियाँ हैं। गंगा, यमुना आदि नदियों के उद्‌गम स्थान इसी क्षेत्र में हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमुनोत्री आदि प्रमुख तीर्थ स्थान भी इसी क्षेत्र में स्थित हैं।

3. नेपाल हिमालय – यह भाग लगभग 800 किलोमीटर लम्बाई में फैला है। हिमालय का यह भाग काली नदी से तीस्ता नदी तक विस्तृत है। इसका अधिकांश भाग नेपाल में विस्तृत होने से **नेपाल हिमालय** तथा अन्यत्र सिक्किम में इसे **सिक्किम हिमालय**, पश्चिमी बंगाल में इसे **दार्जिलिंग हिमालय** तथा भूटान में इसे **भूटान हिमालय** कहा जाता है। हिमालय का यह सर्वोच्च भाग है, जहाँ एवरैस्ट, कंचनजंघा, मकालू, धौलागिरि, अन्नपूर्णा आदि ऊँची व हिमाच्छादित चोटियाँ हैं।

4. असम हिमालय – यह भाग तीस्ता नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक फैला है। लगभग 740 किलोमीटर लम्बे इस भाग को असम हिमालय कहते हैं। काबरू, चुमलहारी, जांग सांगला, कुला कांगड़ी, पौहुनी आदि इस क्षेत्र की प्रमुख चोटियाँ हैं। इसी क्षेत्र में नागा पहाड़ियाँ भारत व म्यांमार (बर्मा) के बीच जल-विभाजक का कार्य करती हैं। यह घना वनाच्छादित क्षेत्र है जिसमें कई जनजातियाँ निवास करती हैं।

हिमालय का महत्व

महाकवि कालिदास ने हिमालय को पर्वतों का राजा एवं देवताओं का निवास स्थान बताया है। हिमालय पर्वत की भौतिक रचना, स्थिति, विस्तार, संरचना आदि देश के लिए बड़ी ही महत्वपूर्ण और उपयोगी है, क्योंकि –

1. ये देश के उत्तर व पूर्व में प्राकृतिक सीमा बनाते हैं।
2. उत्तर में प्रहरी के रूप में इनकी अवस्थिति के कारण देश को पारम्परिक रूप से बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित माना जाता रहा है। वैसे आधुनिक तकनीकी उपलब्धियों के कारण अब ये उतने अभेद्य नहीं रहे हैं। अत: अब हमें अपनी उत्तरी व पूर्वी सीमाओं की सुरक्षा के प्रति भी पहले की अपेक्षा अधिक सजग रहना पड़ता है।
3. यह उच्च पर्वतीय दीवार उत्तर की ओर से आने वाली ठण्डी ध्रुवीय हवाओं से भारत की रक्षा करती हैं।
4. उत्तर से आने वाली ठण्डी ध्रुवीय हवाओं के रूक जाने के कारण ही भारत की मौसमी परिस्थितियों में स्थिरता रहती है।
5. ये दक्षिण से आने वाली मानसूनी हवाओं को हिमालय से परे उत्तर की ओर जाने से रोकते हैं। इससे इन आर्द्र पवनों का लाभ भारत को मिलता है।
6. हिम का पिघला हुआ जल प्राप्त होते रहने के कारण यहाँ से नित्यवाही नदियाँ निकलती हैं, जिनसे गंगा-सिन्धु के विस्तृत मैदानों में सिंचाई की जाती है।
7. इनमें पाये जाने वाले जल प्रपात जल-विद्युत के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।
8. इनसे निकली नदियों द्वारा बहाकर लाई गई बारीक कांप मिट्टी के जमा कर देने से गंगा-सतलज के विशाल, समतल व उपजाऊ मैदान बने हैं, जो भारत के लिये आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यही नहीं, ये नदियाँ प्रतिवर्ष मिट्टी की नई परत बिछाकर इन मैदानों के उपजाऊपन का प्राकृतिक रूप से नवीनीकरण करती रहती हैं।
9. यहाँ विभिन्न ऊँचाइयों पर जलवायु सम्बन्धी भिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रकार के वन, वनस्पतियाँ, लकड़ी, कन्दमूल-फल, गौंद, लाख, औषधियाँ व जड़ी-बूंटियाँ इत्यादि मिलती हैं।
10. वनों से प्राप्त कच्चे पदार्थों पर देश के कई उद्योग-धन्धे आधारित हैं।
11. विशाल वन सम्पदा के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार के वन्य जीव जैसे शेर, चीते, हाथी, सांभर, हिरन, भालू, तेन्दुए, बन्दर आदि मिलते हैं।
12. पहाड़ी ढालों पर केसर, चाय, आलू, फलों आदि की कृषि होती है तथा पशुचारण होता है।
13. हिमालय की विशिष्ट संरचना के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार के खनिज भण्डार उपलब्ध हैं। यहाँ तेलीय शैल के कारण खनिज तेल पाये जाने की सम्भावनाएं भी हैं।
14. अनेक प्राकृतिक झीलों, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं मनोरम स्थानों के कारण इसका पर्यटक महत्त्व है। शिमला, मसूरी, नैनीताल, भीमताल, गरूड़ताल, रानीखेत, अल्मोड़ा, कसौली, चम्बा, कुल्लू, मुक्तेश्वर, अमरनाथ, भुवाली, कालिमपौंग, शेषनाग, पहलगांव, गुलमर्ग, सोनमर्ग आदि स्थानों को बड़ी संख्या में स्वदेशी व विदेशी पर्यटक जाते हैं।
15. उपर्युक्त भौतिक महत्ता के अतिरिक्त हिमालय का पौराणिक दृष्टि से आध्यात्मिक महत्व भी है। यहाँ देवताओं का वास माना गया है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, कैलाश, मानसरोवर, विष्णुप्रयाग, देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, हरिद्वार, उत्तरकाशी, जोशीमठ, गंगोत्री, यमनोत्री आदि अनेक प्रमुख तीर्थस्थल यहाँ स्थित हैं। स्वयंभूनाथ, तबांग, हैमिस, ध्यागबोचे आदि प्रसिद्ध बौद्ध मठ भी यहाँ हैं।
16. हिमालय पर्वतारोहण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।
17. यहाँ के गठीले शरीर वाले साहसी युवक भारतीय सेना में योगदान करते हैं।

2. विशाल मैदान (Great Plains)

यह मैदान हिमालय पर्वत तथा प्रायद्वीपीय पठार के मध्य स्थित

है। भारत के विभाजन से पूर्व इसे गंगा सिन्धु मैदान के नाम से जाना जाता था, किन्तु विभाजन के कारण सिन्धु व उसकी सहायक नदियों झेलम, चिनाव व रावी के मैदान पाकिस्तान में चले गये हैं। अत: अब भारतीय क्षेत्र को सतलज-गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान कहते हैं, जो इनके व इनकी सहायक नदियों द्वारा बिछाई गई तलछट मिट्टी से बना है। इस धनुषाकार मैदान की लम्बाई लगभग 2400 किलोमीटर व चौड़ाई 150 से 480 किलोमीटर तक है। यह धीमे ढाल वाला अत्यन्त समतल मैदान है। वाराणसी से गंगा के डेल्टा तक इसका ढाल केवल 10 से.मी. प्रति किलोमीटर है। इसमें अरावली पर्वत जल विभाजक का कार्य करते हैं। अरावली को छोड़कर इसकी अधिकतम ऊँचाई 185 मीटर है। इसमें तलछट के जमाव की गहराई के बारे में मतभेद हैं, किन्तु कई स्थानों पर इसकी परत 3000 मीटर से भी अधिक मोटी है। यह विश्व के सबसे अधिक विस्तृत, उपजाऊ व घने आबाद मैदानों में से एक है (चित्र 4.6)।

भौगोलिक वर्गीकरण

यद्यपि समतलता के कारण इसे **उच्चावच रहित मैदान (Featureless Plain)** कहा जाता है, तथापि भौगोलिक दृष्टि से इसे चार वर्गों में विभाजित किया जाता है –

1. भाबर प्रदेश – शिवालिक के पर्वतपदीय क्षेत्र में सतलज नदी से तीस्ता नदी तक 8से 16किलोमीटर चौड़ी पट्टी में इसका विस्तार है। पर्वतीय कक्ष से निकलकर मैदानी कक्ष में प्रवेश करते ही (ढाल के स्वरूप में परिवर्तन के कारण) नदियाँ भारी चट्टान चूर्ण गिरिपद क्षेत्र में जमा कर देती हैं। इस क्षेत्र में अधिकांश नदियों का भूमिगत प्रवाह होता है। कृषि की दृष्टि से अनुपयोगी इस क्षेत्र में लम्बी जड़ों वाले वृक्ष पाये जाते हैं।

2. तराई प्रदेश – यह भाबर के दक्षिण में मैदान का वह भाग है, जहाँ भाबर प्रदेश का भूमिगत जल प्रवाह फिर धरातल पर प्रकट हो जाता है। अनियमित जल प्रवाह के कारण यहाँ दलदल पाये जाते हैं। इस प्रदेश में सघन वन, लम्बी घासें (जैसे – कांस, हाथी घास आदि) व वन्य जीव मिलते हैं। पश्चिमी भाग में वर्षा की कमी के कारण तराई का अभाव है। उत्तर प्रदेश में इस भाग को साफ करके तथा जल प्रवाह को नियन्त्रित करके विभिन्न फसलों व जूट आदि की कृषि के सफल प्रयास किये गये हैं।

3. बांगर प्रदेश – ये प्राचीन तलछल से निर्मित वे उच्च मैदान बांगर कहलाते हैं जहाँ नदियों के बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता है। ये उत्तर प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी भाग तथा उत्तरांचल में अधिक पाये जाते हैं।

4. खादर प्रदेश – ये नई तलछट व कांप मिट्टी से बने हुए निचले मैदान हैं। यहाँ बाढ़ का पानी प्रति वर्ष पहुँच कर मिट्टी की नई परत जमाता रहता है। ऐसे निचले मैदानों को खादर कहते हैं। ये पूर्वी उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार व पश्चिमी बंगाल में अधिक हैं।

प्रादेशिक वर्गीकरण

सतलज नदी से पूर्व की ओर ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी तक फैले इस विस्तृत मैदान को प्रादेशिक आधार पर चार मुख्य भागों में बांटा जाता है –

1. पंजाब-हरियाणा का मैदान – विशाल मैदान का यह भाग पंजाब व हरियाणा राज्यों में विस्तृत है। इस मैदान का उत्तर-पश्चिमी भाग सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों – सतलज, व्यास, रावी, चिनाव, झेलम द्वारा जमा की गई कांप मिट्टी के जमाव से बना है। दो नदियों के मध्य स्थित मैदानी क्षेत्र को स्थानीय भाषा में **दोआब** कहा जाता है। व्यास व सतलज के बीच **बिस्त दोआब**, रावी व व्यास के बीच **बारी दोआब**, चिनाब व रावी के बीच **रेचना दोआब**, झेलम व चिनाब के बीच **चाज दोआब** एवं सिन्धु व झेलम के बीच **सिन्धु सागर दोआब** है। इनमें से केवल **बिस्त-बारी दोआब** ही भारत में है, शेष भाग विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान में चला गया है। नदियों के दोनों ओर 10 से 20 किलोमीटर चौड़ा क्षेत्र खादर या बाढ़ग्रस्त है। ऐसे क्षेत्रों को स्थानीय भाषा में **बेट** (Bet) कहते हैं। शिवालिक पहाड़ियों के साथ लगते मैदानी भागों में छोटी-छोटी नदियों द्वारा अपरदन के कारण कई खड्ड बन गये हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में **चो** (Cho) कहते हैं। ऐसे **चो** होशियारपुर जिले में अधिक मिलते हैं। इससे दक्षिण-पूर्व में घग्घर नदी तक फैले मैदान को हरियाणा का मैदान कहते हैं। सिंचाई की सुविधा में वृद्धि के साथ हरियाणा मैदान का कृषि उपयोग तेजी से बढ़ा है।

2. गंगा का मैदान – यह एक विशाल, समतल एवं अत्यन्त उपजाऊ मैदान है जो गंगा व उसकी सहायक नदियों यमुना, गोमती, घाघरा, गण्डक, कोसी, बेतवा, केन, चम्बल, सोन आदि द्वारा जमा की गई उपजाऊ कांप मिट्टी से बना है। इसका विस्तार अरावली श्रेणियों के पूर्व से प्रारम्भ होकर पश्चिमी बंगाल तक है, अर्थात यह पूर्वी राजस्थान, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार व पश्चिमी बंगाल में फैला है। इस मैदान का सामान्य ढाल पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व की ओर है। इस मैदान में खादर व बांगर भूमि मिलती है। बांगर प्रदेश अर्थात उच्च मैदानों के कुछ शुष्क भागों में छोटे-छोटे टीले मिलते हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में **भूड़ (Bhoor)** कहते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में इसे **गंगा-यमुना दोआब**, उत्तर-मध्य भाग में **रूहेलखण्ड का मैदान** (Ruhelkhand) तथा उत्तरी-पूर्वी भाग को **अवध का मैदान** कहा जाता है। बिहार में गंगा नदी के दोनों ओर इसे क्रमश: **झारखण्ड का मैदान** व **बिहार का मैदान** कहते हैं। झारखण्ड के मैदान में घाघरा, गण्डक, कोसी आदि नदियाँ बहती हैं। इसका ढाल दक्षिण-पूर्व की ओर है। बिहार के मैदान

में छोटा नागपुर के पठार से निकलकर सोन व अन्य नदियाँ उत्तर व उत्तर-पूर्व की ओर प्रवाहित होकर गंगा नदी में मिलती हैं। पश्चिमी बंगाल में हिमालय पदीय क्षेत्र से गंगा के डेल्टा तक उत्तरी बंगाल का मैदान (North Bengal Plain) विस्तृत है। इसमें गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियाँ प्रवाहित होती हैं। यहाँ पर्वतपदीय क्षेत्र को **दुआर (Duar)** कहते हैं जहाँ चाय के बहुत सारे बागान है।

3. ब्रह्मपुत्र का मैदान – असम राज्य में हिमालय व गारो पहाड़ियों के मध्य फैला यह एक संकड़ा एवं लम्बा मैदान है जो ब्रह्मपुत्र द्वारा जमा की गई कांप मिट्टी से बना है। धुबरी (Dhubri) से सदिया (Sadiya) तक फैला यह मैदान लगभग 650 किलोमीटर लम्बा एवं 100 मिलोमीटर चौड़ा है। ब्रह्मपुत्र नदी के जल में मिट्टी की अधिकता के कारण बहाव में थोड़ी सी रूकावट आने से ढेरों मिट्टी एकत्रित हो जाती है। इसी कारण ब्रह्मपुत्र नदी में द्वीप बहुत हैं।

4. गंगा-ब्रह्मपुत्र का डेल्टा – यह अत्यन्त समतल क्षेत्र है तथा समुद्रतल से बहुत कम ऊँचा है। इस क्षेत्र में ज्वार का जल फैल जाता है, अत: यह भाग दलदली रहता है। ज्वारीय जल की डूब में न आने वाली उच्च भूमि पर, जिसे **चर (Char)** कहते हैं, बस्तियाँ हैं। निम्न भूमि को **बिल (Bill)** कहते हैं जिनमें जूट धोने के लिये पर्याप्त जल मिल जाता है।

विशाल मैदान का महत्व

1. यह मैदान कांप मिट्टी से बना है अत: यह अत्यन्त उपजाऊ है।
2. प्रति वर्ष बाढ़ द्वारा मिट्टी की नई परत बिछ जाने से मिट्टी की उर्वरता का प्राकृतिक रूप से नवीनीकरण होता रहता है।
3. इस मैदान में नदियों का जाल-सा बिछा है। इनके पानी का उपयोग सिंचाई, जल परिवहन, जल-विद्युत उत्पादन तथा उद्योगों में किया जाता है।
4. समतल मैदान होने के कारण नहरों के निर्माण एवं कुओं की खुदाई पर अधिक व्यय नहीं होता है। अत: सिंचाई के साधन सस्ते व सुलभ हैं।
5. यह मैदान पूर्वी भाग में गन्ना, चाय व चावल तथा पश्चिमी भाग में गेहूँ, कपास आदि का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है।
6. यहाँ देश की लगभग 45 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।
7. समतल होने के कारण यहाँ सभी प्रकार के आवागमन के साधनों का सघन जाल है।
8. भारत के अधिकांश बड़े-नगर, व्यापारिक व औद्योगिक केन्द्र इसी मैदान में स्थित हैं।
9. इस मैदान में प्रचुर जीवनोपयोगी सुविधाएं उपलब्ध हैं।
10. यहाँ व्यापार की सुविधाएँ सुलभ हैं।
11. विभिन्न सुविधाओं के कारण इस क्षेत्र में औद्योगिक प्रगति को प्रोत्साहन मिला है।
12. यहाँ कई दर्शनीय स्थल हैं।

3. थार का मरूस्थल (Thar Desert)

थार का मरूस्थल पश्चिमी राजस्थान में विस्तृत है। कुछ भूगोलवेत्ता इसे प्रायद्वीपीय भारत के अध्ययन में सम्मिलित करते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र की आधारभूत चट्टानें दक्षिण के पठार का ही विस्तार हैं। अन्य भूगोलवेत्ता विशाल मैदान के साथ इसकी निरन्तरता के कारण इसे गंगा-सतलज के मैदान के अंग के रूप में अध्ययन करते हैं। भौतिक दृष्टि से इस क्षेत्र की अपनी विशिष्टता व समस्याएं हैं, अत: यहाँ इसे एक अलग प्रदेश के रूप में सम्मिलित किया गया है।

थार के मरूस्थल की उत्पत्ति

थार के मरूस्थल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मत भिन्नताएँ हैं। कुछ विद्वान यहाँ बालू की उपस्थिति स्थानीय चट्टानों के विघटन से मानते हैं। किन्तु धरातलीय चट्टानों के प्राथमिक अपरदन के लक्षण जलीय प्रभाव का प्रदर्शन करते हैं। अत: कुछ विद्वानों का मत है कि इस क्षेत्र की जलवायु पहले आर्द्र थी, किन्तु कालान्तर में यहाँ शुष्कता बढ़ती गई तथा यह क्षेत्र एक शुष्क मरूस्थल बन गया। जैसलमेर के निकट आकल में **Wood Fossil Park** इसका प्रमाण है, जहाँ करोड़ों वर्षों पूर्व के विशाल वृक्षों के अवशेष मिट्टी में दबे हुए मिले हैं। भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि यह क्षेत्र पहले एक बहुत ही उपजाऊ भाग था, जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती थीं। किन्तु भूगर्भिक हलचलों द्वारा इस क्षेत्र के ऊपर उठ जाने से इस क्षेत्र का जल प्रवाह गंगा या सिन्धु नदी में मिल गया तथा यहाँ शुष्कता बढ़ती गई। **ला टूश (La Touche)** नामक विद्वान ने पश्चिमी राजस्थान में बालू की उपलब्धि के विषय में बताया कि यह मिट्टी यहाँ प्रचलित दक्षिण पश्चिमी झंझावातों द्वारा लाई गई और पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश भागों में जमा हो गई है। वैसे जलवायु की शुष्कता इस क्षेत्र को मरूस्थली रूप देने में सबसे प्रभावशाली कारक है।

भौगोलिक विशेषताएँ

यह मरूस्थल अरावली पर्वत के पश्चिम व उत्तर-पश्चिम में सिन्धु के मैदान तक विस्तृत है। भारत व पाकिस्तान के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सीमा इसी क्षेत्र से होकर गुजरती है। थार का मरूस्थल एक निम्न भूमि का प्रदेश है। यह लगभग 150 से 380 मीटर तक ऊँचा, 640 किलोमीटर लम्बा व 160 किलोमीटर चौड़ा क्षेत्र है। यहाँ तेज हवाएं बालुका-स्तूपों एवं रेत के टीलों का निर्माण करती हैं। ये टीले स्थानान्तरित होते रहते हैं। कहीं-कहीं इन टीलों के बीच में निम्न भूमि मिलती है, जिसे **तल्ली** कहते हैं। वर्षा का जल भर जाने से ये तल्लियाँ अस्थायी झीलें बन जाती हैं,

जिन्हें **ढांढ** या **रन (Rann)** कहते हैं। यहाँ सांभर, लूणकरणसर, डीडवाना, पचपद्रा आदि खारे पानी की मुख्य झीलें हैं। इनमें नमक तैयार किया जाता है।

पवनों द्वारा बालुका स्तूपों के स्थानान्तरण एवं बालू के उड़ने से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि थार का मरूस्थल प्रतिवर्ष एक किलोमीटर की गति से पूर्व की ओर बढ़ रहा है। इसके प्रसार को रोकने के लिये वृक्षों की पंक्तियाँ लगाई गई हैं, अर्द्ध मरूस्थली वनस्पति उगाई गई है एवं केन्द्रीय मरू क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (CAZRI) अन्य उपाय भी कर रहा है। इन्दिरा गांधी नहर के पूरा हो जाने पर इससे प्राप्त सिंचाई की सुविधा से इस मरूस्थल की काया पलट हो जायेगी। इस नहर का निर्माण कार्य इसी सम्भावना का लाभ उठाने के लिये पूर्णता की ओर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है।

थार के मरूस्थल का महत्व

1. ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक गर्म हो जाने से यहाँ पर गहन निम्न दाब बन जाता है, जो दक्षिणी-पश्चिमी मानसून को तीव्रता से आकर्षित करता है।
2. यहाँ के कम वर्षा वाले क्षेत्रों के चारागाहों में पशुपालन महत्वपूर्ण व्यवसाय है।
3. यहाँ कई प्रकार के खनिज पाये जाते हैं। अभ्रक, जिप्सम, एसबैस्टोस, कोयला, तांबा, घीया पत्थर, संगमरमर, इमारती पत्थर, रॉक फॉस्फेट, फेल्सपार, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस आदि मुख्य हैं।
4. मिट्टियाँ उपजाऊ होने के कारण, जल उपलब्ध हो जाने की स्थिति में कृषि विकास की सम्भावनाएं हैं।
5. भौतिक विविधता के कारण यह पर्यटक आकर्षण का क्षेत्र है। जैसलमेर में भरने वाला वार्षिक मरू मेला इसकी पुष्टि करता है।
6. पाकिस्तान के साथ सीमा पर स्थित होने के कारण इसका सुरक्षात्मक महत्व है।

4. दक्षिण का पठार (Deccan Plateau)

यह एक अति प्राचीन भूभाग है जो लगभग 16लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। यह भारत के विशाल मैदान के दक्षिण में फैला त्रिभुजाकार पठार है। इसके तीन ओर समुद्र (पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर व दक्षिण में हिन्द महासागर) है। इस त्रिभुजाकार पठार का आधार उत्तर में विंध्याचल पर्वतमाला तथा शीर्ष दक्षिण में कुमारी अन्तरीप है। दक्षिण-पूर्वी राजस्थान की उच्च भूमि से कन्याकुमारी तक इसकी अधिकतम लम्बाई 1800 किलोमीटर तथा अधिकतम चौड़ाई लगभग 1400 किलोमीटर है। इस पठार की औसत ऊंचाई समुद्रतल से 600 मीटर है। इसका विस्तार दक्षिण-पूर्वी राजस्थान, गुजरात, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु व केरल में आंशिक रूप से है। यह एक प्राचीन पठार है, जो अत्यन्त कठोर, पुरानी व रवेदार चट्टानों से बना है। इस पठार का ढाल पूर्व की ओर है। अत: नर्मदा व ताप्ती को छोड़कर सभी बड़ी नदियाँ पूर्व की ओर बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। इन नदियों ने इस पठार को कई भागों में विभक्त कर दिया है। यहाँ कई प्राचीन अवशिष्ट पर्वत श्रेणियाँ भी हैं (चित्र 4.8)।

दक्षिण के पठार की उत्पत्ति

यह पठार करोड़ों वर्ष पूर्व टिथिस सागर के दक्षिण में फैले हुए गौण्डवानालैण्ड का भाग था। कालान्तर में भूगर्भिक हलचलों के कारण इस महाद्वीप में दरारें पड़ गई और इसके खण्डित भागों ने एक दूसरे से अलग होकर वर्तमान दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीपों का रूप ले लिया। प्रायद्वीपीय भारत गौण्डवानालैण्ड से खण्डित होकर उत्तर पूर्व की ओर प्रवाहित होता-होता वर्तमान रूप में आया।

दक्षिण के पठार का वर्गीकरण

प्रायद्वीपीय भारत को निम्न प्रकार से उप-विभाजित किया जा सकता है -

1. पश्चिमी घाट - दक्षिण के पठार का पश्चिमी किनारा पश्चिमी घाट के रूप में ऊँचा उठा हुआ है, जिसे **सह्याद्रि (Sahayadri)** भी कहा जाता है। इनका अरब सागर की ओर ढाल तीव्र तथा पूर्व की ओर धीमा ढाल है। लगभग 1000 मीटर औसत ऊँचाई वाले सह्याद्रि का ताप्ती घाटी से कुमारी अन्तरीप तक क्रमिक विस्तार है। इसमें **भोर घाट, थाल घाट व पाल घाट** दर्रे हैं। दक्षिण में सह्याद्रि पूर्वी घाट से मिल गये हैं, जहाँ नीलगिरि पर्वत पर इसकी सबसे ऊँची चोटी दोदाबेटा (2637 मीटर) है। यहीं अन्नामलाई, इलायची व पालनी श्रेणियों का संगम है। निकट ही प्रसिद्ध पर्यटक स्थान उटकमण्ड, कोडाईकनाल आदि स्थित हैं। महाराष्ट्र में महाबलेश्वर (1438मीटर) भी पर्यटक महत्व का स्थान है। सह्याद्रि का उत्तरी भाग लावा से ढका है तथा दक्षिणी भाग नाइस, शिस्ट तथा चर्नोकाइट शैलों से निर्मित है। इससे निकलने वाली अधिकांश नदियाँ जैसे गोदावरी, भीमा, कृष्णा, तुंगभद्रा, पैनर, कावेरी, ताम्रपर्णी, पैरियार, वेगाई आदि पूर्व की ओर बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। जहाँ ये नदियाँ सह्याद्रि से पठार पर उतरती हैं, वहाँ जलप्रपात बनाती हैं। महाबलेश्वर के येना प्रपात (183 मीटर), कावेरी नदी का शिवसमुद्रम प्रपात (100 मीटर), ताम्रपर्णी नदी का पापनासम प्रपात मुख्य है। पश्चिम की ओर बहकर अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ कम हैं, किन्तु वे भी जल प्रपात बनाती हैं। नर्मदा व ताप्ती के अतिरिक्त शरावती नदी का जिरसप्पा (श्री महात्मा गांधी) प्रपात (250 मीटर) मुख्य हैं। ये सभी प्रपात सस्ती जल-विद्युत उत्पादन के लिये अनुपम प्राकृतिक भेंट हैं।

2. पूर्वी घाट - ये घाट पूर्वी तट के समानान्तर लगभग 800 किलोमीटर की लम्बाई में फैले हैं। ये पश्चिमी घाट से भिन्न है, क्योंकि उनकी अपेक्षा

ये नीचे, तट से काफी दूर स्थित एवं अक्रमिक हैं। ये उत्तर में महानदी की घाटी से दक्षिण में नीलगिरि पर्वत तक फैले हैं। पूर्व की ओर बहने वाली सभी नदियों ने पूर्वी घाट को काफी छिन्न-विछिन्न कर दिया है। पूर्वी घाट की औसत ऊँचाई 600 मीटर है, किन्तु इसमें नीलगिरि 1516मीटर व महेन्द्र गिरि 1501 मीटर ऊँची चोटियाँ हैं। पूर्वी घाट के निर्माण में आग्नेय व अवसादी उत्पत्ति की शिस्ट, नीस, चर्नोकाइट, खौंडलाइट आदि शैलों का योगदान है।

3. दक्षिणी पठार - यह पठार अत्यन्त प्राचीन, कठोर एवं कायान्तरित आग्नेय शैलों, बलुआ पत्थर, चूने के पत्थर, कायान्तरित धारवाड़ शैलों एवं गोंडवाना शैलों (कोयला युक्त) से बना एक **प्राचीन पिण्ड** है। इसके काफी बड़े भाग पर ज्वालामुखी उद्‌गार से निकला लावा जम गया

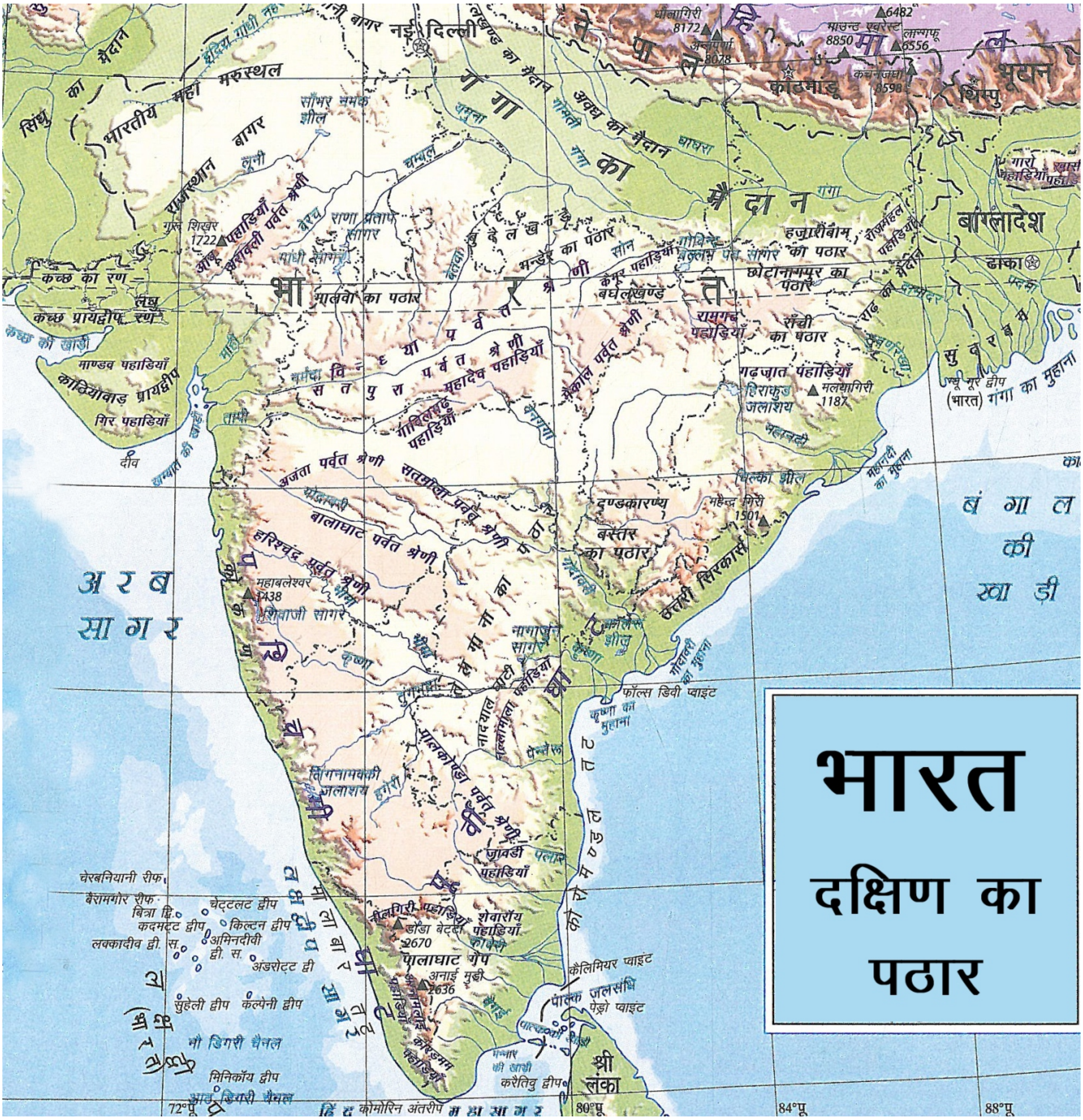

चित्र 4.8 - दक्षिण का पठार

था। इसी से विघटित उपजाऊ काली मिट्टी इस पठार के धरातल पर लगभग 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। यह मिट्टी दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान के कुछ भाग में, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में पाई जाती है। इस पठार के कुछ भाग में विक्षालित (Leached) लाल लैटराइट मिट्टी भी मिलती है। इस पठार की औसत ऊँचाई 600 मीटर है। यह पठार पूर्व की ओर झुका हुआ (Tilted) है इसलिये इस पठार की अधिकांश नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं। इन नदियों ने इसे छोटे-छोटे पठारों में विभक्त कर दिया है, जैसे छत्तीसगढ़, मैसूर का पठार, रायल सीमा का पठार, तेलंगाना का पठार आदि। छत्तीसगढ़ उच्च पठारी भूमि से घिरा समतल प्राय: उच्च क्षेत्र है, जो समुद्रतल से 300 मीटर ऊँचा है। भूगर्भशास्त्रियों का मानना है कि शिलाँग का पठार इसी का सुदूर उत्तर-पूर्वी विस्तार है।

दक्षिण के पठार की उपयोगिता

1. गौण्डवानालैण्ड से सम्बन्धित प्राचीन कठोर पिण्ड होने के कारण यह एक स्थिर भूभाग है जो आकस्मिक भूगर्भिक घटनाओं जैसे भूकम्प, ज्वालामुखी आदि से सुरक्षित है।
2. समुद्र से घिरा होने के कारण यहाँ का जलवायु अधिक विषम नहीं होता।
3. यह क्षेत्र प्राचीन चट्टानों से बना होने के कारण खनिज पदार्थों में धनी है।
4. इसके उत्तरी-पश्चिमी भाग में उपजाऊ काली मिट्टी मिलती है। यह मिट्टी कपास व मूंगफली की कृषि के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है।
5. लैटराइट मिट्टी वाले भागों में चाय, कहवा एवं रबर का उत्पादन होता है।
6. यहाँ साल, सागवान, शीशम तथा चन्दन के बहुमूल्य वन मिलते हैं।
7. यहाँ की नदियों के मार्ग में जल-प्रपात होने के कारण सस्ती जल-विद्युत उत्पादन के लिये प्राकृतिक परिस्थितियाँ हैं।
8. कठोर धरातल व पत्थर की आसान उपलब्धि के कारण यहाँ सड़क मार्गों का विकास अधिक हुआ है।
9. यहाँ कच्चा माल, शक्ति संसाधन, श्रम और बाजार आदि की सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण कई आधारभूत उद्योग जैसे - लौह इस्पात, एल्यूमीनियम, जलयान, शस्त्र उद्योग आदि विकसित हुए हैं।

5. समुद्र तटीय मैदान (Coastal Plains)

दक्षिण के पठार के दोनों तरफ तटीय मैदान स्थित हैं। इन दोनों तटीय मैदानों का निर्माण या तो तटवर्ती भागों के समुद्रतल से ऊपर उठ जाने या नदियों द्वारा मिट्टी के जमने से हुआ है। ये तटीय मैदान दो भागों में विभक्त किये जाते हैं -

(अ) पश्चिमी तटीय मैदान एवं (ब) पूर्वी तटीय मैदान।

(अ) पश्चिमी तटीय मैदान - ये मैदान खम्भात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक फैले हैं। इनकी औसत चौड़ाई 64 किलोमीटर है तथा अधिकतम ऊँचाई 180 मीटर है। यहाँ बहने वाली नदियाँ तीव्रगामी तथा छोटी हैं। इसलिए मिट्टी के जमाव का कार्य नहीं करती। दक्षिणी भाग में लम्बी तथा संकड़ी अनूप झीलें पाई जाती हैं। कोचीन बन्दरगाह ऐसी ही एक अनूप झील पर स्थित है। मुम्बई व मंगलौर इस तट के प्रमुख बन्दरगाह हैं। यह मैदान उत्तर में चौड़ा होकर नर्मदा-ताप्ती का मैदान बनाता हुआ गुजरात तक चला गया है। मैदान के **उत्तरी भाग को कोंकण** तथा **दक्षिणी भाग को मलाबार तट** कहते हैं। इस मैदान में उत्तम जलवायु, उपजाऊ मिट्टी, चावल की उपज, औद्योगिक विकास तथा व्यापार की सुविधाएँ होने के कारण सघन जनसंख्या पायी जाती है।

(ब) पूर्वी तटीय मैदान - यह पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी के मध्य स्थित है। यह उत्तर में उड़ीसा से दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक फैला है। यह पश्चिम तटीय मैदान की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसकी चौड़ाई 160 किलोमीटर से 480 किलोमीटर है। देशान्तरीय आधार पर यह मैदान दो भागों में बांटा जा सकता है - (1) निचला भाग जिसमें नदियों के डेल्टा हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों ने पठार के ऊपरी भागों से कांप मिट्टी लाकर यहाँ बिछा दी है। समुद्र के निकटवर्ती भागों में बालू के ढेरों की लम्बी श्रृंखला मिलती है जो लहरों द्वारा बनाई गई है। इन ढेरों से घिरकर चिलका और पुलीकट छिछली झीलें बन गई हैं। ऐसी झीलों को **लैगून** कहते हैं। (2) ऊपरी भाग कांप मिट्टी के अवशिष्ट मैदान हैं जो अधिकांशत: नदियों की ऊपरी घाटियों में हैं। ये मैदान कहीं-कहीं नदियों द्वारा जमा की हुई उपजाऊ मिट्टी से ढके हैं तथा शेष भागों में पुरानी चट्टानें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। इसके **उत्तरी भाग को उत्तरी सरकारी तट** और **दक्षिणी भाग को कारोमण्डल तट** कहा जाता है। चैन्नई व विशाखापट्टनम इस तट के प्रमुख बन्दरगाह है।

समुद्रतटीय मैदानों का महत्व

1. इन उपजाऊ मैदानों में चावल की खेती व्यापक रूप से की जाती है। तटों पर नारियल, काजू, सुपारी, रबर व ताड़ के बागात (Plantations) मिलते हैं।
2. मलाबार तट तथा पूर्वी नदियों के डेल्टाई क्षेत्रों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।
3. इन्हीं तटों पर देश के प्रमुख बन्दरगाह स्थित हैं, जिनसे आयात-निर्यात व्यापार किया जाता है।
4. इन तटों पर नमक बनाया जाता है।
5. पश्चिमी तट पर केरल में मोनोजाइट जैसा आणविक महत्व का बहुमूल्य खनिज मिलता है।
6. प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिये बड़ी संख्या में पर्यटक पणजी, वास्कोडिगामा, मडगांव, जूहू, चैन्नई, पुरी आदि के सामुद्रिक

तटों पर आते हैं।

6. द्वीप-समूह (Islands)

यद्यपि भारतीय तट अधिक कट-फटे नहीं हैं तथापि इनके निकट कई द्वीप पाये जाते हैं। स्थिति के अनुसार इन द्वीपों को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

1. तटीय द्वीप (Coastal Islands) -

(अ) कांप मिट्टी के द्वीप (Alluvial Islands)- ऐसे द्वीप पूर्वी तट पर पाये जाते हैं। यहाँ चिल्का झील के निकट भासरा-मांडला द्वीप (पथरीला) को छोड़कर शेष सभी द्वीप कांप मिट्टी से निर्मित हैं। हुगली नदी के मुहाने पर सागर द्वीप, महानदी-ब्राह्मणी डेल्टा में शॉर्ट द्वीप तथा मुहाने पर ह्वीलर द्वीप, भारत-श्रीलंका के बीच 'रामसेतु' या आदम का पुल (Adam's Bridge), रामेश्वरम् का पाम्बन द्वीप, मन्नार की खाड़ी में क्रोकोडाइल, अंडा व कोटा द्वीप कांप मिट्टी से बने हैं।

(ब) पथरीले द्वीप (Rocky Islands)- ऐसे द्वीप अधिकांशत: पश्चिमी तट पर मिलते हैं। मुम्बई के निकट हैनरे, कैनरे, बुचर, ऐलीफैण्टा, पिजन द्वीप व काठियावाड़ तट पर पीरम, भैंसला आदि पथरीले द्वीप हैं।

2. दूरस्थ द्वीप (Distant Islands) -

इस वर्ग में वे द्वीप सम्मिलित हैं जो तट से काफी दूर स्थित हैं। संरचनात्मक दृष्टि से इन्हें भी दो उप-विभागों में बांटा जाता है -

(अ) पर्वतीय द्वीप (Hilly Islands)- इस वर्ग में वे द्वीप आते हैं जो डूबी हुई पर्वत श्रेणियों के समुद्रतल से ऊपर उठे हुए भागों से बने हैं। बंगाल की खाड़ी में स्थित अण्डमान निकोबार द्वीप समूह इसके उदाहरण हैं। अराकान योमा नामक श्रेणी म्यांमार (बर्मा) के दक्षिण में बंगाल की खाड़ी में डूब गई है। इसके जो ऊँचे भाग समुद्रतल से ऊपर रह गये हैं, उनसे ही अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह बने हैं। इनमें से कुछ द्वीपों की उत्पत्ति ज्वालामुखी उद्‌गारों के कारण हुई है। इस समूह में लगभग 200 छोटे-बड़े द्वीप सम्मिलित हैं, जो 350 किलोमीटर की दूरी तक फैले हैं। अण्डमान द्वीप समूह दस डिग्री जलमार्ग (Ten Degree Channel) द्वारा निकोबार द्वीप समूह से अलग हुए हैं।

(ब) प्रवाल द्वीप (Coral Islands)- अरब सागर में केरल के तट से पश्चिम की ओर स्थित लक्षद्वीप ऐसे ही द्वीप हैं। लगभग 21 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले इस समूह में लक्षद्वीप, अमीनदीवी, मिनीकॉय, कवरत्ती, इलायची द्वीप आदि सम्मिलित हैं। ये सभी प्रवाल द्वीप हैं जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पर्यटक आकर्षण के केन्द्र हैं।

द्वीपों का महत्व

1. सागरों से घिरा होने के कारण यहाँ की जलवायु सम रहती है।
2. अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण द्वीप पर्यटक आकर्षण के केन्द्र होते हैं।
3. मुख्य भू-भाग से अलग होने के कारण यहाँ जैविक विशिष्टता रहती है।
4. व्यापारिक जलयानों को ईंधन, संक्षिप्त विश्राम व संकटकालीन स्थिति में शरण देने में इनका विशेष योगदान रहता है।
5. हिन्द महासागर में विशिष्ट स्थिति के कारण इनका सुरक्षात्मक महत्त्व है। कुछ विदेशी ताकतों द्वारा हिन्द महासागर में अपना प्रभाव बढ़ाने के सन्दर्भ में इनका नौसैनिक महत्त्व और भी बढ़ गया है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में शैल संरचना आद्य कल्प, पुराण कल्प, द्रविड़ कल्प तथा आर्य कल्प में विभाजित।
2. उच्चावच व स्थलाकृतिक प्रदेशों की अनेक भिन्नताएँ - उत्तरी पर्वतीय प्रदेश, विशाल मैदान, थार का मरूस्थल, दक्षिण का पठार, तटीय मैदान व द्वीप समूह।
3. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश - पांच लाख वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत, 2400 किलोमीटर लम्बा तथा 250 से 400 किलोमीटर चौड़ा है।
4. हिमालय का भौगोलिक वर्गीकरण - महा हिमालय, लघु हिमालय व उप हिमालय । प्रादेशिक वर्गीकरण - हिमाचल, कुमाऊँ, नेपाल व असम हिमालय।
5. हिमालय के अनेक लाभ।
6. विशाल मैदान - सतलज-गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान; इस धनुषाकार मैदान की लम्बाई लगभग 2400 किलोमीटर व चौड़ाई 150 से 480 किलोमीटर तक है। भौगोलिक वर्गीकरण - भाबर, तराई, बांगर व खादर प्रदेश। प्रादेशिक वर्गीकरण - पंजाब-हरियाणा मैदान, गंगा व ब्रह्मपुत्र का मैदान तथा गंगा-ब्रह्मपुत्र का डेल्टा; विशाल मैदान का महत्व।
7. थार का मरूस्थल - विशाल शुष्क बालुका स्तूप से ढका मरूस्थल; शुष्कता के परिप्रेक्ष में इन्दिरा गांधी नहर का विशेष महत्व; थार के मरूस्थल का महत्व।
8. दक्षिण का पठार - लगभग 16लाख वर्ग किलोमीटर में विस्तृत 1800 किलोमीटर लम्बा तथा अधिकतम 1400 किलोमीटर चौड़ा विश्व के प्राचीनतम पठारों में से एक। (अ) मध्यवर्ती अग्रभूमि - अरावली श्रेणी, पूर्वी राजस्थान की उच्च भूमि, मालवा का पठार, बुन्देलखण्ड का पठार, बाघेलखण्ड का पठार, छोटा नागपुर का पठार, विन्ध्याचल-सतपुड़ा श्रेणियाँ। (ब) प्रायद्वीपीय पठार -

पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट, दक्षिणी पठार। दक्षिण के पठार की उपयोगिताएँ।

9. समुद्र तटीय मैदान – पश्चिमी तटीय मैदान अपेक्षाकृत संकड़े, उत्तरी भाग कोंकण व दक्षिणी भाग मलाबार तट। पूर्वी तटीय मैदान – चौड़े व क्रमिक, उत्तरी भाग उत्तरी सरकार व दक्षिणी भाग कारोमण्डल तट। तटीय मैदानों का महत्व।

10. द्वीप समूह – तटीय द्वीप – कांप मिट्टी के द्वीप व पथरीले द्वीप। दूरस्थ द्वीप – पर्वतीय व प्रवाल द्वीप।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. सतलज व काली नदियों के बीच जो भूआकृतिक भाग विस्तृत है, वह है –
   (अ) हिमाचल हिमालय (ब) उप हिमालय
   (स) कुमाऊँ हिमालय (द) नेपाल हिमालय।
2. व्हीलर द्वीप हैं –
   (अ) दूरस्थ द्वीप (ब) कांप मिट्टी के द्वीप
   (स) पर्वतीय द्वीप (द) प्रवाल द्वीप।
3. जहाँ मिट्टी का प्रतिवर्ष प्राकृतिक नवीनीकरण होता रहता है, वह है–
   (अ) भाबर प्रदेश (ब) तराई प्रदेश
   (स) बांगर प्रदेश (द) खादर प्रदेश।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

4. तल्ली किसे कहते हैं?
5. मर्ग कहाँ मिलते हैं?
6. कोंकण तट किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

7. ढांढ व तल्ली में क्या अन्तर है?
8. पूर्वी व पश्चिमी घाट में क्या अन्तर है?
9. भारत के पथरीले द्वीप कौनसे हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

10. भारत को स्थलाकृतिक प्रदेशों में विभक्त करते हुए हिमालय प्रदेश का विस्तृत वर्णन कीजिए।
11. भारत को स्थलाकृतिक प्रदेशों में विभक्त करते हुए विशाल मैदान का विस्तृत वर्णन कीजिए।
12. भारत को स्थलाकृतिक प्रदेशों में विभक्त करते हुए दक्षिण के पठार का विस्तृत वर्णन कीजिए।

आंकिक प्रश्न –

13. भारत के रूपरेखा मानचित्र में प्रमुख भूआकृतिक विभाग दर्शाइये।
14. दक्षिण के पठार के उपविभागों को रेखाचित्र द्वारा दर्शाइये।

उत्तरमाला – 1. स 2. ब 3. द

अध्याय -5

भारत का जल प्रवाह तन्त्र
(Drainage System of Bharat)

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास नदी-घाटियों में ही हुआ है। मानसूनी जलवायु के परिप्रेक्ष्य में नदियों का भारत में विशेष महत्व है। यहाँ के अधिकांश ऐतिहासिक व धार्मिक महत्व के नगर नदियों के किनारे ही बसे हैं। आज के प्रमुख औद्योगिक व व्यापारिक केन्द्र भी नदियों के किनारे विकसित हुए हैं। जल, जल-विद्युत, सिंचाई, आन्तरिक जल-परिवहन, औद्योगिक उपयोग आदि की सुविधाओं के कारण भारत के आर्थिक विकास में नदियों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय जल-प्रवाह के अध्ययन से पूर्व इससे सम्बन्धित कुछ संकल्पनाओं की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है।

मार्ग परिवर्तन

भूगर्भशास्त्री मानते हैं कि भारत की कई नदियों के मार्ग में समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं। इनमें सबसे रोचक परिवर्तन सिन्धु-ब्रह्मपुत्र प्रवाह-तन्त्र से सम्बन्धित है। यह नदी-तन्त्र, जिसे शिवालिक नदी भी कहा गया है, असम के उत्तरी पूर्वी भाग से निकलकर हिमालय के समानान्तर पश्चिम की ओर बहती हुई सुलेमान-किरथर श्रेणियों तक जाकर दक्षिण की ओर प्रवाहित होती हुई अरब सागर में गिरती थी। बाद की भौगर्भिक घटनाओं के परिणामस्वरूप इस इण्डो ब्रह्म या शिवालिक नदी का उत्तर-पश्चिमी भाग सिन्धु के रूप में तथा पूर्वी भाग ब्रह्मपुत्र व अन्य नदियों के रूप में अलग हो गया। इसी प्रकार सरस्वती नदी का प्रवाह भी कालान्तर में लुप्त हो गया है। ब्रह्मपुत्र, गंगा, कोसी आदि नदियों ने पिछली दो शताब्दियों में अपने मार्ग में कई बार परिवर्तन किये हैं।

जल विभाजक

किसी प्रदेश के जल प्रवाह को विशिष्ट दिशाओं में विभाजित करने वाले क्षेत्र को **जल विभाजक** कहते हैं। चित्र संख्या 5.1 में खण्डित रेखा जल-विभाजक रेखा है जो भारत को तीन प्रमुख जल-प्रवाह क्षेत्रों में विभाजित करती है - (1) अरब सागर का प्रवाह क्षेत्र (2) बंगाल की खाड़ी का प्रवाह क्षेत्र एवं (3) अन्तः प्रवाह क्षेत्र। यह जल-विभाजक रेखा हिमालय के निकट मानसरोवर झील से प्रारम्भ होकर कामेत पर्वत होती हुई शिमला के पूर्व से अरावली के साथ-साथ उदयपुर तक जाती है। यहाँ से दक्षिण में इन्दौर के निकट से यह जल-विभाजक रेखा नर्मदा व ताप्ती की घाटियों को अरब सागरीय प्रवाह क्षेत्र में सम्मिलित करती हुई पश्चिमी घाट के सहारे-सहारे होकर कन्याकुमारी तक जाती है। इस रेखा के जिस ओर का जल अरब सागर में प्रवाहित

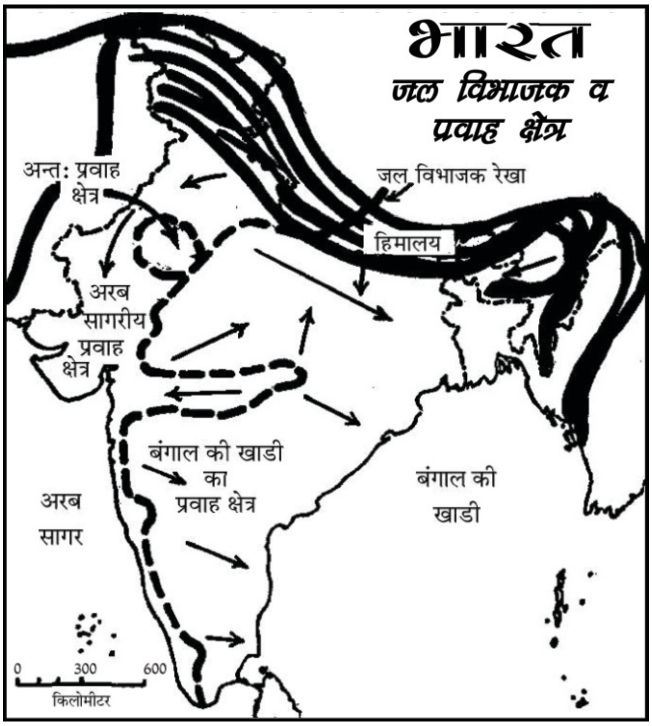

चित्र 5.1 - भारत : जल विभाजक व प्रवाह क्षेत्र

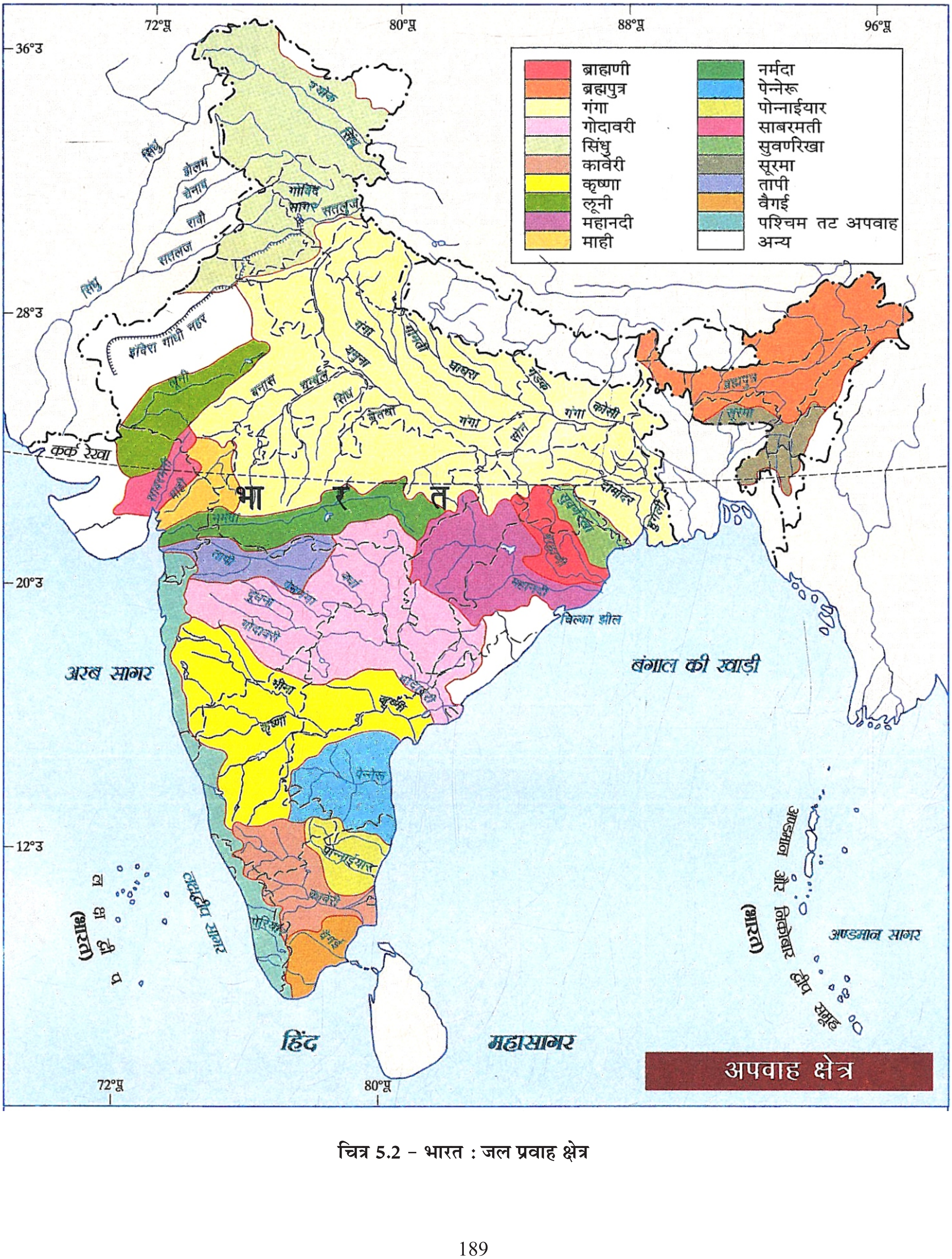

चित्र 5.2 – भारत : जल प्रवाह क्षेत्र

होता है, उसे **अरब सागरीय प्रवाह क्षेत्र** कहते हैं। जिस क्षेत्र का जल बंगाल की खाड़ी में गिरता है, उसे **बंगाल की खाड़ी का प्रवाह क्षेत्र** कहते हैं। राजस्थान के उत्तर-मध्य भाग का कुछ क्षेत्र ऐसा है जहाँ से जल किसी खुले समुद्र की ओर प्रवाहित नहीं होता, इसे **अन्त: प्रवाह क्षेत्र** कहा जाता है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत के प्रवाह तन्त्र को तीन मुख्य भागों में बांटा जाता है-

(1) हिमालयी प्रवाह तन्त्र या उत्तरी भारत की नदियाँ,
(2) प्रायद्वीपीय प्रवाह तन्त्र अथवा दक्षिण भारत की नदियाँ तथा
(3) अन्त: प्रवाह तन्त्र।

हिमालयी प्रवाह तन्त्र या उत्तर भारत की नदियाँ (Drainage System of Himalayas or North India)

उत्तर भारत की अधिकांश नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलती हैं। हिमालय से निकलने वाली नदियाँ नित्यवाही होती हैं, क्योंकि शुष्क काल में भी इनमें हिम का पिघला हुआ जल आता रहता है। इन नदियों को तीन प्रवाह-क्रमों में विभाजित किया जाता है -

(1) सिन्धु अपवाह,
(2) गंगा अपवाह तथा
(3) ब्रह्मपुत्र अपवाह।

1. सिन्धु अपवाह

इसके अन्तर्गत सिन्धु व उसकी सहायक नदियाँ - सतलज, व्यास, रावी, चिनाब व झेलम सम्मिलित हैं। इसका जलग्रहण क्षेत्र लगभग साढ़े ग्यारह लाख वर्ग किलोमीटर है, जिसमें से सवा तीन लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र भारत में है तथा शेष पाकिस्तान में चला गया है। पाकिस्तान के साथ हुए समझौते के अन्तर्गत भारत इसके 42 लाख घन मीटर जल का उपयोग कर सकता है। इसका ऊपरी प्रवाह क्षेत्र भारत में है किन्तु इसका निचला प्रवाह क्षेत्र पाकिस्तान में है। इस क्रम की सभी नदियाँ अपनी ऊपरी घाटियों में गॉर्ज (Gorge) बनाती हैं। सतलज नदी मानसरोवर झील के निकट राक्षस ताल से निकलकर पर्वतीय क्षेत्र को पार करने के बाद पंजाब में रोपड़ के निकट मैदानी भाग में प्रवेश करती है। वहीं भाखड़ा बाँध बनाया गया है।

2. गंगा अपवाह

इसका कुल अपवाह क्षेत्र लगभग 8.6लाख वर्ग किलोमीटर है। गंगा नदी का उद्गम गंगोत्री हिमनद से है। देव प्रयाग में अलकनंदा व भागीरथी जल धाराएँ मिलकर गंगा नदी बनाती हैं। यह हरिद्वार के निकट मैदानी भाग में प्रवेश करती है। विंध्याचल पर्वतों से निकलकर चम्बल, बेतवा, केन आदि अपनी सहायक नदियों सहित यमुना में मिलती हैं। यमुना नदी इलाहाबाद के निकट गंगा में मिलती है, जो **संगम** या **प्रयाग** के नाम से जाना जाता है। उत्तर से रामगंगा, गोमती, घाघरा (सरयू), गंडक, कोसी व महानन्दा तथा दक्षिण से सोन आदि नदियों को मिलाकर गंगा फरक्का के निकट बांग्लादेश में प्रवेश करती है। यहाँ इसे पद्मा नदी कहा जाता है, जो बंगाल की खाड़ी में गिरने से पहले ब्रह्मपुत्र से मिलकर डेल्टा बनाती है। कोसी नदी में मार्ग परिवर्तन व बाढ़ की घटनाएँ अक्सर होने से काफी धन-जन की हानि होती है, अत: इसे **बिहार का शोक** कहते हैं (चित्र 5.2)।

3. ब्रह्मपुत्र अपवाह

ब्रह्मपुत्र नदी मानसरोवर झील के निकट कैलाश पर्वत से निकलकर पूर्व में बहती हुई हिमालय के पूर्वी छोर तक जाती है। यहाँ इसे **सांपो नदी** कहते हैं। यहाँ से दक्षिण तथा फिर पश्चिम में मुड़कर यह नदी असम में बहती हुई बांग्लादेश में जाकर गंगा में मिल जाती है। इसकी कई सहायक नदियाँ जैसे दिवांग, लुहित आदि इसके विपरीत दिशा से आकर मिलती है। इसके दाहिने किनारे पर मिलने वाली सहायक नदियाँ भारेली (Bhareli), सबन्सीरी (Sabansiri), मानस (Manas) आदि हैं। दिवांग (Divang), लुहित (Luhit), कपिली (Kapili), धनसिरि (Dhansiri), बूरी दिहिंग (Buri Dihing) आदि नदियाँ बाएँ किनारे पर मिलती हैं। इसके प्रवाह में मिट्टी की अधिकता होती है। डेल्टाई भाग में गंगा-ब्रह्मपुत्र नदियाँ मधुमती, पद्मा, सरस्वती, हुगली, भागीरथी आदि जलधाराओं में बंट जाती हैं।

प्रायद्वीपीय प्रवाह तन्त्र या दक्षिण भारत की नदियाँ (Peninsular Drainage or Rivers of Southern Bharat)

1. बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ

इस क्रम में दामोदर, स्वर्णरेखा, ब्राह्मणी, महानदी, गोदावरी, भीमा, कृष्णा, तुंगभद्रा, पैनर, पालार, कावेरी, वेगाई आदि नदियाँ सम्मिलित हैं। प्रायद्वीपीय पठार के पूर्व की ओर झुका होने के कारण ये नदियाँ पूर्व में बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। प्रायद्वीपीय पठार की अधिकांश नदियाँ पश्चिमी घाट में जन्म लेती है तथा जल प्रपात बनाती हैं। दामोदर नदी बाढ़ के प्रकोप व मार्ग परिवर्तन के लिये कुख्यात है, अत: इसे **बंगाल का शोक** कहते हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा व कावेरी नदियाँ पूर्वी तट पर डेल्टा बनाती है।

2. अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ

इस क्रम में नर्मदा व ताप्ती सबसे लम्बी व प्रमुख नदियाँ हैं। नर्मदा मैकाल पर्वत में अमर कण्टक चोटी से निकलकर संकीर्ण भ्रंश धाटी में बहती हुई कई प्रपात बनाती है। कपिल धारा, दूधधारा, सहस्त्र धारा, धुंआधार, घाघरी व हिरन प्रपात प्रसिद्ध हैं। नर्मदा के समानान्तर दक्षिण में ताप्ती नदी बहती है। इनके अतिरिक्त लूनी, साबरमती, माही, सूकड़ी, बांडी, शरावती आदि नदियाँ भी अरब सागर में गिरती हैं।

अन्तः प्रवाह क्षेत्र
(Inland Drainage)

भारत में अन्तः प्रवाह क्षेत्र अधिक विस्तृत नहीं है। इसका विस्तार केवल राजस्थान में सांभर झील से हरियाणा में घग्घर प्रवाह तक है। इस क्षेत्र की सभी नदियाँ मौसमी हैं, जो या तो सांभर व अन्य छोटी-छोटी झीलों में गिरकर समाप्त हो जाती है, या मरूस्थल में समा जाती हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में मानसूनी जलवायु के परिप्रेक्ष्य में नदियों का विशेष महत्व है।
2. कई भारतीय नदियों में मार्ग परिवर्तन होते रहे हैं।
3. जल विभाजक भारतीय प्रवाह तन्त्र को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित करता है - हिमालयी, प्रायद्वीपीय एवं अन्तः प्रवाह तन्त्र।
4. हिमालयी प्रवाह तन्त्र के मुख्य घटक - सिन्धु अपवाह, गंगा अपवाह तथा ब्रह्मपुत्र अपवाह।
5. प्रायद्वीपीय प्रवाह तन्त्र के मुख्य घटक - बंगाल की खाड़ी का अपवाह, अरब सागरीय अपवाह। अन्तः प्रवाह तन्त्र - सांभर-घग्घर क्षेत्र।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. प्रायद्वीपीय पठार के झुकाव का प्रभाव जिस पहलू में देखने को मिलता है, वह है -
   (अ) संरचना (ब) पठार की आयु
   (स) जल-प्रवाह की दिशा (द) स्थलाकृतियाँ।
2. निम्नांकित नदियों के समूह में से उस समूह का चयन कीजिये जिसकी समस्त नदियाँ बंगाल की खाड़ी में गिरती है -
   (अ) महानदी, कृष्णा, कावेरी एवं नर्मदा
   (ब) गंगा, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा एवं ताप्ती
   (स) गंगा, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा एवं कावेरी
   (द) गंगा, गोदावरी, कृष्णा एवं साबरमती।
3. निम्नांकित नदियों के समूह में से उस समूह का चयन कीजिये जिसकी समस्त नदियाँ डेल्टा बनाती हैं -
   (अ) कावेरी, कृष्णा, नर्मदा तथा ताप्ती।
   (ब) गोदावरी, कृष्णा, कावेरी तथा गंगा
   (स) महानदी, कृष्णा, कावेरी तथा नर्मदा
   (द) गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा नर्मदा।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न -

4. ताप्ती किस अपवाह का अंग है?
5. जल विभाजक किसे कहते हैं?
6. घग्घर नदी किस प्रवाह तन्त्र का अंग है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न -

7. गंगा के बाएँ किनारे पर मिलने वाली प्रमुख सहायक नदियों के नाम बताइये।
8. हिमालय से निकलने वाली नदियाँ अधिक उपयोगी क्यों हैं?
9. अन्त प्रवाह क्षेत्र का आशय उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न -

10. भारतीय प्रवाह तन्त्र का विस्तार से वर्णन कीजिये।
11. हिमालयी व प्रायद्वीपीय प्रवाह तन्त्र का तुलनात्मक विवरण दीजिये।

आंकिक प्रश्न -

12. भारत के रूपरेखा मानचित्र में प्रमुख नदियों के मार्ग दर्शाइये।

उत्तरमाला - 1. स 2. स 3. ब

अध्याय -6

भारत की जलवायु
(Climate of Bharat)

अत्यधिक विस्तार व भू-आकारों की भिन्नता के कारण हमारे देश के विभिन्न भागों में जलवायु सम्बन्धी विविधताएँ पाई जाती हैं। किन्तु मानसूनी प्रभाव के कारण देश की जलवायु सम्बन्धी विविधताओं में भी एकता दृष्टिगोचर होती है। इसी कारण भारत की जलवायु को **मानसूनी जलवायु** कहते हैं।

भारत की जलवायु को अनेक भौगोलिक कारक प्रभावित करते हैं। हमारे देश की जलवायु को भलिभांति समझने के लिये इन सभी कारकों का अध्ययन आवश्यक है।

जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक

1. समुद्र तल से ऊँचाई (Elevation above Sea Level) - इसका तापमान से विपरीत सम्बन्ध है। सामान्यत: प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1° से. तापमान कम होता जाता है। इसी कारण हिमालय के उच्च ढालों पर हमेशा बर्फ जमी रहती है। एक ही अक्षांश पर स्थित होते हुए भी ऊँचाई की भिन्नता के कारण ग्रीष्मकालीन औसत तापमान मसूरी में 24° से., देहरादून में 32° से. तथा अम्बाला में 40° से. रहता है।

2. समुद्र से दूरी (Distance from Sea) - समुद्र का नम व सम प्रभाव पड़ता है। इसलिये समुद्र तट पर स्थित नगरों में तापान्तर अति न्यून रहता है तथा जलवायु नम रहती है। जैसे-जैसे समुद्र से दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे विषमता अर्थात तापान्तर एवं शुष्कता बढ़ती जाती है। पश्चिमी तटीय क्षेत्रों में वर्षा का वार्षिक औसत 200 से.मी. से अधिक रहता है, जबकि जैसलमेर में यह औसत घटते-घटते 5 से.मी. रह जाता है।

3. भूमध्य रेखा से दूरी (Distance from Equator) - यह तापमान को प्रभावित करने वाला आधारभूत कारक है। बढ़ते हुए अक्षांश के साथ तापमान में कमी आती जाती है, क्योंकि सूर्य की किरणों का तिरछापन बढ़ता जाता है। इससे सौर्यताप की मात्रा प्रभावित होती है। इसी कारण हिमालय के दक्षिणी ढालों पर हिमरेखा की ऊँचाई अधिक है किन्तु तिब्बत की ओर अर्थात उत्तरी ढालों पर इसकी ऊँचाई कम है। कर्क रेखा भारत के लगभग मध्य से गुजरती है। अत: उत्तरी भारत शीतोष्ण प्रदेश में तथा दक्षिणी भारत उष्ण प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है।

4. पर्वतों की स्थिति (Location of Mountains) - जलवायु को प्रभावित करने वाला यह भी एक महत्वपूर्ण कारक है। पश्चिमी घाट की स्थिति प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिमी तट के निकट है। इस कारण दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से इनके पश्चिमी ढालों पर प्रचुर वर्षा होती है, जबकि इसके विपरीत ढाल एवं प्रायद्वीपीय पठार दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के वृष्टि-छाया क्षेत्र में आते हैं।

5. पर्वतों की दिशा (Direction of Mountains) - हिमालय पर्वत की स्थिति व दिशा के कारण ही भारत की जलवायु सौम्य है। हिमालय साइबेरियाई ठण्डी पवनों से हमारे देश की रक्षा करते हैं। साथ ही ग्रीष्मकालीन मानसून को रोककर भारत में ही वर्षा करने के लिये बाध्य करते हैं। पश्चिमी राजस्थान में शुष्कता का एक कारण यह भी है कि अरावली श्रेणी की दिशा दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के समानान्तर है। अत: यह पवनों के मार्ग में अवरोध उपस्थित नहीं करती।

6. पवनों की दिशा (Direction of Winds) - पवनें अपने उत्पत्ति के स्थान एवं मार्ग के गुण लाती हैं। ग्रीष्मकालीन मानसून हिन्द महासागर से चलने के कारण उष्ण व आर्द्र होते हैं, अत: वर्षा करते हैं। शरदकालीन मानसून स्थली व शीत क्षेत्रों से चलते हैं, अत: सामान्यत: शीत व शुष्कता लाते हैं।

7. उच्च स्तरीय वायु संचरण (Upper Air Circulation) - नवीनतम शोध के अनुसार उच्चस्तरीय वायु संचरण का मानसून से गहरा सम्बन्ध है। भारत की जलवायु मानसूनी होने से काफी हद तक क्षोभमण्डल की गतिविधियों से प्रभावित होती है। मानसून की कालिक व मात्रात्मक अनिश्चितता भी उच्चस्तरीय वायु संचरण की दशाओं पर निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त मेघाच्छादन की मात्रा, वनस्पतिक आवरण, समुद्री धारा आदि भी भारत के जलवायु को आंशिक रूप से प्रभावित करती हैं।

जलवायु परिस्थितियाँ

भारत सरकार के मौसम विभाग ने मानसून काल को ध्यान में रखते हुए वर्ष को निम्नांकित ऋतुओं में बांटा है –

(अ) **उत्तर-पूर्वी या शीतकालीन मानसून काल –**

1. **शीत ऋतु** – दिसम्बर से फरवरी तक।
2. **ग्रीष्म ऋतु** – मार्च से मध्य जून तक।

(ब) **दक्षिणी-पश्चिमी या ग्रीष्मकालीन मानसून काल –**

3. **वर्षा ऋतु** – मध्य जून से मध्य सितम्बर तक।
4. **शरद ऋतु** – मध्य सितम्बर से दिसम्बर तक।

(अ) उत्तर-पूर्वी या शीतकालीन मानसून काल

1. शीत ऋतु

भारत में शीत ऋतु दिसम्बर से फरवरी तक रहती है। इस ऋतु में आकाश स्वच्छ रहता है। इस ऋतु की यह विशेषता है कि इसमें हवाऐं धीमी गति से चलती हैं तथा इनमें आर्द्रता की कमी रहती है।

तापमान – इस ऋतु में उत्तर से दक्षिण की ओर तापमान में वृद्धि होती जाती है। उत्तरी भारत में औसत तापमान 8° से. से 21° से. तथा दक्षिणी भारत में औसत तापमान 21° से. से 26° से. तक रहते हैं। पश्चिमी राजस्थान में रात के समय विकिरण के कारण तापह्रास तीव्र गति से होता है इसलिये इन क्षेत्रों में अनेक बार तापमान हिमांक से नीचे गिर जाता है। हिमालय के उच्च पर्वतीय ढालों तथा जम्मू-कश्मीर, पंजाब व हिमाचल प्रदेश में शीतकालीन तापमान न्यूनतम रहते हैं।

वायुदाब – भारतीय उपमहाद्वीप में सामान्यत: सर्दियों में तापमान काफी कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप स्थल पर उच्च दाब विकसित होता है। सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप के वायुदाब तन्त्र में सर्वाधिक वायुदाब का एक केन्द्र बेकाल झील के पास, दूसरा पाकिस्तान में पेशावर के निकट तथा तीसरा उत्तरी पश्चिमी राजस्थान में विकसित होता है। इस ऋतु में जलीय क्षेत्र अपेक्षाकृत उष्ण रहते हैं, अत: हिन्द महासागर में निम्न दाब विकसित हो जाता है।

पवनें – पवनें उच्च दाब से निम्न दाब की ओर चलती हैं। अत: भारत में इस ऋतु में पवनें स्थल से जल की ओर चलने लगती है। ये पवनें भारत में उत्तर-पश्चिमी दिशा से गंगा मैदान की ओर चलती है। मैदानी भाग को पार करने के बाद ये पवनें उत्तर-पूर्वी दिशा से चलने लग जाती है। इन पवनों को **उत्तरी-पूर्वी मानसून** के नाम से जाना जाता है। चूंकि पवनों का यह विशिष्ट क्रम शीत ऋतु में विकसित होता है, इसलिये इन्हें

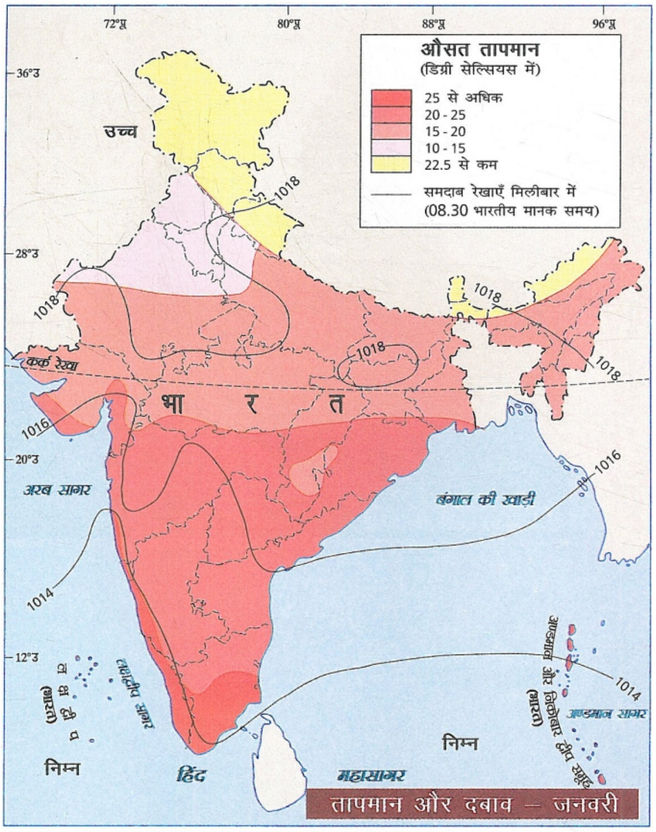

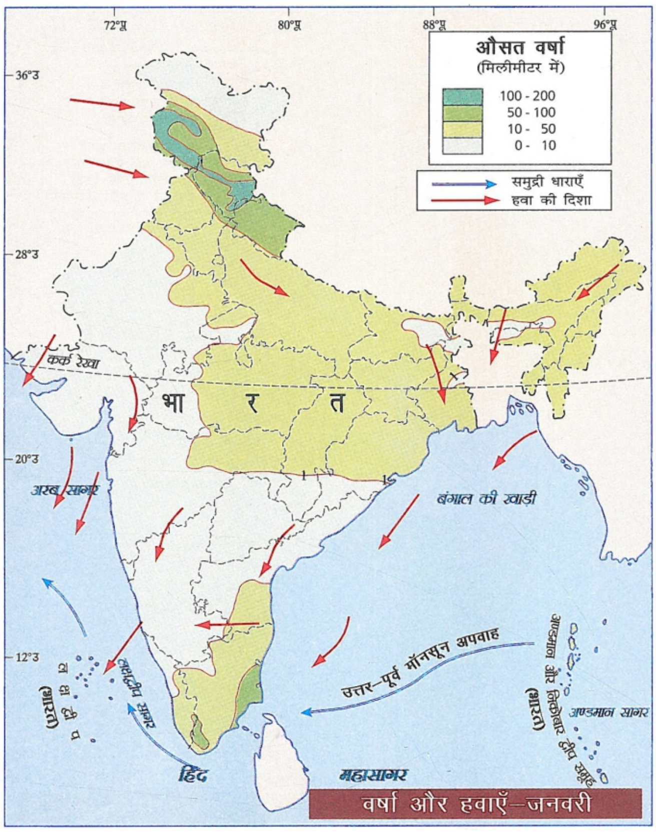

चित्र 6.1 – भारत : जनवरी का तापमान, पवनें, वर्षा व समदाब रेखाएँ

शीतकालीन मानसून के नाम से भी जाना जाता है। इस ऋतु में पश्चिमी यूरोप में भी जिह्वा के आकार का उच्च दाब क्षेत्र विकसित हो जाता है। यह नुकीला उच्च दाब क्षेत्र वहाँ प्रचलित पछुआ पवनों व उनसे सम्बन्धित चक्रवातों को दो शाखाओं में विभक्त कर देता है (चित्र संख्या 6.1)। इसमें से एक शाखा भूमध्यसागर, इज़राइल, सीरिया, जॉर्डन, ईराक, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान व पाकिस्तान होती हुई भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग तक पहुँचती है।

वर्षा – स्थल से जल की ओर चलने के कारण इस ऋतु में पवनें अधिकांशतः शुष्क होती हैं। परिणामस्वरूप इन पवनों से भारत में बहुत कम वर्षा होती है। इस ऋतु में भूमध्य सागर से जन्म लेकर आने वाले चक्रवातों से थोड़ी वृष्टि (Precipitation) जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तरांचल, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में होती है। इस वर्षा को **मावट** कहते हैं। यह फसल के लिये अत्यन्त लाभप्रद होती है। उत्तरी-पूर्वी मानसून से थोड़ी सी वर्षा उत्तरी-पूर्वी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में भी होती है। जैसे-जैसे ये पवनें आगे बढ़ती हैं, वैसे-वैसे ये शुष्क होती जाती हैं। किन्तु बंगाल की खाड़ी के ऊपर चलते समय ये पवनें पुनः आर्द्रता ग्रहण कर लेती हैं। इसका लाभ तमिलनाडु को शीतकालीन वर्षा के रूप में मिलता है। अतः शीतकालीन वर्षा का अधिकतम भाग तमिलनाडु को प्राप्त होता है। इन परिस्थितियों को चित्र संख्या 6.1 में दर्शाया गया है।

2. ग्रीष्म ऋतु

इसकी अवधि मार्च से मध्य जून तक मानी जाती है। इस ऋतु में मई व जून सर्वाधिक गर्म महीने होते हैं। यह ऋतु शुष्क एवं गर्म होती है। इस ऋतु में प्रायः धूलभरी आंधियाँ चला करती हैं। इन गर्म व शुष्क हवाओं को **लू** कहते हैं। इन तीव्रगामी पवनों के कारण कई बार काफी मात्रा में धूलिकण उड़कर आकाश में छा जाते हैं जिससे आकाश का रंग पीला हो जाता है। उत्तरी व पश्चिमी राजस्थान में इस ऋतु में आंधियाँ प्रायः प्रतिदिन चलती रहती हैं (चित्र 6.2)।

तापमान – मार्च के पश्चात् सूर्य की स्थिति उत्तरायण होने लगती है जिसके कारण भारत में तापमान धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। इस अवधि में तापमान बढ़ते-बढ़ते जून तक उत्तरी-पश्चिमी भारत में 45° सेल्शियस से भी अधिक हो जाते हैं। उत्तरी भारत के वृहत् मैदानी क्षेत्र में भी तापमान काफी उच्च रहते हैं। तटीय क्षेत्रों की ओर तापमान अपेक्षाकृत कम रहते हैं। अतः दक्षिणी भारत में सागरीय प्रभाव के कारण तापमान उत्तरी भारत की अपेक्षा कम रहते हैं। हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में भी समुद्रतल से ऊँचाई के कारण तापमान काफी कम रहते हैं। इसीलिये इस क्षेत्र में कई पर्वतीय नगर विकसित हुए हैं, जैसे – शिमला, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग तथा अरावली पर्वत श्रेणी में माउण्ट आबू आदि।

वायुदाब – ग्रीष्म ऋतु के उच्च तापमान के कारण उत्तरी भारत में निम्न वायुदाब विकसित हो जाता है। सर्वाधिक तापमान थार के मरूस्थल में

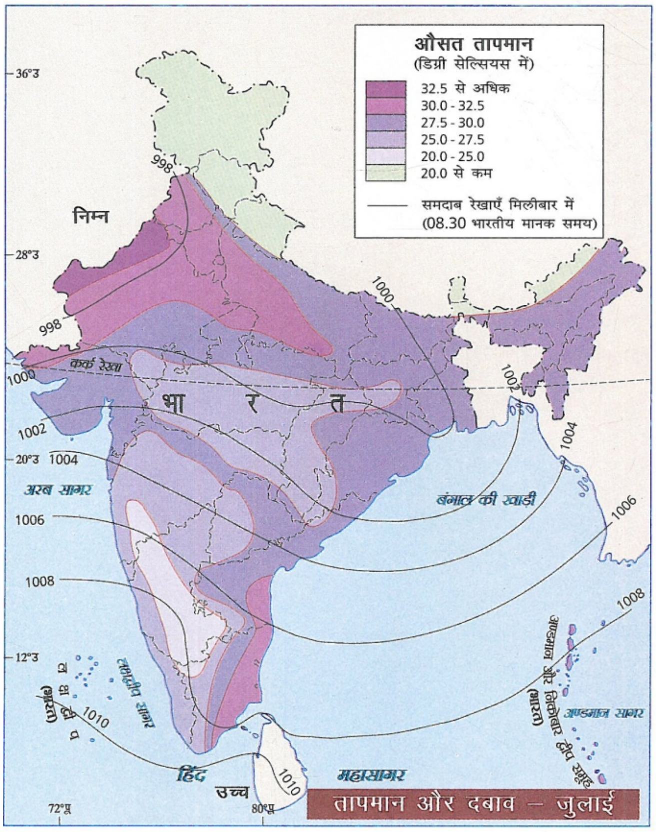

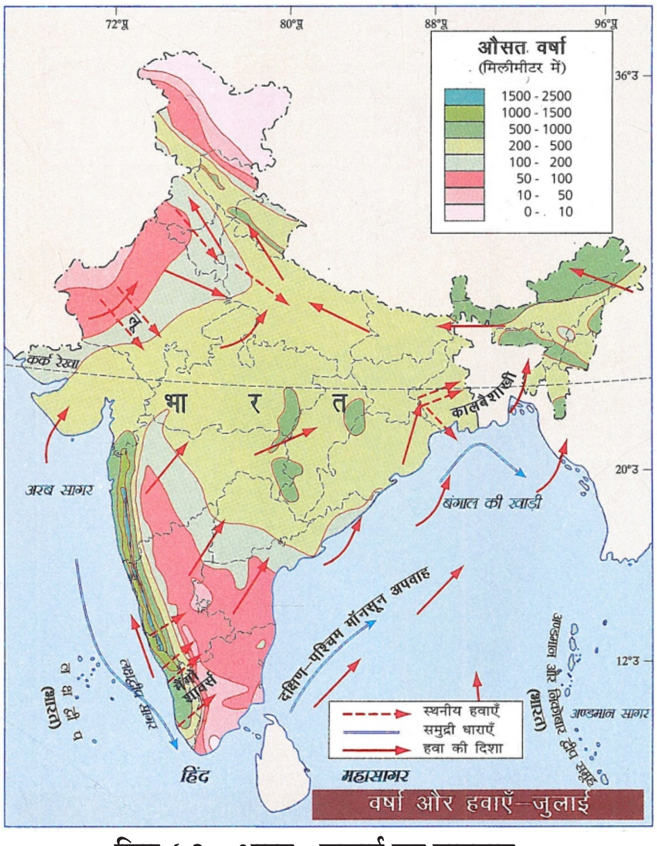

चित्र 6.2 – भारत : जुलाई का तापमान, पवनें, वर्षा व समदाब रेखाएँ

होने के कारण न्यूनतम वायुदाब भी इसी क्षेत्र में विकसित होता है। दक्षिण भारत में तापमान अपेक्षाकृत कम रहने के कारण वायुदाब अधिक रहता है। अतः इस ऋतु में सर्वाधिक वायुदाब हिन्द महासागर के जलीय क्षेत्र में पाया जाता है।

पवनें – इस ऋतु में उत्तरी भारत में तापमान तेजी से बढ़ते हैं जिसके कारण वायुदाब तेजी से कम होने लगता है। यह न्यून वायुदाब चारों ओर से पवनों को आकर्षित करता है। अतः इस ऋतु में धूलभरी, गर्म और शुष्क हवाएँ चलती हैं जिन्हें **लू** कहते हैं। राजस्थान, हरियाणा तथा पंजाब में इन धूलभरी आंधियों का सर्वाधिक प्रभाव रहता है। इन आंधियों से कई बार स्थानीय वर्षा हो जाती है। तटीय क्षेत्रों में तथा दक्षिणी भारत में भी पवनों का क्रम जल से स्थल की ओर होने लगता है। अतः दक्षिणी भारत में इस ऋतु में थोड़ी वर्षा हो जाती है जिसे यहाँ **आम की बौछार (Mango Showers)** तथा विशेष रूप से कहवा उत्पादक क्षेत्रों में **फूलों की बौछार** के नाम से जाना जाता है।

(ब) दक्षिणी-पश्चिमी या ग्रीष्मकालीन मानसून काल

3. वर्षा ऋतु

इस ऋतु की अवधि का विस्तार मध्य जून से मध्य सितम्बर तक होता है। कृषि प्रधान भारत के सन्दर्भ में इस ऋतु का सर्वाधिक महत्व है क्योंकि इस ऋतु में देश के अधिकांश भागों में व्यापक वर्षा होती है (चित्र 6.3)।

वायुदाब, पवनें तथा वर्षा – ग्रीष्म ऋतु के अन्तर्गत दिये गये विवरण में तापमान, वायुदाब एवं पवनों की दिशा के बारे में स्पष्ट किया गया था। ये परिस्थितियाँ भारत में जल से स्थल की ओर चलने वाली पवनों के सूत्रपात का आधार बनती हैं। इस ऋतु में भूमध्य रेखा के दक्षिण में चलने वाली दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवनें उत्तरी-पश्चिमी भारत में विकसित न्यून दाब की ओर आकर्षित होकर भूमध्य रेखा को पार करती हैं। भूमध्य रेखा को पार करने पर फैरल नियम के अनुसार ये पवनें दिशा बदलकर अपने दाहिनी ओर मुड़ जाती हैं। अतः इनकी दिशा दक्षिणी-पश्चिमी हो जाती है इसलिये इन्हें **दक्षिणी-पश्चिमी मानसून** के नाम से जाना जाता है। जल से स्थल की ओर चलने के कारण ये पवनें अत्यन्त आर्द्र होती हैं। इसीलिये इनसे भारत में व्यापक वर्षा होती है। भारत में कुल वार्षिक वर्षा का लगभग 90 प्रतिशत भाग इसी ऋतु में प्राप्त होता है। प्रायद्वीपीय भारत की स्थिति के कारण ग्रीष्मकालीन मानसूनी पवनें दो शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं –

चित्र 6.3 – भारत : ग्रीष्मकालीन पवनें व वर्षा

(क) अरब सागरीय मानसून तथा
(ख) बंगाल की खाड़ी का मानसून।

(क) अरब सागरीय मानसून – मानसून की यह शाखा अत्यन्त वेगवती होती है। पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढालों पर इसकी तीव्रता के कारण वर्षा का प्रारम्भ घनघोर रूप से होता है। इसलिये प्रथम घनघोर वर्षा को **मानसून का फटना (Burst of Monsoon)** कहते हैं। इसका वेग पश्चिमी घाट तथा पश्चिमी तटीय मैदान में ही समाप्त हो जाता है। पश्चिमी तट पर लगभग 250 से.मी. तथा पश्चिमी घाट के पवनोन्मुखी उच्च ढालों पर 500 से.मी. से भी अधिक वर्षा होती है। पश्चिमी घाट पार करने पर न केवल इनमें जल की कमी हो जाती है बल्कि पूर्वी ढालों पर उतरते समय गर्म होकर ये पवनें शुष्क भी हो जाती हैं। अतः वृष्टिछाया प्रभाव के कारण पश्चिमी घाट के पूर्वी ढालों और दक्षिण के पठार पर कम वर्षा होती है। पूर्व में चेन्नई तक पहुँचने पर इनसे 38से.मी. से भी कम वर्षा होती है। इस प्रकार दक्षिण के पठार का पूर्वी भाग वृष्टि छाया प्रभाव में रहता है। पश्चिमी घाट को पार करने के बाद अरब सागरीय मानसून की एक शाखा तो चेन्नई की ओर जाती है तथा दूसरी शाखा विन्ध्याचल व सतपुड़ा श्रेणियों के मध्य से होकर छोटा नागपुर के पठार तक जाती है। इस मार्ग में वर्षा का औसत 150 से.मी. से प्रारम्भ होकर दूरी बढ़ने के साथ-साथ 100 से.मी. तक रह जाता है। इसी मानसून की तीसरी शाखा कच्छ, राजस्थान, हरियाणा और पंजाब को पार करके पश्चिमी हिमालय तक पहुँच कर हिमाचल प्रदेश में वर्षा करती है। इन पवनों से राजस्थान को अधिक लाभ नहीं मिलता है क्योंकि ये पवनें अरावली पर्वत श्रृंखला के समानान्तर गुजर जाती हैं। खम्भात की खाड़ी के क्षेत्र में औसत रूप से 50 से.मी. वर्षा की मात्रा से दूरी बढ़ने के साथ-साथ वर्षा की मात्रा कम होती जाती है।

(ख) बंगाल की खाड़ी का मानसून – बंगाल की खाड़ी से प्रारम्भ होकर इसकी एक शाखा हिमालय के पूर्वी भाग में काफी वर्षा करती है। यहाँ पर खासी की पहाड़ियों में स्थित मॉसिनराम नामक स्थान पर 1300 से.मी. से भी अधिक वर्षा होती है। वर्षा का यह औसत विश्व में सर्वाधिक है। इस मानसून की एक अन्य शाखा पूर्व में असम की ओर जाती है, जो ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में काफी वर्षा करती है। यह औसत 200 से.मी. से अधिक रहता है। इस मानसून की तीसरी उपशाखा हिमालय पर्वत के समानान्तर पश्चिम की ओर क्रमशः बिहार, झारखण्ड,

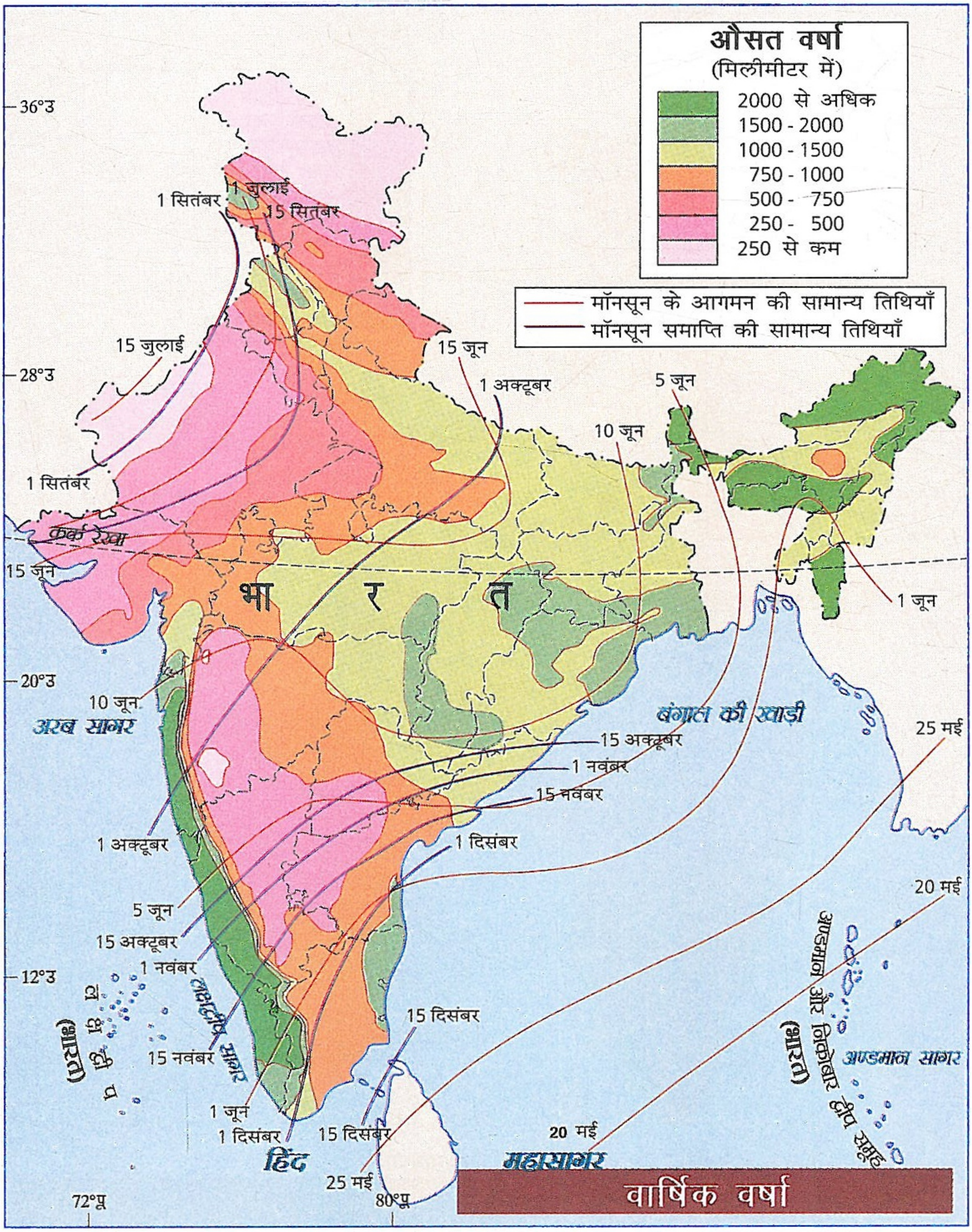

चित्र 6.4 – भारत : वार्षिक वर्षा

होती है। जब वर्षा तेज होती है तो वर्षा का जल मिट्टी का अपरदन कर उसे कृषि के अयोग्य बना देता है।

6. शीत ऋतु प्राय: शुष्क होती है। देश की 10 प्रतिशत वर्षा शरदकालीन मानसून तथा चक्रवातों से प्राप्त होती है।

7. भारत में वर्षा के दिनों की संख्या बहुत कम है, जैसे – कोलकाता में 118दिन, चेन्नई में 55 दिन, मुम्बई में 75 दिन आदि। अत: सिंचाई की आवश्यकता होती है।

8. वर्षा में अनियमितता बहुत है। राजस्थान के जिन भागों में वर्षा केवल 12 से.मी. होती है वहाँ वर्षा की अनियमितता 30 प्रतिशत होती है। परन्तु कानपुर में 20 प्रतिशत तथा कलकत्ता में 11 प्रतिशत अनियमितता का औसत रहता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में मानसूनी जलवायु पाई जाती है।
2. भारत के जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक – समुद्रतल से ऊँचाई, समुद्र से दूरी, भूमध्य रेखा से दूरी, पर्वतों की स्थिति, पर्वतों की दिशा, पवनों की दिशा, उच्च स्तरीय वायु संचरण आदि।
3. जलवायु परिस्थितियाँ – (अ) उत्तरी-पूर्वी या शीतकालीन मानसून काल (शीत व ग्रीष्म ऋतु), (ब) दक्षिणी-पश्चिमी या ग्रीष्मकालीन मानसून काल (वर्षा ऋतु व शरद ऋतु)।
4. वर्षा का वितरण अत्यन्त असमान; वर्षा के वितरण के आधार पर प्रमुख क्षेत्र – (i) अधिक वर्षा वाले क्षेत्र, (ii) साधारण वर्षा वाले क्षेत्र, (iii) न्यून वर्षा वाले क्षेत्र तथा (iv) अपर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्र।
5. मानसूनी वर्षा की अनेक विशेषताएँ।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. यदि भूमध्य रेखा भारत के मध्य से गुजरती तो भारत की जलवायु होती–
   (अ) उष्ण एवं आर्द्र (ब) उष्ण व शुष्क
   (स) शीत व आर्द्र (द) शीत व शुष्क।
2. यदि पश्चिमी घाट नहीं होते तो पश्चिमी तटीय भाग में वर्षा होती –
   (अ) अधिक (ब) कम
   (स) बिल्कुल नहीं (द) अनिश्चित।
3. निम्नांकित में से किस समुच्चय के राज्यों में वार्षिक वर्षा 200 से.मी. से अधिक होती है?
   (अ) नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर एवं अरूणाचल प्रदेश
   (ब) मेघालय, मणिपुर, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश
   (स) नागालैण्ड, तमिलनाडु, अरूणाचल प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल
   (द) मध्य प्रदेश, मणिपुर, उत्तर प्रदेश एवं मेघालय।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

4. ग्रीष्म काल में भारत में निम्न दाब कहाँ होता है?
5. मावट किन पवनों से होती है?
6. लू किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

7. भारत के जलवायु को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन से हैं?
8. भूमध्य सागरीय चक्रवातों की उत्पत्ति कैसे होती है?
9. तमिलनाडु में शीतकालीन वर्षा किस प्रकार होती है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

10. भारत की ग्रीष्मकालीन तथा शीतकालीन ऋतुओं की तुलना तापमान, वायुदाब, पवनों तथा वर्षा के आधार पर कीजिए।
11. भारत में वर्षा का वितरण दर्शाते हुए उसकी विशेषताएँ बताइये।

आंकिक प्रश्न –

12. भारत का रूपरेखा मानचित्र बनाकर उसमें वार्षिक वर्षा का वितरण दर्शाइये।
13. भारत का रूपरेखा मानचित्र बनाकर उसमें ग्रीष्मकालीन वायुदाब की स्थिति तथा पवनों की दिशा बताइये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. ब 3. अ

अध्याय -7

भारत का मानसून तन्त्र
(Monsoon System of Bharat)

भारत की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहा जाता है क्योंकि यहाँ के जलवायु में मानसून की सर्वाधिक भूमिका रहती है। यही कारण है कि हमेशा मानसून की भविष्यवाणी करने के प्रयास किये जाते हैं। चूंकि हमारे देश की अर्थव्यवस्था मानसून पर निर्भर करती है, अत: इसकी भविष्यवाणी आवश्यक भी है। किन्तु यह भी आवश्यक है कि इसकी भविष्यवाणी सर्वमान्य एवं तार्किक आधार हो ताकि यह खरी उतरे। मानसून की उत्पत्ति के विषय में अनेक अवधारणाएँ समय-समय पर दी जाती रही हैं। अत: इन सभी को समझना आवश्यक है।

मानसून की अवधारणा

मानसून शब्द अरबी भाषा के **मौसिम** (Mausim) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है मौसम या ऋतु। मानसूनी पवनें वस्तुत: मौसमी हवाएँ ही हैं। ये वर्ष के छ: माह स्थल की ओर से तथा शेष छ: माह जल की ओर से चलती हैं। हमारा देश वर्ष भर मानसूनी हवाओं के प्रभाव में रहता है। अत: यहाँ की जलवायु इन हवाओं द्वारा निर्धारित होती है। जलवायु पर ही हमारे देश की कृषि, कृषि आधारित उद्योग एवं अन्य सम्बन्धित आर्थिक पहलू निर्भर करते हैं। इसीलिये भारतीय अर्थव्यवस्था को **मानसून का जुआ (Gamble in Monsoons)** कहा जाता है। मानसून की उत्पत्ति के विषय में कई परिकल्पनाएँ प्रचलित हैं -

1. संस्थापित परिकल्पना (Classical Hypothesis)

यह अवधारणा स्थल व जल के वितरण तथा इनकी ताप-ग्रहण व ताप मुक्ति के सन्दर्भ में भिन्न गुणों से सम्बन्धित है। स्थली भाग शीघ्र गर्म व ठण्डे होते हैं, जबकि जल देर से गर्म व ठण्डा होता है। ग्रीष्म

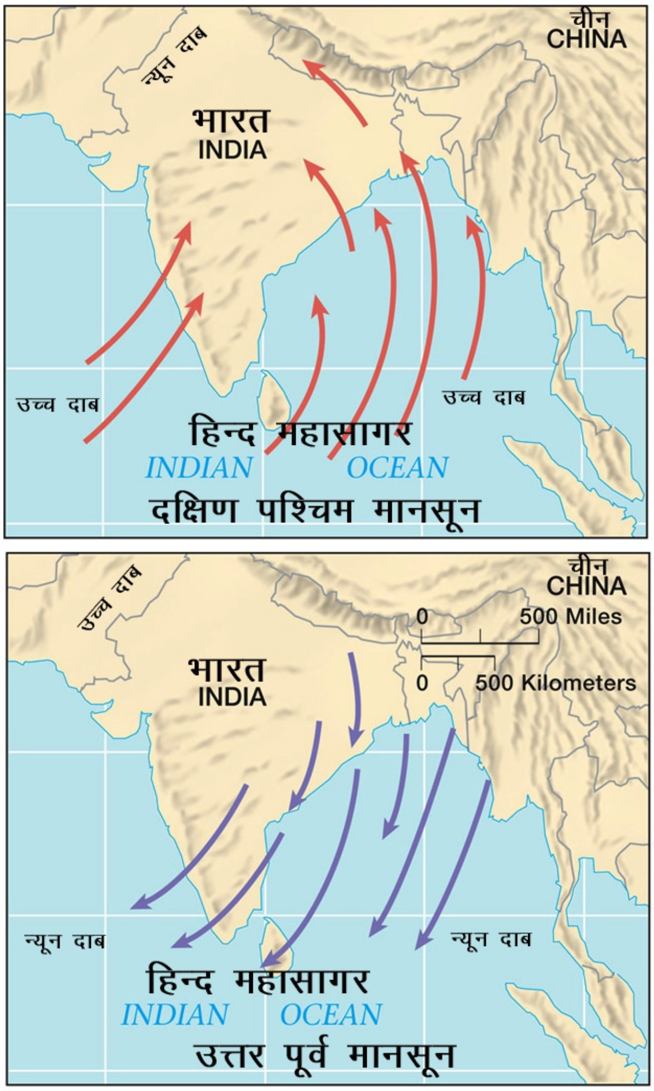

चित्र 7.1 - ग्रीष्मकालीन व शरदकालीन मानसून की उत्पत्ति

ऋतु में स्थल के शीघ्र गर्म हो जाने से न्यून वायुदाब बन जाता है, जबकि जल शीघ्र ताप ग्रहण न कर पाने के कारण ठण्डा रहता है तथा वहाँ उच्च दाब बन जाता है। अत: इस ऋतु में जल से स्थल की ओर पवनें चलने लगती हैं। जलीय क्षेत्र से उद्‌गम होने के कारण ये पवनें आर्द्र होती हैं। इसलिये इन पवनों से व्यापक वर्षा होती है।

शीत ऋतु में यह प्रक्रिया विपरीत हो जाने से पवनों की दिशा भी विपरीत हो जाती है। शीत ऋतु में स्थली भागों के शीघ्र ठण्डे हो जाने से उच्च दाब तथा जलीय क्षेत्रों के अपेक्षाकृत गर्म रहने से वहाँ निम्न वायुदाब बन जाता है। अत: पवनें स्थल से जल की ओर चलने लगती हैं। इन पवनों का उद्‌गम स्थल से होने के कारण ये शुष्क होती हैं। अत: सामान्यत: इन पवनों से वर्षा नहीं होती।

इस प्रकार ऋतुओं के अनुसार बदली हुई परिस्थितियों के कारण क्रमश: **ग्रीष्मकालीन** तथा **शरदकालीन मानसून** की उत्पत्ति होती है।

2. अन्त:उष्ण कटिबन्धीय अभिसरण परिकल्पना (Inter-Tropical Convergence Hypothesis)

जर्मन मौसम विज्ञान शास्त्री **फ्लोन (Flohn)** ने बताया कि भूमध्यरेखीय निम्नदाब की ओर चलने वाली दोनों व्यापारिक पवनों के मिलने से **वाताग्र (Front)** उत्पन्न हो जाता है। यही वाताग्र (Front) मानसून की जननी है। ग्रीष्म ऋतु में यह वाताग्र उत्तर की ओर खिसक जाता है। अत: इनसे उत्पन्न चक्रवात भारत में ग्रीष्मकालीन मानसून के रूप में वर्षा करते हैं। शीत ऋतु में न केवल यह वाताग्र दक्षिण की ओर खिसक जाता है बल्कि वायुदाब पेटियों के दक्षिण की ओर खिसक जाने से भारत में इस समय उपोष्ण उच्च दाब का प्रभाव भी बढ़ जाता है। अत:

चित्र 7.2 – फ्लोन के अनुसार अन्त:उष्णकटिबन्धीय अभिसरण

प्रतिचक्रवातीय दशा उत्पन्न होने से उत्तर-पूर्वी मानसून चलते हैं। इस प्रकार फ्लोन के अनुसार मानसूनी पवनों की दिशा में मौसमी परिवर्तन तापीय कारणों से न होकर, ग्रहीय वायुक्रम में व्यापारिक पवनों के पुर्नस्थापन का प्रतीक है। मानसून की उत्पत्ति के विषय में यह अवधारणा **फ्लोन की परिकल्पना** के नाम से भी जानी जाती है।

3. स्पेट की चक्रवातीय परिकल्पना (Cyclonic Hypothesis of Spate)

ऑस्ट्रेलियाई भूगोलवेत्ता स्पेट का मानना है कि मानसून पवनें चक्रवातों की उत्पत्ति का परिणाम है। ये चक्रवात विभिन्न वायुपुंजों (Air Masses) के मिलने पर बने वाताग्रों के कारण उत्पन्न होते हैं। उनकी मान्यता है कि ग्रीष्म ऋतु में वाताग्र बनने की प्रक्रिया अत्यन्त शक्तिशाली होती है। अत: ये वाताग्र महासागर से वर्षाभरी पवनों को आकर्षित करते हैं। इसके विपरीत शीत ऋतु में स्पेट के अनुसार ये वाताग्र अत्यन्त दुर्बल व छिछले होते हैं।

4. जैट स्ट्रीम परिकल्पना (Jet Stream Hypothesis)

इस परिकल्पना के मूल में कई भौगोलिक तथ्य निहित हैं।

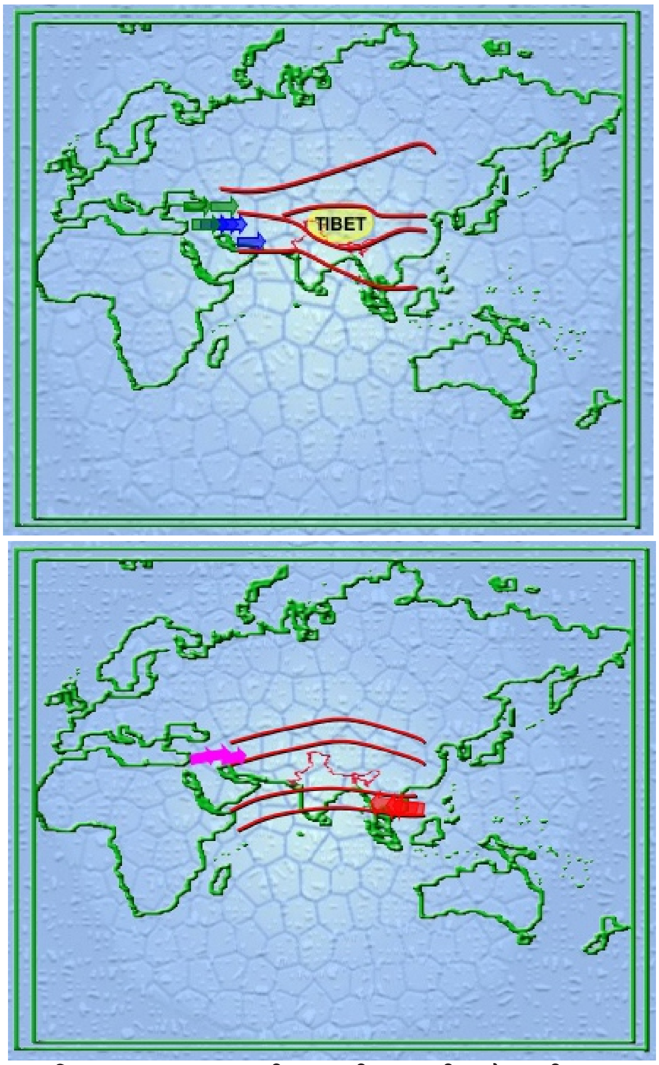

चित्र 7.3 – शरदकालीन व ग्रीष्मकालीन जैट स्ट्रीम

इसमें मानसून की उत्पत्ति के लिये केवल धरातलीय जलवायु दशाओं को ही उत्तरदायी नहीं मानकर **क्षोभमण्डल (Troposphere)** में वायु प्रवाह को भी महत्वपूर्ण माना गया है। इसे **उच्च स्तरीय वायु संचरण (Upper Air Circulation)** कहा जाता है। इस संचरण में वायु की एक तीव्र प्रवाह वाली धारा चलती रहती है, जिसे **जैट स्ट्रीम (Jet Stream)** के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार जैट स्ट्रीम हिमालय व तिब्बत क्षेत्र में उच्चस्तरीय वायु संचरण (Upper Air Circulation) का प्रमुख अंग है। कोटेश्वरम, पन्त, रामामूर्ति, रामास्वामी, फ्लोन, हैमिल्टन आदि वैज्ञानिकों ने क्षोभमण्डल में चलने वाली जैट स्ट्रीम का मानसून से घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। हैमिल्टन मानसून का सहसम्बन्ध पूरे क्षोभमण्डल की परिस्थितियों से स्थापित करते हैं, जबकि अन्य विद्वान क्षोभमण्डल के निम्न भाग को ही सम्बन्धित मानते हैं।

उच्च स्तरीय वायु संचरण के अंग के रूप में जैट स्ट्रीम **पश्चिम से पूर्व** की ओर प्रवाहित होती रहती है। इसका मार्ग में मौसम के अनुसार थोड़ा परिवर्तित होता रहता है। हमारी ग्रीष्म ऋतु में इसका सम्पूर्ण प्रवाह तिब्बत के पठार के उत्तर में सीमित रहता है। हमारी शीत ऋतु में वायुदाब व पवनों की पेटियों के दक्षिण के ओर खिसक जाने के कारण जैट स्ट्रीम का प्रवाह भी दक्षिण की ओर खिसक जाता है। किन्तु तिब्बत के पठार की उपस्थिति के कारण यह दो शाखाओं में विभक्त हो जाता है। एक शाखा तिब्बत के पठार के उत्तर में तथा दूसरी शाखा उसके दक्षिण में प्रवाहित होने लगती है।

शीत ऋतु में सूर्य दक्षिणायन हो जाता है अर्थात सूर्य मकर रेखा पर सीधा चमकता है। इसके परिणामस्वरूप सभी वायुदाब की पेटियाँ एवं उनके अनुरूप सभी पवनों की पेटियाँ दक्षिण की ओर खिसक जाती हैं। इस ऋतु में जैट स्ट्रीम का प्रवाह भी दक्षिण की ओर खिसकता है। दक्षिण की ओर खिसकने पर तिब्बत के पठार की स्थिति के कारण जैट स्ट्रीम दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। इसकी उत्तरी शाखा तिब्बत के पठार के उत्तर में चलती है। यह शाखा अपेक्षाकृत क्षीण होती है। दूसरी शाखा तिब्बत के पठार के दक्षिण में चलती है। पवनों की पेटियों के दक्षिण की ओर खिसकने के कारण जैट स्ट्रीम का दक्षिणी प्रवाह 20° से 25° उत्तरी अक्षांश के मध्य होने लगता है। मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार जैट स्ट्रीम की यही दक्षिणी शाखा शरदकालीन मानसून को उत्पन्न करती है। भारत में उत्तर-पश्चिमी की ओर से आने वाले चक्रवातीय विक्षोभों का प्रवेश भी जैट स्ट्रीम की इसी धारा की देन है।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य उत्तरायण हो जाता है अर्थात सूर्य कर्क रेखा पर सीधा चमकता है। इसके परिणामस्वरूप सभी वायुदाब की पेटियाँ तथा उनके अनुरूप सभी पवनों की पेटियाँ उत्तर की ओर खिसक जाती हैं। अतः जैट स्ट्रीम का सम्पूर्ण प्रवाह मुख्य धारा के रूप में तिब्बत के पठार के उत्तर में प्रवाहित होने लगता है। इस प्रवाह के उत्तर की ओर खिसकने के फलस्वरूप बने स्थान के कारण हिन्दमहासागरीय क्षेत्र से पवनें उत्तर की ओर चलने लगती हैं। यही ग्रीष्मकालीन मानसून के बनने की प्रक्रिया है।

5. अल नीनो-ला नीना परिकल्पना (El Nino - La Nina Hypothesis)

कुछ मौसम विज्ञान शास्त्रियों ने भारतीय मानसून की प्रक्रिया में **दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पीरू तट के निकट महासागरीय तापमान** की परिस्थितियों को महत्वपूर्ण **निर्धारक कारक** माना है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार **क्रिसमस के आस-पास** दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पीरू के तट के निकट महासागरीय जल के तापमान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये परिस्थितियाँ तापमान के सामान्य से 2° से 4° सेल्शियस तक अधिक या कम हो जाने से बनती हैं। **सामान्य से अधिक** तापमान हो जाने की स्थिति को **अल नीनो प्रभाव (El Nino Effect)** कहा जाता है। **सामान्य से कम** तापमान हो जाने की परिस्थिति को **ला नीना प्रभाव (La Nina Effect)** कहा जाता है। चूंकि यह असामान्य परिस्थितियाँ क्रिसमस के आस-पास उत्पन्न होती हैं, अतः मौसम वैज्ञानिकों ने इन्हें **क्राइस्ट शिशु (Children of Christ)** की संज्ञा दी है।

ऐसा माना गया है कि **अल नीनो की परिस्थितियाँ** विकसित होने पर **भारत में मानसून की प्रक्रिया कमजोर** हो जाती है। इसके विपरीत **ला नीना की परिस्थितियाँ** विकसित होने पर **भारत में मानसून की सक्रियता बढ़ जाती है।**

अल नीनो प्रभाव की यान्त्रिकी (Mechanics of El Nino Effect) -दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पीरू तट के निकट तापमान सामान्य से अधिक हो जाने पर वायुदाब की परिस्थितियाँ प्रभावित होती हैं। तापमान में वृद्धि के प्रभाव के कारण इस क्षेत्र में वायुदाब सामान्य से कम हो जाता है। भूमण्डलीय वायुदाब तन्त्र तथा वायुप्रवाह तन्त्र पर इसके प्रभाव पड़ने की कल्पना की गई है। पीरू तट के निकट सामान्य से

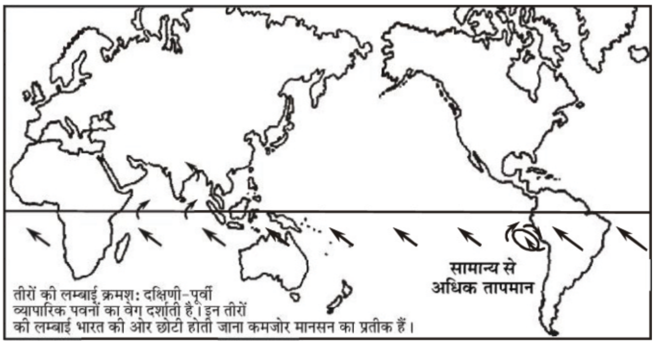

चित्र 7.4- अल नीनो में मानसून की कमजोर स्थिति

कम वायुदाब हो जाने के कारण यहाँ से दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवनों को **धकेलने वाला बल (Push Factor)** क्षीण हो जाता है। इसके स्थान पर यहाँ व्यापारिक पवनों को **आकर्षित करने वाला या खींचने वाला बल (Pull Factor)** प्रभावी हो जाता है। इसके कारण इन व्यापारिक पवनों का एशिया की ओर प्रवाह भी कमजोर पड़ जाता है। इसके परिणामस्वरूप भारत में ग्रीष्मकालीन मानसून के देरी से आने की तथा कमजोर होने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जाती हैं।

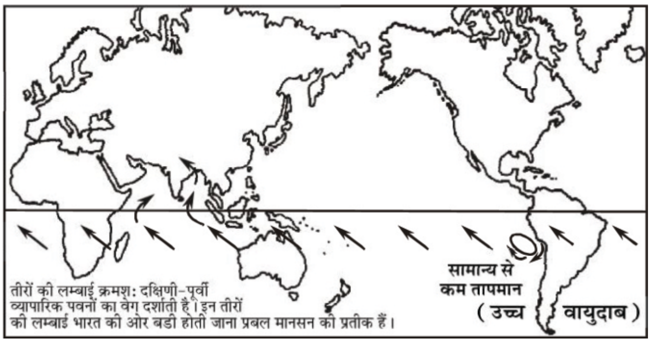

चित्र 7.5 – ला नीना में मानसून की प्रबल स्थिति

ला नीना प्रभाव की यान्त्रिकी (Mechanics of La Nina Effect) –दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पीरू तट के निकट तापमान सामान्य से कम हो जाने की स्थिति में वायुदाब सामान्य से अधिक विकसित हो जाता है। इसके कारण यहाँ से पवनों को धकेलने वाला बल शक्तिशाली हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप भारत में मानसून के शीघ्र आने एवं बलवती होने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जाती हैं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, अतः हमारे लिये मानसून का विशेष महत्व है। मानसून की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की अनिश्चितताएँ निहित हैं। मानसून कभी बहुत देरी से आता है, कभी बहुत जल्दी आ जाता है। कभी बहुत जल्दी क्षीण पड़ जाता है तो कभी इसका प्रभाव देर तक चलता रहता है। कभी यह बहुत शक्तिशाली होता है तो कभी बहुत कमजोर रह जाता है। इन अनिश्चितताओं के कारण हमारे देश में वर्षा का प्रारूप प्रभावित होता है। यह प्रत्यक्ष रूप से कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। इसीलिये भारतीय अर्थव्यवस्था को **मानसून का जुआ** कहा जाता है। वैज्ञानिकों का यह प्रयास है कि मानसून की उत्पत्ति की प्रक्रिया के बारे में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त की जाये। इसी प्रयास में समय-समय पर अनेक परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु इनमें से मानसून की सर्वमान्य व्याख्या करने में अभी तक कोई भी परिकल्पना सक्षम नहीं है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के **मौसिम** शब्द से हुई है।
2. मानसून की उत्पत्ति के विषय में अनेक परिकल्पनाएँ प्रचलित हैं।
3. संस्थापित परिकल्पना जल व स्थल पर भिन्न तापीय परिस्थितियों के विकास पर आधारित है।
4. अन्तर-उष्ण कटिबन्धीय अभिसरण परिकल्पना जर्मन वैज्ञानिक फ्लोन ने दी थी। उन्होंने मानसून की उत्पत्ति दोनों व्यापारिक पवनों के अभिसरण से मानी है।
5. स्पेट ने विभिन्न वायुपुंजों के सम्मिश्रण से निर्मित वाताग्रों के आधार पर मानसून की उत्पत्ति की परिकल्पना प्रस्तुत की है।
6. अनेक वैज्ञानिकों ने उच्चस्तरीय वायु संरचरण के अंग के रूप में जैट स्ट्रीम के प्रवाह एवं उसके मार्ग में विचलन को मानसून की उत्पत्ति का कारक माना है।
7. जैट स्ट्रीम का प्रवाह उच्चस्तरीय संचरण में पश्चिम से पूर्व की ओर होता है।
8. जैट स्ट्रीम का प्रवाह ग्रीष्म ऋतु में सम्पूर्ण रूप से तिब्बत के पठार के उत्तर में सीमित रहता है तथा शीत ऋतु में इसका प्रवाह दक्षिण में खिसक जाने से तिब्बत के पठार के अवरोध के कारण दो शाखाओं में विभक्त होकर इसके उत्तर व दक्षिण में प्रवाहित होने लगता है।
9. दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पीरू तट के निकट औसत से अधिक तापमान हो जाने को अल नीनो तथा कम हो जाने को ला नीना कहा जाता है। चूंकि ये परिस्थितियाँ क्रिसमस के आस-पास होती हैं अतः इन्हें **क्राइस्ट शिशु** कहा जाता है।
10. अल नीनो की स्थिति में भारत में मानसून के देर से आने एवं कमजोर पड़ने की कल्पना की जाती है।
11. ला नीना की स्थिति में भारत में मानसून के शीघ्र आने एवं बलवती होने की कल्पना की जाती है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. जैट स्ट्रीम जिसका अंग है, वह है –
   (अ) विभिन्न वायुपुंज (ब) वाताग्र
   (स) चक्रवात (द) उच्चस्तरीय वायु संचरण।
2. मानसून की उत्पत्ति के विषय में पारम्परिक अवधारणा है –
   (अ) जैट स्ट्रीम परिकल्पना
   (ब) अन्तर-उष्ण कटिबन्धीय अभिसरण परिकल्पना
   (स) संस्थापित परिकल्पना
   (द) अल नीनो – ला नीना प्रभाव।

3. विभिन्न वायुपुंजों के मिलने से बने वाताग्रों के कारण मानसून की उत्पत्ति जिस विद्वान ने मानी है, वह है –

(अ) स्पेट (ब) फ्लोन

(स) हैमिल्टन (द) कोटेश्वरम।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

4. अन्तर–उष्ण कटिबन्धीय अभिसरण किन पवनों के मिलने से बनता है?
5. जैट स्ट्रीम किस संचरण का अंग माना गया है?
6. क्राइस्ट शिशु किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

7. विभिन्न वायुपुंजों के मिलने से क्या बनता है?
8. शीत ऋतु में जैट स्ट्रीम दो शाखाओं में क्यों विभाजित हो जाती है?
9. ला नीना प्रभाव किसे कहते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

10. मानसून की उत्पत्ति के विषय में जैट स्ट्रीम परिकल्पना को विस्तार से समझाइये।
11. अल नीनो और ला नीना प्रभाव की मानसून की उत्पत्ति में योगदान की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

आंकिक प्रश्न –

12. विभिन्न ऋतुओं में जैट स्ट्रीम की स्थितियों को दर्शाने हेतु रूपरेखा चित्र बनाइये।

उत्तरमाला – 1. (द), 2. (स), 3. (अ)।

इकाई – 3

अध्याय -8

भारत की प्राकृतिक वनस्पति
(Natural Vegetation of Bharat)

भारत एक विशाल देश है, जिससे यहाँ तापमान, वर्षा, मिट्टी, धरातल की प्रकृति, पवनों व सूर्य-प्रकाश के प्रारूप में भिन्नता पायी जाती है। इसलिये देश में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का पाया जाना स्वाभाविक है। भारत में पाई जाने वाली वनस्पति के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं-

1. सदाबहार वन – ये वन देश के उन भागों में मिलते हैं, जहाँ औसत वर्षा 200 से.मी. से अधिक तथा वार्षिक औसत तापमान 24° से. के लगभग रहता है। इनके तीन प्रमुख क्षेत्र हैं- (1) पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल, (2) अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह एवं (3) उत्तरी-पूर्वी भारत में बंगाल, असम, मेघालय और तराई प्रदेश। इस प्रकार के वनों में मुख्य रूप से रबर, महोगनी, एबोनी, लौह-काष्ठ, जंगली आम, ताड़ आदि वृक्ष व बांस तथा कई प्रकार की लताएँ पायी जाती हैं। इनमें वृक्ष घने, विविध तथा अधिक ऊँचाई वाले होते हैं। इन वृक्षों की ऊँचाई 30 से 45 मीटर तक होती है। वृक्षों के ऊपरी सिरे छतरी-नुमा होते हैं। वृक्षों की सघनता इतनी अधिक होती है कि धरातल पर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता।

इन वृक्षों का शोषण कम होता है, क्योंकि – (1) इनकी लकड़ी कठोर होती है, (2) एक ही स्थान पर विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं, (3) वृक्षों, लताओं व छोटे-छोटे पौधों की सघनता होती है, जिससे वृक्षों को काटने में असुविधा होती है तथा (4) परिवहन के साधनों की कमी है। इसलिये आर्थिक दृष्टि से इनका उपयोग अधिक नहीं हुआ है।

2. पतझड़ी या मानसूनी वन – पतझड़ी वन वे होते है जो शुष्क काल में अपने पत्ते गिरा देते हैं। ये उन भागों में पाए जाते हैं, जहाँ 100 से.मी. से 200 से.मी. तक वर्षा होती है। इनके चार मुख्य क्षेत्र हैं- (1) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश के निचले भाग, (2) विंध्याचल व सतपुड़ा पर्वत, छोटा नागपुर का पठार व असम की पहाड़ियाँ, (3) पूर्वी घाट का दक्षिणी भाग एवं (4) पश्चिमी घाट का प्रतिपवन पूर्वी क्षेत्र। ये वन न अधिक घने और न अधिक ऊँचे होते हैं। इनमें प्रमुख वृक्ष साल, सागवान, नीम, चन्दन, रोज़वुड, एबोनी, आम, शीशम, बाँस आदि हैं। इनकी लकड़ी अधिक कठोर नहीं होती है। ये आसानी से काटे जा सकते हैं। इनकी लकड़ी से रेल के स्लीपर, जलयान तथा फर्नीचर आदि बनाए जाते हैं। इन क्षेत्रों में यातायात के साधनों के विकसित होने के कारण इनका उपयोग अधिक हो रहा है।

3. शुष्क वन – ये वन उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा का औसत 50 से.मी. से 100 से.मी. तक होता है। इस प्रकार के वन मुख्यत: दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, हरियाणा, पूर्वी राजस्थान व दक्षिणी-पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाए जाते हैं। प्रमुख वृक्ष बरगद, कीकर, बबूल, नीम, आम, महुआ, करील, खेजड़ा आदि हैं। इन वृक्षों की जड़ें लम्बी होती हैं। वर्षा के अभाव में वृक्ष कम ऊँचे होते हैं। वृक्षों की ऊँचाई 6से 9 मीटर तक होती है। इन वनों का केवल स्थानीय महत्त्व है।

4. मरूस्थलीय वन – ये वन 50 से.मी. से कम वर्षा वाले भागों में पाए जाते हैं। यहाँ के वृक्षों में पत्तियाँ कम, छोटी तथा काँटेदार होती हैं। वृक्षों की जड़ें लम्बी व मोटी होती हैं। बबूल यहाँ बहुतायत से उगते हैं। नागफनी, रामबांस, खेजड़ा, खैर, खजूर आदि अन्य वृक्ष हैं। यह वनस्पति दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में पायी जाती है। इनका केवल स्थानीय महत्त्व है। कृषक इनका उपयोग अपने खेतों में छाया प्रदान करने, इनकी पोषक पत्तियाँ पशुओं को खिलाने, इन पत्तियों से मृदा में वनस्पति अंश (Humus) बढ़ाने एवं मृदा अपरदन को नियन्त्रित करने में लेते हैं।

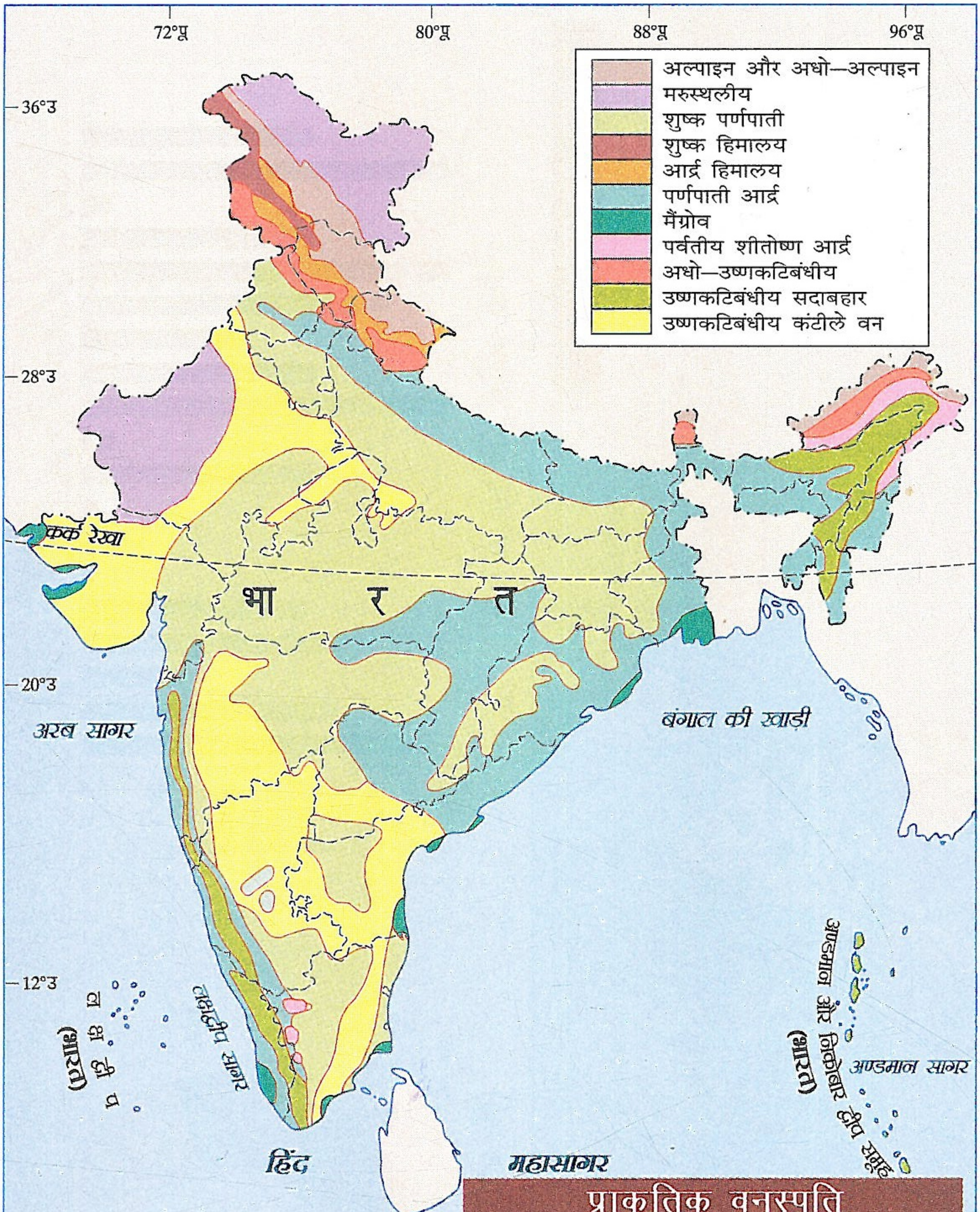

चित्र 8.1 – भारत : प्राकृतिक वनस्पति

5. ज्वारीय वन – ये वन महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि प्रायद्वीपीय नदियों के मुहानों पर तथा गंगा–ब्रह्मपुत्र के डेल्टाई भागों में पाए जाते हैं जहाँ ज्वार–भाटे के समय समुद्र का अग्रसित जल वृक्षों की जड़ों को सींचता है। ऐसे प्रदेशों में कीचड़ तथा दलदल होते हैं। इन वनों के सुन्दरी वृक्ष गंगा–ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में तथा मैन्ग्रोव वृक्ष हुगली नदी के डेल्टा में विशेष रूप से पाए जाते हैं। अन्य वृक्ष ताड़, नारियल, हैरोटीरिया, रीज़ोफोरा, सोनेरीटा आदि हैं। इन वृक्षों की लकड़ी मुलायम होती है।

6. पर्वतीय वन – इस प्रकार के वन दक्षिणी भारत में महाराष्ट्र के महाबलेश्वर तथा मध्य प्रदेश के पचमढ़ी आदि ऊँचे भागों में 1500 मीटर की ऊँचाई पर पाए जाते हैं। यहाँ वृक्ष 15 से 18मीटर ऊँचे होते हैं। वृक्ष मोटे तने वाले होते हैं, जिनके नीचे सघन झाड़ियाँ मिलती हैं। वृक्षों की पत्तियाँ घनी व सदाबहार तथा टहनियों पर लताएँ छाई रहती हैं। अधिक ऊँचे भागों में यूजेनिया, मिचेलिया व रोडेनड्राँस आदि वृक्ष मिलते हैं। उत्तरी भारत में पश्चिमी हिमालय व असम की पहाड़ियों पर 1800 मीटर से 2800 मीटर ऊँचाई तक ये वन मिलते हैं। इन वृक्षों में चीड़, सनोवर, देवदार, स्प्रूस, बर्च, लार्च, एल्म, मैपल व चैस्टनट प्रमुख हैं।

प्रशासनिक वर्गीकरण

भारत सरकार का वन विभाग वनों की देखरेख करता है। व्यवस्था, नियन्त्रण व सुरक्षा की दृष्टि से भारतीय वनों को तीन भागों में बांटा गया है–

1. सुरक्षित वन – सर्वाधिक महत्व वाले इन वनों में लकड़ी काटना व पशु चराना वर्जित है। ऐसे वनों का क्षेत्रफल 5 लाख वर्ग कि. मी. है। बाढ़ की रोकथाम, भूमि कटाव से बचाव तथा मरूस्थलों का प्रसार रोकने की दृष्टि से इन वनों का महत्वपूर्ण योगदान है।

2. संरक्षित वन – इन वनों में सरकार से लाइसेंस प्राप्त व्यक्ति ही लकड़ी काट सकते हैं तथा पशु चरा सकते हैं। ये वन लगभग 3 लाख वर्ग कि. मी. क्षेत्र में फैले हुए हैं।

3. अवर्गीकृत वन – इन वनों में लकड़ी काटने तथा पशु चराने पर सरकार की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु उपयोग करने वाले को टैक्स देना पड़ता है। लकड़ी काटने के लिये ये वन प्रायः ठेके पर दिये जाते हैं। इन वनों का विस्तार लगभग 2 लाख वर्ग कि. मी. क्षेत्र पर पाया जाता है।

नवीन वर्गीकरण

उपर्युक्त वर्गीकरण के स्थान पर अब प्रशासनिक आधार पर निम्नांकित वर्गीकरण स्वीकृत किया गया है–

1. राजकीय वन (State Forest) – हमारे देश के कुल वनों का लगभग 95 प्रतिशत भाग इस वर्ग में आता है। इनका नियन्त्रण, देखरेख, विकास व सुरक्षा पूर्णतः सरकार के हाथ में है। भारत में निरन्तर घटते हुए वन क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए अधिकांश वनों को इस श्रेणी में रखा गया है।

2. सामुदायिक वन (Community Forest) – इस वर्ग के वनों के नियन्त्रण तथा देखरेख, विकास व सुरक्षा की जिम्मेदारी स्थानीय नगर निगम / परिषद / नगर पालिकाओं एवं जिला परिषदों आदि की होती है। इस श्रेणी के अन्तर्गत हमारे देश के लगभग तीन प्रतिशत वन सम्मिलित हैं।

3. व्यक्तिगत वन (Individual Forest) – भारत में वन क्षेत्रों के विस्तार की आवश्यकता को देखते हुए व्यक्तिगत स्वामित्व वाले क्षेत्रों में वन विस्तार को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से यह श्रेणी बनाई गई है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत अधिकार वाले वन सम्मिलित हैं। इस वर्ग में हमारे देश के लगभग दो प्रतिशत वन सम्मिलित हैं।

वन संसाधन

भारत के बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों में वन संसाधनों का प्रमुख स्थान है। आर्थिक उन्नति एवं विकास योजनाओं में इनका बड़ा योगदान रहता है। प्राचीनकाल में भारत में वनों का प्रसार अधिक था। कृषि भूमि प्राप्त करने, आवासी भूमि की आवश्यकता के कारण तथा लकड़ी प्राप्त करने हेतु अंधाधुन्ध कटाई से वनों का ह्रास होता गया। इस समय वन भारत की कुल भूमि के 22.02 प्रतिशत (2015 के अनुसार) भाग पर फैले हैं, किन्तु यह क्षेत्रफल भारत सरकार द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार 33 प्रतिशत करने की योजना है। वनों में वृद्धि की प्रक्रिया को अधिक उपयोगी बनाने हेतु सरकार ने सामाजिक वानिकी (Social Forestry) योजना चलाई है।

वनों से लाभ

(अ) प्रत्यक्ष लाभ –

1. कृषि उपकरण, फर्नीचर व इमारती उपयोग की लकड़ी प्राप्त होती है।
2. वन क्षेत्रों में पशुओं के लिये चारा उपलब्ध होता है।
3. वनों से ईंधन प्राप्त होता है।

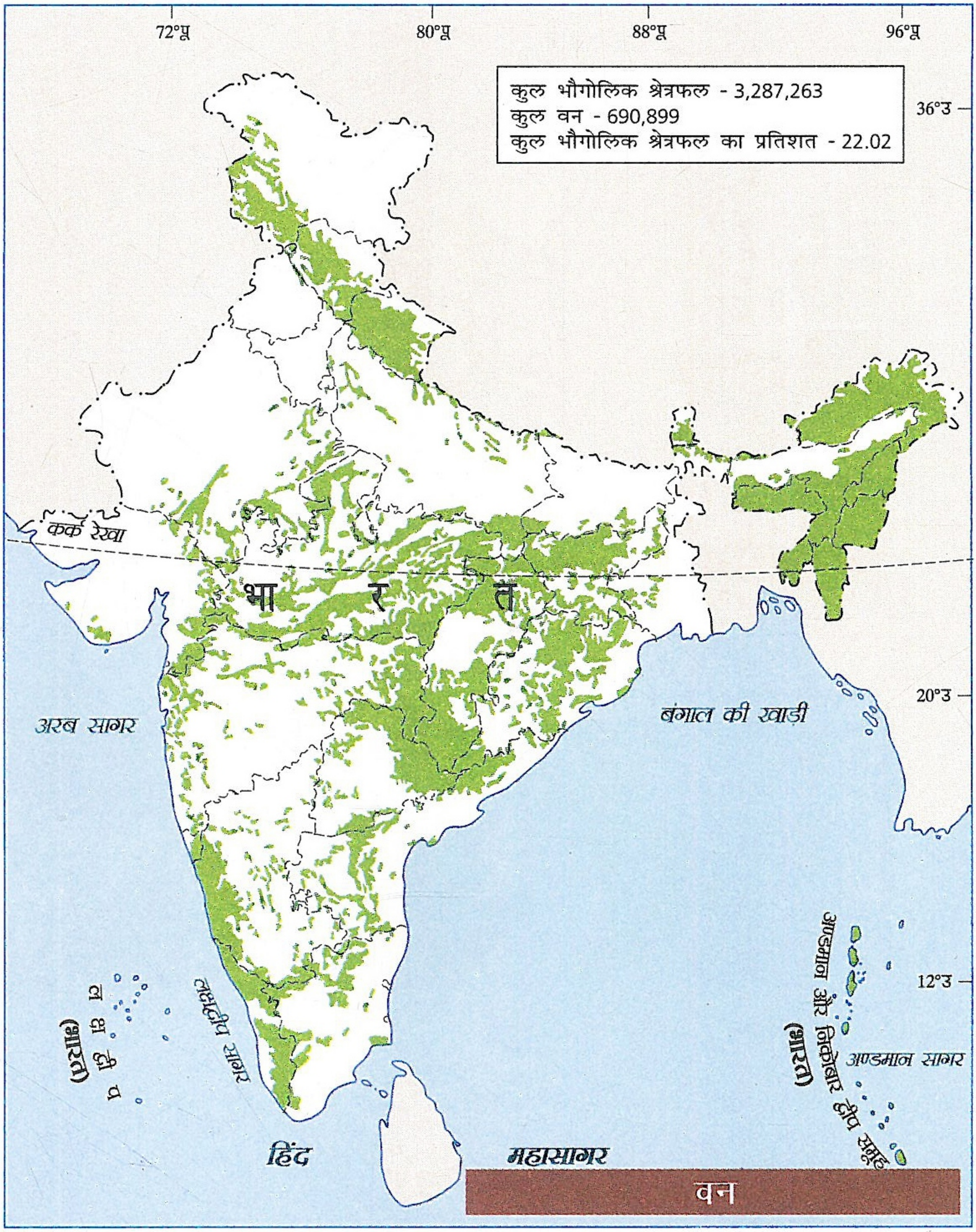

चित्र 8.1 – भारत : वन संसाधन

4. कागज, दियासलाई, खेल के सामान, रबर, रंग आदि उद्योगों के लिये कच्चा माल प्राप्त होता है।
5. वनों द्वारा लोगों को प्रत्यक्ष रूप से दैनिक व्यवसाय मिलता है। लकड़ी काटने, लकड़ी चीरने, गाड़ियाँ ढोने, नाव, रस्सी, वैन आदि तैयार करने तथा गौंद, लाख, राल, कन्द-मूल-फल आदि एकत्रित करने में कई लोग संलग्न हैं।
6. वनों से काष्ठ कोयला मिलता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन के अतिरिक्त शक्ति के साधन के रूप में उपयोगी सिद्ध हुआ है।
7. वनों से उपयोगी औषधियाँ बनाने के लिए जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं।
8. वनों में अरण्डी तथा शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े पालने से रेशम प्राप्त होता है।
9. वनों से एकत्रित विभिन्न सामग्रियों से सरकार को भी आय होती है।

(ब) अप्रत्यक्ष लाभ-

1. वन जलवायु को सम और नम बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
2. बादलों को अपनी ओर आकृष्ट करके अधिक जलवृष्टि कराने में सहायक होते हैं।
3. आँधी और तूफान की प्रचण्डता को कम करते हैं।
4. वनों के कारण बाढ़ का प्रकोप कम हो जाता है।
5. वन भूमि-कटाव तथा मरूस्थल के प्रसार को रोकने में सहायक होते हैं।
6. पेड़ों की पत्तियों से ह्यूमस (Humus) व जीवांश मिलने के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं।
7. वन क्षेत्र में वर्षा के जल के भूमि में अधिक प्रविष्ट होने के कारण जल-स्तर ऊँचा उठता है।
8. दीर्घकाल में इनके भूमि में दब जाने से कोयले जैसा महत्त्वपूर्ण खनिज प्राप्त होता हैं।
9. ये वन्य जीवों के संरक्षण-स्थल होते हैं।
10. आखेट आदि की दृष्टि से ये मनोरंजन स्थल होते हैं।
11. वन सौन्दर्य के प्रतीक होते हैं।
12. वनों से जैविक-सन्तुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है।
13. वनों के कारण वायुमण्डलीय प्रदूषण नियन्त्रण में रहता है।
14. वन शोर प्रदूषण को कम करने में सहायक होते हैं।
15. वायु प्रदूषण के कारण बढ़ते **हरित गृह प्रभाव (Green House Effect)** को वन संयत (Moderate) करते हैं।
16. वनों का भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व है। यहाँ वन क्षेत्र तपोभूमि, दार्शनिक चिन्तन तथा ज्ञानार्जन के लिये उपयुक्त माने गये हैं।

आज के युग में औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ वायुमण्डलीय प्रदूषण बढ़ने लगा है। उद्योगों की चिमनियों से निकलता हुआ धुआँ, सड़कों पर बढ़ते यातायात के साधनों से पैट्रोल व डीज़ल का धुआँ, शहर की गन्दगी आदि प्रदूषण बढ़ाने वाले मुख्य साधन हैं। इस बढ़ते हुए प्रदूषण को नियन्त्रण में रखने हेतु सारे विश्व में जागरूकता आई है। प्राकृतिक वनस्पति वायुमण्डल में गैसीय सन्तुलन बनाने में योगदान करती है। हमारे देश में वृक्षारोपण अभियान चलाये जाने के पीछे एक उद्देश्य वायुमण्डलीय प्रदूषण को कम करना भी है। इस अनुपम प्राकृतिक भेंट का संरक्षण करना हम सभी का राष्ट्रीय और सामाजिक धर्म है। कुछ स्वार्थी तत्व तात्कालिक लाभ के लिये इन्हें नष्ट कर रहे हैं। उनके प्रति हमें सावधान रहकर वन सम्पदा का संरक्षण करना चाहिये।

वनों की उपजें

भारतीय वन आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वनों से प्राप्त होने वाली उपजों को दो भागों में बांटा जाता है- (अ) मुख्य उपजें (ब) गौण उपजें।

(अ) मुख्य उपजें

हिमालय प्रदेश की लकड़ियाँ

1. देवदार- ये सदाबहार नुकीली पत्ती के पेड़ है, जो लगभग 30 मीटर ऊँचे होते हैं। ये 2500 मीटर की ऊंचाई तक कश्मीर, पंजाब की पहाड़ियों तथा गढ़वाल क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनकी लकड़ी सामान्य कठोर, भूरी-पीली, टिकाऊ तथा मूल्यवान होती है। यह लकड़ी निर्माण कार्यो में प्रयुक्त होती है, विशेषत: रेल के स्लीपर तथा पुल बनाने के काम आती है। इस लकड़ी से एक प्रकार की सुगन्ध निकलती है। अत: इससे सुगन्धित तेल भी निकाला जाता है। इस जाति के पेड़ का विस्तार लगभग 5000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में है।

2. चीड़- ये नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वृक्ष हैं, जो 1000 मीटर से 2000 मीटर की ऊँचाई पर कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये वृक्ष 18से 30 मीटर तक ऊँचे होते हैं। चीड़ के वृक्षों के क्षेत्र का विस्तार 8000 वर्ग कि.मी. है। इन वृक्षों की लकड़ी हल्की होने के कारण पानी में आसानी से तैर सकती है। इनका उपयोग पैकिंग की पेटियाँ, नाव तथा सस्ता फर्नीचर बनाने में अधिक होता है। इनसे तारपीन का तेल प्राप्त होता है।

3. श्वेत सनोवर - ये नुकीली पत्ती के सदाबहार वृक्ष हैं जो 2,000 से 3,000 मीटर की ऊँचाई पर पश्चिमी हिमालय प्रदेश में मिलते हैं। ये 50 मीटर तक ऊँचे होते हैं। इनकी लकड़ी सफेद, नरम एवं टिकाऊ होती है।

इनका उपयोग कागज़ की लुग्दी, दियासलाई, हल्के सन्दूक, पैकिंग के तख्ते तथा फर्श के तख्ते बनाने में होता है।

मानसूनी वनों की लकड़ियाँ

1. साल– ये पतझड़ी वृक्ष हैं जो हिमालय के निचले ढालों पर तराई प्रदेश में पाये जाते हैं। उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार तथा उड़ीसा में भी ये वृक्ष अधिक मिलते हैं। इनकी लकड़ी कठोर एवं भूरे रंग की होती है। यह लकड़ी टिकाऊ होती है। इस लकड़ी का उपयोग रेल के स्लीपर एवं डिब्बे, पुल और मकान बनाने में किया जाता है। ये वृक्ष एक लाख वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हुए हैं।

2. सागवान– इसके वृक्ष लगभग 60,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हैं। इसकी लकड़ी मजबूत होती है। यह दक्षिणी राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु तथा उड़ीसा राज्यों में मिलता हैं। टिकाऊ होने के कारण इसकी लकड़ी जहाज, रेल के डिब्बे तथा फर्नीचर बनाने में उपयोग की जाती है।

3. शीशम– इसकी लकड़ी भूरे रंग की, कठोर एवं ठोस होती है। इसकी लकड़ी का उपयोग मकान, रेल के डिब्बे तथा फर्नीचर बनाने में किया जाता है। यह वृक्ष मुख्यत: उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु तथा आन्ध्र प्रदेश के शुष्क भागों में अधिकता से पाया जाता है। कुछ वृक्ष मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, असम तथा पश्चिम बंगाल में भी मिलते हैं।

शुष्क वनों की लकड़ियाँ

1. बबूल (Acacia)– हमारे देश में 20 से भी ज्यादा किस्म के बबूल मिलते हैं। इन वृक्षों की छाल व गौंद बहुत उपयोगी होते हैं। इसकी छाल चमड़ा रंगने के काम में आती है। इससे प्राप्त अच्छी किस्म का गौंद खाने के काम में आता है। अन्य किस्म के गौंद के भी विभिन्न उपयोग हैं। इसकी जड़, छाल व गौंद से कई देशी दवाइयाँ भी बनाई जाती हैं।

2. खैर– इसका वृक्ष 3 से 6मीटर तक लम्बा होता है। यह वृक्ष भी भारत के काफी बड़े क्षेत्र में मिलता है। इसकी लकड़ी कठोर होती है। इसमें दीमक नहीं लगती है। मकानों के खम्भे, तेल निकालने की घाणियाँ, हल व अन्य कृषि–उपकरण बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। इस वृक्ष से कत्था व कच भी प्राप्त होता है। कत्थे का पान व कई दवाइयों में उपयोग किया जाता है। कच का उपयोग रंगाई–छपाई आदि में होता है।

(ब) गौण उपजें

1. लाख– लाख के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। **लेसीफर लक्का** नामक कीड़े, पलाश, कुसुम, बरगद, खैर, घोंट, पीपल, गूलर आदि वृक्षों की नरम डालियों का रस चूसकर एक चिपचिपा पदार्थ निकालते हैं। यही पदार्थ लाख कहलाता है। भारत में लाख उत्पादित करने वाले क्षेत्र गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, मेघालय व पश्चिमी बंगाल में हैं। लाख विद्युत निरोधक होता है। इसका उपयोग ग्रामोफोन रिकॉर्ड, पॉलिश, खिलौने, रेडियो तथा टेलीविजन ट्यूब आदि बनाने में होता है। भारत अपने उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, ब्रिटेन तथा ऑस्ट्रेलिया आदि देशों को निर्यात करता है।

2. चमड़ा रंगने के पदार्थ– ये पदार्थ अनेक प्रकार की छालों, पत्तियों तथा फलों से प्राप्त किये जाते हैं। इन पदार्थों को उत्पन्न करने वाले प्रमुख वृक्ष हरड़, बहेड़ा, आँवला, टारवुड, मैंग्रोव, कच, गैम्बियर आदि हैं।

3. गौंद– नीम, पीपल, खेजड़ा, कीकर, बबूल आदि वृक्षों का चिपचिपा रस ही गौंद होता है। इससे खाने और चिपकने वाले गौंद बनाए जाते हैं। देशी औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त गौंद भी वृक्षों से ही प्राप्त होता है।

4. घासें– वनों में अनेक प्रकार की घासें पायी जाती हैं। इनमें ये मुख्य हैं – खसखस घास, रोशा घास, अग्नि घास, मूंज व हाथी घास।

इनके अतिरिक्त वनों से रबर, फल, शहद, मोम, जड़ी–बूटियाँ आदि भी प्राप्त किए जाते हैं। भारत को प्रतिवर्ष गौण उपजों से लगभग 600 करोड़ रूपये की आय होती है।

वन व्यवसाय के पिछड़े होने के कारण

1. भारत में वन क्षेत्र कम हैं। प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र केवल 0.2 हैक्टेयर है।
2. वन क्षेत्र का वितरण अत्यधिक असमान है।
3. लकड़ी काटने के ढंग पुराने हैं।
4. एक ही प्रकार के वृक्ष एक ही स्थान पर समूह में नहीं मिलते हैं जिससे वनों का आर्थिक महत्त्व कम है।
5. वन अधिक ऊँचाई पर मिलते हैं, जहाँ कटाई आसान नहीं है।
6. वन क्षेत्रों में परिवहन साधनों की कमी है।
7. वनों के संरक्षण हेतु विभिन्न विभागों में सामंजस्य का अभाव पाया जाता है। अत: वृक्षारोपण एवं वनों की सुरक्षा का कार्य प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता।
8. वन व्यवस्था व वन उपज के उपयोग सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसन्धानों का अभाव है।

वनों की उन्नति के उपाय

1. वनों की गैर कानूनी व अन्धाधुन्ध कटाई पर सख्ती से रोक लगाई जानी चाहिये।

2. प्रत्येक क्षेत्र में न्यूनतम वन भूमि निर्धारित की जानी चाहिये।

3. सुरक्षित वनों की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिये।

4. वन प्रदेशों में परिवहन साधनों का विकास करना चाहिये।

5. वन उद्योग के व्यावसायिक पहलू की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। इससे सरकार को अधिक आय होगी तथा देश में रोजगार बढ़ेगा।

6. वन अनुसंधान कार्य में तेजी लाई जानी चाहिये।

7. वनों के उपयोग व महत्त्व के विषय में जन चेतना कार्यक्रम शुरू किये जाने चाहिये।

8. विभिन्न सरकारी विभागों एवं सम्बन्धित गैर सरकारी संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिये।

भारत में वन विकास

भारत में लगभग 79.42 मिलियन हैक्टेयर भूमि में वन हैं, जो देश के केवल 24.16 प्रतिशत (2015 के अनुसार) भाग पर फैले हैं। विश्व के अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ बहुत कम वन पाए जाते हैं। सन् 1952 की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार हमारे भौगोलिक क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत भूमि पर वनों का होना अनिवार्य है। इसमें 60 प्रतिशत वनों का विस्तार पहाड़ी क्षेत्रों में तथा शेष मैदानी भागों में करना है।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सड़कों व रेलमार्गों के किनारे तथा अन्य स्थानों पर बाढ़ व मरूभूमियों पर नियन्त्रण करने हेतु उगने वाले वृक्ष लगाये जा रहे हैं। वनों की कटाई पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। वन शिक्षा और अनुसन्धान कार्यों को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में वनों का सांस्कृतिक महत्व है; विविध भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भारत में भारत में विभिन्न प्रकार के वन पाये जाते हैं।
2. वनों के प्रकार – सदाबहार वन, पतझड़ी या मानसूनी वन, शुष्क वन, मरूस्थलीय वन, ज्वारीय वन और पर्वतीय वन।
3. प्रशासनिक वर्गीकरण – सुरक्षित, संरक्षित व अवर्गीकृत वन; अब वर्गीकरण का नया आधार – राजकीय वन, सामुदायिक वन, व्यक्तिगत वन।
4. वनों से अनेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लाभ।
5. वनों की उपजें – मुख्य उपजें (देवदार, चीड़, श्वेत सनोवर, साल, सागवान, शीशम, बबूल, खैर, कच, कत्था आदि), गौण उपजें (लाख, चमड़ा रंगने के पदार्थ, गौंद, घासें, महुआ, तुंग, बांस-बैंत, रबड़, फल, शहद, मोम, जड़ी बूटियाँ, आदि)।
6. वनों के पिछड़ेपन के कई कारण, उन्नति एवं वन विकास अति आवश्यक; भारत में वन विकास हेतु अनेक उपाय किये जा रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. सागवान के वृक्ष जिस राज्य में नहीं मिलते, वह है –
   (अ) जम्मू-कश्मीर (ब) राजस्थान
   (स) मध्य प्रदेश (द) छत्तीसगढ़
2. 50 से.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाने वाले वन है –
   (अ) शुष्क (ब) मरूस्थलीय
   (स) मानसूनी (द) सदाबहार।
3. पर्वतीय वन के वृक्षों का समुच्चय है –
   (अ) चीड़, देवदार, लार्च
   (ब) आम, बांस, बबूल
   (स) बबूल, पीपल, चीड़
   (द) नारियल, शीशम, देवदार।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

4. मैन्ग्रोव वृक्ष किन वनों में पाये जाते हैं?
5. सामुदायिक वनों पर किसका नियन्त्रण होता है?
6. भारत सरकार की नीति कितने प्रतिशत भूमि को वनाच्छादित करने की है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

7. राजकीय वन किसे कहते हैं?
8. शुष्क वन कहाँ मिलते हैं?
9. मानसूनी वन में कौन-कौनसे वृक्ष मिलते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

10. भारतीय वनों से प्राप्त होने वाली उपजों पर एक लेख लिखिए।
11. भारत में पाये जाने वाले वनों के वितरण प्रारूप पर एक लेख लिखिए।

आंकिक प्रश्न –

12. भारत के रूपरेखा मानचित्र में शुष्क वन क्षेत्रों का विस्तार दर्शाइये।
13. भारत के रूपरेखा मानचित्र में ज्वारीय वन क्षेत्रों का विस्तार दर्शाइये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. ब 3. अ

अध्याय -9

भारत की मृदा

(Soil of Bharat)

प्रत्येक देश के आर्थिक जीवन में मिट्टी का बहुत महत्त्व होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में तो इसका महत्त्व और भी अधिक है, क्योंकि हमारे देश में 70 प्रतिशत से अधिक लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही आधारित हैं। **मृदा भूमि की वह परत है, जो चट्टानों के विखण्डन, विघटन और जीवांशों के सड़ने-गलने से मिलकर बनती है।** इसमें पेड़-पोधौं को उगाने की क्षमता होती है। इसका निर्माण व गुण चट्टानों, जलवायु और वनस्पति पर निर्भर करता है।

रचना-विधि के अनुसार मिट्टी के दो प्रकार हैं - स्थानीय और विस्थापित (Transported)। ऋतु क्रिया के प्रभाव से विखण्डित चट्टानें जब अपने मूल स्थान से नहीं हटती या बहुत कम हटती हैं, तो इस प्रकार से निर्मित मिट्टी को **स्थानीय मिट्टी** कहा जाता है। दक्षिण भारत के पठारों पर ऐसी मिट्टी मिलती है। ऐसी मिट्टी जिन चट्टानों से बनती हैं, उनके गुण उसमें विद्यमान रहते हैं। यही कारण है कि वहाँ की रवेदार परिवर्तित चट्टानों से निर्मित मिट्टी कंकरीली, मोटे कणों वाली, लाल रंग की और अनुपजाऊ होती है। जहाँ लावा के विघटन से मिट्टी का निर्माण हुआ है, वहाँ मिट्टी काली और उपजाऊ होती है।

नदी, हिमनद, पवन आदि के प्रभाव से विखण्डित चट्टानों से बनी मिट्टी जब अपने मूल स्थान से हटकर दूर चली जाती है, तो इस तरह से निर्मित मिट्टी को **विस्थापित मिट्टी** कहा जाता है। भारत में मध्यवर्ती मैदानों तथा तटीय मैदानों की मिट्टियाँ इसी प्रकार की हैं। ये मिट्टियाँ बहुत ही उपजाऊ होती हैं।

हमारे देश की विशालता व भिन्न प्राकृतिक रचना के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का पाया जाना स्वाभाविक है। आर्थिक दृष्टि से इसकी प्रमुख उपयोगिता फसलें उगाने में है। फसलों को उगाने में जुताई की इकाई, भूमि की सिंचाई, उपयुक्त फसलों का चुनाव, अपनाई जाने वाली कृषि-पद्धति इत्यादि का ध्यान रखना पड़ता है, जो बहुत कुछ मिट्टी की किस्म पर भी निर्भर करता है। मिट्टी की रचना व गुणों के अधार पर भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है-

1. कांप मृदा (Alluvial Soil)

भारत के विशाल मैदान व तटीय मैदान कांप मिट्टी से बने हैं। यहाँ काँप मिट्टी नदियों द्वारा लाकर जमा की गई है। यह मिट्टी लगभग 8लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार इसे तीन भागों में बांटा जाता है -

(अ) पुरातन कांप मृदा (Older Alluvium) - नदियों के बाढ़-क्षेत्रों से ऊँचे भागों में जहाँ बाढ़ का पानी नहीं पहुँच पाता है, पुरातन कांप मिट्टी पायी जाती है। ऐसे क्षेत्रों को **बांगर (Bangar)** के नाम से भी पुकारा जाता है। बांगर क्षेत्र बहुत उपजाऊ होता है। इनमें गहरी खेती करके वर्ष में दो फसलें उत्पन्न की जाती हैं। इनमें सिंचाई की आवश्यकता अधिक होती है।

(ब) नूतन कांप मृदा (NewerAlluvium) - जहाँ तक नदियों की बाढ़ का पानी पहुँच पाता है वहाँ तक नूतन कांप मिट्टी पायी जाती है। इसे नूतन कांप इसलिए कहते है क्योंकि प्रतिवर्ष नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी की नयी परत इन पर जमा होती रहती है। नूतन जलोढ़ वाले क्षेत्र को **खादर** कहते हैं। खादर क्षेत्र की मिट्टी में चीका की मात्रा अधिक होती है। इसमें सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(स) नूतनतम कांप मृदा (Newest Alluvium) - यह मिट्टी गंगा, ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश में पायी जाती है। इसमें चूना, मैग्नीशियम, पोटाश, फॉस्फोरस तथा जीवांश की अधिकता होती है, जिससे कृषि के लिए यह मिट्टी बहुत उपयोगी होती है। यह मिट्टी तटीय मैदानों में भी मिलती है।

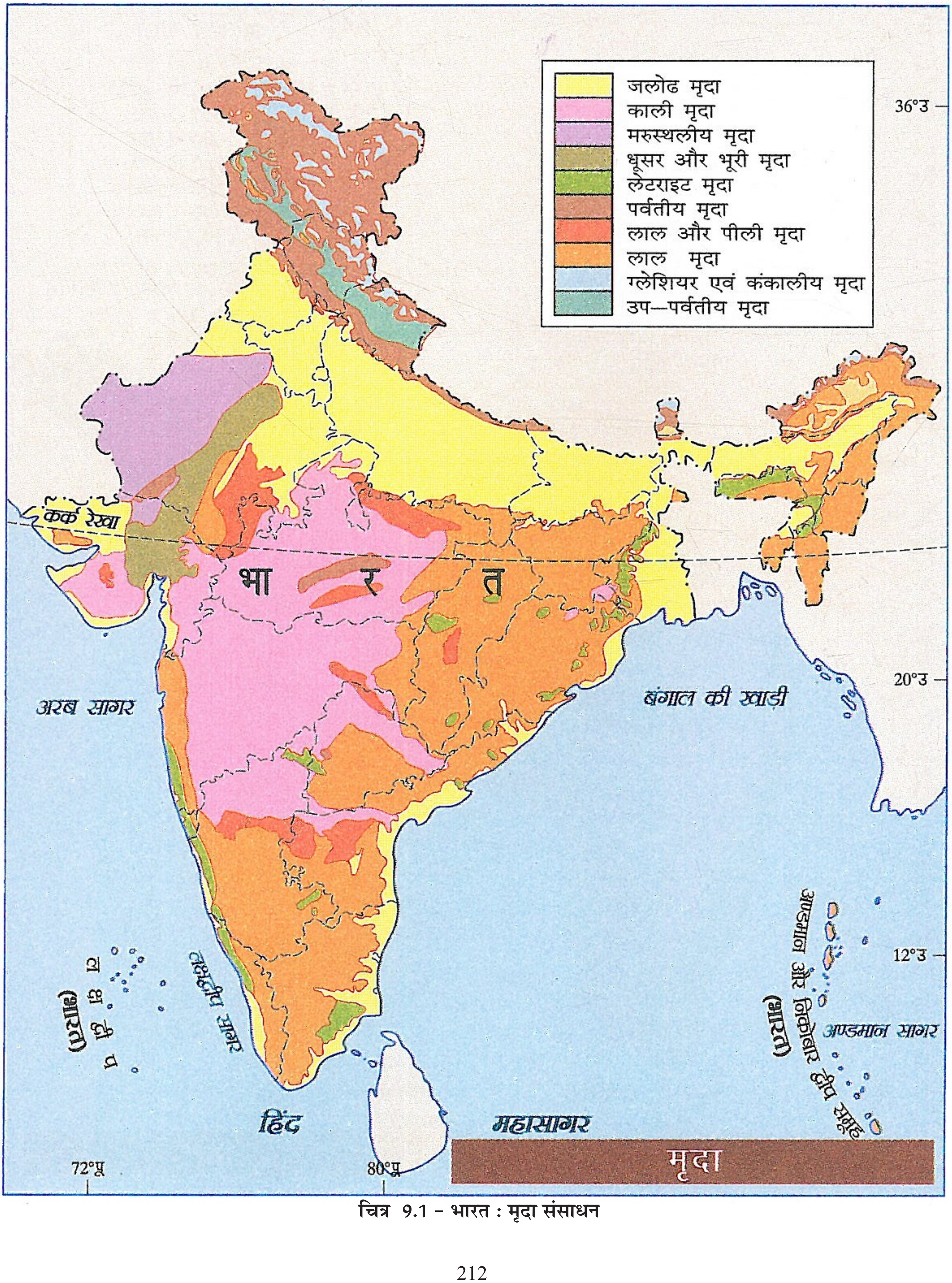

चित्र 9.1 – भारत : मृदा संसाधन

कांप मृदा की विशेषताएँ

1. इस मिट्टी के क्षेत्र सामान्यत: समतल होते हैं जिन पर नहरें निकालना, कुए खोदना तथा खेती करना सुगम होता है।
2. इनमें नमी अधिक समय तक रहती है।
3. यह बारीक कण वाली भुरभुरी मिट्टी होती है जिसमें फसलों का उगाना तथा पौधों द्वारा सरलता से खुराक प्राप्त करना सम्भव होता है।
4. इनमें वनस्पतिक अंश (ह्यूमस) अधिक मिलता है क्योंकि नदियों के जल से अनेक वस्तुएँ सड़कर मिट्टी में मिल जाती हैं।
5. प्रतिवर्ष मिट्टी की नई पर्त बिछ जाने के कारण इस मिट्टी का प्राकृतिक रूप से नवीनीकरण होता रहता है। अत: खाद देने की आवश्यकता नहीं होती है।
6. ये स्थानान्तरित मिट्टियाँ होने के कारण उपजाऊ होती हैं।

2. काली या लावा मृदा (Black or Lava Soil)

यह मिट्टी दक्षिणी भारत के लावा प्रदेश में (महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग, आन्ध्रप्रदेश के पश्चिमी भाग व कर्नाटक के उत्तरी भाग, गुजरात व दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में) पायी जाती है। भारत में लगभग 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में इसका विस्तार है। इस मिट्टी की विशेषता यह है कि इसमें आर्द्रता बनाये रखने की अपूर्व क्षमता होती है। देखने में यह उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी-क्षेत्र तथा सोवियत संघ के यूक्रेन क्षेत्र में पायी जाने वाली चरनोजम के समान है, पर रचना में उनसे भिन्न है। उन स्थानों की मिट्टियाँ ह्यूमस व जीवांशों की अधिकता के कारण काली हैं और यहाँ लावा निर्मित होने के कारण तथा इसमें लोहा और एल्यूमीनियम खनिजों का अंश अधिक होने के कारण इसका रंग काला है। पोटाश और चूने का अंश भी इनमें अधिक है। इसकी उर्वरा शक्ति अधिक है और कपास की कृषि के लिये बहुत उपयुक्त है। इसलिये इसे **कपास की काली मिट्टी (Black Cotton Soil)** की संज्ञा दी जाती है। इस मिट्टी को **रेगर (Regur Soil)** भी कहते हैं। इसमें सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है और खाद का भी उपयोग कम ही करना पड़ता है। सूखने पर यह मिट्टी कड़ी हो जाती है और इसमें दरारें पड़ जाती हैं। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों में इसकी परतें 7 मीटर तक गहरी मिलती हैं। इसमें अब मूंगफली व गन्ने की भी खेती की जाने लगी है और सिंचाई की सुविधा के परिणामस्वरूप उपज में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

3. लाल मृदा (Red Soil)

इस मिट्टी की विशेषता यह है कि यह छिद्रदार होती है। इसमें आर्द्रता बनाये रखने की क्षमता नहीं होती है। इसलिये इसमें सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। यह उपजाऊ नहीं होती है। खाद के उपयोग से इसकी उत्पादकता बढ़ाई जाती है। इसका रंग भूरा और लाल होता है, क्योंकि इसमें लोहे का अंश अधिक रहता है। इसमें कंकड़ भी पाये जाते हैं। इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा जीवांश की कमी रहती है। चूने का अंश भी कम रहता है। इसकी परत पतली होती है। केवल नदी-घाटियों में इसकी गहराई अधिक मिलती है। इस मिट्टी में बार-बार सिंचाई की आवश्यता होती है। यह मिट्टी छत्तीसगढ़, छोटा नागपुर, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश के पूर्वी भाग, तमिलनाडु और कर्नाटक में मुख्य रूप से मिलती है।

4. लैटेराइट मृदा (Laterite Soil)

यह पकी ईंट जैसी लाल रंग की मिट्टी होती है, जिसमें कंकड़ों की प्रधानता रहती है। यह पुरानी चट्टानों के विखण्डन से बनी होती हैं। इसमें लोहा और एल्यूमीनियम की मात्रा अधिक रहती है, किन्तु चूना, फॉस्फोरस, नाइट्रोजन, पोटाश और जीवांश की कमी रहती है। यह उन भागों में मिलती है, जहाँ अधिक वर्षा होती है, साथ ही तापमान भी अधिक रहता है। अधिक वर्षा के कारण सिलिका, रासायनिक लवण तथा बारीक उपजाऊ कण बह जाते हैं। इस मिट्टी के क्षेत्र ऊसर हैं। सूखने पर यह मिट्टी पत्थर की तरह कड़ी हो जाती है। यह मिट्टी मुख्य रूप से पश्चिमी घाट क्षेत्र में मिलती है। पूर्वी घाट के किनारे से राजमहल पहाड़ी और पश्चिमी बंगाल होते हुए असम तक इसकी संकड़ी पट्टी पाई जाती है। इस पर चाय की खेती खूब होती है। इस मिट्टी में कहीं-कहीं वृक्ष भी उगते हैं, जिनसे इमारती लकड़ी प्राप्त की जाती है।

5. बलुई मृदा (Sandy Soil)

यह मिट्टी पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र व कच्छ की मरूभूमि में मिलती है। इसमें क्षारीय तत्वों की अधिकता होती है, किन्तु नाइट्रोजन, ह्यूमस आदि तत्वों की कमी रहती है। यह शुष्क व रंध्रमय होने के कारण पवनों के द्वारा स्थानान्तरित होती रहती है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो जाने पर यह मिट्टी काफी उत्पादक सिद्ध होती है। हनुमानगढ़, गंगानगर व बीकानेर में कृषि की समृद्धि इसकी पुष्टि करती है। इसी से प्रेरणा लेकर इन्दिरा गांधी नहर योजना पर तेजी से कार्य चल रहा है। यह नहर जैसलमेर के निकट मोहनगढ़ से आगे तक पहुंच गई है। इसके पूर्ण हो जाने पर थार का मरूस्थल लहलहाने लगेगा।

6. पर्वतीय मृदा (Mountain Soil)

यह मिट्टी हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में मिलती है। अपरिपक्व होने के कारण यह मिट्टी मोटे कणों वाली व कंकड़-पत्थर युक्त होती है। अत: इसे अपरिपक्व मिट्टी कहा जाता है। इसकी परत पतली होती है। इसमें ह्यूमस व चूने के तत्व कम होते हैं। यह मिट्टी अम्लीय होती है।

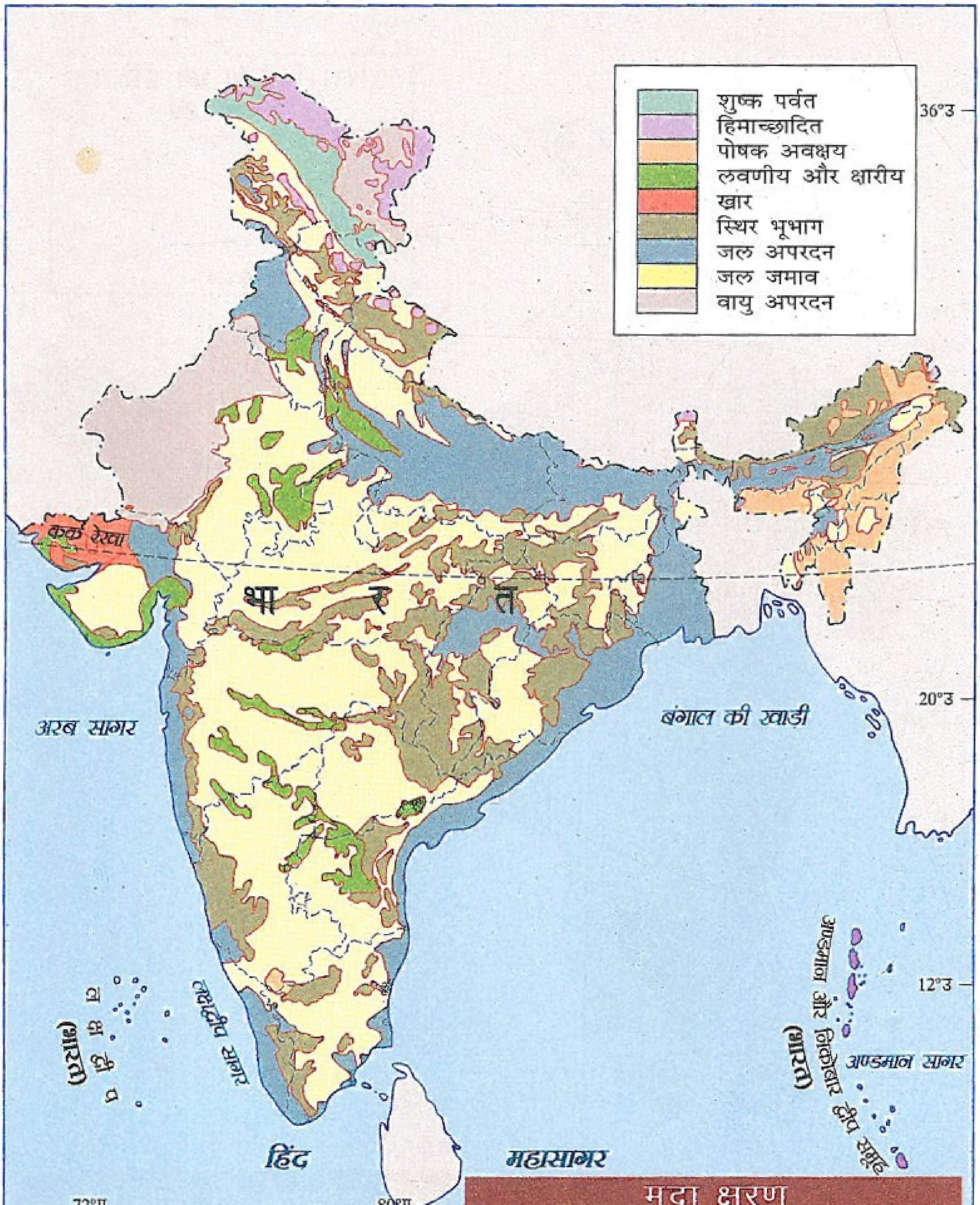

चित्र 9.2 – भारत : मिट्टी का कटाव

कुछ स्थानों पर इसकी परत मोटी है। उन स्थानों पर चाय व आलू की कृषि की जाती है। बारीक कणों वाली मिट्टी के क्षेत्र में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर चावल की कृषि की जाती है। कम उपजाऊ मिट्टी वाले ढालों पर चरागाह पाये जाते हैं।

मृदा से सम्बन्धित समस्याएँ व संरक्षण

समस्याएँ

मिट्टी से सम्बद्ध अनेक समस्याओं में से एक समस्या **मिट्टी का कटाव** है। इससे उपजाऊ भूमि भी कृषि के अयोग्य बन जाती है। मिट्टी के कटाव से तात्पर्य धरातल की मिट्टी का धीरे-धीरे स्थान छोड़ना या कट-कटकर अपने स्थान से बह जाना है। यह कार्य बहते हुए जल और पवन द्वारा प्रमुख रूप से होता है। भारत के कई भागों में यह समस्या बड़ी विकट हो गई है। अनुमान है कि देश की एक चौथाई भूमि में मिट्टी का कटाव हो रहा है। राजस्थान, हरियाणा, उत्तरांचल, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड और बिहार राज्यों में इससे बहुत क्षति पहुँची है। यमुना, चम्बल, दामोदर, महानदी आदि की घाटियों में मिट्टी का कटाव तेजी से हो रहा है। यहाँ मिट्टी के कटाव के दोनों रूप मिलते हैं - (1) परत के रूप में और (2) नाली के रूप में। यमुना तथा चम्बल क्षेत्र में नालीदार कटाव के कारण बीहड़ बन गये हैं।

भारत में मिट्टी के कटाव के प्रमुख कारण हैं- (1) यहाँ मानसूनी वर्षा मूसलाधार होती है। इस वृष्टि से मिट्टी आसानी से कटने लगती है। (2) अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भीषण बाढ़ आया करती हैं, जिससे मिट्टी ढीली पड़ जाती है। (3) नदी-घाटियों तथा पहाड़ी ढालों पर वनों की कटाई के कारण भूमि नग्न-सी पड़ी है और आसानी से पवन तथा वर्षा के चपेट में आ जाती है। (4) ढालू जमीन पर चरागाहों को खेतों में बदल दिया गया है या पशुओं को उपयुक्त ढंग से चराने पर ध्यान नहीं रखा जाता है। (5) ग्रीष्मकाल में जब खेत खाली पड़े रहते हैं और पवनें वेग से चलने लगती हैं, तब खेतों की उपजाऊ मिट्टी पवनों के साथ उड़ जाती है।

संरक्षण

भूमि-संरक्षण के कार्यक्रम के अन्तर्गत मिट्टी के कटाव को रोकना आवश्यक है। इस कटाव को रोकने के उपाय इस सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये कि जल का बहाव कम हो जाये और मिट्टी ढीली न पड़ने पाये। इसके लिए निम्नलिखित विधियाँ काम में लानी चाहिये - (1) वृक्षारोपण, (2) नालियों पर बांध बनाना तथा अवरोध लगाना, (3) पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीनुमा खेत बनाना, (4) खेतों की मेड़ें मजबूत करना (5) पशुचारण को व्यवस्थित करना, (6) ढालू जमीन पर गोलाई में समोच्च रेखाओं की तरह जुताई करना तथा (7) नदियों पर बांध बनाना। भारत में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं। सरकार द्वारा देहरादून, कोटा, जोधपुर, बेलारी तथा ऊटकमण्ड में अनुसन्धानशालाएँ खोली गयी हैं। मरूस्थल के प्रसार को रोकने के लिए पेड़ लगाये जा रहे हैं। राजस्थान में रेत को उड़ने से रोकने के लिए चारागाह बनाने तथा वायुयान से बीज बिखेर कर बबूल और आक के पेड़ लगाने का काम शुरू किया गया है। वन-महोत्सव और बहुउद्देशीय परियोजनाओं द्वारा भी इस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है। किन्तु इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास कृषकों की जागरूकता व सहयोग द्वारा सम्भव है।

मिट्टी की दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या **उत्पादन शक्ति का ह्रास** है। उत्पादक शक्ति के ह्रास से तात्पर्य यह है कि मिट्टी से फसलों का उत्पादन घट रहा है। यह प्राय: तभी होता है जब मिट्टी से अधिकाधिक उत्पादन लेकर हम उसे उसके उत्पादक तत्वों से विहीन कर देते हैं और प्राकृतिक या कृत्रिम उपायों से उन तत्वों को पुन: पहुँचाने का उपाय नहीं करते। इसके लिए गोबर, कम्पोस्ट की खाद तथा रासायनिक खाद का उचित उपयोग आवश्यक है। फसल-चक्र तथा हरी खाद के उपयोग से भी उत्पादन शक्ति का ह्रास रोका जा सकता है। कुछ समय के लिये कृषि भूमि को परती छोड़कर मिट्टी की उत्पादकता का प्राकृतिक रूप से नवीनीकरण किया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. शैलों के विखण्डन व विघटन तथा जीवावशेषों के सड़े-गले अंश से मृदा का निर्माण होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिये यह एक महत्वपूर्ण संसाधन है।
2. कांप मृदा - विस्थापित, उपजाऊ मृदा, पुरातन, नूतन व अधिनूतन कांप मृदा।
3. काली मृदा - उपजाऊ, रेगड़ मृदा, कपास, मूंगफली, गन्ने आदि की कृषि के लिये उपयोगी।
4. लाल मृदा - मोटे कणों वाली, सिंचाई की आवश्यकता अधिक व कम उपजाऊ।
5. लैटेराइट मृदा - विक्षालित व ह्यूमस रहित, कम उपजाऊ, चाय-कॉफी के लिये उपयुक्त।
6. बलुई मृदा - शुष्क क्षेत्रों में, जल उपलब्ध हो जाने पर उत्पादक।
7. पर्वतीय मृदा - अपरिपक्व, मोटे कणों वाली, सीढ़ीदार खेतों में चावल की कृषि के लिये तथा चारागाहों के लिए उपयुक्त।
8. मृदा समस्याएँ - मृदा क्षरण, उर्वरता का ह्रास, मृदा प्रदूषण, इनके लिये विविध कारक उत्तरदायी। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इस महत्वपूर्ण संसाधन के संरक्षण के उपाय आवश्यक।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. भारत में स्थानीय मृदा है –

   (अ) पर्वतीय (ब) बलुई

   (स) विस्थापित (द) काली

2. भारत में कपास की कृषि के लिये सर्वाधिक उपयुक्त मृदा है –

   (अ) पर्वतीय (ब) काली

   (स) लाल (द) लैटेराइट

3. भारत में काली मिट्टी है –

   (अ) विस्थापित (ब) दलदली

   (स) लावा–जन्य (द) विक्षालन–जन्य

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

4. लैटेराइट मृदा का रंग कैसा होता है?
5. भारत में पुरातन कांप मृदा कहाँ मिलती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. मृदा संरक्षण से क्या तात्पर्य है?
7. किस प्रकार की मृदा में प्राकृतिक रूप से नवीनीकरण होता रहता है?
8. मृदा क्षरण से क्या तात्पर्य है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

9. मृदा के निर्माण की प्रक्रिया समझाते हुए उसके विभिन्न प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

आंकिक प्रश्न –

10. भारत के रूपरेखा मानचित्र में लाल व बलुई मृदा के क्षेत्र दर्शाइये।
11. भारत के रूपरेखा मानचित्र में काली व पर्वतीय मृदा के क्षेत्र दर्शाइये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. ब 3. स

इकाई – 4

अध्याय –10

प्राकृतिक आपदाएँ व प्रबंधन (भूकम्प व भूस्खलन)

(Natural Disasters and Management)
(Earthquakes & Land slides)

प्राकृतिक आपदाएँ

परिवर्तन लगातार होने वाली क्रिया है। परिवर्तन प्रकृति में भी सदैव होते रहते हैं। जिन परिवर्तनों का प्रभाव मानव के हित में होता है उन्हें प्रकृति का वरदान कहा जाता है। लेकिन जब परिवर्तनों का प्रभाव मानव समाज का अहित करता है तो इन्हें प्राकृतिक आपदा कहा जाता है। जैसे – जब वर्षा समयानुसार व मानव की आवश्यकतानुसार होती है तो मानव उसे वरदान मानता है। जब वर्षा अत्यधिक मात्रा में होती है तो वह बाढ़ के रूप में प्राकृतिक आपदा बन जाती है जिसे अतिवृष्टि भी कहा जाता है और यदि बहुत कम वर्षा हो तो वही अनावृष्टि के रूप में प्राकृतिक आपदा बन जाती है। जिन प्राकृतिक परिवर्तनों का दुष्प्रभाव मानव समाज पर पड़ता है उन्हें प्राकृतिक आपदाएँ कहते हैं।

प्राकृतिक आपदा तथा संकट

प्राकृतिक आपदा तथा संकट में बहुत बारीक अन्तर है। प्राकृतिक आपदा प्रकृति में कुछ ही समय में घट जाने वाली घटना या परिवर्तन है। ऐसी घटनाओं के घट जाने के बाद मानव समाज को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है वे समस्याएँ संकट मानी जाती हैं।

फ्रैंच भाषा में Dis का अर्थ बुरा (Bad)तथा Aster का अर्थ सितारे से है। अत: Disaster का अर्थ है सितारे बुरे होना। प्राकृतिक आपदाओं (Disaster) को प्राकृतिक संकट (Hazards) भी कहा जाता है। भारत में प्राकृतिक आपदाओं को प्रकृति का प्रकोप भी कहते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण ही संकट व समस्याओं की स्थिति बनती है। प्राचीन काल में प्राकृतिक आपदाओं को प्रकृति के साथ की गई छेड़-छाड़ के लिए प्रकृति द्वारा दिया गया दंड माना जाता था।

प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति के कारण

किसी प्राकृतिक आपदा की उत्पत्ति के लिए कौन सा कारण जिम्मेदार है, इसे निर्धारित करना बहुत कठिन है। किसी भी प्राकृतिक आपदा के लिए एक नहीं अनेक कारण संयुक्त रूप से जिम्मेदार होते हैं। पृथ्वी की आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों का प्रभाव कुछ आपदाओं को सीधे प्रभावित करता है जैसे, भूकम्प व ज्वालामुखी। मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण विदोहन अनवरत जारी रखा है। बढ़ती जनसंख्या की मांगों की पूर्ति हेतु भूमि उपयोग के स्वरूप को विकृत किया है। फलस्वरूप वनों का विनाश, भूमि का क्षरण व जल संकट जैसी समस्याओं ने पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। इससे ग्लोबल वार्मिंग की समस्या पैदा होती जा रही है, जो कहीं न कहीं अतिवृष्टि व अनावृष्टि जैसी आपदाओं को उत्पन्न कर रही है। भूस्खलन व समुद्री तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाएँ भारत में भी बढ़ती जा रही हैं। मानव का उपभोक्तावादी दृष्टिकोण अन्धाधुन्ध विकास के लिए प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ रहा है। मानव के ये कार्य प्राकृतिक आपदाओं को अप्रत्यक्ष रूप से आमंत्रण दे रहे हैं।

प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण

उत्पत्ति के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है –

1. मौसमी आपदाएँ – इनमें वे प्राकृतिक आपदाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो मौसमी परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं, जैसे – चक्रवात, अतिवृष्टि, अनावृष्टि व हिमपात।

2. स्थलाकृतिक आपदाएँ – इनमें वे प्राकृतिक आपदाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो स्थलाकृतिक स्वरूप में अचानक परिवर्तन होने से उत्पन्न होती हैं, जैसे – भूस्खलन, हिमस्खलन, भूकम्प व ज्वालामुखी। भारत में ज्वालामुखी सक्रिय नहीं है।

3. जीवों द्वारा उत्पन्न आपदाएँ – इनमें वे प्राकृतिक आपदाएं सम्मिलित की जाती हैं जो जीवों व जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होती हैं, जैसे – टिड्डी दल

का आक्रमण, महामारियाँ, मृत पशु, प्लेग, मलेरिया इत्यादि।

प्राकृतिक आपदाएँ व प्रबन्धन

प्रबन्धन वे कार्य हैं जो आपदा व संकट के निवारण हेतु किये जाते हैं। प्राकृतिक आपदाओं से जो संकट की घड़ी आती है उसका मुकाबला करने के लिए देश व समाज को प्रबन्धन के क्षेत्र में बहुत जिम्मेदारी व ईमानदारी से हिस्सा लेना होता है। प्रबन्धन से आशय है, संकट से राहत पाने के लिए प्रत्येक स्तर पर जो जिम्मेदारियाँ निर्धारित हैं उसके अनुसार समयबद्ध कर्तव्य का पालन किया जाना। देश व समाज के चरित्र का परिचय प्राकृतिक आपदा के बाद मानव सेवा में उनके द्वारा किये गये कार्यों से मिलता है। प्रबन्धन को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं –

1. आर्थिक स्थिति
2. व्यक्ति की सकारात्मक सोच
3. सहयोग की भावना
4. सामाजिक ईमानदारी व निष्ठा
5. भौगोलिक परिस्थितियाँ
6. परिवहन व संचार के साधनों की स्थिति
7. जनसंख्या घनत्व

भूकम्प

पृथ्वी के आन्तरिक भाग में होने वाली किसी घटना से जब पृथ्वी के किसी भाग में कम्पन्न होता है तो उसे भूकम्प कहते हैं। साधारण शब्दों में पृथ्वी के किसी भाग के कम्पन को भूकम्प कहते हैं। भूकम्प प्राकृतिक आपदाओं में बहुत विनाशकारी आपदा है। इसमें कुछ ही क्षणों में विनाशकारी परिवर्तन हो जाते हैं। भू–सतह पर भूकम्प की तरंगों से कम्पन्न के साथ–साथ ऐसा लगता है जैसे पैरों के नीचे जमीन हिल रही है।

भूकम्प की तीव्रता सीस्मोग्राफ यंत्र के द्वारा मापी जाती है। सिसमोग्राफ भूकम्प की तरंगों को निरन्तर अंकन करता रहता है। तरंगों की तीव्रता को रिक्टर पैमाने पर मापा जाता है। इस पैमाने को चार्ल्स रिक्टर ने विकसित किया था। उन्हीं के नाम पर इसे रिक्टर पैमाना कहा जाता है। रिक्टर पैमाने पर भूकम्प की तीव्रता 1 से 12 तक मापी जाती है। रिक्टर पैमाने पर भूकम्प की तरंगों की तीव्रता 5 तक मापी जाये तो इसे सामान्य भूकम्प कहा जाता है। जैसे–जैसे तीव्रता की संख्या बढ़ती जाती है, भूकम्प महाविनाशकारी रूप लेता जाता है।

भूकम्प उत्पत्ति के कारण

भूकम्प मुख्यत: पृथ्वी की विवर्तनिक गतियों के कारण उत्पन्न होते हैं। विवर्तनिक गतियों में प्लेटों का प्रवाह भूकम्प का कारण बनता है। इसका सबसे नवीन उदाहरण 26दिसम्बर 2004 को दक्षिणी–पूर्वी एशिया में आया भूकम्प है जिसमें भारतीय प्लेट उत्तर की ओर प्रवाहित हुई थी। पृथ्वी पर संतुलन की प्रक्रिया के निरन्तर जारी रहने से भी भूकम्प की उत्पत्ति होती है। इस प्रक्रिया में भूपटल पर भ्रंश व उत्थान होते रहते हैं। पृथ्वी से निरन्तर निकलने वाली उष्मा से उसमें संकुचन होता है। हालांकि यह प्रक्रिया बहुत लम्बे काल तक चलती है पर यह संकुचन भी भूकम्प की उत्पत्ति का कारण बनता है। खनिजों के अविवेकपूर्ण दोहन व कमजोर भूपटल वाले क्षेत्रों में बड़े–बड़े बांधों का निर्माण भी मानवीय क्रियाओं द्वारा भूकम्प की उत्पत्ति का कारण बनते हैं।

सारणी - 10.1

भारत में आए प्रमुख भूकंप

तिथि	अधिकेंद्र अक्षांश (अंश उ.)	अधिकेंद्र देशांतर (अंश पू.)	स्थान	तीव्रता
06-08-1988	25.13	95.15	मणिपुर–म्यांमार सीमा	6.6
21-08-1988	26.72	86.63	बिहार–नेपाल सीमा	6.4
20-10-1991	30.75	78.86	उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड पहाड़ियाँ	6.6
30-09-1993	18.07	76.62	लातूर–ओस्मानाबाद, महाराष्ट्र	6.3
22-05-1997	23.08	80.06	जबलपुर, मध्य प्रदेश	6.0
29-03-1999	30.41	79.42	चमोली, उत्तराखण्ड	6.8
26-01-2001	23.40	70.28	भुज, गुजरात	6.9
08-10-2005	34.24	73.22	मुज़फ्फराबाद, जम्मू और कश्मीर	7.6

भूकम्प प्रवृत क्षेत्र

भारत में भूकम्प प्रवृत क्षेत्रों का निर्धारण बहुत सरल माना गया था। लेकिन 30 सितम्बर 1993 को लातूर में आये भूकम्प के बाद भारत में भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों पर नये सिरे से विचार किया गया। भारत में आए प्रमुख भू–कम्पों की सारणी को देखा जाये तो ज्ञात होता है कि उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र व उसकी तलहटी में सर्वाधिक भूकम्प आए हैं। हिमालय नवीन मोड़दार पर्वत है जो अभी भी उत्थान की अवस्था में है। हिमालय क्षेत्र में अभी भी संतुलन की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है, अत: इस क्षेत्र में भूकम्प सर्वाधिक आते हैं। उत्तरी मैदानी क्षेत्र में कम शक्ति के भूकम्प आते हैं व उनकी संख्या भी अपेक्षाकृत कम है। प्रायद्वीपीय पठार को स्थिर भूभाग माना जाता रहा है लेकिन कोयना व लातूर के भूकम्पों के बाद इस क्षेत्र को भी भूकम्प क्षेत्र माना गया है। भारतीय प्लेट के निरंतर उत्तर की ओर प्रवाह के कारण भी इन क्षेत्रों में भूकम्प आते हैं। भारत में आए लगभग 1200 भूकम्पों का अध्ययन कर भारत को तीन भूकम्प क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। इन भूकम्प प्रवृत क्षेत्रों को चित्र संख्या 10.1 में दर्शाया गया है।

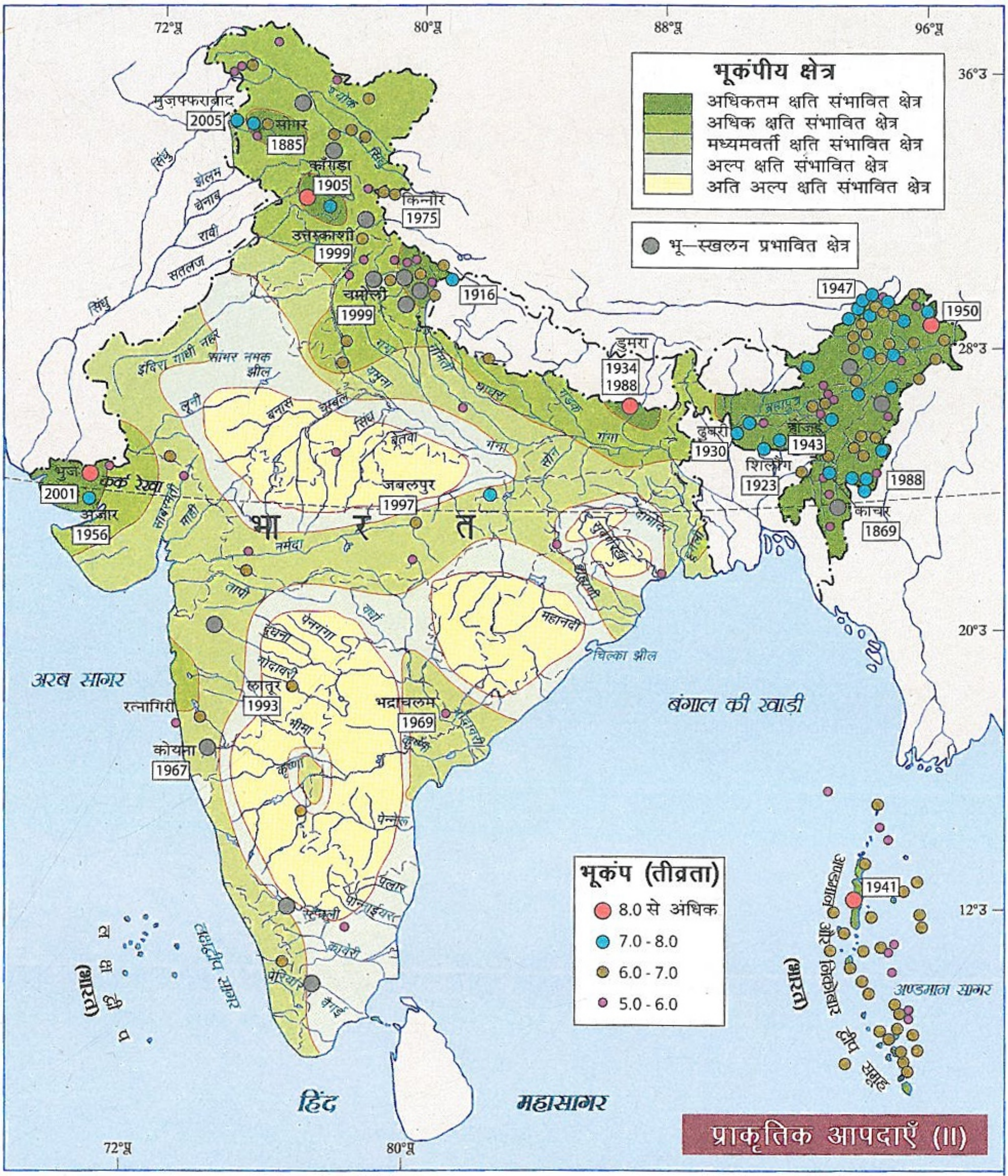

चित्र 10.1 – भारत : भूकम्प प्रवृत क्षेत्र

भूकम्प – एक संकट

भूकम्प एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जो कुछ ही क्षणों में विनाशकारी परिवर्तनों का ऐसा स्वरूप मानव समाज के सम्मुख उपस्थित कर देती है कि हृदय दहल जाता है। भूकम्प आने से हजारों जानें काल की ग्रास बन जाती हैं, भवन रेत के ढेर की तरह भरभरा कर गिर जाते हैं, आवागमन के मार्ग टूट जाते हैं, नहरों, पुलों व बांधों को क्षति पहुँचती है, पृथ्वी सतह पर दरारें पड़ जाती हैं, भूकम्प से भूस्खलन होने पर नदियों के मार्ग बदल जाते हैं व कई जगह झीलें भी बन जाती हैं। ये भविष्य में खतरे का सबब बनती हैं, जिनसे बाढ़ का खतरा बना रहता है।

11 अक्टूबर 1737 को कोलकाता में आए भूकम्प से लगभग 3 लाख व्यक्ति मारे गये थे। 30 मई 1885 को कश्मीर क्षेत्र में आए भूकम्प से भूस्खलन के कारण हजारों व्यक्ति मारे गये थे व हजारों बेघर हो गए। 11 दिसम्बर 1967 को भूकम्प के कारण कोयना बांध टूटने से मोरवीनगर नष्ट हो गया। 26दिसम्बर 2004 को दक्षिणी पूर्वी एशिया में जावा के पास आए भूकम्प के कारण समुद्र में जो सुनामी लहरें पैदा हुई उससे हजारों किलोमीटर दूर भारत के तटीय क्षेत्रों में विनाश हुआ जिससे लगभग 5000 व्यक्ति इन लहरों के ग्रास बन गये।

संकट से बचाव व प्रबन्धन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – प्राकृतिक आपदाओं से पैदा होने वाले संकटों पर सभी सरकारें तत्काल राहत व सहायता उपलब्ध करवाती हैं। भारत जैसे देश में जहाँ जनसंख्या घनत्व अधिक है जनहानि अधिक होती है व उसकी संभावना भी बनी रहती है। अत: आवश्यक है कि देश में भूकम्प लेखी यंत्रों का जाल बिछा दिया जाये ताकि भूगर्भ में होने वाली हलचलों का ज्ञान होता रहे। जब कभी तीव्र गति के भूकम्प आने की संभावना बने तो क्षेत्र विशेष के लोगों को प्रचार माध्यमों के द्वारा सजग कर दिया जाये।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – व्यक्ति को जब भी भूकम्प आने का अहसास होने लगे तो उसे तत्काल कुछ निर्णय लेने चाहिए जैसे – सभी को घर से बाहर खुली जगहों पर जाने को कहना, यदि बाहर जाना सम्भव न हो तो दरवाजों के मध्य में खड़े हो जाना चाहिए। बिजली बंद कर देनी चाहिए। गैस बंद कर देनी चाहिए। पालतू जीवों को बन्धन मुक्त कर देना चाहिए। यदि वाहनों में यात्रा कर रहें हो तो वाहन को रोककर उतर कर एक ओर खुले में खड़े हो जाना चाहिए। ये उपाय इसलिए किए जाने सम्भव हैं कि तीव्र भूकम्प आने से पहले कुछ समय तक हल्के झटके लगते हैं जिससे मानव को भूकम्प आने का आभास हो जाता है।

संकट की घड़ी में व्यक्ति को एकता का परिचय देना आवश्यक हो जाता है। जाति, धर्म व सम्प्रदाय के बन्धनों से मुक्त होकर मानवीय संवेदना के कारण मुक्त हस्त से तन–मन–धन से सहायता करनी चाहिए। इससे मानवीय सम्बन्ध और प्रगाढ़ होते हैं। भारत में जब कभी भी ऐसी प्राकृतिक आपदा आई है, देश के नागरिकों, स्वयंसेवी संगठनों, संस्थाओं, विद्यार्थियों आदि ने मिलकर पीड़ितों की सहायता करने का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

भूस्खलन

मिट्टी तथा चट्टानों का ढलान पर ऊपर से नीचे की ओर खिसकने, लुड़कने तथा गिरने की प्रक्रिया को भूस्खलन कहते हैं। भूस्खलन यदि बहुत बड़े परिमाण में होता है तो उस क्षेत्र में गड़गड़ाहट की आवाज धीरे–धीरे शुरू होती है बाद में तेज आवाज के साथ मलवा नीचे की ओर गिरता है।

भूस्खलन – कारण

भूस्खलन के लिए किसी एक कारक को उत्तरदायी नहीं माना जाता है अपितु कई कारक मिलकर भूस्खलन जैसी आपदा को जन्म देते हैं। भूस्खलन के लिए उत्तरदायी कारकों को दो वर्गों में रखा गया है।

1. प्राकृतिक कारक – इसमें चट्टानों की संरचना, भूमि का ढाल, चट्टानों में वलन व भ्रंशन, वर्षा की मात्रा व वनस्पति का आवरण आदि कारक प्रमुख हैं। नवीन मोड़दार पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन अधिक होते हैं क्योंकि वहां उत्थान की सतत् प्रक्रिया के कारण चट्टानों के जोड़ कमजोर होते रहते हैं व ढाल भी अधिक होता है। ऐसे में यदि वर्षा तीव्र हो जाये जो वह स्नेहन का काम करती है। कमजोर जोड़ों पर से चट्टानें नीचे की ओर खिसकने लगती हैं व वर्षा जल की मात्रा बढ़ने पर फिसल कर नीचे गिरती हैं। गुरूत्वाकर्षण बल इसमें और सहयोग करता है। जहाँ ढाल तीव्र होता है वहाँ गुरूत्वाकर्षण बल और बढ़ जाता है। जो ढाल 45° से अधिक कोण के होते हैं वहाँ भूस्खलन अधिक तीव्र होता है। पश्चिमी घाट में कोंकण रेल मार्ग पर वर्षा ऋतु में भूस्खलन इसीलिए अधिक होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में नदी की अपरदन शक्ति अधिक होती है। नदी किनारों पर अपरदन से उनके ऊपरी क्षेत्र में भूस्खलन होता है।

2. मानवीय कारक – भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदा को मानव ने अनियंत्रित विकास के कारण और अधिक बढ़ा दिया है। कागज़ व इमारती लकड़ी के लिए वनों का अतिदोहन किया है। इस वन विनाश से चट्टानों व मिट्टियों पर वृक्षों की जड़ें अपनी मजबूत पकड़ को छोड़ देती हैं, अत: मृदा अपरदन प्रारम्भ हो जाता है। यही मृदा अपरदन धीरे–धीरे भूस्खलन का रूप ले लेता है। सड़कें, रेल मार्ग, सुरंगों के निर्माण तथा खनन के रूप में मानव भूस्खलन को बढ़ावा देता है। पर्वतीय क्षेत्रों में

आवागमन मार्गों के निर्माण में पर्वतों पर से वनों व मिट्टी की बहुत बड़ी मात्रा को हटाया जाता है। यह पदार्थ नीचे की ओर सरक कर भूस्खलन की मात्रा को बढ़ाते हैं।

भूस्खलन प्रवृत क्षेत्र

भारत में भूस्खलन हिमालय क्षेत्र में अधिक होता है। इसके बाद पश्चिमी घाट क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में जहाँ नदियों के प्रवाहित क्षेत्र है वहाँ भूस्खलन अधिक होते हैं। पूर्वोत्तर भारत व जम्मू-कश्मीर क्षेत्र में जहाँ नई सड़कों का निर्माण कार्य हुआ है उन क्षेत्रों में भी भूस्खलन अधिक होते हैं। समुद्री किनारों पर सागरीय लहरों के अपरदन के कारण भी भूस्खलन होते हैं। कोंकण तट पर इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं। भारत में भूस्खलन प्रवृत क्षेत्रों को चित्र संख्या **10.2** में दर्शाया गया है।

भूस्खलन - एक संकट

भूस्खलन भूकम्प की तरह महाविनाशकारी आपदा नहीं है लेकिन जब कभी भी भूस्खलन होता है तो वह विनाश तो करता ही है। कहीं यह नदियों के मार्ग अवरूद्ध कर देता है तो कहीं आवागमन के मार्गों को अवरूद्ध कर देता है। मार्ग अवरूद्ध होने से जनजीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। मांग व पूर्ति का संतुलन बिगड़ जाता है। अतः भूस्खलन होते ही पहले मार्ग को खोला जाता है ताकि आवागमन के अवरूद्ध होने से जो संकट खड़े हुए हैं उन्हें दूर किया जा सके।

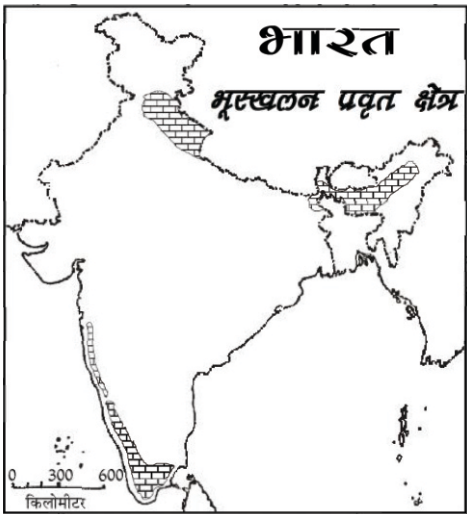

चित्र 10.2 - भारत : भूस्खलन प्रवृत क्षेत्र

जब कभी भूस्खलन आबादी वाले क्षेत्रों में होता है तो उससे जन व धन दोनों की हानि होती है। लोग मकान के मलबे के ढेर में दब जाते हैं। 1993 में नीलगिरि की पहाड़ियों पर हुए भूस्खलनों में 40 लोग मारे गए थे। सड़कें टूट गई थी व कई मकान ढह गए थे। इसी वर्ष उत्तरांचल में भी भूस्खलनों से भारी जन-धन की हानि हुई थी।

कई बार भूस्खलनों से नदियों के मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं तथा वहाँ अस्थायी झील बन जाती है। यह झील जब कभी टूटती है तो बाढ़ से जन-धन की हानि होती है। 1971 में भारी भूस्खलन से अलकनंदा नदी (उत्तरांचल) पर अस्थाई झील बन गई थी। उसके टूटने से बेलाकुची गाँव पूरा का पूरा बह गया था। भारत में हो चुके प्रमुख भूस्खलनों व उनके प्रभाव को सारणी-10.1 में दर्शाया गया है।

सारणी - 10.2

भारत में होने वाले भयंकर भूस्खलन

क्र.	वर्ष	स्थान	प्रभाव
1.	1971	अलकनंदा (उत्तरांचल)	भूस्खलन से अस्थायी बांध बन गया। इसके टूटने से कई गांव क्षतिग्रस्त।
2.	1993	रतिघाट (उत्तरांचल)	मूसलाधार वर्षा के बाद भूस्खलन। एक सप्ताह तक नैनीताल क्षेत्र के गाँव बाहरी दुनिया से कटे रहे, सड़कें क्षतिग्रस्त।
3.	1993	नीलगिरी की पहाडियाँ (तमिलनाडु)	मूसलाधार वर्षा के बाद भूस्खलन। लगभग 40 लोग मारे गए। सड़कें व मकान क्षतिग्रस्त।

भूस्खलन व प्रबन्धन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर - भारत में होने वाले भूस्खलनों का अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट है कि 90 प्रतिशत से अधिक भूस्खलन वर्षा ऋतु में होते हैं। अतः पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ कहीं भी परिवहन मार्गों का निर्माण हुआ है, उन मार्गों के दोनों ओर वर्षा जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। मार्गों के निर्माण के दोनों ओर 45° के कोण तक के मलवे को निर्माण के दौरान ही हटा देना चाहिए। यदि हटाना सम्भव न हो तो मजबूत दीवार बनाकर चट्टानों को सहारा दे दिया जाये। गांवों की बसावट भूस्खलन से निरापद क्षेत्रों में की जाये। यातायात मार्गों पर भूस्खलन क्षेत्र के चेतावनी संकेत लगाये जाये।

2. व्यक्तिगत स्तर पर - स्वयं के वाहनों पर जाते समय यदि भूस्खलन सम्भावित क्षेत्र में वर्षा प्रारम्भ हो गई हो तो वाहन को एक किनारे पर रोक दिया जाये। पर्वतीय क्षेत्रों में मकान मजबूत धरातल पर बनाए जाए।

अध्याय -11

प्राकृतिक आपदाएँ व प्रबंधन (बाढ़, सूखा व समुद्री तूफान)

(Natural Disasters and Management)
(Flood, Drought and Sea storm)

बाढ़ व सूखा

जब भारी अथवा निरन्तर वर्षा के कारण नदियों का जल अपने तटबन्धों को तोड़कर बहुत बड़े क्षेत्र में फैल जाता है उसे **बाढ़** कहते हैं। जब किसी क्षेत्र में बहुत कम वर्षा हो व इतनी कम हो कि फसलों को तो छोड़िये पीने के पानी के लिए भी वर्षा का जल पर्याप्त नहीं हो तो उसे सूखा कहते हैं। बाढ़ अतिवृष्टि के कारण आती है। सूखा अनावृष्टि के कारण आता है। वर्षा ऋतु में वर्षा का यह असमान वितरण भारत में दोनों तरह की प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनता है। प्रत्येक वर्ष भारत के किसी न किसी क्षेत्र में बाढ़ आती है व किसी न किसी क्षेत्र में सूखा पड़ता है। भारत में 4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र को बाढ़ प्रभावित क्षेत्र माना जाता है जबकि सूखे से प्रभावित क्षेत्र इससे कई गुना अधिक होता है।

अपने विशाल आकार एवं मानसूनी जलवायु के कारण ये दोनों प्राकृतिक आपदाएँ भारत को प्रभावित करती हैं। भारतीय जनमानस अपने स्वभाव व सहज संतोषी वृत्ति के कारण इन्हें ईश्वरीय प्रकोप मानकर सदियों से सहता आ रहा है।

बाढ़ (अतिवृष्टि)

बाढ़ के कारण

नदी की धारा में बहने वाला पानी जब अपने चारों और फैलता है तो बाढ़ आती है। लेकिन इस सामान्य से कारण के पीछे कई कारण जिम्मेदार होते हैं। नदी के जल ग्रहण क्षेत्र में जब कभी तेज वर्षा होती है तो पानी बहने के लिए पर्याप्त रास्ता नहीं बन पाता है व जल चारों ओर फैलने लगता है। नदियों में वर्षा ऋतु में अवसाद बहकर आते हैं व वे नदी पेटे में जम जाते हैं इससे नदी का पैंदा उथला हो जाता हे व जल किनारों से बाहर बहकर फैलने लगता है। वन विनाश एवं चरागाहों के विनाश के कारण वर्षा जल तेजी से बहने लगता है व वह कम समय में ही मुख्य धारा में बहकर आ जाता है। इस कारण भी नदी में जल की मात्रा जल्दी बढ़ जाती है। जंगलों व चरागाहों की सघनता होने पर जल अवरोध के कारण धीरे-धीरे बहता है इससे भूमिगत जल स्तर भी बढ़ता है व बाढ़ की स्थिति सहज ही नहीं बन पाती है।

प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त मानव अपने अविवेकपूर्ण कार्यों से बाढ़ आने के कारणों को बढ़ावा देता है। जैसे नदी प्रवाह मार्गों पर आबादी की बसावट, अविवेकपूर्ण तरीके से आवागमन मार्गों का निर्माण करना, परम्परागत जलग्रहण क्षेत्रों को नष्ट करना तथा प्राकृतिक रूप से जल प्रवाह स्वरूप की उपेक्षा कर निर्माण कार्य करना।

भारत के बाढ़ प्रवृत क्षेत्र

भारत के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र भारत में वर्षा के वितरण से निर्धारित है। भारत में बाढ़ों से होने वाली 90 प्रतिशत से अधिक क्षति उत्तरी एवं उत्तरी पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में होती है। उत्तरी भारत में वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर क्रमश: कम होती जाती है। यही स्वरूप बाढ़ों के प्रभावित क्षेत्र के लिए भारत में उभरता है। भारत के उत्तर पश्चिम में बहने वाली नदियों सतलज, व्यास, रावी, चिनाब व सेलम में बाढ़ की भयंकरता कम होती है जबकि पूर्व में बहने वाली गंगा, यमुना, गोमती, घाघरा व गंडक नदियों में अपेक्षाकृत अधिक बाढ़ आती है। कोसी व दामोदर नदियों में बाढ़ें महाविनाशकारी होती हैं। इसीलिए कोसी नदी को **'बिहार का शोक'** व दामोदर नदी को **'बंगाल का शोक'** कहा जाता है।

देश के उत्तर-पूर्वी भाग में ब्रह्मपुत्र नदी घाटी है। इस नदी घाटी में प्रति वर्ष बाढ़ें आती हैं। इस क्षेत्र में वर्षा भी औसतन 250 से.मी. से अधिक होती है। उत्तरी एवं उत्तर-पूर्वी भारत में जब कभी मूसलाधार वर्षा होती है तो इन क्षेत्रों में स्थित नदी घाटियों में बाढ़ आ जाती है। ऐसे में यदि मध्य भारत में भी वर्षा हो तो बाढ़ का प्रकोप बढ़ जाता है।

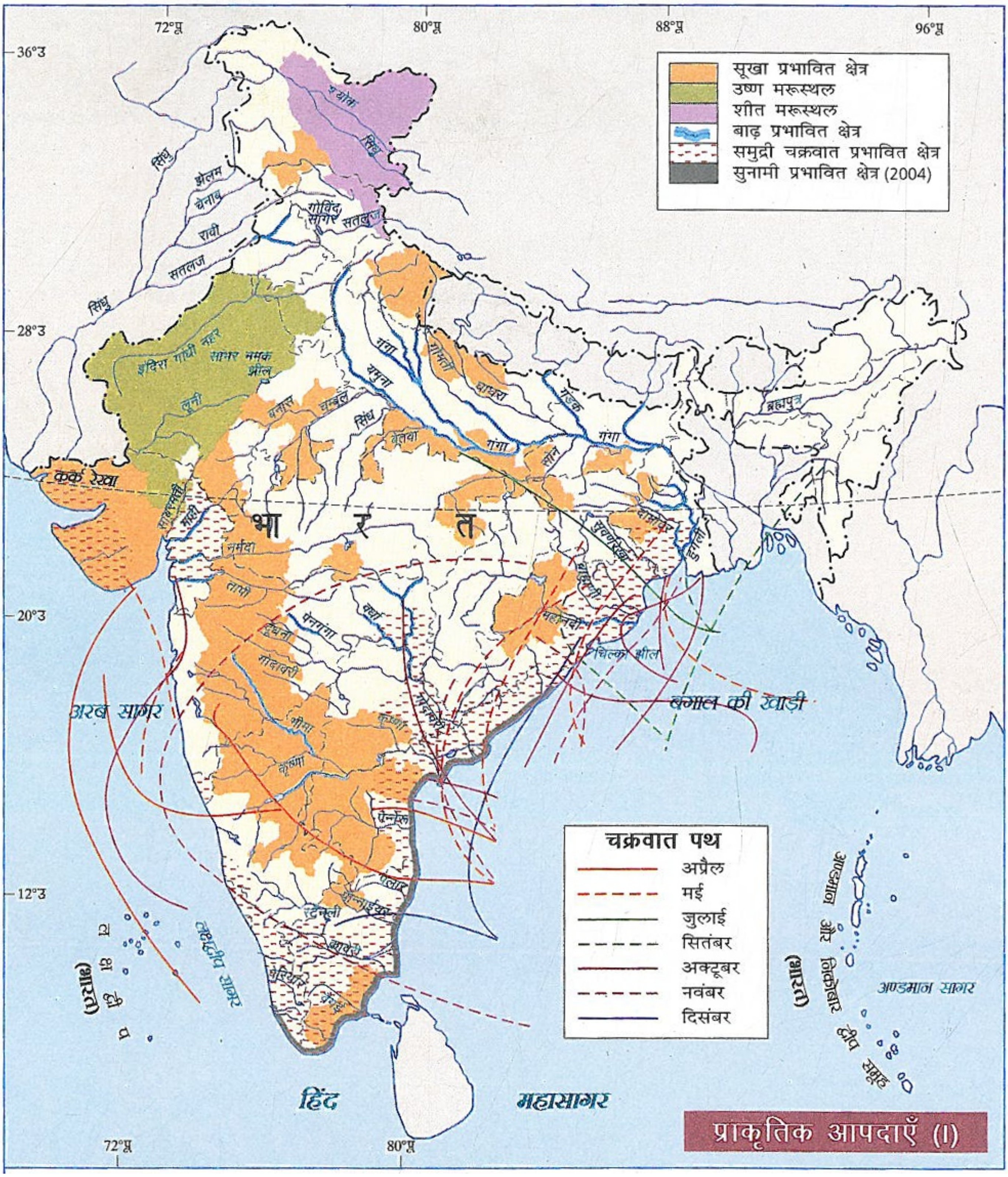

चित्र 11.1 – भारत : प्राकृतिक आपदाएँ

1976 से प्रमुख चक्रवाती घटनाएँ

अवधि	प्रभावित तट	अधिकतम वायु गति (कि.मी. प्रति घंटा)
सितंबर 1976	कोनताई, पश्चिम बंगाल	160
नवंबर 1977	निजामपट्नम, आंध्र प्रदेश	193
नवंबर 1977	दिवि–मछलीपटनम, आंध्र प्रदेश	120
नवंबर 1978	रामनाथपुरम, आंध्र प्रदेश	204
मई 1979	दक्षिण ओंगोल, आंध प्रदेश	160
नवंबर 1989	कवाली के समीप, दक्षिण आंध्र प्रदेश	222
मई 1990	नेल्लोर, आंध्र प्रदेश	102
नवंबर 1991	कराइकल, तमिल नाडू	89
नवंबर 1992	तुतिकोरीन, तमिल नाडू	113
दिसंबर 1993	कराइकल, तमिल नाडू	133
अक्टूबर 1999	पाराद्वीप / बालेश्वर, ओडिशा	252

चक्रवात तीव्रता मापक

वर्ग	वायु गति (कि.मी / घंटा)	क्षति
परम चक्रवाती तूफान	222 से अधिक	व्यापक सागर, उफान आदि
अति प्रचंड चक्रवाती तूफान	168–221	व्यापक नदी में बाढ़ आदि
अति प्रचंड चक्रवाती तूफान	118–167	मिट्टी के घरों का नुकसान
प्रचंड चक्रवाती तूफान	88–117	छतों के उड़ने की संभावना
चक्रवाती तूफान	62–87	विद्युत तारें प्रभावित
गहरा अवदाब	52–61	वृक्षों का क्षरण

चम्बल, सोन, बेतवा व दामोदर नदियां मध्य भारत से वर्षा का जल लाती हैं। इन नदियों का जल व उत्तर से बहकर आने वाली नदियों का जल मिलकर अधिक क्षेत्र में फैल जाता है व बाढ़ का स्वरूप विकराल हो जाता है।

प्रायद्वीपीय भारत में महानदी, गोदावरी, कृष्णा व कावेरी नदियों के तटीय क्षेत्रों में बाढ़ अधिक आती है। अधिकांश प्रायद्वीपीय नदियाँ पश्चिम से पूर्व को बहती हैं। ये नदियाँ पश्चिमी घाट से निकलकर बंगाल की खाड़ी में मिलती हैं। इन नदियों का जलग्रहण क्षेत्र उत्तरी भारत की नदियों से कम है। अत: इन नदियों की बाढ़ें उत्तरी भारत की नदियों की बाढ़ों से कम विकराल होती हैं। बाढ़ों के बारे में एक प्रमुख तथ्य यह है कि नदी कोई सी भी हो व भारत के किसी भी क्षेत्र में बहती हो, यदि मानसूनी व मौसमी कारणों से लगातार मूसलाधार वर्षा होती है व बादल फट जाने जैसी स्थिति बन जाती है तो बाढ़ का रूप भयंकर होता है। भारत के बाढ़ प्रवृत क्षेत्रों को चित्र संख्या 11.1 में दर्शाया गया है।

बाढ़ – समस्या व संकट

यदि प्रश्न किया जाये कि किस प्राकृतिक आपदा से भारत को प्रतिवर्ष अधिक नुकसान होता है तो नि:सन्देह बाढ़ का नाम सबसे पहले आयेगा। विकास पथ पर बढ़ने के बावजूद देश में बाढ़ से होने वाली हानि के आंकड़े लगातार बढ़ते ही जाते हैं, यह हानि चाहे जन के रूप में हो चाहे धन के रूप में। ऐसा अनुमान है कि भारत में बाढ़ से प्रति वर्ष 1500 से अधिक जानें जाती हैं। 80 लाख हैक्टेयर क्षेत्र बाढ़ से सर्वाधिक प्रभावित होता है। 35 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फसलें नष्ट हो जाती हैं। 3 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। आर्थिक रूप से लगभग एक हजार करोड़ से अधिक रूपयों की हानि देश को होती है। बाढ़ का सर्वाधिक प्रभाव पशुधन पर पड़ता है। लगभग 12 लाख पशुधन की हानि उठानी पड़ती है। 12 लाख से अधिक मकान क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

भारत में बाढ़ से होने वाली क्षति में 60 प्रतिशत से अधिक क्षति केवल उत्तर प्रदेश व बिहार में होती है। इसके बाद पश्चिमी बंगाल, आसाम व उड़ीसा को नुकसान उठाना पड़ता है।

बाढ़ की समस्या जीवन को अस्त–व्यस्त कर देती है। मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं तथा फसलें नष्ट हो जाती हैं। पीने के पानी के स्त्रोत खराब व दूषित हो जाते हैं। संचार के साधन बिगड़ जाते हैं। प्रभावित क्षेत्र में गंदगी बढ़ने से महामारी फैलने का भय रहता है। बांधों, तालाबों व नहरों को क्षति होती है। बाढ़ से होने वाली क्षति के वार्षिक औसत आंकड़ों को सारणी–11.1 में दर्शाया गया है।

सारणी – 11.1

भारत में बाढ़ से होने वाली क्षति – वार्षिक औसत आंकड़े

क्र.सं.	प्रभाव	वार्षिक औसत आंकड़े
1.	मानव जीवन क्षति	1500
2.	बाढ़ग्रस्त क्षेत्र	76लाख हैक्टेयर
3.	क्षतिग्रस्त फसलों का क्षेत्र	35 लाख हैक्टेयर
4.	बाढ़ प्रभावित लोग	3 करोड़ से अधिक
5.	मृत पशुधन	2 लाख
6.	क्षतिग्रस्त सम्पत्ति	800 करोड़ के लगभग

बाढ़ – संकट के समय प्रबंधन व दायित्व

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – बाढ़ की समस्या की विकरालता को महसूस करते हुए सर्वप्रथम इसके रोकथाम की आवश्यकता के प्रयास प्रारम्भ हुए। इस उद्देश्य से 1954 में राष्ट्रीय बाढ़ नियंत्रण योजना

शुरू की गई। इस योजना के अन्तर्गत तटबन्धों का निर्माण व जल-प्रवाह नालिकाओं का निर्माण करने के निर्णय लिये गये। इनके क्रियान्वयन के रूप में 33630 कि.मी. लम्बे तटबन्धों एवं 37904 कि.मी. लम्बी जल-प्रवाह नलिकाओं का निर्माण किया गया।

बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में बहुउद्देशीय योजनाओं के अन्तर्गत बाँध बनाने का कार्य भी किया गया। इस संदर्भ में महानदी, दामोदर, सतलज, व्यास, चम्बल, नर्मदा नदियों पर बाँध बनाये गये।

बाढ़ों पर नियन्त्रण के लिए नदी उद्गम क्षेत्रों एवं जल ग्रहण क्षेत्रों में वनों का लगाया जाना अति आवश्यक है। इससे मृदा अपरदन रूकने से नदी पेटे में अवसाद के जमाव में कमी आयेगी तथा जल शीघ्रता से मुख्य नदी तक नहीं पहुँच सकेगा। अत: जरूरी है कि वृक्षारोपण के साथ-साथ वनों के अविवेकपूर्ण दोहन को रोका जाये।

यातायात मार्गों के निर्माण के समय यह ध्यान रखा जाये कि इनसे जल के प्राकृतिक प्रवाह में अवरोध उत्पन्न न हों।

वर्षा के पहले नदी की जल ग्रहण क्षमता को बढ़ाया जाये। अवसाद को निकालकर तटबन्धों पर डलवाया जाये। इससे दोहरा लाभ होगा। एक नदी की जलग्रहण क्षमता बढ़ेगी व तटबन्ध ऊँचे व मजबूत होंगे।

बाढ़ की समस्या से होने वाली हानि से बचने के लिए 1954 में बाढ़ पूर्वानुमान संगठन की स्थापना की गई है। वर्तमान में प्रत्येक जिला मुख्यालय पर बाढ़ नियन्त्रण कक्ष की स्थापना की गई है। मौसम एवं सिंचाई विभाग वर्षा ऋतु में हर समय होने वाली वर्षा की मात्रा एवं जल प्रवाह की राशि का सतर्कता से अवलोकन करते रहते हैं। संचार साधनों से सदैव जनता को स्थिति से अवगत कराया जाना चाहिए।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – व्यक्तियों को चाहिए कि वे वर्षा ऋतु में रेडियो व टैलीविजन से लगातार समाचार सुनते रहें। यदि वे बाढ़ सम्भावित क्षेत्र में रह रहे हैं तो सरकारी आदेशों व सलाहों की पालना करें। बिजली के उपकरणों को बंद कर दें। घर में कीमती सामान, कपड़े व भोजन सामग्री को सुरक्षित स्थान पर ले जायें, ताकि जब तक बाढ़ का पानी उतरे नहीं स्वयं का व अन्य लोगों का भी ध्यान रखा जा सके। वाहनों व पालतू पशुओं को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाएँ। मकान में यदि जल खतरे के निशान से ऊपर जाने लगे तो सुरक्षित स्थान पर यथाशीघ्र पहुँचने का प्रयास करें। घर के मुख्य द्वार पर ताला लगाकर जायें। यदि पानी की गहराई व वेग से अनजान हैं तो वाहन से या पैदल जल में प्रवेश न करें।

सूखा (अनावृष्टि)

किसी क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार वहाँ सामान्यत: जितनी वर्षा होती है, उससे वर्षा इतनी कम हो कि कृषि का पर्याप्त उत्पादन न हो पाये, साथ ही पेयजल के स्त्रोतों में भी आवश्यकता से कम जल उपलब्ध हो तो वह क्षेत्र सूखा प्रभावित क्षेत्र माना जाता है। सूखा एक प्राकृतिक आपदा है जिसका सम्बन्ध वर्षा कम होने अथवा न के बराबर होने से है। भारत के कुछ क्षेत्रों में सूखा पड़ना सामान्य बात है।

सूखा व शुष्कता के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। दोनों ही पानी की कमी का संकेत करते हैं। शुष्कता जलवायु व भौगोलिक स्थिति से सम्बन्धित दशा है जबकि सूखा पर्याप्त वर्षा न होने के कारण पैदा हुई अस्थायी दशा है। पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में सूखा कम पड़ता है। शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्र सूखे से अधिक प्रभावित होते हैं। भारत सरकार के सिंचाई आयोग ने 10 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले भागों को शुष्क क्षेत्र माना है।

सूखा – कारण

सूखा पड़ने के एक नहीं अनेक कारण हैं। इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण पर्याप्त वर्षा नहीं होना है। वर्षा की असमानता व अनिश्चितता मानसूनी जलवायु की दशाओं के कारण होती है। वर्षा कम व अनिश्चित होने के कारण भूमिगत जल स्तर में भी कमी आती है। अत: भूमिगत जल की उपलब्धता कम होती है। वन विनाश के कारण भी वर्षा कम होती है व भूमि में जल की मात्रा कम प्रवेश कर पाती है। वर्षा का जल अवरोध न होने के कारण बहकर नदियों में चला जाता है। प्राकृतिक जल संचय स्त्रोतों को नष्ट करने से भी भूमिगत जल स्तर कम होता है। स्थाई जल नीति न होने से जल का समुचित दोहन व उपयोग नहीं होता है। लगातार बढ़ती जनसंख्या भी जल स्त्रोतों पर प्रभाव डालती है व जल की कमी का कारण बनती है। अत: स्पष्ट है कि जल की कमी ही सूखे का प्रमुख कारण है। यह जल चाहे वर्षा से प्राप्त हो या भूमिगत जल से।

सूखा – भारत के सूखा प्रभावित क्षेत्र

पश्चिमी भारत सूखे का सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र है। राज्यों के अनुसार राजस्थान व गुजरात में सबसे अधिक सूखा पड़ता है। इसके अतिरिक्त हरियाणा, मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्र, मध्य महाराष्ट्र, मध्य व पूर्वी कर्नाटक में प्राय: सूखा पड़ता रहता है। उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश व पश्चिमी उत्तरप्रदेश के कुछ हिस्सों में कभी-कभी सूखा पड़ता है। इन क्षेत्रों में अपर्याप्त व अनिश्चित वर्षा सूखे का प्रमुख कारण है। भारत के कुछ राज्यों में सूखा स्थाई आपदा है। ये राज्य हैं – राजस्थान व गुजरात।

देश के 30 प्रतिशत क्षेत्र में सूखे का प्रभाव प्रतिवर्ष पड़ता है तथा औसतन 5 करोड़ लोग प्रतिवर्ष सूखे से प्रभावित होते हैं। भारत के सिंचाई विभाग ने सूखा क्षेत्रों को 2 भागों में बाँटा है – प्रथम, सामान्य से 25 प्रतिशत से अधिक अनिश्चितता वाले भू-भाग इसमें पश्चिमी राजस्थान व पश्चिमी गुजरात को शामिल किया गया है। द्वितीय सामान्य से 25 प्रतिशत तक अनिश्चितता वाले भू-भाग, इसमें पूर्वी गुजरात, पूर्वी

राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तरांचल, पश्चिमी मध्य प्रदेश, मध्य महाराष्ट्र, आन्तरिक कर्नाटक, दक्षिणी आन्ध्र प्रदेश, मध्यवर्ती कर्नाटक, उत्तरी-पश्चिमी बिहार, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व उड़ीसा को शामिल किया गया है। भारत के लगभग 77 जिलों को अकाल प्रवृत माना गया है तथा इनमें से अधिकांश जिले भारत के पश्चिमी भाग में स्थित हैं। राजस्थान व गुजरात के आधे से अधिक जिले सामान्यत: सूखा ग्रस्त रहते हैं। भारत के सूखा प्रवृत क्षेत्रों को चित्र संख्या 11.1 में दर्शाया गया है।

सूखा - समस्या व संकट

प्राकृतिक आपदा सूखे से सबसे बड़ा संकट अकाल के रूप में उपस्थित होता है। जल की उपलब्धता जितनी कम होती है अकाल उतना ही विकराल रूप ले लेता है। सूखे के कारण अकाल के **तीन स्वरूप** स्पष्ट होते हैं। प्रथम यदि वर्षा इतनी कम हुई है कि फसलें बर्बाद हो गई हैं व अन्न का उत्पादन पर्याप्त नहीं हो पा रहा है तो वह **अन्न का अकाल** कहा जाता है। द्वितीय यदि वर्षा इतनी कम हुई है कि न तो पर्याप्त अन्न हुआ है न ही पर्याप्त चारा उपजा है तो वह **अन्न व चारे दोनों का अकाल** कहलाता है। इसे **द्विकाल** भी कहते हैं। तृतीय, यदि वर्षा इतनी कम हुई है कि न तो अन्न उपजा है, न चारा व न ही पीने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध है तो इसे **त्रिकाल** कहते हैं। राजस्थान में 1987 में पड़े त्रिकाल में हजारों पशुओं को काल ने अपना ग्रास बनाया था। केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा चलाए गए राहत कार्य भी ऐसे त्रिकाल में जनमानस को संतुष्ट नहीं कर पाते हैं।

विक्रम संवत् 1956 (ई.सन् 1900) का त्रिकाल जिसे छप्पन का अकाल भी कहते हैं, अब तक का भीषणतम अकाल माना जाता है। भारत में भयंकर सूखे के वर्षों एवं प्रभावित क्षेत्र को सारणी-11.2 में दर्शाया गया है।

सारणी - 11.2
भारत में भयंकर सूखे के वर्ष एवं प्रभावित क्षेत्र

क्र.सं.	वर्ष	प्रभावित क्षेत्र (लाख वर्ग कि.मी. में)
1.	1877	20
2.	1899	19
3.	1918	21
4.	1987	15

सूखे के कारण अन्न, जल व चारे की कमी हो जाती है। अकाल प्रभावित क्षेत्र से जनता व पशुओं का पलायन शुरू हो जाता है। गाँव के गाँव उजड़ जाते हैं। लगातार अकाल पड़ने पर वन व चरागाह नष्ट होते जाते हैं। कृषिगत उद्योगों को कच्चा माल नहीं मिलता है। कुपोषण बढ़ता है। महंगाई, जमाखोरी व भ्रष्टाचार मुँह फैलाते हैं। सरकारों व प्रभावित क्षेत्र की जनता पर कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है। सामाजिक समरसता में कमी आती जाती है।

सूखा - संकट के समय प्रबन्धन व दायित्व

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर - सूखे का सम्बन्ध जल की कम उपलब्धता से है। वर्षा कितनी होती है, यह मौसमी दशाओं पर निर्भर करता है। क्षेत्र में जल की उपलब्धता कैसे विकसित की जा सकती है, यह समाज के प्रयासों पर निर्भर करता है। इसके लिए गाँव-गाँव में जल संग्रहण क्षेत्रों का विकास करना चाहिए। गाँवों व शहरों में जो परम्परागत जल संचय क्षेत्र हैं उनकी उपयोगिता बढ़ानी चाहिए। गाँवों में भूमिगत जलस्तर सुधारने के लिए ढाल के अनुसार छोटे-छोटे एनिकट बनवाये जाने चाहिए। लोगों में इस तरह की प्रवृत्ति का विकास किया जाना चाहिए कि वे जलसंचय क्षेत्रों को बनाने में सरकार को सहयोग दें व श्रमदान जैसी परम्पराओं को पुन: स्थापित करें।

अकाल की विभीषिका को कम करने के लिए भूमिगत जल बहुत बड़ी सहायता कर सकता है। अत: भू-जल भंडारों की खोज के लिए सुदूर संवेदन (Remote Sensing), उपग्रह मानचित्रण (Satellite Mapping) तथा भौगोलिक सूचना तंत्र (Geographical Information System - G.I.S.) जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाना चाहिए।

दीर्घकालीन प्रबन्धन के रूप में नदियों को जोड़ने जैसे भागीरथी कार्यों को प्रारम्भ किया जाना आवश्यक है। इससे दो तरफा लाभ होंगें, एक जिन क्षेत्रों में वर्षा जल की उपलब्धता ज्यादा है व नदियों में बाढ़ आती रहती है, वहाँ वह समस्या कम होगी। दूसरा, यह अतिरिक्त जल उन क्षेत्रों में उपयोगी होगा जहाँ वर्षा व भूमिगत जल कम उपलब्ध है। भू-पृष्ठीय जल के इस तरह के उचित उपयोग से धीरे-धीरे भूमिगत जलस्तर भी बढ़ेगा। यह बढ़ा हुआ जल स्तर अप्रत्यक्ष रूप से कालांतर में हरियाली को विकसित करने में सहयोगी होगा।

2. व्यक्तिगत स्तर पर - इस क्षेत्र में सबसे जरूरी है कि व्यक्तियों में शिक्षा का प्रसार हो। व्यक्ति जल के महत्व को समझें। जल के संचयन व संग्रहण के प्रयासों में व्यक्तिगत रूचि लें। नागरिक अपने घरों में जल संग्रह के लिए टैंक (टांका) बनवाएं। पक्के टैंक वर्षा जल का वर्ष भर उपयोग करने के लिए उपयोगी होंगे व कच्चे टैंक भूमिगत जल स्तर को बढ़ाने के लिए उपयोगी होंगे।

ग्रामीण क्षेत्र के नागरिक अपने खेतों में मेढ़ बनाकर जल को रोकें। यह जल कुछ समय में ही भूमि में समा जायेगा, इससे गांवों में भू-जल स्तर बढ़ेगा।

अन्न उत्पादन के लिए ऐसी फसलों व बीजों का चयन किया जाए कि कम जल व कम समय में समुचित उत्पादन लिया जा सके।

सूखे के समय प्रत्येक नागरिक एक–दूसरे की सहायता करें। यह भावना अकाल को सुकाल में बदल देगी।

समुद्री तूफान

समुद्री तूफान को भारत में चक्रवात भी कहते हैं। ये चक्रवात उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में विचरण करते हैं, अतः इन्हें उष्णकटिबन्धीय चक्रवात कहते हैं। भारत में उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात समुद्री क्षेत्र में उत्पन्न होकर बंगाल की खाड़ी व अरब सागर से भारत में प्रवेश करते हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात समुद्र में उत्पन्न होते हैं अतः इनमें आर्द्रता की मात्रा बहुत होती है। तटीय क्षेत्रों में प्रवेश करने पर ये बहुत वर्षा करते हैं। तटीय क्षेत्रों पर इनकी गति भी तेज होती है। जैसे–जैसे ये आन्तरिक भागों में प्रवेश करते हैं इनकी गति व वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती जाती है। अपनी तेज गति व अधिक वर्षा के कारण तटीय क्षेत्रों में इनसे जन–धन की हानि होती है।

समुद्री तूफान – उत्पत्ति के कारण

भारत में आने वाले समुद्री तूफानों (उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों) की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत मतभेद हैं। वाताग्र सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार अन्य चक्रवातों की भांति उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात भी वाताग्र से उत्पन्न होते हैं। इस सिद्धान्त में यहाँ यह कमी महसूस की जाती है कि विषुवत रेखीय प्रदेश में दो भिन्न स्वभाव की वायु राशियों का अभाव होता है। अधिक प्रचलित मत के अनुसार संवहन क्रिया इन चक्रवातों की उत्पत्ति का मूल कारण है। संवहन क्रिया के अन्तर्गत सागरों के ऊपर अधिक ताप के कारण वायु हलकी होकर ऊपर की ओर उठती है। उससे बने कम वायुदाब के क्षेत्र को भरने के लिए चारों ओर से हवाऐं आती हैं। इन वायुमण्डलीय विक्षोभ से चक्रवात अथवा समुद्री तूफान की उत्पत्ति होती है। यहाँ यह तथ्य प्रमुख है कि ये तूफान ग्रीष्मकाल में ही उत्पन्न होते हैं। विषुवत रेखीय प्रदेश में ये अनुपस्थित रहते हैं। ग्रीष्मकाल में ये 5° से 30° उत्तरी अक्षांशों के मध्य विकसित होते हैं।

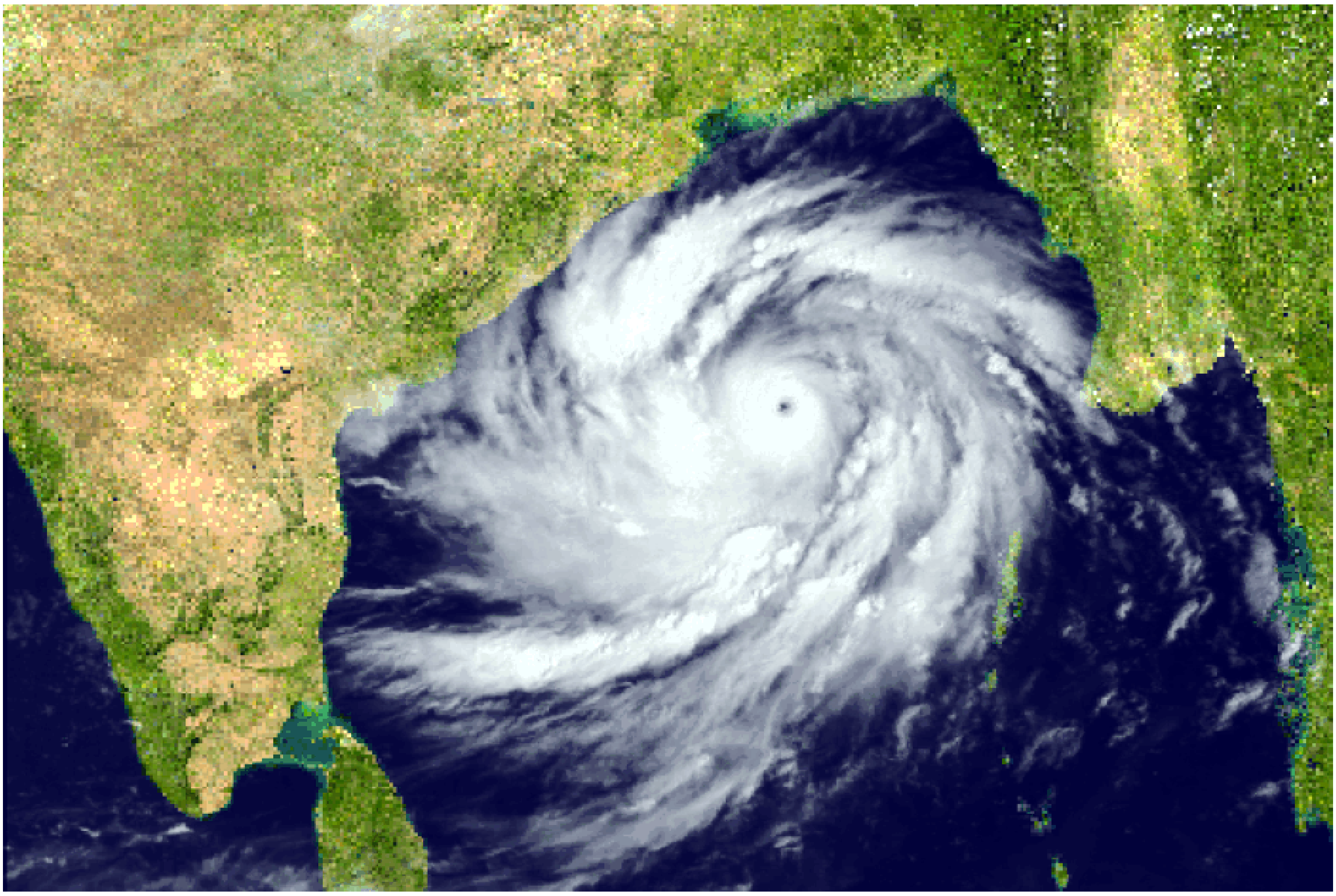

चित्र 11.2 – भारत : बंगाल की खाड़ी का चक्रवात

सारणी – 11.3
भारत में चक्रवातीय तूफानों की आवृत्ति

माह	अरब सागर	बंगाल की खाड़ी
जनवरी	02	04
फरवरी	00	01
मार्च	00	04
अप्रेल	05	18
मई	13	28
जून	13	34
जुलाई	03	38
अगस्त	01	25
सितम्बर	04	27
अक्टूबर	17	53
नवम्बर	21	56
दिसम्बर	03	26

बंगाल की खाड़ी व अरब सागर में अप्रैल से दिसम्बर तक चक्रवात सक्रिय रहते हैं तथा जून, जुलाई एवं अगस्त माह में अधिक आते हैं। अरब सागर की ओर से वर्ष में औसतन 2 तथा बंगाल की खाड़ी की ओर से 6या 7 बार समुद्री तूफान भारत में प्रवेश करते हैं। कुछ तूफान तटीय क्षेत्रों में प्रवेश कर समाप्त हो जाते हैं जबकि कुछ तूफान आन्तरिक क्षेत्रों में प्रवेश कर जन-जीवन को प्रभावित करते हैं। भीतरी भागों में ये तूफान कितना अन्दर तक प्रवेश करेंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि उत्तरी-पश्चिमी भारत में तापमान कितना अधिक है व इस कारण न्यून वायुदाब का केन्द्र कितना प्रभावशाली बनता है। भारत में आने वाले उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के सम्भावित माह व मार्गों को चित्र संख्या 11.1 में एवं इनकी आवृत्ति को सारणी-11.3 में दर्शाया गया है।

उत्तरी पश्चिमी भारत में शीतकाल में भी चक्रवाती तूफान आते हैं, लेकिन ये शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात होते हैं। ये भारत में पश्चिम व उत्तर-पश्चिम दिशा से प्रवेश करते हैं। इनसे उत्तरी-पश्चिमी भारत में शीतकालीन वर्षा (मावट) होती है जो रबी की फसलों के लिए बहुत उपयोगी होती है।

समुद्री तूफान – प्रभावित क्षेत्र

समुद्री तूफानों से पश्चिमी व पूर्वी समुद्र तटीय व उनसे लगते आन्तरिक क्षेत्र प्रभावित होते हैं। अरब सागर के समुद्री तूफान प्रायः अप्रैल से जून तक पैदा होते हैं। इनका मार्ग सामान्यतः तट के समानान्तर होता है। गुजरात तट से ये भारत में प्रवेश करते हैं। बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात सामान्यतः **अक्टूबर से दिसम्बर** तक पैदा होते हैं। ये चक्रवात स्थलीय क्षेत्र में अन्दर तक प्रवेश करते हैं। ये चक्रवात आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा व पश्चिमी बंगाल को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। मानसून का प्रारम्भिक काल उष्ण कटिबन्धीय तूफानों की उत्पत्ति के अनुकूल होता है। मानसून ऋतु में अधिकतर चक्रवात 10° उ. से 15° उ. अक्षांशों के मध्य उत्पन्न होते हैं तथा 20° उ. से 25° उ. अक्षांशों के मध्य तक जा कर समाप्त प्रायः हो जाते हैं। भारत में आने वाले प्रमुख समुद्री तूफानों द्वारा होने वाली मानवीय क्षति को सारणी-11.4 में दर्शाया गया है।

सारणी – 11.4
भारत में समुद्री तूफानों द्वारा मानवीय क्षति

क्र.सं.	वर्ष	राज्य	मृतक संख्या
1.	मई 1833	पश्चिम बंगाल	लगभग 50,000
2.	अक्टूबर 1971	उड़ीसा	लगभग 10,000
3.	नवम्बर 1977	आन्ध्र प्रदेश	लगभग 30,000
4.	अक्टूबर 1999	उड़ीसा	लगभग 1,00,000

समुद्री तूफान – समस्या व संकट

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का विस्तार कम क्षेत्र में होता है लेकिन दाब की प्रवणता तीव्र होने के कारण वायु बहुत तेज गति से चलती है। उत्पत्ति के समय इनका आकार कम होता है लेकिन समुद्री क्षेत्र में निर्बाध आगे बढ़ते रहने के साथ इनका आकार व वायु की गति बढ़ती जाती है। ये चक्रवात लगभग 15 कि.मी. से 25 कि.मी. प्रति घंटा की औसत गति से आगे बढ़ते हैं। इन तूफानों में हवा की गति 20 से 40 कि.मी. प्रति घंटा होती है। जल क्षेत्र से आने के कारण इनमें बहुत नमी होती है। तटीय क्षेत्रों में ये तेज हवा के साथ तेज गति से वर्षा करते हैं। वर्षा इतनी भारी होती है कि बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पवनों की गति तेज होने से वृक्ष उखड़ जाते हैं, विद्युत के पोल व संचार के साधनों के पोल क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। कच्चे मकान ढह जाते हैं व झोंपड़ियाँ उड़ जाती हैं। चारों ओर अफरा-तफरी का माहौल हो जाता है। खड़ी फसलें गिर जाती हैं। तेज हवा के कारण तटीय क्षेत्र में समुद्री लहरें अन्दर तक प्रवेश कर जाती हैं। इनसे भी काफी विनाश होता है। नावें उलट जाती हैं व नाविकों का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

समुद्री तूफान – संकटकाल व प्रबन्धन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – समुद्री तूफानों के सम्बन्ध में आगामी सूचना तंत्र का विकास अवश्य होना चाहिए। उपग्रह के चित्रों तथा उससे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर तूफान के मार्ग, पवन की गति व वर्षा की मात्रा की समीक्षा होती रहनी चाहिए। इन सूचनाओं को रेडियो व अन्य संचार माध्यमों से बार–बार प्रसारित किया जाना चाहिए। नागरिकों को सुरक्षित क्षेत्र की जानकारी दी जाये ताकि वे वहाँ पहुँच सकें। इस तरह जनहानि को बचाया जा सकता है।

तटीय क्षेत्रों में मकान इस तरह के बनवाने की सलाह दी जाये कि वे हवा की गति का सामना कर सकें। मकान निचले इलाकों में नहीं बनवाये जायें। ऐसे क्षेत्रों में अकस्मात् आने वाली बाढ़ का जल फैलता है।

तूफान की गति कम करने के लिए तटीय क्षेत्रों में सघन वृक्षारोपण अभियान चलाये जाने चाहिए। मछुआरों को तूफान की अवधि के समय समुद्र में प्रवेश से रोकने की सलाह व प्रयास किये जाने चाहिए। तूफान प्रभावित क्षेत्रों में सामूहिक बीमा जैसी योजनाएँ चलाई जानी चाहिए।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – संकट के समय जितने भी प्रबन्ध किये जाते हैं वे व्यक्तिगत ईमानदारी व निष्ठा के बिना सफल नहीं हो सकते हैं। व्यक्तियों को चाहिए कि तूफान के बारे में जो भी सूचनाएँ मिल रही हैं उनके अनुसार सावधानी रखें।

नागरिक स्वयं सुरक्षित स्थानों पर पहुँचें तथा वृद्धों, बालकों व महिलाओं को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाएँ।

सरकार व सामाजिक संस्थाओं द्वारा दी जा रही राहत सामग्री का उपयोग मिल बाँट कर करें।

तूफान से प्राय: प्रभावित रहने वाले क्षेत्र के नागरिक अपना, पशुओं का व फसलों का बीमा कराएँ ताकि क्षतिपूर्ति प्राप्त की जा सके।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. जब वर्षा का जल नदी तटबन्धों को तोड़कर बहुत बड़े क्षेत्र में फैल जाता है उसे बाढ़ कहते हैं।
2. मूसलाधार वर्षा, नदी पेटे में अवसाद का जमाव व अनियोजित बसावट बाढ़ के प्रमुख कारण हैं।
3. पूर्वी व पूर्वोत्तर भारत में बाढ़ अधिक आती है।
4. कोसी नदी को **बिहार का शोक** व दामोदर नदी को **बंगाल का शोक** कहते हैं।
5. दक्षिणी भारतीय नदियों की तुलना में उत्तरी भारत की नदियों में बाढ़ अधिक आती है।
6. बाढ़ नियन्त्रण के लिए वनों का विकास, नदी पेटे की सफाई व तटबन्धों को मजबूत किया जाना चाहिए।
7. सूखे का सम्बन्ध वर्षा कम होने अथवा न के बराबर होने से है।
8. वर्षा की अनिश्चितता सूखे का प्रमुख कारण है।
9. पश्चिमी भारत सूखे का सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र है।
10. जब न पर्याप्त अन्न उपजे, न चारा पैदा हो व न पर्याप्त पेयजल उपलब्ध हो ऐसे सूखे को त्रिकाल कहते हैं।
11. सूखे के मुकाबले के लिए परम्परागत जल स्त्रोतों का विकास होना चाहिए व भूमिगत जल स्तर बढ़ाने के लिए प्रत्येक गाँव व कस्बे में एनिकट बनाये जाने चाहिए।
12. भारत में उष्णकटिबन्धीय चक्रवात समुद्र में उत्पन्न होकर बंगाल की खाड़ी व अरब सागर की ओर से देश में प्रवेश करते हैं।
13. उष्णकटिबन्धीय चक्रवात जून–जुलाई–अगस्त माह में अधिक आते हैं।
14. समुद्री तूफानों से तटीय क्षेत्र अधिक प्रभावित होते हैं।
15. समुद्री तूफान तेज गति के होने पर कम समय में तटीय क्षेत्रों में अधिक तबाही मचा देते हैं।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. बंगाल का शोक जिस नदी को कहते हैं, वह है –
   (अ) कोसी (ब) दामोदर
   (स) गंगा (द) स्वर्णरेखा
2. जिन चक्रवातों को भारत में समुद्री तूफान के नाम से जाना जाता है, वे हैं –
   (अ) शीतकटिबन्धीय चक्रवात (ब) शीत चक्रवात
   (स) उष्णकटिबन्धीय चक्रवात (द) मरूस्थलीय चक्रवात
3. भारत के जिस क्षेत्र में सूखा अधिक पड़ता है, वह है –
   (अ) उत्तर का मैदान (ब) पूर्वोत्तर क्षेत्र
   (स) पश्चिमी क्षेत्र (द) तटीय क्षेत्र

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

4. बाढ़ किसे कहते हैं?
5. भारत के किस क्षेत्र में बाढ़ अधिक आती है?
6. बिहार का शोक किस नदी को कहते हैं?
7. सूखे का प्रमुख कारण क्या है?
8. भारत में समुद्री तूफान किन महीनों में अधिक आते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

9. भारत में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र कौन–कौनसे हैं?
10. त्रिकाल को समझाइये।
11. बाढ़ नियन्त्रण के लिए सुझाव दीजिये।
12. समुद्री तूफानों की उत्पत्ति को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

13. भारत में बाढ़ अधिक आने के कारणों की विवेचना कीजिए।
14. अकाल के मुकाबले के लिए किस तरह के प्रबन्धन किये जाने चाहिए?
15. समुद्री तूफानों के बारे में विस्तार से बताइये।
16. बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की समस्याओं व उनके समाधान पर प्रकाश डालिए।

आंकिक प्रश्न –

17. भारत के मानचित्र में बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों को दर्शाइये।
18. भारत के मानचित्र में सूखे के क्षेत्रों को अंकित कीजिए।
19. भारत के मानचित्र में समुद्री तूफानों के मार्गों को अंकित कीजिए।

उत्तरमाला – 1. ब 2. स 3. स

अध्याय –12

राजस्थान : परिचय, भौतिक स्वरूप व अपवाह तन्त्र

(Rajasthan : Introduction, Physical Features and Drainage System)

परिचय

राजस्थान का अपनी गौरवपूर्ण ऐतिहासिक परम्पराओं के कारण भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है। राजस्थान विश्व की प्राचीन सभ्यताओं का केन्द्र रहा है। लूनी बेसिन में तिलवाड़ा (बाड़मेर), आहड़ (उदयपुर), गिलूण्ड (उदयपुर), कालीबंगा (गंगानगर) तथा गणेश्वर टीला (सीकर) में मिले अवशेष इसके प्रमाण हैं। यह भी प्रमाण मिले हैं कि प्राचीनकाल में सरस्वती व दृषद्वती नदियाँ राजस्थान को सरसब्ज करती थीं।

राजस्थान को वीरों व बलिदानियों की भूमि माना जाता है। इस प्रदेश ने बार-बार भारतीय अस्मिता की रक्षा की है। प्रदेशवासियों ने प्रतिकूल एवं विषम परिस्थितियों में भी अनुकूलन कर अपनी क्षमताओं व सूझबूझ का परिचय दिया है।

प्राचीन व मध्यकाल में राजस्थान के भिन्न-भिन्न क्षेत्र अपनी विशिष्ट प्रादेशिक पहचान बनाए हुए थे, यथा – यौद्धेय (गंगानगर), अहिच्छत्रपुर (नागौर), गुर्जरत्रा (जोधपुर-पाली), वल्ल / दुंगल / माड (जैसलमेर), स्वर्णगिरी (जालोर), चन्द्रावती (आबू), शिव / मेदपाट / मेवाड़ (उदयपुर – चित्तौड़गढ़), वागड़ (डूंगरपुर, बाँसवाड़ा), कुरू (अलवर), शूरसेन / बृजभूमि (भरतपुर, करौली, धौलपुर), ह्वे-ह्वे / हाड़ौती (बूँदी-कोटा), विराट / बैराठ (अलवर, जयपुर), जांगल (बीकानेर-जोधपुर), शाकम्भरी (सांभर) व ढूंढाड़ (जयपुर-टोंक)।

11वीं से 18वीं शताब्दी के बीच राजस्थान में कई राजवंशों का उत्थान व पतन हुआ। राजपूत राजाओं की रियासतों व ठिकानों की अधिकता के कारण ब्रिटिशकाल में राजस्थान **राजपूताना** के नाम से जाना जाता था। जयपुर-आमेर, मारवाड़, मेवाड़, कोटा, बूंदी, भरतपुर

सारणी – 12.1

राजस्थान एकीकरण के चरण

चरण	दिनांक	संघ का नाम	शामिल रियासतें
प्रथम	17-3-48	मत्स्य संघ	अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली।
द्वितीय	25-3-48	राजस्थान संघ	बाँसवाड़ा, कुशलगढ़, बूंदी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा एवं टोंक।
तृतीय	18-4-48	संयुक्त राजस्थान संघ	राजस्थान संघ + उदयपुर
चतुर्थ	30-3-49	वृहत् राजस्थान संघ	संयुक्त राजस्थान संघ + बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर व जोधपुर।
पंचम	15-5-49	संयुक्त वृहत्र राजस्थान	वृहत् राजस्थान संघ + मत्स्य संघ।
षष्टम	26-01-50	पूर्व राजस्थान	संयुक्त वृहत्र राजस्थान + सिरोही।
सप्तम	1-11-56	राजस्थान	पूर्व राजस्थान + अजमेर-मेरवाड़ा, आबू तहसील, सुनेल टप्पा व सिरौंज।

स्त्रोत : www.rajassembly.nic.in

आदि प्रमुख रियासतें थी। आजादी के बाद वर्तमान राजस्थान राजपूताना की 19 रियासतों, 3 चीफशीप और केन्द्र शासित अजमेर-मेरवाड़ा के मिलने से अस्तित्व में आया। राजस्थान एकीकरण के चरण क्रमानुसार प्रस्तुत हैं (सारणी-12.1)।

वर्तमान राजस्थान प्रशासनिक दृष्टि से 7 संभागों, 33 जिलों, 90 उप-जिलों, 314 तहसीलों, 295 पंचायत समितियों, 222 नगर पालिकाओं एवं 9900 ग्राम पंचायतों में विभाजित है।

अवस्थिति व विस्तार

राजस्थान राज्य भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग में 23°03′ से 30°12′ उत्तरी अक्षांशों एवं 69°30′ से 78°17′ पूर्वी देशान्तरों के बीच अवस्थित है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है। कर्क रेखा इसके दक्षिणी छोर पर बांसवाड़ा के पास से गुजरती है। इसके उत्तर में पंजाब, उत्तर-पूर्व में हरियाणा, पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण-पूर्व में मध्य प्रदेश एवं दक्षिण-पश्चिम में गुजरात स्थित है। राजस्थान व पाकिस्तान के बीच 1070 किलोमीटर लम्बी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है जो **रैडक्लिफ** के नाम से जानी जाती है। गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर व बाड़मेर सीमावर्ती जिले हैं। यह पतंग के आकार में पूर्व से पश्चिम में 869 किलोमीटर लम्बा एवं उत्तर से दक्षिण में 826किलोमीटर चौड़ा है (चित्र संख्या 12.1)। राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 3.4 लाख वर्ग किलोमीटर है जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.43 प्रतिशत है। यह राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से जर्मनी के बराबर, जापान से थोड़ा बड़ा, ग्रेट ब्रिटेन से डेढ़ गुना, श्रीलंका से 5 गुना व इजराइल से 17 गुना से भी अधिक बड़ा है।

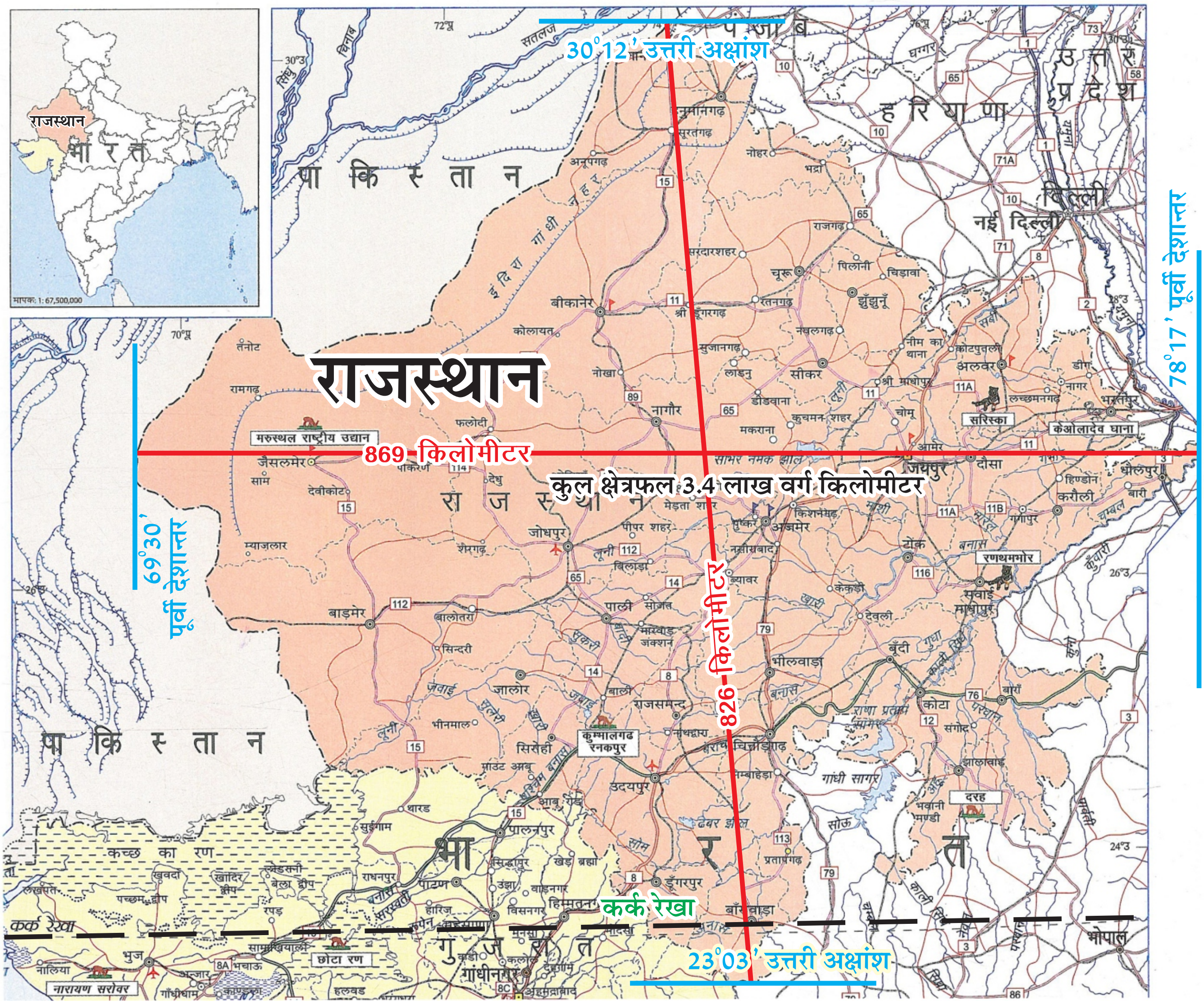

चित्र 12.1 – राजस्थान : स्थिति व विस्तार

भौतिक स्वरूप

राजस्थान का अधिकांश पश्चिमी एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग टिथीज महासागर का ही अवशेष था जो कालान्तर में हिमालय की नदियों द्वारा लाई गई मिट्टियों से पाट दिया गया। टिथीज सागर के अवशेष के रूप में राजस्थान में आज भी सांभर, डीडवाना, पचपद्रा, लूणकरणसर आदि खारी झीलें मौजूद हैं। राजस्थान की अरावली पर्वतमाला तथा दक्षिणी पठारी भाग गौंडवानालैण्ड के भू-भाग हैं। अरावली पर्वतमाला विश्व की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक मानी जाती है। अरावली पर्वतमाला राज्य की मुख्य जल विभाजक है तथा उसे

(2) अरावली पहाड़ी प्रदेश

- (अ) दक्षिणी अरावली क्षेत्र
- (ब) मध्य अरावली क्षेत्र
- (स) उत्तरी अरावली क्षेत्र

(3) पूर्वी मैदानी प्रदेश

- (अ) बनास-बाणगंगा बेसिन
- (ब) मध्य माही व छप्पन बेसिन

(4) दक्षिणी पूर्वी पठार

चित्र 12.2 – राजस्थान : भौतिक

(अ) विन्ध्यन कगार

(ब) दक्कन लावा पठार

(1) पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश

यह अरावली पर्वतमाला के उत्तर–पश्चिम और पश्चिम में विस्तृत है। यह भू–भाग समुद्र तल से 60 से 360 मीटर ऊँचा है। यह क्षेत्र गंगानगर, हनुमानगढ़, झुन्झुनू, सीकर, चूरू, बीकानेर, नागौर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, जालोर व सिरोही जिलों में फैला हुआ है। यह क्षेत्र बालू से आवृत है।

मानवीय प्रभाव व सिंचाई के विस्तार से कुछ क्षेत्रों (गंगानगर, हनुमानगढ़ व बीकानेर) के मरूस्थलीय परिदृश्य में परिवर्तन हो रहा है। यहां तीन प्रकार के बालू के टीले पाये जाते हैं –

(i) अनुदैर्ध्य – ये प्रचलित पवन के समानान्तर बने टीले हैं।

(ii) अनुप्रस्थ – ये वायु दिशा के लम्बवत् बने टीले हैं।

(iii) बरखान – ये अर्द्ध चन्द्राकार टीले हैं।

चित्र 12.3 – राजस्थान : भौतिक स्वरूप

धरातलीय स्वरूपों के आधार पर पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश को चार भागों में विभक्त किया गया है –

(अ) बालूमय शुष्क मैदान – यह मैदान शुष्क मरूस्थलीय प्रदेश है जो राज्य की 25 सेन्टीमीटर समवर्षा रेखा के पश्चिम में स्थित है। इसमें जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर तथा जोधपुर, नागौर व चूरू जिलों के पश्चिमी भाग शामिल हैं। बालू के विशाल टीलों के मध्य जैसलमेर, बाड़मेर व बीकानेर के कुछ भागों में चट्टानी भू–भाग भी हैं जो ग्रेनाइट, चूना पत्थर व बलुआ पत्थर से बने हैं। यहां तीनों प्रकार के टीले पाए जाते हैं। इस शुष्क मैदानी भाग में खारे पानी के छिछले क्षेत्र हैं जिन्हें **रन** कहते हैं।

(ब) लूनी बेसिन – यह बेसिन 25 सेन्टीमीटर से 50 सेन्टीमीटर की समवर्षा रेखा के बीच अरावली के दक्षिण–पश्चिम में अवस्थित है। लूनी बेसिन का विस्तार दक्षिणी जोधपुर, पाली, जालौर व पश्चिमी सिरोही जिलों में है। लूनी व उसकी सहायक नदियों लिलड़ी, सूकड़ी, जवाई, जोजरी तथा बाण्डी के बहाव क्षेत्र में जलोढ़क मैदान हैं। ये सभी मौसमी नदियां हैं। इस क्षेत्र में पचपद्रा मुख्य खारे पानी का क्षेत्र हैं जहां नमक बनाया जाता है।

(स) अन्तःस्थलीय प्रवाह का मैदान – इसे शेखावाटी प्रदेश के नाम से भी जाना जाता है। इस अर्द्ध–शुष्क मैदान का विस्तार झुन्झुनूं, सीकर, चूरू तथा नागौर के उत्तरी भाग में है। यह प्रदेश मध्यम व निम्न ऊँचाई के बालू के टीलों से युक्त रेतीला मैदान है। यहाँ बरखान टीले अधिक मिलते हैं। यह अन्तःस्थलीय प्रवाह क्षेत्र है। इस क्षेत्र में नदियाँ व नाले हैं जो थोड़ी दूर बहने के बाद विलुप्त हो जाते हैं। मेन्धा व कांतली इस क्षेत्र की मुख्य नदियाँ हैं। इस क्षेत्र में कई खारे पानी की झीलें हैं। सांभर, डीडवाना, कुचामन, सुजानगढ़, ताल छापर व परिहारा (चूरू) प्रमुख खारे पानी की झीलें हैं।

(द) घग्घर का मैदान – यह क्षेत्र मरूस्थल का उत्तरी भाग है जो गंगानगर व हनुमानगढ़ जिलों में फैला है। यहां बरखान प्रकार के टीले अधिक पाये जाते हैं। घग्घर इस क्षेत्र की अन्तःस्थलीय प्रवाह वाली नदी है। घग्घर की सूखी हुई सरिताओं को पुराणों में वर्णित हिमालय से निकली सरस्वती नदी का हिस्सा माना जाता है। इन्दिरा गाँधी नहर व गंग नहर से उपलब्ध सिंचाई सुविधा के कारण इस क्षेत्र में गहन कृषि की जाती है। इससे क्षेत्र में जलाधिक्य एवं क्षारीयता की समस्याएँ बढ़ गई हैं।

(2) अरावली पहाड़ी प्रदेश

अरावली पर्वतमाला राजस्थान की मुख्य व प्राचीनतम पर्वतमाला है। राज्य का 9.3 प्रतिशत क्षेत्रफल इसके अन्तर्गत आता है। यह पर्वतमाला दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व दिशा में कुल 692 किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत है। राजस्थान में यह खेड़ब्रह्मा (गुजरात सीमा) से खेतड़ी तक 550 किलोमीटर की लम्बाई में फैली है। यह सिरोही से खेतड़ी तक तो श्रृंखलाबद्ध है परन्तु उसके पश्चात यह छोटी–छोटी पहाड़ियों के रूप में दिल्ली तक फैली है। इसका विस्तार मुख्यतः राज्य के नौ जिलों सिरोही, उदयपुर, राजसमन्द, अजमेर, जयपुर, दौसा, अलवर, सीकर व झुन्झुनू में है। इस पहाड़ी क्षेत्र की औसत ऊँचाई 930 मीटर है। अरावली पहाड़ी क्षेत्र को तीन उप–प्रदेशों में बांटा गया है:–

(अ) दक्षिणी अरावली क्षेत्र (आबू से अजमेर तक),
(ब) मध्य अरावली क्षेत्र (अजमेर से जयपुर तक) तथा
(स) उत्तरी अरावली क्षेत्र (जयपुर से खेतड़ी तक)

(अ) दक्षिणी अरावली क्षेत्र – इसमें सिरोही, उदयपुर व राजसमन्द जिले सम्मिलित हैं। यहां अरावली श्रेणियाँ अत्यधिक विषम व ऊँची है। सिरोही जिले में आबू–सिरोही श्रेणी में अनेक पहाड़ियाँ व चोटियाँ हैं। इस क्षेत्र में स्थित गुरूशिखर राजस्थान की सबसे ऊँची (1727 मीटर) चोटी है। अचलगढ़ (1380 मीटर), देलवाड़ा (1442 मीटर), कुम्भलगढ़ (1224 मीटर) अन्य प्रमुख पर्वत चोटियाँ हैं। उदयपुर–राजसमन्द क्षेत्र की सर्वोच्च चोटी जरगा (1431 मीटर) है। उदयपुर के उत्तर में कुम्भलगढ़ व गोगुन्दा के बीच का पठार **भोराठ पठार** के नाम से जाना जाता है। यह पूर्व दिशा में बहने वाली नदियों का उद्‌गम स्थल भी है।

(ब) मध्य अरावली – यह मुख्यतः अजमेर व जयपुर के बीच फैली है। इस क्षेत्र में पर्वत श्रेणियाँ, संकीर्ण घाटियाँ व मैदान एकान्तर क्रम में पाए जाते हैं। तारागढ़ (885 मीटर) इस क्षेत्र की प्रमुख चोटी है। पश्चिमी राजस्थान की मुख्य नदी लूनी का उद्‌गम क्षेत्र यहाँ स्थित नाग पहाड़ है।

(स) उत्तरी अरावली – उत्तरी अरावली क्षेत्र का विस्तार जयपुर, दौसा, अलवर, सीकर व झुन्झुनूं जिलों में है। इस क्षेत्र में अरावली पर्वतमाला क्रमबद्ध न होकर छितरी हुई पहाड़ियों के रूप में पाई जाती है। इसमें शेखावाटी, तोरावाटी, जयपुर व अलवर की पहाड़ियाँ शामिल हैं। इस क्षेत्र की पहाड़ियों की सामान्य ऊँचाई 450 से 700 मीटर है। सीकर जिले में रघुनाथगढ़ (1055 मीटर), अलवर जिले में भैरांच (792 मीटर) और जयपुर में खो (920 मीटर) इस क्षेत्र की प्रमुख चोटियाँ हैं।

(3) पूर्वी मैदानी प्रदेश

यह क्षेत्र राजस्थान के 23.9 प्रतिशत क्षेत्र को घेरे हुए है। इसमें बनास बेसिन व मध्य माही (छप्पन के मैदान) को शामिल किया जाता है। वास्तव में यह नदी बेसिन प्रदेश है। इसके उत्तरी भाग में भरतपुर, अलवर, सवाई माधोपुर, करौली, जयपुर, टोंक व भीलवाड़ा

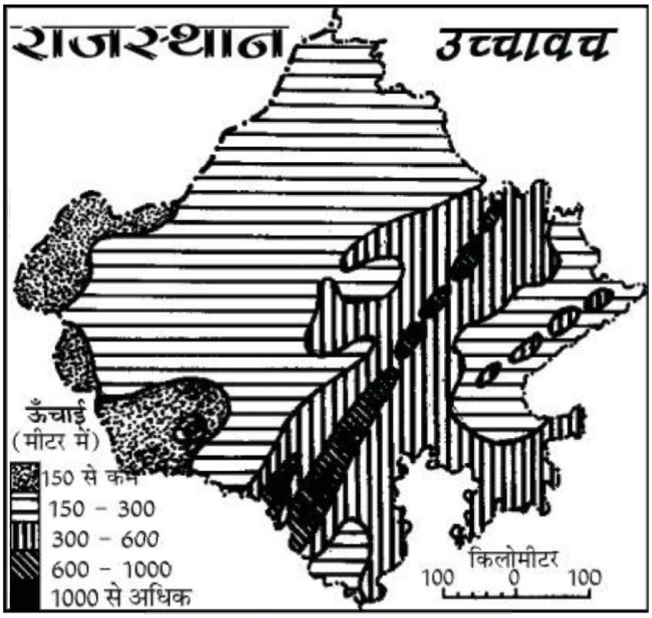

चित्र 12.4 – राजस्थान : उच्चावच

जिलों के मैदानी भाग तथा दक्षिणी भाग में डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ के छप्पन गांवों का मैदानी भाग शामिल है। इस प्रदेश की भूमि समतल व उपजाऊ कांप मिट्टी से बनी होने के साथ–साथ कई नदियों द्वारा सिंचित है। अरावली पर्वतमाला तथा हाड़ौती पठार के इस मध्यवर्ती भाग को दो भू–आकृतियों में बांटा जा सकता है–

(अ) बनास–बाणगंगा बेसिन – बनास व उसकी सहायक नदियों का यह मैदान दक्षिण में **मेवाड़ का मैदान** तथा उत्तर में **मालपुरा–**

चित्र 12.5 – राजस्थान : अपवाह क्षेत्र

करौली के मैदान के नाम से जाना जाता है। बेड़च, खारी, मांसी, मोरेल व बाणगंगा इत्यादि इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ है। इस मैदान का ढाल पूर्व व उत्तर–पूर्व की ओर है। यहां एकल पहाड़ियाँ ऊँचाई पर टेकरीनुमा हो जाती हैं। इस मैदान की औसत ऊँचाई 280 मीटर से 500 मीटर के बीच है।

(ब) मध्य माही–छप्पन बेसिन – यह मैदान उदयपुर के दक्षिणी–पूर्वी भाग, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ के दक्षिणी भाग में 7056वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। इस मैदान की औसत ऊँचाई 200 से 400 मीटर है। सलूम्बर–सराड़ा क्षेत्र को स्थानीय भाषा में **छप्पन** तथा डूंगरपुर–बाँसवाड़ा क्षेत्र को **बागड़ क्षेत्र** कहते हैं। नदियों की अधिकता के कारण बाँसवाड़ा को **सौ टापुओं का क्षेत्र** के नाम से भी जाना जाता है। माही की मुख्य सहायक नदियाँ सोम, जाखम, कागदर, झामरी आदि हैं। इस क्षेत्र में आदिवासी भील व गरासिया **वालरा** नामक स्थानान्तरित कृषि करते हैं।

(4) दक्षिण–पूर्वी पठार

राजस्थान का दक्षिण–पूर्वी पठार **हाड़ौती** के नाम से विख्यात है। यह राजस्थान के 9 प्रतिशत भू–भाग को घेरे हुए है। यहां राज्य की 13 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इसमें कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़ एवं चित्तौड़गढ़ जिले का पूर्वी भाग शामिल है। यहां लावा मिश्रित शैल व विन्ध्यन शैलों का सम्मिश्रण है। इस पठारी भाग की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 500 मीटर है। इस क्षेत्र में काली व लाल मिट्टी पाई जाती है। चम्बल, पार्वती एवं काली सिंध इस क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ हैं। इस पठार को भौतिक दृष्टि से दो उप–प्रदेशों में विभाजित किया जाता है–

(अ) विन्ध्ययन कगार – यह कगार मुख्य रूप से बलुआ व चूना पत्थरों से बना है। इसकी औसत ऊँचाई 350 से 550 मीटर के बीच है। कगारों का मुख बनास व चम्बल नदी के बीच क्रमबद्ध दक्षिण–पूर्व एवं पूर्व दिशा की ओर है। उत्तर में चम्बल के सहारे–सहारे ये सवाई माधोपुर, करौली व धौलपुर क्षेत्र में फैले हुए हैं।

(ब) दक्कन लावा पठार – यह दक्षिणी पूर्वी राजस्थान का चौड़ा व ऊपर उठा पथरीला भू–भाग है। यह बलुआ पत्थर व चूना पत्थर चट्टानों से निर्मित है। इसका पूर्वी व दक्षिणी भाग लावा से ढका है। यहाँ पर उपजाऊ काली मिट्टी पाई जाती है। चम्बल व उसकी सहायक काली सिन्ध व पार्वती नदियों ने कोटा में एक 'त्रिकोणीय जलोढ़ मैदान' की रचना की है।

अपवाह तन्त्र

राजस्थान की अपवाह प्रणाली अरावली पर्वतमाला से

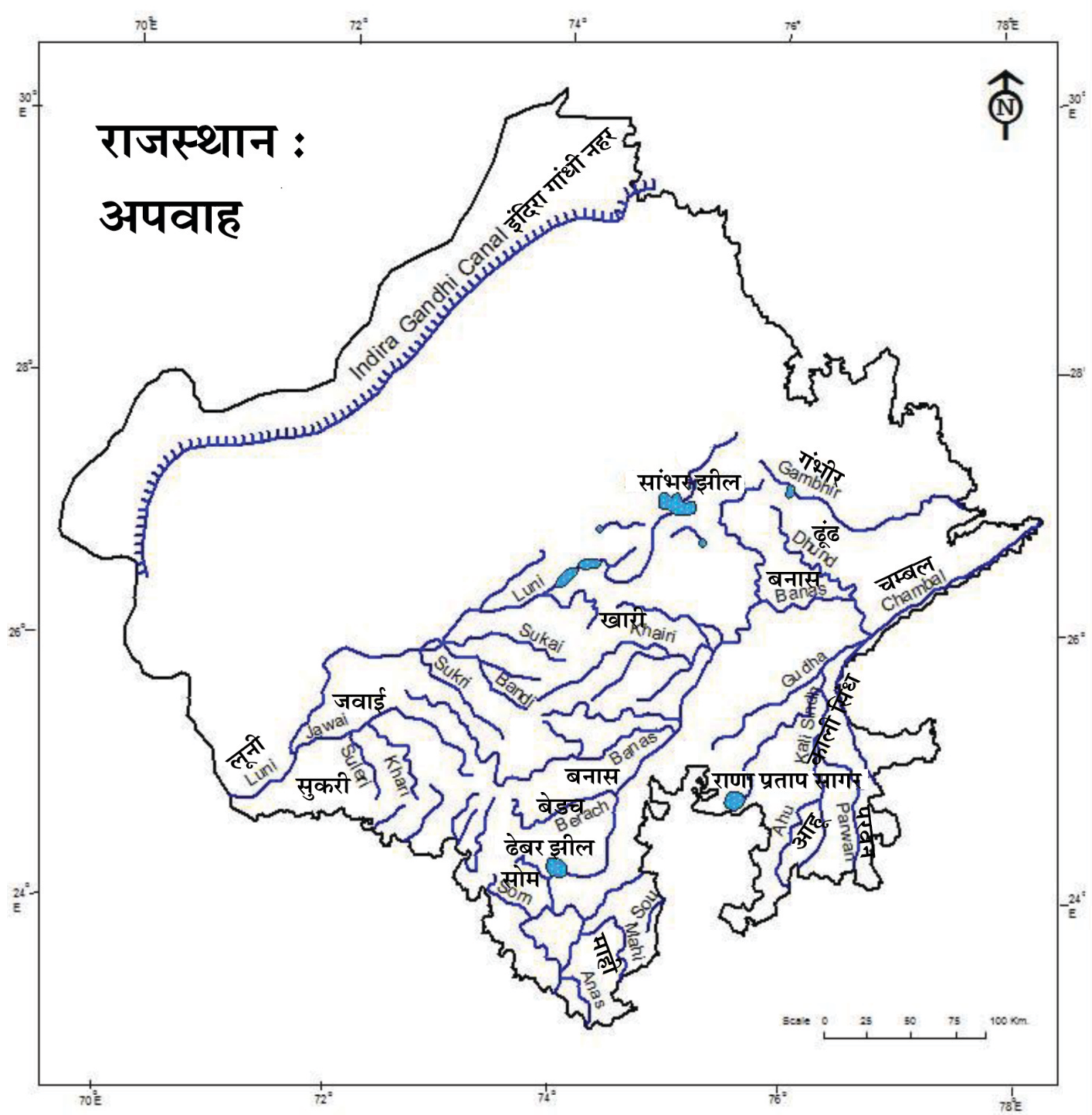

चित्र 12.6 – राजस्थान : प्रमुख नदियां, इंदिरा गांधी नहर एवं झीलें

निर्धारित होती है। भारत की महान जल विभाजक रेखा इस राज्य में बहने वाली नदियों को दो भागों में विभक्त करती है। राजस्थान के अपवाह तन्त्र को चित्र संख्या 12.5 में दर्शाया गया है।

यह जल विभाजक रेखा उत्तर में अरावली अक्ष के साथ सांभर झील के दक्षिण तक है। यहां से यह दक्षिण-पश्चिम की ओर ब्यावर से कुछ किलोमीटर पूर्व में होती हुई देवगढ़, कुम्भलगढ़ व उदयपुर के दक्षिण में हल्दीघाटी होते हुए उदयसागर तक आती है। आगे दक्षिण-पूर्व में बड़ी सादड़ी, छोटी सादड़ी से निकलती हुई प्रतापगढ़ तक चली जाती है। जल विभाजक के पश्चिमी और दक्षिणी भाग की नदियाँ अरब सागर में गिरती हैं। इन नदियों में लूनी, पश्चिमी बनास, साबरमती व माही मुख्य है। जल विभाजक के पूर्वी भाग में बनास व उसकी सहायक नदियाँ चम्बल में मिलती हैं जहाँ से पानी यमुना व गंगा

नदियों में बहता हुआ बंगाल की खाड़ी में चला जाता है। राजस्थान के बहुत बड़े भू–भाग का पानी किसी समुद्र में नहीं जाकर अंत:स्थलीय प्रवाह प्रणाली बनाता है। इस क्षेत्र में अनेक छोटी–छोटी मौसमी नदियाँ हैं जिनका पानी मरूस्थलीय प्रदेश में ही लुप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रवाह के आधार पर राजस्थान की जल प्रवाह प्रणाली को तीन भागों में बांटा जा सकता है –

(1) बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ

(i) चम्बल नदी – यह नदी मध्य प्रदेश में जानापाव पहाड़ी से निकल कर अन्त में उत्तर प्रदेश में यमुना में मिलती है। यह इस तंत्र की प्रमुख नदी है। बनास, पार्वती, काली सिंध आदि इसकी मुख्य सहायक नदियाँ है।

(ii) बनास नदी – यह भोराठ पठार की खमनौर पहाड़ी से निकलकर अन्त में सवाई माधोपुर के रामेश्वर स्थान पर चम्बल में मिल जाती है। बेड़च, कोठारी, खारी, मैनाल, बाण्डी, मांसी, ढूंढ व मोरेल इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं।

(iii) बाणगंगा नदी – यह जयपुर जिले के विराटनगर से निकलकर चम्बल में मिलती है।

(iv) पार्वती नदी – मध्य प्रदेश में विन्ध्यन श्रेणी से निकलकर बारां जिले में बहती हुई पाली स्थान पर चम्बल में मिलती है।

(v) काली सिंध नदी – यह भी विन्ध्यन पर्वत से निकलकर झालावाड़ में बहती हुई चम्बल में मिल जाती है। परवन इसकी सहायक नदी है।

(2) अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ

(i) लूनी नदी – यह अजमेर में नाग पहाड़ से निकलकर कच्छ के रन में गिरती है। बालोतरा तक इस नदी का पानी मीठा है। जोजरी, लिलड़ी, सूकड़ी, जवाई व बाण्डी इसकी प्रमुख सहायक नदियां है।

(ii) माही नदी – यह मध्य प्रदेश में अमझोर से निकलती है। यह राज्य में डूंगरपुर व बांसवाड़ा में बहती है जो आगे चलकर गुजरात में खंभात की खाड़ी में मिलती है। माही व उसकी सहायक सोम व जाखम नदियाँ **बेणेश्वर धाम में त्रिवेणी संगम** बनाती है। यह धाम आदिवासियों का प्रमुख धार्मिक स्थल है। माही नदी पर बांसवाड़ा के निकट माही बजाज सागर बांध का निर्माण किया गया है।

(iii) साबरमती नदी – यह नदी उदयपुर की पश्चिमी पहाड़ियों से निकलकर राजस्थान में 44 किलोमीटर बहकर गुजरात में खंभात की खाड़ी में गिरती है।

(3) अन्त:स्थलीय प्रवाह वाली नदियाँ

राजस्थान राज्य में अनेक छोटी–छोटी नदियाँ इस प्रकार की है जो कुछ दूरी तक बहकर रेत में विलीन हो जाती हैं। कान्तली, साबी, काकनी, घग्घर आदि इस प्रकार की प्रमुख नदियाँ है। इन नदियों में अधिक बरसात आने पर कभी–कभी बाढ़ भी आ जाती है।

झीलें

राजस्थान की झीलों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है –

(अ) खारे पानी की झीलें

(ब) मीठे पानी की झीलें

(अ) खारे पानी की झीलें – ये झीलें राज्य के पश्चिमी मरूस्थलीय व अन्त:स्थलीय प्रवाह वाले क्षेत्र में पाई जाती हैं। ये प्राकृतिक व छिछली हैं। सांभर (जयपुर), डीडवाना (नागौर), पचपद्रा (बाड़मेर), लूणकरणसर (बीकानेर) एवं कुचामन (नागौर) प्रमुख खारे पानी की झीलें हैं। अधिकतर झीलों में व्यावसायिक स्तर पर नमक का उत्पादन किया जाता है। सांभर भारत की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है जो लगभग 145 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। यह 32 किलोमीटर लम्बी व 12 किलोमीटर चौड़ी है।

(ब) मीठे पानी की झीलें – इन झीलों का पेयजल व सिंचाई के लिए विशेष महत्व है। जयसमन्द (उदयपुर), राजसमन्द (राजसमन्द), पुष्कर (अजमेर), सिलीसेढ़ (अलवर), रामगढ़ (जयपुर), कोलायत (बीकानेर), नक्की (माउण्ट आबू), कायलाना (जोधपुर) आदि प्रमुख मीठे पानी की झीलें हैं। नदियों को रोककर राजस्थान में कई बांध भी बनाए गए हैं। ये झीलें व बांध अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण सैलानियों को आकर्षित करते हैं। जयसमन्द जिसे **ढेबर** झील भी कहते हैं, राजस्थान की मीठे पानी की सबसे बड़ी झील है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थान विश्व की प्राचीन सभ्यता का केन्द्र रहा है जिसके अवशेष तिलवाड़ा, आहड़, गिलूण्ड आदि में मिलते हैं।
2. वर्तमान राजस्थान का निर्माण सात चरणों में पूरा हुआ है।
3. राजस्थान को प्रशासनिक दृष्टि से 7 संभागों एवं 33 जिलों में बांटा गया है।
4. राजस्थान व पाकिस्तान के बीच की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा को रैड क्लिफ के नाम से जाना जाता है।

5. राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है।
6. भू–आकृतिक दृष्टि से राजस्थान को चार प्रदेशों में बांटा गया है।
7. पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश में 57.8 प्रतिशत भू–भाग पर 30 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।
8. अरावली पर्वत राजस्थान में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व दिशा में 550 किलोमीटर की लम्बाई में फैला है।
9. अरावली की सबसे ऊँची चोटी गुरूशिखर सिरोही जिले में स्थित है।
10. राजस्थान के पूर्वी मैदान में बनास बेसिन व छप्पन का मैदान शामिल किया जाता है।
11. नदियों की अधिकता के कारण बांसवाड़ा को 'सौ टापुओं का क्षेत्र' के नाम से जाना जाता है।
12. राजस्थान का दक्षिणी–पूर्वी पठार हाड़ौती के नाम से विख्यात है।
13. राजस्थान की अपवाह प्रणाली अरावली पर्वतमाला से निर्धारित होती है।
14. राज्य का लगभग आधा क्षेत्र अन्तःस्थलीय प्रवाह प्रणाली के अन्तर्गत आता है। जल प्रवाह के दृष्टिकोण से अरावली का पश्चिमी व दक्षिणी भाग अरब सागरीय प्रवाह प्रणाली में आता है जबकि अरावली का पूर्वी भाग बंगाल की खाड़ी की प्रवाह प्रणाली में आता है।
15. माही व उसकी सहायक सोम, जाखम नदियों के संगम पर आदिवासियों का बेणेश्वर मेला लगता है।
16. कान्तली, साबी, काकनी एवं घग्घर प्रमुख अन्तःस्थलीय प्रवाह वाली नदियाँ है।
17. सांभर, डीडवाना, पचपद्रा, लूणकरणसर व कुचामन राजस्थान की प्रमुख खारे पानी की झीलें हैं।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. आहड़ जिस जिले में स्थित है, वह है –
   (अ) बाड़मेर (ब) उदयपुर
   (स) बीकानेर (द) सीकर
2. स्वर्णगिरी जिस क्षेत्र का पुराना नाम है, वह है –
   (अ) नागौर (ब) सांभर
   (स) जालौर (द) गंगानगर
3. निम्न में से जो नदी अरब सागरीय प्रवाह प्रणाली की है, वह है –
   (अ) बनास (ब) बाणगंगा
   (स) पार्वती (द) माही
4. राजस्थान की सबसे बड़ी मीठे पानी की झील है –
   (अ) कायलाना (ब) नक्की
   (स) जयसमन्द (द) पुष्कर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

5. वर्तमान राजस्थान कब बना?
6. मत्स्य संघ में कौन–कौनसी रियासतें शामिल हुई थी?
7. राजस्थान का कुल क्षेत्रफल कितना है?
8. राजस्थान की अपवाह प्रणाली को कौनसा पर्वत दो भागों में बांटता है?
9. साबरमती नदी कहां से निकलती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

10. राजस्थान की अवस्थिति बताइये।
11. राजस्थान के मुख्य भौतिक विभाग कौन–कौनसे हैं?
12. दक्षिणी अरावली क्षेत्र की धरातलीय विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
13. पूर्वी मैदान का विस्तार बताइये।
14. राजस्थान की बंगाल की खाड़ी प्रवाह प्रणाली को स्पष्ट कीजिये।
15. राजस्थान की खारे पानी की झीलें बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. राजपूताना से राजस्थान का निर्माण कितने चरणों में हुआ? सारणीबद्ध कीजिए।
17. राजस्थान को भौतिक विभागों में विभक्त कीजिए तथा पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश का विस्तार से वर्णन कीजिए।
18. अरावली पहाड़ी क्षेत्र के भौतिक स्वरूप को समझाइये।
19. राजस्थान की प्रवाह प्रणाली का वर्णन कीजिए।

आंकिक प्रश्न –

20. राजस्थान के रूपरेखा मानचित्र पर निम्नलिखित को दर्शाइये –
    (i) कर्क रेखा, (ii) अरावली पर्वत,
    (iii) पड़ौसी राज्य, (iv) अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
21. राजस्थान के रूपरेखा मानचित्र पर भौतिक विभाग दर्शाइये।
22. राजस्थान के रूपरेखा मानचित्र पर जल विभाजक सहित प्रमुख नदियों को दर्शाइये।

22. राजस्थान के रूपरेखा मानचित्र पर जल विभाजक सहित प्रमुख नदियों को दर्शाइये।

उत्तरमाला – 1.ब 2.स 3.द 4.स

अध्याय -13

राजस्थान : जलवायु, वनस्पति व मृदा
(Rajasthan : Climate, Vegetation and Soil)

जलवायु

जलवायु एक महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक है जो न केवल प्राकृतिक तत्वों को वरन् आर्थिक व जनसांख्यकीय स्वरूपों को भी प्रभावित करता है। किसी विस्तृत क्षेत्र की लम्बी अवधि (तीस वर्ष से अधिक) की औसत मौसमी दशाओं को उस क्षेत्र की जलवायु कहते हैं जबकि किसी स्थान पर किसी विशेष समय में मौसम के घटकों के संदर्भ में वायुमण्डलीय दशाओं के योग को मौसम कहते हैं। तापमान, वायुदाब, पवन, वर्षा इत्यादि जलवायु के तत्व हैं। तापमान जलवायु का आधारभूत तत्व है क्योंकि जलवायु के अन्य तत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से तापमान से जुड़े हुए हैं। तापमान के आधार पर विश्व को उष्ण, शीतोष्ण व शीत कटिबंधों में बांटा गया है। इसी प्रकार जलवायु प्रदेश के निर्धारण में वर्षा प्रतिरूप मूलभूत तत्व है। इस आधार पर आर्द्र, उपार्द्र व शुष्क जलवायु के वर्ग हैं।

राजस्थान की जलवायु शुष्क से उपार्द्र मानसूनी प्रकार की है। पश्चिमी राजस्थान में उच्च दैनिक व वार्षिक तापान्तर, अल्प वर्षा, गर्म झुलसा देने वाली लू एवं तीव्र धूल भरी आंधियों से युक्त शुष्क जलवायु पाई जाती है जबकि अरावली के पूर्वी भाग में अपेक्षाकृत कम तापमान, कम तापान्तर एवं वर्षा की थोड़ी अधिकता के कारण उपार्द्र जलवायु पाई जाती है। अक्षांशीय स्थिति, समुद्र से दूरी, समुद्रतल से ऊँचाई, अरावली पर्वत की स्थिति व दिशा, मिट्टी की संरचना व वनस्पति का आवरण जलवायु को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक हैं।

राजस्थान की जलवायु की विशेषताएँ

1. राजस्थान में शुष्क व उपार्द्र मानसूनी जलवायु पाई जाती है।
2. वर्षा के वितरण में अधिक विषमता परिलक्षित होती है।
3. रेत की अधिकता के कारण दैनिक व वार्षिक तापान्तर अधिक पाया जाता है।
4. ग्रीष्म ऋतु में उच्च दैनिक तापमान 49° सेल्शियस तक पहुँच जाता है।
5. ग्रीष्म ऋतु में प्रचण्ड, शुष्क व गर्म 'लू' चलती है।
6. शीतकाल में कहीं-कहीं तापमान जमाव बिन्दु तक पहुँच जाता है।
7. अधिकांश वर्षा, वर्षा ऋतु में होती है। पूर्व से पश्चिम व दक्षिण से उत्तर की ओर वर्षा की मात्रा घटती जाती है।
8. यहां अक्सर सूखा व अकाल पड़ते रहते हैं। जैसा कहा जाता है कि - पग पूंगल (बीकानेर का एक स्थान), धड़ कोटड़े (मारवाड़ का एक स्थान), उदरज बीकानेर। भूल्यो-चूक्यो जोधपुर, ठाणो जैसलमेर।

राजस्थान की ऋतुएँ

राजस्थान में 12 माह की अवधि को मुख्यत: तीन ऋतुओं में बांटा जा सकता है-

(अ) ग्रीष्म ऋतु (मार्च से मध्य जून)
(ब) वर्षा ऋतु (मध्य जून से सितम्बर)
(स) शीत ऋतु (अक्टूबर से फरवरी)

(अ) ग्रीष्म ऋतु (मार्च से मध्य जून) - सूर्य के उत्तरायण होने के साथ ही राज्य में धीरे-धीरे तापमान बढ़ता जाता है। जून में सूर्य कर्क रेखा जो राज्य के दक्षिणी भाग से गुजरती है, पर सीधा चमकने लगता है। शुष्क रेतीली मिट्टी के प्रभाव से राज्य के अधिकांश क्षेत्रों में औसत तापमान 30° से. से 36° से. तक हो जाता है। कहीं कहीं दिन में तापमान 48° सेल्शियस तक पहुंच जाता है। दिन में भयंकर गर्मी पड़ती है। शरीर झुलसने लगता है। प्रचण्ड लू व धूल भरी आंधियाँ चलती हैं। लू उच्च ताप वाली हवाएँ हैं। रात्रि में मौसम सुहावना हो जाता है। वायु में आर्द्रता भी काफी कम हो जाती है। पूर्वी राजस्थान में यह विषमता पश्चिमी राजस्थान की तुलना में कम रहती है।

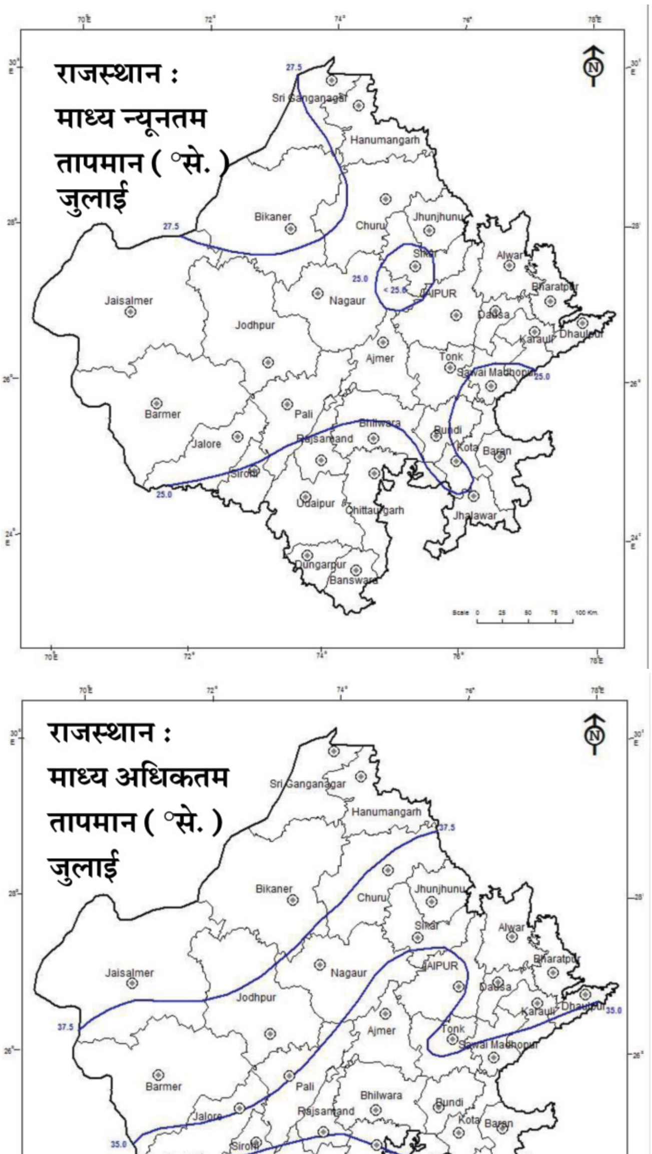

चित्र 13.1 – राजस्थान : तापमान (जुलाई)

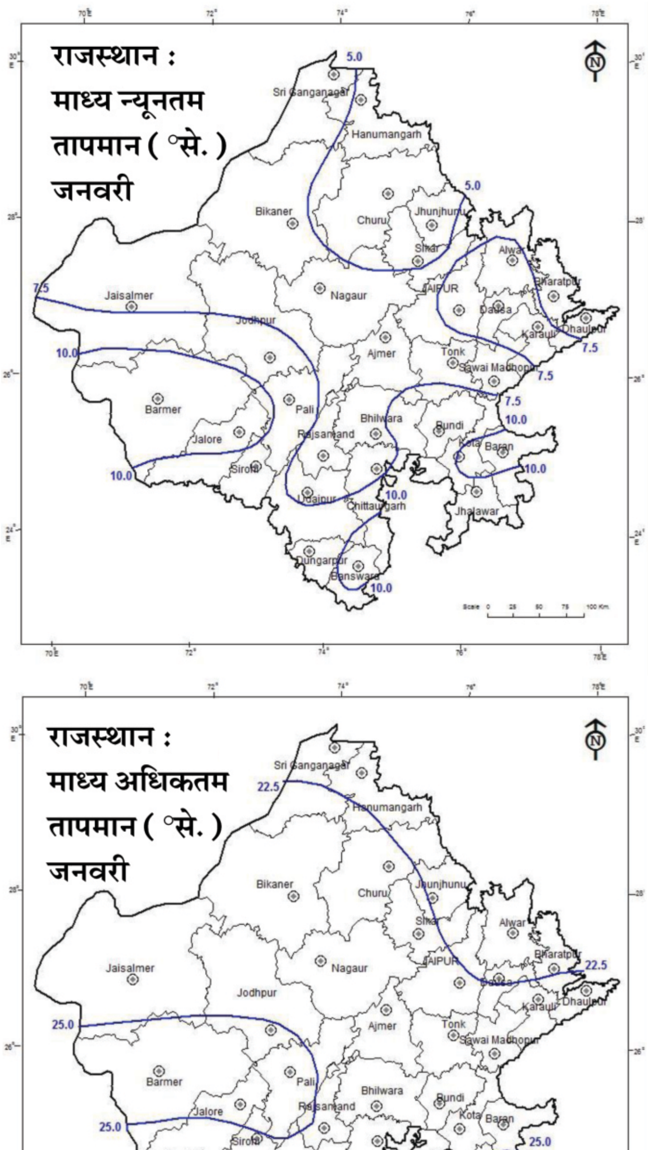

चित्र 13.2 – राजस्थान : तापमान (जनवरी)

(ब) वर्षा ऋतु (मध्य जून से सितम्बर) – मध्य जून तक सम्पूर्ण राज्य गर्मी से तपने लगता है तथा वायुदाब व हवाओं की दिशा में परिवर्तन शुरू हो जाता है। राजस्थान में मानसून जून के अंतिम सप्ताह या जुलाई के प्रारम्भ में पहुँचता है। यहां मानूसन की दोनों शाखाओं अरब सागर व बंगाल की खाड़ी से वर्षा होती है। अरावली पर्वत की विशिष्ट अवस्थिति के कारण बंगाल की खाड़ी के मानसून का प्रभाव उत्तरी, पूर्वी व दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान पर अधिक रहता है। राजस्थान में वर्षा का वितरण दर्शाने वाले चित्र संख्या 13.3 से स्पष्ट है कि 50 से.मी. समवर्षा रेखा इसे दो भागों में बांट देती है। इसके पश्चिम में शुष्क व अर्द्धशुष्क मरूस्थल है। अरावली पर्वतमाला एवं इसके पूर्वी भाग में 50 से 100 से.मी. तक वर्षा होती है। राज्य की अधिकांश वर्षा इसी ऋतु में होती है। इस प्रदेश में वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर तथा दक्षिण से उत्तर की ओर कम होती जाती है। सम्पूर्ण राजस्थान का वार्षिक औसत 52.37 से.मी. है।

राजस्थान में मानसून की दोनों शाखाओं के पहुंचने पर भी वर्षा कम होने के लिए निम्न कारक उत्तरदायी हैं –

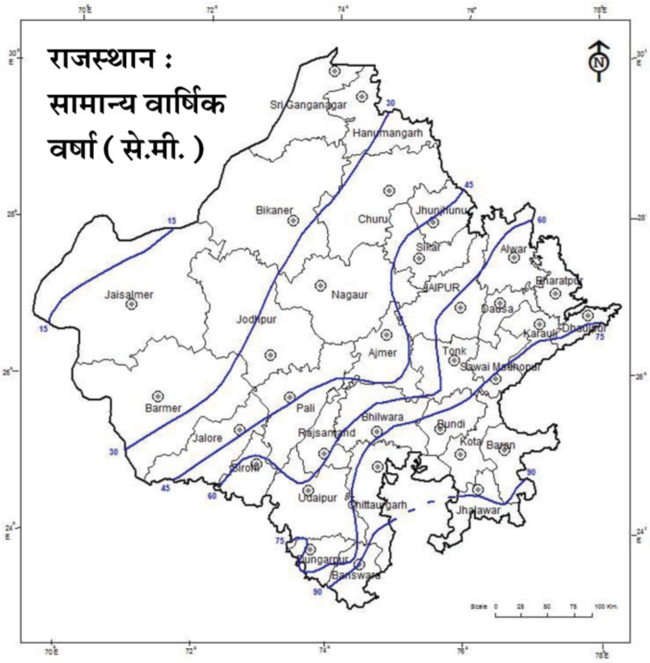

चित्र 13.3 – राजस्थान : वार्षिक वर्षा

चित्र 13.4 – राजस्थान : अरावली पर्वत की स्थिति व दिशा का मानसूनी हवाओं पर प्रभाव

1. अरावली पर्वत का विस्तार अरब सागर की मानसून शाखा की दिशा के समानान्तर होने के कारण यह मानसून राज्य में बिना वर्षा किये उत्तर की तरफ चला जाता है। इस तथ्य को चित्र संख्या 13.4 में दर्शाया गया है।

2. बंगाल की खाड़ी की ओर से आने वाले मानसून में राजस्थान में पहुँचते-पहुँचते आर्द्रता काफी कम हो जाती है।

3. अरावली पर्वतमाला की कम ऊँचाई व उस पर वनस्पति की कमी भी कम वर्षा के लिए उत्तरदायी है। दक्षिणी भाग में ऊँचाई अधिक होने एवं सघन वनस्पति आवरण के कारण 100 सेन्टीमीटर से भी अधिक वर्षा होती है।

(स) शीत ऋतु (अक्टूबर से फरवरी) – भारत सरकार के मौसम विभाग के अनुसार शीत ऋतु को दो भागों में बांटा जाता है –

1. शरद ऋतु या मानसून प्रत्यावर्तन काल (अक्टूबर से मध्य दिसम्बर)
2. शुष्क शीत ऋतु (मध्य दिसम्बर से फरवरी तक)

1. मानसून प्रत्यावर्तन काल (शरद ऋतु) – अक्टूबर में मानसूनी हवाएँ लौटने लगती है क्योंकि स्थलीय निम्न दाब का क्षेत्र समाप्त हो जाता है और हिन्द महासागर में ताप वृद्धि के कारण निम्न वायुदाब का क्षेत्र विकसित हो जाता है। सितम्बर व अक्टूबर में उच्च तापमान व उच्च आर्द्रता के कारण उमस बनी रहती है। अक्टूबर के अन्त तक अधिकतम तापमान 35° व न्यूनतम 20° तक हो जाता है। यह मानसून के लौटने का समय होता है। इस समय हवाएँ शांत, बहुत हल्की व अत्यधिक परिवर्तनशील होती हैं।

2. शुष्क शीत ऋतु – वास्तविक शीत ऋतु का राज्य में आगमन दिसम्बर माह में होता है क्योंकि इस समय तक सूर्य दक्षिणायन हो जाता है। उत्तरी-पश्चिमी ठण्डी हवाएँ पूरे राज्य में चलने लगती हैं। दिसम्बर-जनवरी माह में पश्चिम से आने वाले शीतोष्ण चक्रवातों द्वारा राज्य में दो-तीन बार **मावट** के रूप में हल्की वर्षा हो जाती है। यह वर्षा रबी की फसल के लिए वरदान होती है। जनवरी में उत्तरी राजस्थान में 10° सेल्शियस से कम तथा हाड़ौती क्षेत्र में 20° से. के लगभग तापमान रहता है। शेष राजस्थान में औसत तापमान 10° से 20° से. के बीच रहता है। हिमालय क्षेत्र में हिमपात होने पर राज्य शीत लहर की चपेट में आ जाता है तथा कई स्थानों पर तापमान हिमांक बिन्दु तक पहुँच जाता है।

जलवायु प्रदेश

तापमान व वर्षा के आधार पर राजस्थान को चार मुख्य जलवायु प्रदेशों में बांटा जा सकता है –

1. शुष्क प्रदेश – इसे मरूस्थलीय प्रदेश भी कहते हैं। इस प्रदेश में शुष्क व उष्ण जलवायु दशाएँ पाई जाती हैं। यहाँ ग्रीष्मकाल में 45° से. से 49° से. तक अधिकतम तापमान हो जाता है तथा शीतकाल में 8° से. से शून्य डिग्री तक न्यूनतम तापमान पहुँच जाता है। यहाँ 25 से.मी. से कम वर्षा होती है। रेत की अधिकता के कारण ग्रीष्म ऋतु में धूल भरी आंधियाँ चलना आम है। अधिक दैनिक व वार्षिक तापान्तर यहाँ की विशेषता है। इस प्रकार की जलवायु जैसलमेर, बाड़मेर व बीकानेर में पाई जाती है।

2. अर्द्ध-शुष्क प्रदेश – अरावली के पश्चिम एवं शुष्क जलवायु प्रदेश के

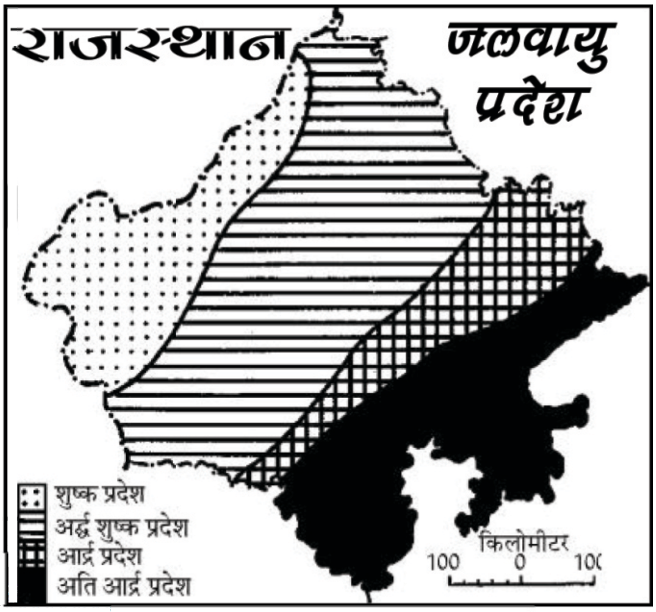

चित्र 13.5 – राजस्थान : जलवायु प्रदेश

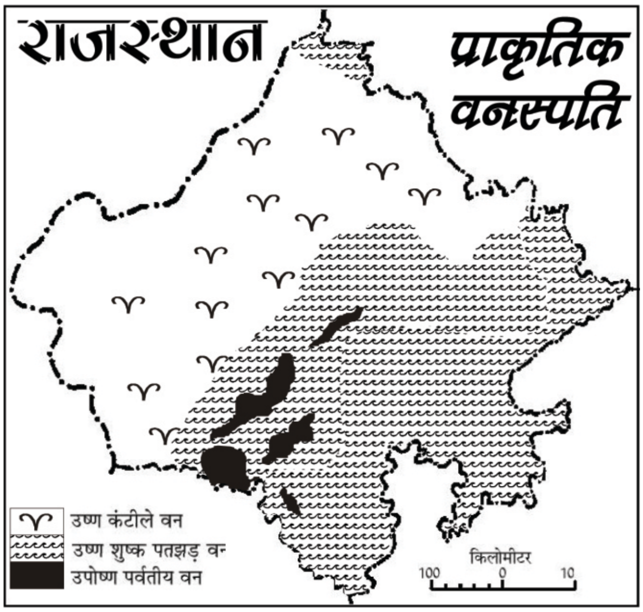

चित्र 13.6 – राजस्थान : प्राकृतिक वनस्पति

मध्य यह प्रदेश फैला है। यहाँ 25 से 45 से.मी. तक वार्षिक वर्षा होती है। गर्मियों में तापमान 36° से 42° से. और शीतकाल का 10° से 17° रहता है।

3. आर्द्र जलवायु प्रदेश – इस प्रदेश में 50 से 75 सेन्टीमीटर तक वर्षा होती है। ग्रीष्मकालीन तापमान 32° से 34° से. तथा शीतकालीन तापमान 12° से 18° से. रहते हैं। अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, बूंदी, राजसमन्द व चित्तौड़गढ जिले का उत्तरी भाग इस प्रदेश में सम्मिलित हैं।

4. अति आर्द्र जलवायु प्रदेश – इस प्रदेश में 75 सेन्टीमीटर से अधिक वर्षा होती है। इसके अन्तर्गत कोटा, बारां, झालावाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, सिरोही, उदयपुर व चितौड़गढ जिले का दक्षिण भाग शामिल है। मानसून इस प्रदेश में सर्वाधिक सक्रिय रहता है।

प्राकृतिक वनस्पति

पर्यावरणीय व पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में प्राकृतिक वनस्पति व वनों की प्रमुख भूमिका होती है। वन स्थानीय जलवायु को सौम्य व सन्तुलित करते हैं, मृदा अपरदन को रोकते हैं, नदी के प्रवाह को नियमित करते हैं तथा विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चा माल देते हैं। वन कई लोगों को आजीविका प्रदान करते हैं तथा मनोरंजन के अवसर उपलब्ध कराते हैं। ये तूफानों की शक्ति को कम करते हैं। वनों से औद्योगिक लकड़ी इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी, चारा और अनेकों उपयोगी व मूल्यवान उत्पाद प्राप्त होते हैं। ये वन्य जीवन के लिए प्राकृतिक पर्यावरण प्रदान करते हैं। हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में भी वनों के महत्व का वर्णन है। इन्हें देवता तुल्य मानकर पूजने की परम्परा रही है। किन्तु यह खेदपूर्ण ही है कि आधुनिक समय में मनुष्य ने वनों का निर्दयता से शोषण व विनाश किया है।

वनों का वितरण

राजस्थान की भौतिक दशाएँ व जलवायु इस प्रकार की है कि यहाँ भारत के अन्य राज्यों की तुलना में वनों का विस्तार बहुत कम पाया जाता है।

राष्ट्रीय वन नीति (1988) के अनुसार जीवन दायिनी तंत्र को बचाने के लिए एक तिहाई भूमि पर वन होने चाहिए जबकि भारत में 19.49 प्रतिशत भूमि पर व राजस्थान में मात्र 9.32 प्रतिशत भूमि पर ही वन क्षेत्र हैं। राजस्थान में सघन वन आवरण क्षेत्र तो 3.83 प्रतिशत ही है। राजस्थान में प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र मात्र 0.03 हैक्टर है जो सम्पूर्ण भारत के प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र 0.13 हैक्टर से काफी कम है। राजस्थान में वनों के भौगोलिक वितरण में बहुत भिन्नता है।

राजस्थान के अपेक्षाकृत सघन वन क्षेत्र मुख्यत: सिरोही, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ, झालावाड़, कोटा, बूंदी, सवाई माधोपुर एवं अलवर जिलों में है। इन जिलों में 20 प्रतिशत से अधिक भूमि पर वन पाए जाते हैं। राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में स्थित जिलों चूरू, नागौर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर आदि में अपने कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 2 प्रतिशत से भी कम क्षेत्र में वन क्षेत्र हैं। राजस्थान में सिरोही व चूरू क्रमश: सर्वाधिक (31 प्रतिशत) व न्यूनतम (0.05 प्रतिशत) वन क्षेत्र वाले जिले हैं। जैसलमेर में कंटीली झाड़ियाँ व सेवण घास ही मिलती है। इन्दिरा गांधी नहर द्वारा जल उपलब्ध हो जाने के कारण यहाँ अब हरियाली में वृद्धि होने लगी है।

वनों के प्रकार

धरातलीय स्वरूप, जलवायु व मिट्टियों की भिन्नता के कारण राजस्थान में भौगोलिक दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के वन मिलते हैं –

1. उष्ण कटिबंधीय कंटीले वन,
2. उष्ण कटिबंधीय शुष्क पतझड़ वाले वन तथा
3. उपोष्ण पर्वतीय वन।

1. उष्ण कटिबंधीय कंटीले वन – इस प्रकार के वन पश्चिमी मरूस्थलीय शुष्क व अर्द्ध-शुष्क प्रदेशों में पाये जाते हैं। जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, पाली, बीकानेर, चूरू, नागौर, सीकर, झुन्झुनूं आदि जिलों में इस प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। इन वनों में पेड़ बहुत छोटे आकार के होते हैं व छोटी झाड़ियों की अधिकता होती है। इस प्रकार के शुष्क जलवायु वाले वनों में खेजड़ी, रोहिड़ा, बैर, कैर, थोर आदि के वृक्ष व झाड़ियाँ उगते हैं। इन पेड़ों व झाड़ियों की जड़ें लम्बी होती हैं तथा पत्तियाँ कंटीली होती हैं। मरूस्थली प्रदेश में **खेजड़ी** की अत्यधिक उपयोगिता के कारण इसे **मरूस्थल का कल्पवृक्ष** कहा जाता है।

इन वनों में कई तरह की झाड़ियाँ भी पाई जाती हैं। फोग, आकड़ा, कैर, लाना, अरणा व झड़बेर इस क्षेत्र की प्रमुख झाड़ियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में कई तरह की घास भी पाई जाती हैं। इन घासों में **सेवण** व **धामण** नामक घास बहुत प्रसिद्ध है। धामण घास दुधारू पशुओं के लिए बहुत उपयोगी होती है जबकि सेवण घास सभी पशुओं के लिए पौष्टिक होती है।

2. उष्ण कटिबन्धीय शुष्क पतझड़ वाले वन – इन वनों का विस्तार राजस्थान के बहुत बड़े क्षेत्र में है। ये वन राजस्थान के 50 से 100 से.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये वन राजस्थान के मध्य, दक्षिणी व दक्षिणी-पूर्वी भागों में बहुतायत से पाये जाते हैं। विभिन्न तरह के वृक्षों की विविधता के कारण इन वनों के कई उप प्रकार हैं जो निम्नलिखित हैं –

(i) शुष्क सागवान के वन – ये वन 250 से 450 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मिलते हैं। इन वनों में सागवान वृक्ष के बहुतायत से पाये जाने पर इन्हें यह नाम दिया गया है। इन वनों का विस्तार, उदयपुर, डूंगरपुर, झालावाड़, चित्तौड़गढ़ व बारां जिलों में है। इन वनों में सागवान की मात्रा 50 से 75 प्रतिशत के मध्य मिलती है। इनके अतिरिक्त इन वनों में तेंदू, धावड़ा, गुरजन, गोदल, सिरिस, हल्दू, खैर, सेमल, रीठा बहेड़ा व इमली के वृक्ष भी पाये जाते हैं।

सागवान अधिक सर्दी व पाला सहन नहीं कर पाता है अत: इन वृक्षों का विस्तार राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्रों में अधिक है। सागवान की लकड़ी कृषि औजारों व इमारती कार्यों के लिए बहुत उपयोगी है।

(ii) सालर वन – ये वन 450 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में मिलते हैं। राजस्थान में इन वनों का विस्तार उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, सिरोही, पाली, अजमेर, जयपुर, अलवर व सीकर जिलों में मिलता है। इन वनों के प्रमुख वृक्ष सालर, धोक, कठीरा व धावड़ है। सालर वृक्ष गोंद का अच्छा स्रोत हैं। इसकी लकड़ी पैकिंग के डिब्बे बनाने में काम में ली जाती है। सालर वृक्षों की अधिकता के कारण इन वनों को सालर वन नाम दिया गया है।

(iii) बांस के वन – बांस की अधिकता के कारण इन्हें बांस वन नाम दिया गया है। राजस्थान के प्रचुर वर्षा वाले क्षेत्रों में इन वनों का विस्तार है। राजस्थान में बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, बारां, कोटा व सिरोही जिलों में इन वनों का विस्तार है। बांसवाड़ा का नाम बांसवाड़ा, बांस के वृक्षों की अधिकता के कारण ही पड़ा है। बांस के वृक्षों के साथ इन वनों में धावड़ा, सागवान, धोकड़ा आदि वृक्ष भी पाये जाते हैं।

(iv) धोकड़ा के वन – धोकड़ा के वन राजस्थान के बहुत बड़े क्षेत्र में पाये जाते हैं। रेगिस्तानी क्षेत्रों को छोड़कर राजस्थान के सभी क्षेत्रों का भौगोलिक पर्यावरण इनके अनुकूल है। अत: राजस्थान में इन वनों का विस्तार सबसे अधिक है। राजस्थान में ये वन 240 से 760 मीटर की ऊँचाई के मध्य अधिक मिलते हैं। इनका विस्तार कोटा, बूंदी, सवाई माधोपुर, जयपुर, अलवर, अजमेर, उदयपुर, राजसमन्द व चित्तौड़गढ़ जिलों में है। राजस्थान में धोकड़ा को **धोक** के नाम से भी जाना जाता है। ये वन राज्य की प्रमुख वन सम्पदा में शामिल किये जाते हैं।

इन वनों में धोक के साथ-साथ अरून्ज, खैर, खिरनी, सालर, गोदल के वृक्ष भी पाये जाते हैं। पहाड़ी, तलहटी क्षेत्रों में धोक के साथ पलाश बहुतायत से मिलता है। कहीं-कहीं झड़बेर व अडूसा भी मिलता है। धोक की लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसे जलाकर इसका कोयला बनाया जाता है।

(v) पलाश के वन – ये वन उन क्षेत्रों में फैले हैं जहाँ धरातल कठोर व पथरीला है। पहाड़ियों के मध्य जहाँ पठारी धरातल है वहाँ यह बहुतायत में पाये जाते हैं। ऐसे मैदानी क्षेत्र जो कंकरीले हैं व जहाँ मिट्टी अपेक्षाकृत कठोर है वहाँ भी ये वन मिलते हैं। इन वनों में पलाश के साथ-साथ झड़बेर, कंकेरी, हिंगोटा, हर्जन व अरूंज के वृक्ष भी मिलते हैं। इनका फैलाव अलवर, अजमेर, सिरोही, उदयपुर, पाली, राजसमन्द व चित्तौड़गढ़ में है।

(vi) खैर के वन – इन वनों का फैलाव राजस्थान के दक्षिणी पठारी भाग में है। इसके अन्तर्गत झालावाड़, कोटा, बारां, चित्तौड़गढ़ व सवाई माधोपुर जिलों के क्षेत्र शामिल हैं। इन वनों में खैर के साथ बेल, धोकड़ा व अरूंज के वृक्ष भी मिलते हैं।

(vii) बबूल के वन – ये वन गंगानगर, बीकानेर, नागौर, जालौर, अलवर, भरतपुर आदि जिलों में मिलते हैं। जिन क्षेत्रों में धरातल में नमी कम है वहाँ इनके वृक्षों की मात्रा कम है। अधिक नमी वाले क्षेत्रों में

इनकी सघनता बढ़ जाती है। इन वनों में बबूल के साथ नीम, हिंगोटा, अरूंज, कैर व झड़बेर के वृक्ष भी मिलते हैं।

(viii) मिश्रित पर्णपाती – ये वन राजस्थान के दक्षिणी पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। सिरोही, उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, कोटा व बारां जिलों में इनका विस्तार अधिक है। इन वनों में किसी एक वृक्ष की प्रधानता नहीं है। इनमें सभी तरह के वृक्ष पाये जाते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले प्रमुख वृक्ष आँवला, शीशम, सालर, तेंदू, अमलताश, रोहन, करंज, गूलर, जामुन, अर्जुन आदि हैं।

3. उपोष्ण पर्वतीय वन – इस प्रकार के वन केवल आबू पर्वतीय क्षेत्र में पाये जाते हैं। इन वनों में सदाबहार एवं अर्द्ध–सदाबहार वनस्पति होती है। यहां वृक्षों की सघनता अधिक है अत: साल भर हरियाली बनी रहती है। इन वनों में आम, बांस, नीम, सागवान आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। राजस्थान के कुल वन क्षेत्र के आधे प्रतिशत से भी कम भाग पर इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।

वनों का प्रशासनिक विभाजन

प्रशासनिक दृष्टि से राजस्थान के वनों को तीन भागों में विभक्त किया गया है–

1. आरक्षित वन – ये वन राजकीय सम्पत्ति हैं तथा इन क्षेत्रों में वन कटाई व पशु चराई पर पूर्णत: प्रतिबंध है। इस प्रकार के वन राज्य के कुल वन क्षेत्र के 38प्रतिशत क्षेत्र पर विस्तृत हैं।

2. संरक्षित वन – इस प्रकार के वन भी सरकारी नियंत्रण में रहते हैं पर इन वनों में नियंत्रित वन कटाई व पशुचारण की अनुमति दी जाती है। इस प्रकार के वन राज्य के कुल वन क्षेत्र के 51 प्रतिशत भाग पर पाये जाते हैं।

3. अवर्गीकृत वन – इन वनों में लकड़ी काटने व पशुचारण पर किसी प्रकार का सरकारी नियंत्रण नहीं रहता है। राज्य के शेष 11 प्रतिशत वन क्षेत्र इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

अब वनों के उपर्युक्त वर्गीकरण के स्थान पर नया वर्गीकरण स्वीकृत किया गया है।

राजस्थान के लिए वनों का महत्व

वनों का महत्व पर्यावरण एवं मानव समाज के लिए बहुत अधिक है। भारत सरकार की 1952 की वन नीति के अनुसार देश के 33 प्रतिशत क्षेत्र में वनों का विस्तार होना चाहिए। यह विस्तार पर्वतीय क्षेत्रों में 65 प्रतिशत तक व मैदानी क्षेत्रों में 20 प्रतिशत तक होना चाहिए। इस नीति के अनुसार आकलन करने पर ज्ञात होता है कि राजस्थान में वनों का विस्तार बहुत कम क्षेत्र में है। अत: राजस्थान में वनों का विस्तार करने के प्रयास सभी स्तरों पर किये जाने चाहिए। वनों से हमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं।

वनों से प्रत्यक्ष लाभ – इसमें हमें वनों से ईंधन की लकड़ी, इमारती लकड़ी, बांस आदि मिलते हैं जो विभिन्न तरह से काम में लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त शहद, मोम, कत्था, गोंद आदि पदार्थ मिलते हैं। तेन्दू पत्ती मिलती है जो बीड़ी उद्योग में काम आती है। कई तरह के फल मिलते हैं जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं, जैसे – आम, जामुन, शहतूत, आँवला, टीमरू, करौंदे, खिरनी, सीताफल आदि। वनों से ही सुगन्धित घास भी मिलती है जिससे सुगन्धित तेल व इत्र बनाये जाते हैं। कमरों को ठण्डा व सुगन्धित रखने के लिए खस नाम की घास का बहुत उपयोग होता है। वनों से कई तरह की जड़ी–बूटियाँ भी प्राप्त की जाती है जो आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में उपयोगी दवाइयों के निर्माण में काम आती हैं।

वनों से अप्रत्यक्ष लाभ – वनों से अप्रत्यक्ष लाभ बहुत अधिक होता है जिसे मुद्रा में आंका जाना संभव नहीं है। वन वर्षा में सहायक होते हैं, ये मानसून को आकर्षित करते हैं, वन तूफानों की गति को कम करने में सहायक होते हैं, गर्मियों में तापमान को सन्तुलित रखते हैं, मिट्टी अपरदन को रोकने में सहायक होते हैं, प्राकृतिक सौंदर्य में वृद्धि करते हैं, वन्य जीवों के आश्रयस्थल होते हैं, पर्यावरण को सन्तुलित रखते हैं व ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। वन मानव समाज में सौंदर्य बोध जगाते हैं व उसके चिंतन को सकारात्मक रूप प्रदान करते हैं।

वनों के इतने महत्वपूर्ण लाभों के कारण ही भारतीय शास्त्रों में वृक्षारोपण को परम पुनीत कार्य माना गया है। वृक्षों को पाल–पोसकर बड़ा करने वाले को देवतुल्य माना गया है।

मृदा

प्रकृति प्रदत्त उपहारों में मिट्टी का स्थान सर्वोपरि है। ये कृषक की अमूल्य सम्पदा है। इस पर सम्पूर्ण कृषि उत्पादन निर्भर करता है। राजस्थान एक कृषि प्रधान राज्य है तथा यहां के लोगों का कृषि के साथ–साथ पूरक व्यवसाय पशुपालन है। अत: मिट्टियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। अमेरीकी मृदा विशेषज्ञ डॉ. बैनेट के अनुसार **''मिट्टी भू–पृष्ठ पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी परत है जो मूल चट्टानों व वनस्पति के योग से बनती है।''**

प्राकृतिक पर्यावरण में विद्यमान विविधता मिट्टी के विविध प्रकारों को जन्म देती है। मिट्टी के निर्माण पर उच्चावच, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, समय आदि कारकों का प्रभाव पड़ता है। पैतृक पदार्थ, जल, वायु व ह्यूमस मिट्टी के चार मुख्य घटक है जो इसमें पाये जाते हैं। मिट्टी ठोस, द्रव व गैसीय पदार्थों का मिश्रण है जो चट्टानों के अपक्षय, जलवायु, पौधों व अनन्त जीवाणुओं के बीच होने वाली अन्त: क्रिया का परिणाम है।

मृदा के प्रकार

राजस्थान की मिट्टियों को रंग, गठन व उपजाऊपन के आधार पर छः वर्गों में बांटा गया है जिन्हें चित्र संख्या 13.7 में भी दर्शाया गया है।

1. मरूस्थलीय मिट्टी – यह मिट्टी पश्चिमी राजस्थान में पाई जाती है। जालोर, बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, चूरू, झुंझनूं, नागौर आदि जिलों के अधिकांश क्षेत्रों में यह मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी कम उपजाऊ होती है। अधिक तापान्तर व भौतिक अपक्षय इस मिट्टी के प्रमुख निर्माणक तत्व हैं।

विशेषताएँ –

(i) इसका निर्माण प्रधानतः भौतिक अपक्षय द्वारा होता है।

(ii) यह मृदा पवनों के द्वारा स्थानान्तरित होती रहती है।

(iii) इसमें उपजाऊ तत्वों की मात्रा कम व लवणता अधिक होती है।

(iv) इसमें जल धारण क्षमता कम पाई जाती है।

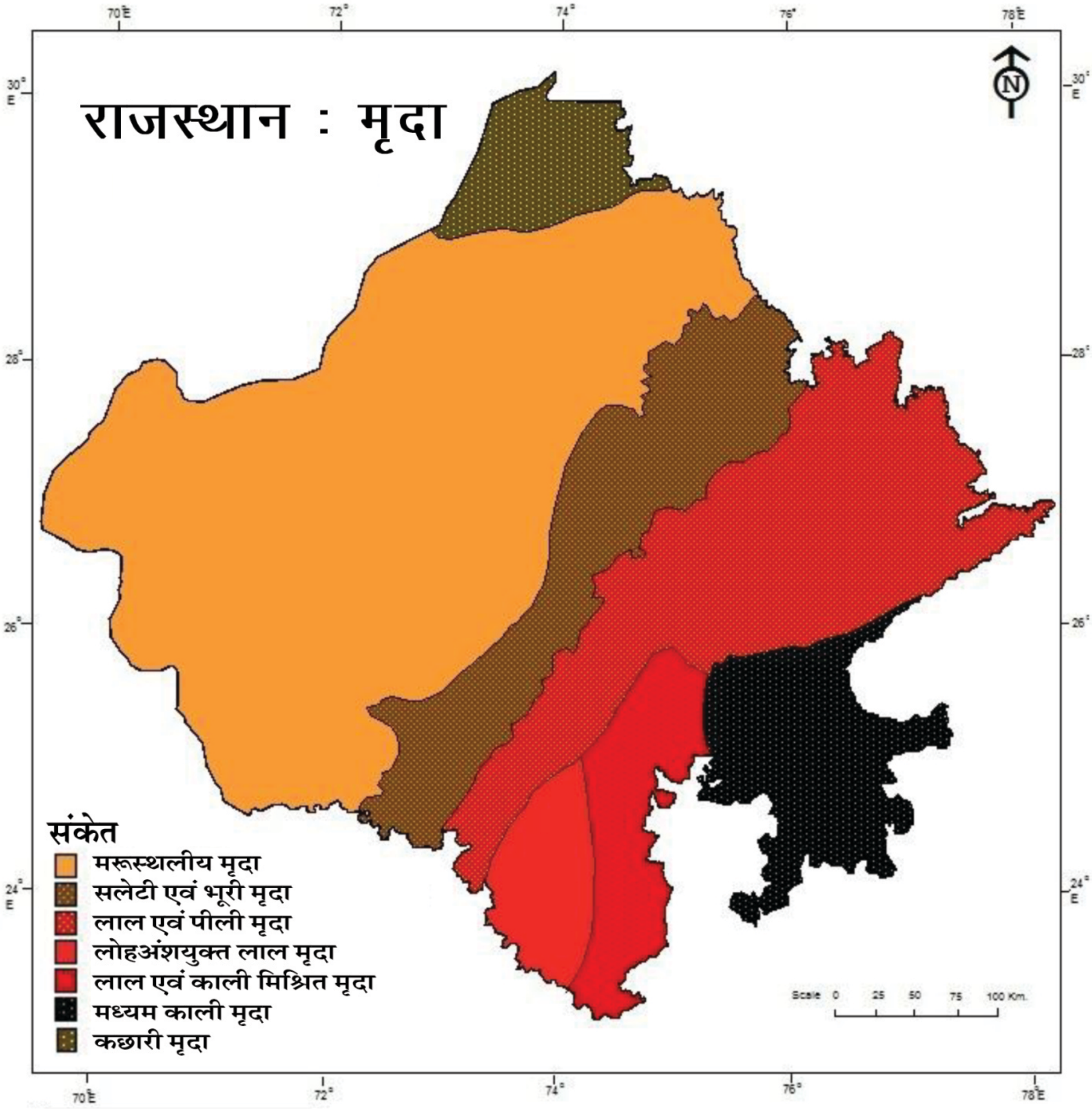

चित्र 13.7 – राजस्थान : मृदा के प्रकार

2. लाल-पीली मिट्टी – इस प्रकार की मृदा सवाई माधोपुर, सिरोही, राजसमन्द, उदयपुर व भीलवाड़ा जिलों के पश्चिमी भागों में पाई जाती है।

विशेषताएँ –

(i) इस मिट्टी में उपजाऊ तत्वों की कमी होती है।

(ii) यह मिट्टी ग्रेनाइट, शिस्ट व नीस चट्टानों के विखण्डन से निर्मित है।

(iii) इसमें चूना व नाइट्रोजन की कमी पाई जाती है।

(iv) लौह अंश के कारण इस मिट्टी का रंग लाल व पीला होता है।

(v) यह मिट्टी मूंगफली व कपास की कृषि के लिए उपयुक्त है।

3. लैटेराइट मिट्टी – यह डूंगरपुर, उदयपुर के मध्य व दक्षिणी भागों एवं दक्षिणी राजसमन्द जिले में मिलती है। यह प्राचीन स्फट्कीय (Crystalline) व कायान्तरित चट्टानों से निर्मित है।

विशेषताएँ –

(i) इसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, ह्यूमस आदि की कमी पाई जाती है।

(ii) लौह तत्व की उपस्थिति के कारण इस मिट्टी का रंग लाल दिखाई देता है।

(iii) इस मिट्टी में मक्का, चावल व गन्ने की खेती की जाती है।

4. मिश्रित लाल व काली मिट्टी – यह मिट्टी बांसवाड़ा, पूर्वी उदयपुर, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ व भीलवाड़ा जिलों में मिलती है।

विशेषताएँ –

(i) इसमें चूना, नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की कमी पाई जाती है पर पोटाश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

(ii) इस मिट्टी में चीका की अधिकता पाई जाती है।

(iii) यह उपजाऊ मिट्टी है, इसमें कपास, गन्ना, मक्का आदि की खेती की जाती है।

5. काली मिट्टी – यह मिट्टी राज्य के दक्षिणी-पूर्वी जिलों कोटा, बूंदी, बारां व झालावाड़ में मिलती है।

विशेषताएँ –

(i) यह चीका प्रधान दोमट मिट्टी है।

(ii) इस मिट्टी में कैल्शियम व पोटाश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है पर नाइट्रोजन की कमी मिलती है।

(iii) यह उपजाऊ मिट्टी है जिसमें व्यापारिक फसलों गन्ना, धनिया, चावल व सोयाबीन की अच्छी पैदावार होती है।

6. कछारी मिट्टी – यह राज्य के उत्तरी व पूर्वी जिलों गंगानगर, हनुमानगढ़, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, सवाई माधोपुर, दौसा, जयपुर व टोंक में मिलती है।

विशेषताएँ –

(i) यह हल्के भूरे लाल रंग की होती है।

(ii) यह गठन में रेतीली दोमट प्रकार की होती है।

(iii) यह मिट्टी उपजाऊ होती है।

(iv) इसमें चूना, फॉस्फोरस, पोटाश व लौह अंश पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं पर नाइट्रोजन की कमी पाई जाती है।

(v) यह मिट्टी गेहूँ, सरसों, कपास व तम्बाकू के लिए बहुत उपयोगी है।

मिट्टी की समस्याएँ

1. मृदा अपरदन

राजस्थान में मृदा अपरदन एक गम्भीर समस्या है। मृदा व उसकी उर्वरता के विनाश को देखते हुए इसे **रेंगती मृत्यु** कहते हैं। जल व वायु द्वारा मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत के बह जाने या उड़ जाने को मिट्टी अपरदन कहते हैं। मृदा अपरदन, परत अपरदन व नालीनुमा अपरदन के रूप में होता है। राजस्थान की लगभग 4 लाख हैक्टेयर भूमि जलीय अपरदन से प्रभावित है। चम्बल व उसकी सहायक नदियों द्वारा हाड़ौती के पठार पर काफी अपरदन हुआ है। कोटा, सवाई माधोपुर व धौलपुर जिले नालीनुमा अपरदन से ग्रसित हैं, जबकि पश्चिमी शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र वायु अपरदन से प्रभावित है। इससे राजस्थान की हजारों हैक्टेयर भूमि नष्ट हो चुकी है और हो रही है।

मृदा अपरदन के कारण –

1. तेजी से बहता जल मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत को बहा ले जाता है।

2. खड़े ढालों पर जल का वेग अधिक होने से वहां अनेक नालियाँ व खड्डे बन जाते हैं।

3. शुष्क क्षेत्रों में वनस्पति के अभाव में तेज हवाएँ अपवाहन क्रिया द्वारा मिट्टी के असंगठित कणों को अपने साथ उड़ा ले जाती है।

4. वनों के अन्धाधुन्ध कटाव से मिट्टी अपरदन को बल मिलता है। वृक्षों की जड़े मिट्टी को बांधे रहती हैं।

5. अत्यधिक पशुचारण से घास के नष्ट होने से मिट्टी की ऊपरी परत पर अपरदन आसानी से हो जाता है।

6. झूमिंग कृषि से भी बड़ी मात्रा में मिट्टी का अपरदन होता है।

7. अवैज्ञानिक तरीके से कृषि करने से मिट्टी का अपरदन होता है।

मिट्टी अपरदन को रोकने के उपाय

1. बाढ़ के क्षेत्रों में बांध व एनीकट बनाकर तथा खेतों की मेड़बंदी कर पानी के बहाव को नियंत्रित करना चाहिए।

2. वनों की अनियंत्रित कटाई को रोककर वृक्षारोपण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

3. पशुचारण पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

4. शुष्क क्षेत्रों में हवा की गति को कम करने व मिट्टी के अपरदन को रोकने के लिए पंक्तिबद्ध पौधे लगाए जाने चाहिए।

5. सीढ़ीदार खेत बनाकर, समोच्च रेखीय जुताई कर एवं फसल चक्र का पालन कर मृदा अपरदन को काफी हद तक रोका जा सकता है।

2. मृदा उर्वरता के ह्रास की समस्या

फसलों के लिए मिट्टी के सतत् उपयोग एवं कृषि की दोषपूर्ण पद्धति अपनाने से मिट्टी की उत्पादकता का ह्रास होता है तथा लवणीयता व क्षारीयता की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। राजस्थान में लगभग 7.2 लाख हैक्टेयर भूमि क्षारीय व लवणीय है। वैसे तो क्षारीय व लवणीय भूमि राज्य के सभी भागों में पाई जाती है परन्तु ऐसी समस्या अलवर, भरतपुर, जयपुर, नागौर, पाली, जोधपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ व सिरोही जिलों में अधिक है। सघन नहरी क्षेत्रों में मिट्टी जलाक्रांति समस्या से ग्रसित है।

मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के उपाय

1. मिट्टी पर जल का अधिक प्रवाह जलक्रांति की समस्या खड़ी कर देता है। इससे उपजाऊ तत्वों का निक्षालन हो जाता है। अत: जल प्रवाह पर नियंत्रण रखना चाहिए।

2. भूमि की लवणता को नियंत्रित करने के लिए जौ, कपास, मक्का आदि उगानी चाहिए।

3. मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी को दूर करने के लिए दालों वाली फसलें जैसे चना, मूंग आदि चक्र से बोनी चाहिए।

सरकार द्वारा मृदा संरक्षण पर करोड़ों रूपये विभिन्न योजनाओं के तहत खर्च हो रहे हैं किन्तु इस दिशा में हमारे किसानों की जागरूकता व सहभागिता अधिक प्रभावी हो सकती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. किसी विस्तृत क्षेत्र की लम्बी अवधि की औसत मौसमी दशाओं को उस क्षेत्र की जलवायु कहते हैं।
2. तापमान, वायुदाब, पवनें, वर्षा इत्यादि जलवायु के तत्व है।
3. राजस्थान की जलवायु शुष्क से उपार्द्र मानसूनी प्रकार की है।
4. ग्रीष्म ऋतु में प्रचण्ड, शुष्क व गर्म लू चलती है।
5. अधिकांश वर्षा, वर्षा ऋतु में होती है।
6. वर्षा की मात्रा, वितरण व समय में असमानता, अनियमितता व अनिश्चितता पाई जाती है।
7. ग्रीष्म ऋतु मार्च से मध्य जून तक होती है।
8. ग्रीष्म ऋतु में सूर्य कर्क रेखा पर सीधा चमकता है जो राजस्थान के दक्षिणी भाग से गुजरती है।
9. राजस्थान में अरब सागर व बंगाल की खाड़ी की मानसून की शाखाओं से वर्षा होती है।
10. सम्पूर्ण राजस्थान का वार्षिक वर्षा का औसत 52.37 सेन्टीमीटर है।
11. शीतकाल में पश्चिम से आने वाले शीतोष्ण चक्रवातों द्वारा राज्य में दो-तीन बार मावट के रूप में वर्षा होती है जो रबी की फसल के लिए फायदेमंद है।
12. तापमान व वर्षा के आधार पर राजस्थान को चार मुख्य जलवायु प्रदेशों में बांटा गया है।
13. पर्यावरणीय व पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में वनों की प्रमुख भूमिका होती है।
14. राजस्थान में भारत की तुलना में वनों के अन्तर्गत भूमि काफी कम है।
15. राजस्थान में सर्वाधिक वन क्षेत्र सिरोही जिले में पाया जाता है।
16. सागवान वन प्रधानत: बांसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ व उदयपुर जिलों में पाये जाते हैं।
17. मिट्टी के निर्माण में पैतृक पदार्थ, उच्चावच, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति व विकास की अवधि का योगदान होता है।
18. पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीय मिट्टी का विस्तार है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. राजस्थान की औसत वर्षा है –
   (अ) 52.37 से.मी. (ब) 65.62 से.मी.
   (स) 25.25 से.मी. (द) 100.85 से.मी.
2. उपोष्ण पर्वतीय वन जिस जिले में पाए जाते हैं, वह है –
   (अ) अलवर (ब) जयपुर
   (स) अजमेर (द) सिरोही
3. राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार किसी क्षेत्र के जितने भाग पर वन होने चाहिए, वह है –
   (अ) दो तिहाई (ब) एक तिहाई
   (स) चौथाई (द) तीन चौथाई
4. राजस्थान में कितनी प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती है?
   (अ) सात (ब) छ:
   (स) नौ (द) दस

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

5. राजस्थान की जलवायु कैसी है?
6. कर्क रेखा पर सूर्य किस महीने में सीधा चमकता है?
7. मावट क्या है?
8. राजस्थान को कितने जलवायु प्रदेशों में बांटा गया है?
9. सागवान के वन प्रधानत: किन जिलों में पाए जाते हैं।
10. राजस्थान की मिट्टी की दो मुख्य समस्याएँ बताइये।
11. रेंगती मृत्यु किसे कहते हैं?
12. मिट्टी अपरदन के दो रूप बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

13. जलवायु को परिभाषित करते हुए इसके तत्व बताइये।
14. राजस्थान की जलवायु की कोई चार मुख्य विशेषताएँ बताइये।
15. राजस्थान में कम वर्षा क्यों होती है?
16. अतिशुष्क जलवायु प्रदेश की मुख्य विशेषताएँ बताइये।
17. राजस्थान में सघन वन कहां पाए जाते हैं?
18. मृदा अपरदन के कारण बताइये।
19. मृदा अपरदन को रोकने के उपाय बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

20. राजस्थान की मुख्य ऋतुओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
21. राजस्थान को जलवायु प्रदेशों में बांटते हुए उनका विस्तार से वर्णन कीजिए।
22. राजस्थान में पाए जाने वाले वनों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
23. राजस्थान की मिट्टियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

आंकिक प्रश्न –

24. राजस्थान के मानचित्र पर जून व जनवरी माह की समताप रेखाएँ दर्शाइये।
25. राजस्थान के जलवायु प्रदेशों को मानचित्र पर दर्शाइये।
26. राजस्थान के वन क्षेत्रों को मानचित्र पर दर्शाइये।
27. राजस्थान के मानचित्र में मिट्टी के प्रकारों को दर्शाइये।

उत्तरमाला – 1. अ 2. द 3. ब 4. ब

शब्दावली
(Glossary)

A

abrasion अपघर्षण :
वायु जल अथवा बर्फ के गतिशील मलवे से भूपृष्ठ के किसी भाग का घिस जाना।

absolute humidity निरपेक्ष आर्द्रता :
वायु के परिमाण की इकाई में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा, जो साधारणरूप से प्रतिघन मीटर, ग्राम में प्रदर्शित की जाती है।

absorption अवशोषण :
यह प्राकृतिक प्रक्रम जिसके अंतर्गत विशिष्ट पदार्थ विकिरण– ऊर्जा को अपने में आत्मसात कर लेता है, तथा उसको पुनः किसी अन्य ऊर्जा के रूप में बदला नहीं जा सकता।

abyssal वितलीय :
समुद्र की अतुल गहराई से संबंधित। यह गहराई साधारणतः 2200 से 5500 मीटर (1200 से 3000 फैदम) होती है।

abyssal deposit वितलीय निक्षेप :
महासागर के गंभीर क्षेत्र की तली पर एकत्रित होने वाला जैव पदार्थ।

ablation अपक्षरण :
हटाने या बहा ले जाने का प्रक्रम। भूगोल में साधारणतः इस शब्द का प्रयोग हिमनदी के भूपृष्ठ से बर्फ के पिघलने अथवा वाष्पन (evaporation) से होने वाली कमी के लिए होता है।

actinometer ऐक्टिनोमीटर :
विकिरण–तीव्रता (intensity of radiation) मापने का एक यंत्र।

advection अभिवहन :
वायु, जल अथवा अन्य तरल पदार्थों की क्षैतिज गति। उदाहरणार्थ– वायु द्वारा ऊष्मा का क्षैतिज स्थानान्तरण। तो बढ़ती है और न घटती है।

acolian वायुढ़, वातोढ़ :
वायु द्वारा वाहित, अपरदित अथवा निक्षिप्त पदार्थ।

aerology वायुविज्ञान :
मौसम विज्ञान की वह शाखा जिसमें गुब्बारों, वायुयानों और बादलों द्वारा वायु का अध्ययन किया जाता है।

airmass वायुसंहति वायुराशि :
वायु की एक विस्तृत समांग राशि (homogeneous mass) जो एक बड़े भू–भाग पर छायी रहती है; और ताप, आर्द्रता आदि के लक्षणों मे युक्त, वाताय–पृष्ठों (fronts) से परिबद्ध रहती है। यह वायुराशि (air mass) तापमान के आधार पर ध्रुवीय अथवा उष्णकटिबंधीय तथा आर्द्रता के आधार पर समुद्री अर्थात् महाद्वीपीय कहलाती है।

albedo ऐल्बिडो :
परावर्तन का वह अनुपात, जो भू–पृष्ठ पर पड़ने वाले समग्र सौर विकिरण और परावर्तन राशि के बीच प्रकट किया जाता है। पृथ्वी का औसत ऐल्बिडो आकाश में पुनः परावर्तित सौर विकिरण का लगभग 0.4 अर्थात् 40 प्रतिशत है।

alluvial cone जलोढ़ शंकु :
एस प्रकार का जलोढ़ पंखा, जिसके ढाल का कोण अधिक ऊँचा होता है और जिससे निक्षेषण–पदार्थ की संहति मोटी एवं स्थूल होती है तथा पृष्ठीय ढाल अधिक झुका होता है।

alluvial fan जलोढ़ पंखा :
बालू, बजरी तथा अन्य निक्षेपों की पंखे की आकृति की एक संहति (mass), जिसका शीर्ष ऊर्ध्वप्रवाही, और ढाल उत्तल होता है। इसका निर्माण उस समय होता है जब कोई तेज बजने वाली नदी किसी खुले मैदान या घाटी में प्रवेश करती है और अपने साथ लाये गये अवसादों को जमा कर देती है। शुष्क प्रदेशों में इस प्रकार की रचना सामान्य मानी जाती है, क्योंकि वहाँ पर्वतीय स्रोत सूख जाते हैं, और बाढ़ पुनः आ जाया

करती है। कभी–कभी जलोढ़ पंखा कई मील लम्बा हो जाता है, तथ अन्य पड़ौसी नदियों द्वारा बनाये गये अनेक पंखों के साथ मिलकर एक बड़े मैदान का निर्माण करता है जिसको पीडमांट मैदान की संज्ञा दी जाती है।

alluvial plain जलोढ़ मैदान :
नदी के निक्षेप से बना मैदान।

altimeter तुंगतरनागी :
एक प्रकार का निर्द्रय बैरोमीटर (aneroid barometer) जिसका उपयोग वायुयानों अथवा सर्वेक्षकों द्वारा समुद्रतल के ऊपर की औसत ऊँचाई प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।

antarctic दक्षिणी ध्रुव वृत्त :
दक्षिण गोलार्द्ध में 66^{o}–32′ अक्षांश का समानान्तर वृत्त, जिस पर 22 दिसंबर के आसपास (दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर अयनांत में) और 21 जून के आसपास (दक्षिणी अयनांत में) सूर्योदय नहीं होता।

anticyclone प्रतिचक्रवात :
अपने परिस्थान के सम्बन्ध में एक उच्च वायुमण्डलीय दाब क्षेत्र जिसके केन्द्र में उच्चदाब होता है, जो आगे की ओर घटता जाता है और जहाँ से हवाएँ बाहर की ओर चलतीं हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये हवाएँ दक्षिणावर्त (clockwise) और दक्षिणी गोलार्द्ध में वामावर्त (anticlockwise) चलती हैं।

antipodes प्रतिध्रुव :
पृथ्वी के व्यास के दोनों शीर्षबिन्दु अथवा वे स्थान जो प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के विपरीत हैं। इनके बीच यदि कोई सीधी रेखा खींची जाए तो वह पृथ्वी–केन्द्र से होकर गुजरेगी।

atmosphere वायुमंडल :
गैसों, जलवाष्प तथा धूलि की एक संहति, जो पृथ्वी के बाहरी भाग को ढके हुए हैं।

aphelion सूर्योच्च, रविउच्च :
किसी खगोलीय पिण्ड की कक्षा में वह स्थान या बिन्दु जो सूर्य से अधिकतम दूरी पर होता है, जैसे 4 जुलाई को पृथ्वी अपनी कक्षा में सूर्य से 15.2 करोड़ किलोमीटर की दूरी पर होती है।

arctic circle आर्कटिक वृत्त :
उत्तरी गौलार्द्ध में 66°–32° अक्षांश का समानान्तर वृत्त। इस अक्षांश पर 21 जून के आस–पास सूर्यास्त और 22 दिसम्बर के आस–पास सूर्योदय नहीं होता।

aretc तीक्ष्ण कटक :
नग्न शैल का ढालू किनारों वाला कटक, विशेषकर दो समीपस्थ सर्कों के बीच का शिखर जो लगभग क्षैतिज या झुका हुआ होता है।

aridity शुष्कता :
सूखी या अल्प नमी की अवस्था, जहाँ वर्षा इतनी कम होती है कि पेड़–पौधे नहीं उग सकते।

autuma शरद्, पतझड़।
वर्ष की तीसरी अर्थात् ग्रीष्म तथा शीत ऋतुओं के बीच की ऋतु, जो उत्तरी गोलार्द्ध में 21 सितंबर से 21 दिसम्बर तक होती है।

B

barchan बरकान, चापाकार टिब्बा :
पवन दिशा की अनुरूप दिशा में स्थानान्तरी बालू का एक चापाकार टिब्बा, जो पवनदिशा के नियत रहने पर बनता है और प्रायः रेतीले मरूस्थलों में पाया जाता है।

biosphere जीव मण्डल :
पृथ्वी का पृष्ठीय कटिबन्ध एवं उसका समीपवर्ती वायुमंडल, जिसमें जीव पाये जाते हैं।

breeze समीर :
वायु की उस धारा के लिए सामान्यतः प्रयुक्त होने वाला एक शब्द, जिसकी शक्ति ब्यूफोर्ट पैमाने के अनुसार बल–2 (हल्की समीर, 5–नॉट) और बल–6 (प्रबल समीर, 28 नॉट) के मध्य पाई जाती है। यह इतना हल्का होता है कि इसे पवन की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

C

caldera ज्वालामुखी कुँड :
एक विस्तृत ज्वालामुखी क्रेटर, जो छिछले गर्त अथवा बेसिन के रूप में होता है, और जिसकी रचना लावा–उद्गार के परिणामस्वरूप विवर के चारों ओर की भूमि धँस जाने के कारण होती है।

chinook चिनूक :
शुष्क, कोष्ण दक्षिण–पश्चिमी पवन जो उत्तरी अमरीका के रॉकीज पर्वतों के पूर्वी ढालों पर नीचे की ओर बहता है और अल्बर्टा, पश्चिमी सस्कैंचवान तथा मान्टेना राज्यों को प्रभावित करता है। बसन्त ऋतु में इसके प्रभाव के ताप यकायक बढ़ जाता है, और हिम तेजी से पिघलने लगता है।

cirque सर्क, हिमज गह्वर :
लगभग खड़े पार्श्वों वाला एक गोल गहरा गर्त, जिसका निर्माण हिमानी द्वारा अपरदन से होता है और जो विशेषतौर पर हिमनदित प्रदेशों में पाया जाता है। इसके अनेक नाम हैं, जैसे कोरी, आदि।

clay मिट्टी, चिकनी मिट्टी, मृत्तिका :
सूक्ष्म गठित सुघट्य (प्लास्टिक) अवसादी शैल जो पंक (कीचड़) के संहनन से व्युत्पन्न होता है। इसमें मुख्यतः जलयुक्त एल्युमिनियम सिलिकेट पाए जाते हैं, जो विभिन्न प्रकार के फैल्सपैथी शैलों के अपक्षय (weathering) एवं विघटन (decomposition) में उत्पन्न होते हैं।

cliff भृगु :
एक ऊँचा तथा खड़ा शैल–फलक, जो विशेषतः किसी समुद्री तटरेखा पर या अन्तःस्थल में ऊर्ध्वाधर दृष्टिगोचर होता है।

climate जलवायु :
भूपृष्ठ के काफी बड़े क्षेत्र में मौसम की दशाओं की समग्र जटिलता,उसके औसत लक्षण और परिवर्तन का परिसर। सामान्यतः ये दशाएँ अनेक वर्षों की दशाओं का परिणाम होती हैं, और ताप, वायुमंडलीय दाब, वायु–आर्द्रता, मेघ, वर्षण तथा अन्य मौसम–तत्वों के कारण उत्पन्न होती हैं।

cloud मेघ :
प्रायः जल या कभी–कभी हिम के सूक्ष्म दृश्य कणों (व्यास–0.02–0.06 मि.मी.) की एक संहति। इन कणों का निर्माण आर्द्रताशोषी नाभियों (धूल, धूम्र, लवण आदि की) पर होने वाले संघनन (condensation) के कारण होता है।

condensation संघनन, द्रवण :
वह भौतिक प्रक्रम जिसके द्वारा वाष्प, द्रव या ठोस रूप में परिवर्तित हो जाती है।

cone शंकु, कोन :
एक ज्वालामुखी शिखर, जिसका आधार चौड़ा एवं ऊपर की ओर नुकीला होता है।

continental drift महाद्वीपीय विस्थापन :
वह परिकल्पना जिसके अन्तर्गत यह विचार किया जाता है कि महाद्वीपीय संहतियाँ किसी भूवैज्ञानिक काल में विस्थापित हुई है, और भूमंडल पर जिनकी वर्तमान स्थिति मूल भूसंहति के खंडित और विलग होने के परिणामस्वरूप है। इस परिकल्पना का प्रतिपादन एल्फ्रेड वेगनर (सन् 1910) ने किया था।

corrasion अपघर्षण :
बलकृत अपरदन अर्थात किसी शैल–पृष्ठ का ऐसे पदार्थ से घर्षण द्वारा नष्ट हो जाना, जो तरंगों, हवाओं, प्रवाही बर्फ या जल द्वारा परिवहित होता है, या गुरुत्व के कारण संचलित होता है।

corrosion संक्षारण :
रासायनिक प्रक्रमों द्वारा चट्टानों का घिसकर नष्ट हो जाता। ये रासायनिक प्रक्रम घोल, कार्बोनेट जल–अपघटन (hydrolysis), ऑक्सीभवन तथा जलयोजन (hydration) द्वारा होते हैं।

cumulus cloud कपासी मेघ :
एक प्रकार का संवहनी मेघ जो सपाट आधार से ऊर्ध्वाधर उठता है, और एक श्वेत गोलाकार या गुम्बदाकार शिखर के रूप में विकसित होता है, तथा कभी–कभी अधिक ऊँचाई पर पहुँच जाता है।

current धारा :
1. किसी नदी के प्रणाल में जल का विशिष्ट और निश्चित संचलन।
2. किसी वायुसंहति में वायु की ऊर्ध्वागति
3. पृष्ठीय सागरीय जल की निश्चित दिशा में स्थायी या मौसमी संचलन।

cycle of erosion अपरदन चक्र :
किसी भौतिक भूदृश्य का परिवर्तन, जो प्राकृतिक कारकों की क्रियाओं के परिणामस्वरूप एक प्रगामी अनुक्रम में क्रमबद्ध रूप में होता है। पूर्ण परिकल्पित चक्र के अन्तर्गत भूमि ऊपर उठती है और अपरदन के परिणामस्वरूप युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध अवस्थाओं को पार करती हुई एक लक्षणहीन मैदान के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

cyclone चक्रवात :
एक लघु उष्णकटिबन्धीय निम्नदाब–तन्त्र, जिसका व्यास 80 से 400 किलोमीटर होता है, और जो विशेषतः अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में 6^o और 20^o उत्तरी अक्षांशों के मध्य उत्पन्न होता है।

cyclone rain चक्रवाती वर्ष :
वह वर्षा जो किसी चक्रवात अथवा अवदाब से सम्बद्ध होती है, और जो प्रायः एक कोष्ण और आर्द्र वायु–संहति के किसी दूसरी ठण्डी व भारी वायुसंहति (airmass) के ऊपर से गुजरने या तलोच्छेदन या परस्पर मिलने के कारण होता है।

D

degradation निम्नीकरण, तलावचन :
भौतिक प्रक्रमों (विशेषतः नदियों) द्वारा भू–पृष्ठ सामान्य रूप से नीचा होना। इस प्रक्रम के अन्तर्गत किसी अन्य स्थान पर निक्षेपित होने वाले पदार्थ का विस्थापन भी शामिल है।

delta डेल्टा :
जलोढ़ भूमि का न्यूनाधिक त्रिकोणीय भूभाग, जो किसी नदी के मुहाने पर निर्मित होता है।

denudation अनाच्छादन :
जल, बर्फ या किसी अन्य भौतिक घटक द्वारा निम्नस्थ शैलों का आवरण उतर जाना, अथवा किसी भूमि का घिस जाना।

deposition निक्षेपण :
बहते जल, हवा, बर्फ तथा समुद्री ज्वार एवं जल–धाराओं द्वारा परिवहित पदार्थ का किसी स्थान विशेष पर जमा होना।

desert मरुस्थल मरु :
पृथ्वी का वह क्षेत्र जिसमें बहुत कम वर्षा होती है और परिणामस्वरूप वनस्पति भी कम होती है।

dew ओस :
पौधों की पत्तियों तथा भूमि पर उपस्थित अन्य वस्तुओं की सतहों पर जल की अति सूक्ष्म बूँदों का संचय है। ये बड़े रात्रि के समय भौमिक विकिरण द्वारा वायुस्तर के औसांक (dewpoint) के नीचे किसी तापमान तक, शीतलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।

dew point ओसांक :
वह क्रांतिक ताप (critical temperature), जिस पर वायु ठण्डी हो जाने के बाद जल–वाष्प से संतृप्त हो

जाती है, और जिसके नीचे, और अधिक वाष्प के संचलन द्वारा नाभिकों की उपस्थिति में जल की सूक्ष्म बूँदें बन जाया करती है।

doldrums डोलड्रम्स :
वायुमण्डलीय निम्नदाब की विषुवती मेखला, जहाँ पर उत्तर–पूर्वी और दक्षिण–पूर्वी व्यापारिक हवाएँ एक–दूसरे से मिलकर, प्रशातों (calms) एवं हल्की पृष्ठीय पवनों और वायु की तीव्र ऊर्ध्वगामी धारा को उत्पन्न करती है।

drainage अपवाह तंत्र :
प्राकृतिक सरिताओं के किसी तंत्र द्वारा किसी क्षेत्र से जल का विसर्जन (discharge)।

drainage area अपवाह क्षेत्र :
वह संपूर्ण क्षेत्र, जिस पर पृष्ठीय जल के निकास का एक सामान्य मार्ग प्रायः एक ही दिशा में होता है।

drumlin ड्रमलिन :
हिमानी द्वारा निर्मित गोलाश्म–मृतिका की एक लंबी चिकनी और अंडाकार पहाड़ी, जो किसी हिमनदित क्षेत्र में पाई जाती है। जिसका लम्बा अक्ष गतिशील बर्फ की दिशा के समान्तर होता है।

E

earthquake भूचाल, भूकम्प :
भूपर्पटी में शैलों की (या शैलों के अन्दर) एक तीव्र अभिज्ञेय कम्पन–गति एवं समायोजन, जिस परिणामस्वरूप प्रत्यास्थ (elastic) घात तरंगें (shock wave) उत्पन्न होती है और चारों ओर सभी दिशाओं में फैलती है।

ecology पारिस्थितिकी, परिस्थितिविज्ञान :
वह विज्ञान जिसके अन्तर्गत जीव और उनके वातावरण के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।

ecosystem पारितन्त्र, पारिस्थितिक तन्त्र :
पौधों तथा पशुओं का जैवसमुदाय, जिसका एक विशेष वातावरण से सम्बन्ध होता है।

environment वातावरण, परिस्थिति :
चारों ओर की उन बाहरी दशाओं का सम्पूर्ण योग, जिसके अन्दर एक जीव अथवा समुदाय रहता है या कोई वस्तु उपस्थित रहती है।

epicentre अधिकेन्द्र :
भूपृष्ठ का वह स्थल–बिन्दु, जो किसी भूकम्प–उद्गम के ऊपर ऊर्ध्वाधर है।

equator भूमध्य रेखा, विषुवत वृत्त :
शून्य अंशों की अक्षांश रेखा, अर्थात् पृथ्वी का वृहत् वृत्त, जो खगोलीय तल पर दोनों ध्रुवों से समान दूरी पर स्थित है, तथा पृथ्वी के अक्ष को समकोण पर काटता है। इसकी लंबाई 40069 किलो. है।

equinox विषुव :
वर्ष का वह समय जब सूर्य भूमध्यरेखा पर मध्यान्ह (noon) में ऊर्ध्वाधर होता है। यह वह समय है जब पृथ्वी का आधा प्रदीप्त भाग दोनों ध्रुवों को समान रूप में शामिल करता है और भूमण्डल पर दिन और रात्रि बारह–बारह घण्टों के होते हैं। सूर्य ठीक पूर्व में निकलता है और पश्चिम में डूबता है। वर्ष में सामान्यतः दो विषुव होते हैं, प्रथम 21 मार्च के आसपास जो वसन्त विषुव (vernal equinox) तथा दूसरा 22 सितम्बर के आसपास जो शरद् विषुव (autumn equinox) कहलाता है।

erosion अपरदन :
विभिन्न प्राकृतिक कारकों द्वारा भूपृष्ठ–तक्षण का प्रक्रम। इन कारकों में सबसे महत्वपूर्ण हवा, समुद्री ज्वार–भाटे एवं लहरें, प्रवाही जल और वर्षा है। हिमनदियाँ, तुषार तथा पिघलने वाली बर्फ भी अपरदन करते हैं।

eruption उद्गार, विस्फोट :
वह प्रक्रम जिसके द्वारा ठोस, द्रव या गैसमय पदार्थ, ज्वालामुखी क्रिया के परिणामस्वरूप पृथ्वी के अन्दर से भूपृष्ठ पर तीव्र गति से आकर जमा होता है।

esker एस्कर :
व्यापक अर्थ में सभी हिमनदीय बालू एवं बजरी (gravel) जो एक लंबी संकीर्ण कटक अथवा टीले के रूप में हिमनदित क्षेत्रों में पाई जाती है।

evaporation वाष्पन :
वह भौतिक प्रक्रम जिसमें कोई पदार्थ तरल अवस्था से वाष्प अवस्था में परिवर्तित होता है। वायुमण्डल में पाई जाने वाली जलवाष्प का कारण पृष्ठीय जल का भाप बनता है। यह भाप महासागरों, झीलों, आदि पर सूर्य की गर्मी के कारण बनती है। क्योंकि वायुमण्डल कभी भी पूर्णतया संतृप्त नहीं होता, इसलिए वाष्पन लगातार हर समय होता रहता है, और इसकी दर वायुताप, वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प (watervapour), जल–सतह की प्रकृति और हवा पर निर्भर रहती है।

eye of the storm तूफान–अक्षि :
हरीकेन अथवा अन्य प्रकार के उष्ण कटिबंधीय तूफानों का केन्द्रीय क्षेत्र, जहाँ पर वायुमण्डीय दाब 96 मिलिवार होता है तथा वायु–वेग शून्य होता है।

F

flood plain बाढ़कृत मैदान, कछार :
किसी नदी–मार्ग के साथ–साथ पाया जाने वाला एक सपाट मैदान, जो जल द्वारा बहा कर लाए गए अवसादों के निक्षेपण से निर्मित होता है। बाढ़ के समय नदी इस पर नई जलोढ़ मिट्टी फैलाती है।

fog कुहरा :
वायुमण्डल की निम्नतर परतों में उपस्थित अदृश्यता, जो जल की छोटी–छोटी बूँदों, धूम्र तथा धूलिकणों की एक धनी संहति का परिणाम है। अन्तर्राष्ट्रीय मौसम–विज्ञान में इस शब्द की परिभाषा के अनुसार कुहरा उस अदृश्यता को कहते हैं, जिसमें एक

किलोमीटर की दूरी पर उपस्थित कोई वस्तु स्पष्टतः दृष्टिगोचर न हो।

front वाताग्र :
भूपृष्ठ पर शीत एवं कोष वायुराशियों को अलग करने वाली सीमा। यह सीमा सामान्यतः दो ऐसी वायु–संहतियों के संचलन से बनती है, जिनका जन्म दो काफी दूर स्थित उद्गम–प्रदेशों में हुआ है, जैसे उष्ण कटिबंधीय वायु और ध्रुवीय वायु। इस सीमा पर उपर्युक्त दोनों प्रकार की हवाएँ एक दूसरे के संपर्क में आती है।

frost तुषार, पाला :
जब वायु का तापमान 0^o से. या इससे भी कम हो जाता है, तो भूपृष्ठ पर पाई जाने वाली नमी बर्फ–कणों के रूप में जम जाती है। इसी को तुषार या पाले की संज्ञा दी जाती है।

G

geodesy भूगणित :
वह विज्ञान जिसमें पृथ्वी के रूप, आकार भार एवं घनत्व आदि का अध्ययन किया जाता हैं इसमें भूपृष्ठ के वृहत् भाग के वे सर्वेक्षण भी शामिल हैं, जिनके द्वारा पृथ्वी की वक्रता निर्धारित की जाती है। वास्तव में यह गणित की ही एक शाखा है।

glacier हिमनद, हिमानी :
सीमित विस्तार की एक बर्फ–संहति, जो संचयन–क्षेत्र से बाहर की ओर धीरे–धीरे खिसकती रहती है। इसको कभी–कभी पर्वतीय हिमानी, घाटी–हिमानी (valley glacier) अथवा अल्पलाइन हिमानी भी कहते हैं। यह लगातार उष्ण से निम्नस्थल की ओर बढ़ती है, और विशिष्ट घाटी–भित्तियों से परिबद्ध होती है।

granite ग्रेनाइट :
मोटे कणों से युक्त एक प्लूटॉनिक शैल जिसमें अन्य खनिजों के साथ–साथ क्वार्ट्ज, ऑथोक्लेज तथा फेल्डस्पार भी पाए जाते हैं। इसकी संरचना इतनी खुरदरी होती है कि विभिन्न खनिज–कणों की स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है तथा उनको आसानी से एक–दूसरे से अलग भी किया जा सकता है।

great circle वृहत् वृत्त :
भूमंडल पर वह वृत्त जिसका तल (प्लेन) उसके मध्य से गुजरता है, और उसको दो गोलार्द्धों में विभक्त करता है। पृथ्वी पर दो विपरीत याम्योत्तर (देशान्तर) रेखाएँ परस्पर मिलकर एक वृहत् वृत्त का निर्माण करती है। विषुवत रेखा भी एक वृहत् वृत्त (great circle) है। भूपृष्ठ पर किन्हीं दो स्थानों के बीच की न्यूनतम दूरी वृहत् वृत्त का चाप कहलाता है।

greonhouse effect पौधाघर प्रभाव, ग्रीन हाउस प्रभाव :
वायुमंडल के कारण भू–आतपन का एक लक्षण। वायुमंडल में होकर लघुतरंग सौर–ऊर्जा भूपृष्ठ तक पहुँचती है, और वह गर्म हो जाता है। जब कभी भी आकाश पर मेघावरण रहता है, तब वायुमंडल की निचली परतें भूमि से प्राप्त होने वाले दीर्घ तरंग विकिरण को बहुत अधिक अवशोषित कर लेती है तथा मेघावरण भौंम विकिरण को अवरुद्ध कर देता है। इस प्रकार भूपृष्ठ पर तापमान सामान्य की अपेक्षा अधिक रहता है। ऐसी अवस्था में वायुमंडल ग्रीनहाउस के शीशे की भाँति कार्य करता है।

grid जाल, ग्रिड :
किसी मानचित्र सीरीज पर वर्गों का एक जाल जो समानान्तर एवं एक–दूसरे को समकोणों पर काटती हुई रेखाओं से बनता है। इन पर संख्या किसी उद्गम से उत्तर और पूर्व की ओर लिखी जाती है। इन्हीं के आधार पर किसी बिन्दु या स्थान की स्थिति का पता लगाया जाता है।

ground water भौमजल :
भू–पृष्ठ के नीचे संतृप्त क्षेत्र में पाया जाने वाला जल। यह उए वर्षाजल से भिन्न है, जो भू–पृष्ठ पर सरिताओं में होकर बह जाता है। इसको 'भूमिगत जल' भी कहते हैं।

gulf stream गल्फ स्ट्रीम :
एक महासागरीय गर्म धारा जो मेक्सिको की खाड़ी से संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वी तट के साथ–साथ बहती हुई तथा न्यूफाउन्डलेंड के दक्षिणी–पूर्वी तट को स्पर्श करती हुई, स्कॅंडीनेविया तक पहुँचती है।

H

hunging valley निलम्बी घाटी :
वह सहायक घाटी जो मुख्य घाटी में अधिक प्रवण ढाल सहित यथेष्ट ऊँचाई से प्रवेश करती है, जिसके कारण इसमें बहने वाली सरिता मुख्य घाटी में जल–प्रपात अथवा क्षिप्रिका (rapid) क रूप में गिरती है। निलम्बी घाटी विशेषतौर पर हिमनदित प्रदेशों में पायी जाती है।

hemisphere गोलार्द्ध :
पृथ्वी का आधा भाग, जिसकी रचना उस समय होती है, जब कि उसके पृष्ठ पर मध्य से गुजरने वाली रेखा (विषुवत रेखा) उसको द्विभाजित करती है। पृथ्वी साधारणतः उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध इसके दक्षिण में है। कभी–कभी पृथ्वी को स्थल तथ जलगोलार्द्धों (water hemisphere) में भी बाँटा जाता है। जलगोलार्द्ध प्रायः उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

horizon क्षिजित :
किसी एक स्थान से दृष्टिगोचर होने वाली वह सीमा, जहाँ पृथ्वी या समुद्र आकाश से मिलते प्रतीत होते हैं।

horse latitude हार्स अक्षांश :
दोनों गोलार्द्धों में व्यापारिक तथा पछुआ हवाओं के बीच स्थित वायुमण्डलीय उच्चदाब की उपोष्ण पट्टियाँ (30^o उ. – 35^o उ और 30^o द–35^o द. अक्षांशों के मध्य) जो

सूर्य की स्थिति के अनुसार उत्तर और दक्षिण की ओर खिसकती रहती है। ये वास्तव में प्रशान्त एवं सापेक्षतः हल्की परिवर्तनशील शुष्क पवनों एवं स्थायी मौसमी दशाओं का प्रदेश है, जहाँ पर वायु ऊपर से नीचे उतरती है तथा प्रतिचक्रवतीय दशाएँ उत्पन्न करती हैं।

hurricane हरिकेन :
पश्चिमी द्वीपसमूह और मैक्सिको की खाड़ी में आने वाला उष्ण कटिबंधीय चक्रवात या परिक्रामी तूफान जो साधारणतः अगस्त और सितम्बर के महीनों में आता है। इसके साथ तीव्र हवाएँ चलती हैं, और तड़ित झंझा आने के कारण मूसलाधार वर्षा होती है।

I

inselberg इन्सेलबर्ग :
उष्ण शुष्क प्रदेश में एक विलगित अंतःस्थलीय पर्वत, जिसका शिखर साधारणतया गोल होता है, और नग्न शैल के पार्श्वों का ढाल खड़ा होता है। समीपवर्ती मैदान से इसकी ऊँचाई 325 मीटर हो सकती है।

insolaton आपतन, सूर्यातप :
सूर्य द्वारा लघुतरंगों के रूप में विसर्जित तथा प्रकाश की गति से पृथ्वी तक पहुँचने वाली ऊर्जा। सूर्य एक अत्यधिक उष्ण गैसों का पिण्ड है, और इसकी सतह का तापमान 5700^o से. तथा केन्द्र–मण्डल का 450^o लाख से. है। यह अपनी विकिरण–ऊर्जा (radiant energy) तरंगों के रूप में निकालता रहता है।

ionosphere आयनमंडल :
समतापमंडल (stratosphere) के ऊपर वायुमंडल का भाग, जिसमें ऐसे विशिष्ट परत पाए जाते हैं जो विद्युत चुम्बकीय तरंगों (रेडियो सिंगनल सहित) को पुनः पृथ्वी पर परावर्तित करते हैं। इसी भाग में ध्रुवीय ज्योति (Aurora) भी दृष्टिगोचर होती है। आयनमंडल को थर्मोस्फीयर भी कहते हैं।

isobar समदाब रेखा :
किसी मानचित्र अथवा चार्ट पर खींची गई वह रेखा जो समान वायुमंडलीय दाब वाले स्थानों को मिलती है। दाब–पाठ्यांकों को एक–दूसरे से तुलय बनाने के लिए, ये दाब आमतौर पर माध्य समुद्रतल पर घटा कर संशोधित कर लिए जाते हैं।

isoneph सममेघ रेखा :
वह रेखा जो मानचित्र पर अंकित उन सभी स्थानों को मिलाती है, जहाँ पर एक निश्चित अवधि में समान औसत मेघाच्छन्नता (overcast) रहती है।

isotherm समतापरेखा :
वह रेखा जो उन स्थानों को मिलाती है जहाँ तापमान समान पाए जाते हैं। जब कभी भी स्थान विभिन्न ऊँचाइयों पर होते हैं तब इन रेखाओं को खींचने के लिए संशोधन करने आवश्यक हो जाते हैं क्योंकि ऊँचाई के साथ–साथ तापमान बराबर घटता जाता हैं अतः प्रत्येक स्थान के ताप को माध्य समुद्र तल पर संशोधित कर लेते हैं।

J

jet stream जेट–प्रवाह :
क्षौभ मंडल में भूपृष्ठ से लगभग 12000 मीटर की ऊँचाई पर क्षैतिज दिशा में चलने वाली वायुधारा।
इसका वेग ग्रीष्म काल में 50–60 नॉट के बीच तथा शीत काल में इससे भी अधिक हो जाता है।

K

kame केम :
हिमनदी के जल के साथ बहकर आए पदार्थों के निक्षेपों से निर्मित्त एकलित टीला या साधारण स्तरित शैल–पदार्थ के परस्पर सटे हुए टीले। ये प्रायः हिमनदीय मैदान पर बालू और बजरी से भी निमित्त होते हैं।

karst कार्स्ट :
1. यूगोस्लाविया (पूर्व) के ऐड्रियाटिक तट के निकट पाए जाने वाले चूनापत्थर के विषम पठार तथा कटक–क्षेत्र के लिए प्रयुक्त एक शब्द।
2. एक चूनापत्थर–प्रदेश जिसका पृष्ठ शुष्क तथा बंजर होता है। इसमें अधिकाँश या सम्पूर्ण अपवाह–तंत्र भूमिगत होता है।

L

landform भू–आकृति, स्थलरूप :
पृथ्वी के पृष्ठ पर किसी विशिष्ट लक्षण का रूप, आकृति एवं प्रकृति।

landscape भूदृश्य :
मूलतः इस शब्द का प्रयोग चित्रकार किसी ग्रामीण दृश्य के संदर्भ में करते हैं, परन्तु अब इसका प्रयोग किसी भी क्षेत्र के सम्पूर्ण ग्रीण तथा नगरीय परिदृश्य (aspect) के लिए किया जाता है।

land slide भू–स्खलन :
किसी ढाल या पर्वत पार्श्व से, शैल–पदार्थ या मृदा का गुरुत्व अथवा नमी के कारण नीचे गिरना।

limestone चूनाश्म, चूना प्रस्तर, चूना पत्थर :
एक प्रकार का शैल, जिसमें कम से कम 50 प्रतिशत कैल्सियम कार्बोनेट पाया जाता है।

longitude देशान्तर :
किसी स्थान की कोणीय दूरी जो प्रध्याान याम्योत्तर (0^o या ग्रीनविच) के पूर्व या पश्चिम में होती है। यह इन दोनों में से किसी भी दिशा में 180^o तक ही मापी जा सकती है।

long profile दीर्घ परिच्छेदिका :
स्रोत से मुहाने तक किसी नदी तली का प्रोफाइल।

M

magma मैग्मा :

वह पिघला हुआ शैल–पदार्थ जो भूपर्पटी की ठोस चट्टानों के नीचे पाया जाता है, और जिसका तापमान बहुत अधिक होता है तथा जिसमें गैसें एवं अन्य प्रस्फोटी (volatile) पदार्थ भी पाए जाते हैं।

magnetic pole चुम्बकीय ध्रुव :

उत्तरी अमरीका (आर्कटिक के निकट) तथा ऐंटार्कटिका में स्थित पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के दो ध्रुवों में से एक, जो किसी क्षैतिज समतल में मुक्त रूप से घूमने वाली चुम्बकीय सुई से व्यक्त होता है।

mantle प्रावार, मेंटल :

अतयल्पसिलिक शैलों (ultrabasic rocks) की एक परत जिसका घनत्व 3'3 से 3'3 होता है तथा जिसकी मोटाई 2900 किलोमीटर होती है और जो पृथ्वी की पर्पटी तथा क्रोड के मध्य पाई जाती है।

meander विसर्प :

किसी मंद गति से बहने वाली नदी या घाटी के मार्ग में एक वक्रित या वलयाकार मोड़। 'मिएण्डर' शब्द टर्की में बहने वाली नदी से लिया गया है।

mid latitude मध्य अक्षांश

वह अक्षांशीय क्षेत्र, जो मोटे तौर पर 23^o और 66^o अक्षांशों के मध्य (उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्धों में) स्थित है। इसका प्रयोग शीतोष्ण कटिबंध के स्थान पर किया जाने लगा है।

millibar मिलीबार :

बैरोमीट्रीय दाब की एक इकाई, जो एक बार (bar) के हजारवें भाग के बराबर होती है, और जिसका उपयोग सिनॉप्टिक चार्टों पर किसी क्षेत्र के वायुमण्डलीय दाब के वितरण को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। 45^o उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांओं में समुद्र–तल पर प्रामाणिक दाब 1013.2 मि. बा. माना जाता है।

moon चन्द्रमा :

पृथ्वी का उपग्रह (satellite) जो उसके चारों ओर चक्कर लगाता है। यही एकमात्र आकाशी पिण्ड है, जो पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। खगोल विज्ञान में यह शब्द किसी भी ग्रह के उपग्रह के लिए प्रयुक्त होता है। पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा का एक परिभ्रमण (revolution) लगभग 29.5 दिन में पूरा होता है। चन्द्रमा का व्यास पृथ्वी के व्यास के चौथाई भाग से थोड़ा अधिक है।

N

nunatak नूनाटक :

किसी बर्फ–चादर अथवा बर्फ–छत्रक की सतह से स्पष्टतः ऊपर निकाला हुआ शैल–शिखर। यह अधिकाशतः ग्रीनलैण्ड और अन्टार्कटिका में देखा जा सकता है।

O

ocean current महासागर–धारा :

पृथ्वी–घूर्णन, सनातनी हवाओं, (prevaling winds) तापमान एवं घनत्व में विभिन्नता तथा लवणता–परिवर्तन के कारण उत्पन्न महासागर क पृष्ठीय जल का संचलन जो प्रायः निश्चित दिशा में होता है।

orbit कक्षा :

आकाश में, कुछ निश्चित बिन्दुओं के सन्दर्भ में, किसी आकाशीय पिंड का मार्ग, जिस पर वह परिभ्रमण करता है।

P

peninsula प्रायद्वीप :

समुद्र या किसी झील में आगे की ओर निकली हुई भूमि जो लगभग तीन ओर जल से घिरी होती है। उदाहरणार्थ भारत का प्रायद्वीप, इटली का प्रायद्वीप।

perihelion उपसौर :

किसी खगोल–पिण्ड (celestial body) की अपनी कक्षा में सूर्य के निकटतम स्थिति। इसमें पृथ्वी 3 जनवरी को आती है और सूर्य से उसकी दूरी 14.73 करोड़ किलोमीटर होती है।

planet ग्रह :

एक आकाशीय पिंड, जो सूर्य से छोटा है और उससे उत्पन्न हुआ है तथा उसके चारों ओर चक्कर लगा रहा है। सौर मंडल में इस समय नौ ग्रह हैं, जैसे हमारी पृथ्वी। इन ग्रहों से प्रकाश और ऊष्मा का विकरण नहीं होता।

plateau पठार :

वह उत्थित भूमि जिसका पृष्ठ लगभग समतल होता है, तथा जिसके एक या अधिक किनारों का ढाल कभी–कभी बिल्कुल खड़ा होता है।

pole ध्रुव :

पृथ्वी–अक्ष के उत्तरी तथा दक्षिणी सिरों को सूचित करने वाले दो बिन्दुओं में से एक।

pole star ध्रुवतारा :

आकाश में उत्तरी–ध्रुव के शिरोबिन्दु पर दिखाई देने वाला एक स्थिर तारा, जिसके द्वारा उत्तरी गोलार्द्ध में किसी भी स्थान (जहाँ से इसे देखा जा सके) से वास्तविक उत्तर ज्ञात किया जा सकता है।

precipitation वर्षण / अवक्षेपण :

वायुमंडल में जलवाष्प के द्रवण से उत्पन्न नमी जो बादलों में संचित हो जाती है और पृथ्वी पर वर्षा, हिम, ओले, ओस आदि के रूप में गिरती है।

R

radiation विकिरण :

वह प्रक्रम जिसके द्वारा ऊर्जा, तरंगों के जरिए किसी

माध्यम से होकर संचारित होती है। मौसमविज्ञान में इसका तात्पर्य सूर्य द्वारा लघु तरंगों के रूप में निष्सारित ऊर्जा से है।

rapid क्षिप्रिका :
किसी नदी का वह भाग जहाँ जल की गति अधिक तीव्र होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि नदी की तली पर कठोर शैलों से अवरोध उत्पन्न हो जाता है, जिससे जल की गति बढ़ जाती है।

relative humidity आपेक्षिक आर्द्रता :
किसी निश्चित ताप पर वायु–आयतन में पाई जाने वाली जल–वाष्प की वास्तविक मात्रा तथा उी ताप पर संतृप्त वायु में विद्यमान मात्रा के बीच का अनुपात, सामान्यतः प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है।

S

satellite उपग्रह :
सापेक्षतः छोटा खगोल पिण्ड, जो किसी ग्रह का परिभ्रमण करता है, उदाहरणार्थ चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है।

seasons ऋतुएँ :
पृथ्वी के परिभ्रमण–कक्षा पर अक्ष–झुकाव तथा सूर्य के चारों ओर घूमने के कारण उत्पन्न जलवायु की विशिष्ट अवधियाँ जो एक वर्ष में होती है, और जिनका विभाजन सौर विकिरण की अवधि एवं तीव्रता, दैनिक प्रकाश एवं ताप आदि ललवायवी दशाओं में परिवर्तनों के आधार पर किया जाता है। शीतोष्ण प्रदेशों में तीन मास की अवधि की चार ऋतुएँ होती हैं, जैसे उत्तरी गोलार्द्ध में मार्च, अप्रैल तथा मई की बसंत ऋतु, जून, जुलाई तथा अगस्त की ग्रीष्म, सितम्बर, अक्टूबर तथा नवम्बर की शरद और दिसम्बर, जनवरी तथा फरवरी की शीत ऋतु। दक्षिणी गोलार्द्ध में ऋतुएँ इनके बिल्कुल विपरीत होती है।

seismic focus भूकम्प उद्गम केन्द्र :
के साधारणत भूपृष्ठ कई किलोमीटर की गहराई पर स्थित वह स्थान जहाँ से भूकम्प का उद्भव होता है और जहाँ से कम्पन सभी दिशाओं में फैलता है। अब यह विश्वास किया जाता है कि भूकम्प केवल एक बिन्दु मात्र पर ही नहीं बल्कि एक रेखीय स्थिति में उत्पन्न होता है।

seismology भूकम्पविज्ञान :
भूकम्पों का वैज्ञानिक अध्ययन तथा विश्लेषण।

sirocco or seirocco सिरोको :
कभी–कभी अत्यधिक आर्द्र या काफी शुष्क एवं उष्ण दक्षिणी या दक्षिण–पूर्वी पवन, जो सहारा मरुस्थल से उत्तरी अफ्रीका, सिसली तथा दक्षिणी इटली होती हुई गुजरती है। यह भूमध्य सागर से पूर्व दिशा को जाने वाले अवदाबों के पहले चलती है तथा मरुस्थल से चलने के कारण प्रारम्भ में यह शुष्क होती है। परन्तु दक्षिणी इटली पहुँचते–पहुँचते काफी नम हो जाती है।

snow हिम :
पक्षाभ या सुई–सदृश संरचना के बर्फ–क्रिस्टल के रूप में वर्षण। ये क्रिस्टल अलग–अलग भी गिर सकते हैं अथवा बड़े–बड़े पत्रकों (flaker) के रूप में बहुत सारे एकसाथ भी गिर सकते हैं।

solar system सौर परिवार :
आकाशीय पिण्डों का वह समूह जिसमें सूर्य तथा उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रह, क्षुद्रग्रह, ग्रहिकाएँ, पुच्छल तारे, उल्काएँ तथा उल्का–पिण्ड और ग्रहों के चारों ओर घूमने वाले उपग्रह सम्मिलित हैं।

solstice अयनांत, संक्रान्ति :
क्रांतिवृत्तीय तल (plane of eliptic) के दो बिन्दुओं में से एक, जहाँ पर सूर्य दोपहर के समय विषुवत रेखा से ($23\frac{1}{2}^o$ उत्तर तथा $23\frac{1}{2}^o$ दक्षिण) अपने अधिकतम कोणीय झुकाव डिक्लिनेशन) पर होता है। सूर्य लगभग 21 जून को उत्तरी अयनांत (कर्क रेखा) तथा लगभग 22 दिसम्बर को दक्षिणी अयनांत (मकर रेखा) पर पहुँचता है। इन्हीं अवधियों को उत्तरी गोलार्द्ध में क्रमशः ग्रीष्म तथा शीत अयनांत कहा जाता है।

spring 1. बसन्त, 2. स्रोत, झरना :
1. शीत और ग्रीष्मकाल के मध्य की ऋतु। उत्तरी गोलार्द्ध में यह खगोलीय दृष्टि से दक्षिण या बसंत विषुव (लगभग 21 मार्च) और उत्तर अयनांत (लगभग 21 जून) के मध्य, सामान्यतः फरवरी, मार्च और अप्रैल की अवधि में होती है।
2. भूमिगत जल या भूपृष्ठ पर प्राकृतिक प्रवाह।

standard time मानक समय :
किसी देश के मध्य से गुजरने वाली याम्योत्तर का माध्य समय, जो स्थानीय समय की असुविधा के कारण सम्पूर्ण देश के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे भारत के लिए 82^o याम्योत्तर का समय माना जाता है।

stratosphere समताप मंडल :
वायुमण्डल की वह परत जो क्षोभ मण्डल के ऊपर होती है और लगभग 90 किलोमीटर की ऊँचाई पर आयन मण्डल तक फैली होती है। भूमध्य रेखा पर इसकी औसत ऊँचाई 18 किलोमीटर, 50 उत्तरी और दक्षिणी अक्षाँश पर 9 किलो मीटर तथा ध्रुवों पर 6 किलोमीटर होती हैं यह ऊँचाई ऋतु के अनुसार थोड़ी बहुत परिवर्तित होती रहती है। इस भाग से जलवाष्प या धूलि की मात्रा बहुत कम होती है। भूमध्य रेखा के अन्दर समताप के अनुसार वर्ष के दौरान तापमान 76 से. से 90 तक परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु ध्रुवीय प्रदेशों में यह ऋतु सम्बन्धी परिवर्तन अधिक विशिष्ट होते हैं। इस भाग में ऊँचाई के साथ–साथ ताप में ह्रास नहीं होता, बल्कि वह स्थिर रहता है। प्रायः इसके ऊपरी हिस्से में तापमान 80^o से. होती है।

sunrise, sunset सूर्योदय, सूर्यास्त :
वे अवधियाँ जब कि सूर्य, पृथ्वी के घूर्णन के कारण, क्षितिज से ऊपर उठता तथा नीचे जाता हुआ प्रतीत होता है।

syzygy युतिवियुति बिन्दु :
वह स्थिति जब सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक ही रेखा में हों, अर्थात चन्द्रमा युति या वियुति की स्थिति में हो। यह स्थिति पूर्णिमा तथा अमावस्या को पाई जाती है।

T

tarn टार्न, गिरिताल :
पर्वतों में किसी सर्क–बेसिन की तली पर पायी जाने वाली लघु झील, जिससे कोई सरिता भी निकल सकती है।

temperate zone शीतोष्ण कटिबंध :
उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा एवं आर्कटिक वृत्त तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा एवं ऐन्टार्कटिक वृत्त के बीच की वे मेखलाएँ, जहाँ सूर्य सिर के ऊपर कभी नहीं चमकता बल्कि उसकी किरणें तिरछी ही पड़ती हैं। अतः यहाँ पर स्पष्ट कोष्ण तथा शीत ऋतुएँ पायी जाती हैं। इन मेखलाओं को मध्य अक्षांश भी कहते हैं।

temperature ताप, तापमान :
एक जलवायवी तत्व जैसे ऊष्मा या शीत, जो थर्मामीटर द्वारा सुगमता से नापी जा सकती है तथा सेंटीग्रेड अथवा फारेनहाइट मापक्रम पर अंशों में प्रदर्शित की जा सकती है।

time zone टाइम जोन, काल क्षेत्र :
एक भौगोलिक क्षेत्र जिसके अन्दर परम्परागत मानक समय (standard time) ही प्रयोग में लाया जाता है।

tornado टॉरनेडो :
ग्रीष्म के प्रारम्भ तथा बसंत ऋतु में मिसिसिपी बेसिन में आने वाला एक प्रचण्ड विनाशकारी वातावर्त (whirlwind) जो किसी प्रबल निम्नदाब केन्द्र के चारों ओर बनता है। इसमें हवाएँ 320 कि.मी. (200 मील) प्रति घंटा के वेग से चलती है और गहरे रंग के कीपाकार मेघ आकाश में छा जाते हैं जिनसे गरज के साथ वर्षा होती है। इसके साथ निम्नदाब की एक द्रोणी होती है जिसमें उत्तर से शीत और दक्षिण से कोष्णनम हवाएँ परस्पर मिलती हैं। स्थानीय तापन से हवाएँ तेजी से ऊपर उठने लगती है तथा क्षणभंगुर तूफान का रूप ले लेती हैं। इसका व्यास 100 मीटर या इससे भी कम होता हैं इसे हरीकेन, टाइकून तथा विलीविली के नाम से भी पुकारते हैं। इसके कारण जन जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है तथा आर्थिक क्षति पहुँचती है।

torrid zone उष्ण कटिबंध :
पृथ्वी पर तीन अक्षांशीय कटिबंधों में से सबसे गर्म। अन्य दो शीत कटिबंध और शीतोष्ण कटिबंध हैं यह उष्ण अक्षांशों के अन्दर भूमध्यरेखा के दोनों और एक चौड़ी पट्टी के रूप में है।

trade wind व्यापारिक पवन :
वे हवाएँ, जो उपोष्ण (subtropical) उच्चदाब क्षेत्रों से भूमध्य रेखीय निम्न दाब की ओर, उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर–पूर्व और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण–पूर्व दिशाओं में चलती है। इसीलिए इनको उत्तर–पूर्वी व्यापारिक हवाएँ और दक्षिण–पूर्वी व्यापारिक हवाएँ कहते हैं।

tropical cyclone उष्ण कटिबंधीय चक्रवात :
सापेक्षतः छोटा परन्तु तीव्र तूफानी दशाओं वाला वायुमंडलीय निम्नदाब जो खासतौर पर उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में महासागरों के पश्चिमी भाग में उत्पन्न होता है। इसके केन्द्र में एक 'प्रशान्त (calm) क्षेत्र पाया जाता है, जिसे तूफान–नेत्र' (eye of the storm) का नाम दिया जाता है। इसके मध्य में बहुत ही अल्प दाब होता है और केन्द्र के चारों ओर हवाओं का एक प्रबल चक्रवाती परिसंचलन पाया जाता है। हवाओं की गति (112–128) किलोमीटर (70–80 मील) प्रति घंटा रहती है किन्तु यह गति कभी–कभी 160 किलोमीटर (100 मील) प्रति घंटा भी पाई जाती है। जो क्षेत्र इस तूफान के मार्ग में आते हैं, उनमें 24 घंटों में 5 इंच तक वर्षा हो जाती है।
ये तूफान आर्थिक जीवन को भयंकर क्षति पहुँचाते हैं। इसके भिन्न–भिनन देशों में अलग–अलग नाम हैं, जैसे अटलांटिक महासागर में 'हरीकेन', पश्चिमी प्रशान्त महासागर में 'टाइफून' दक्षिणी प्रशान्त महासागर में 'हरीकेन' तथा आस्ट्रेलिया के उत्तर तथा पश्चिम में 'विलीविली' और भारतीय महासागर तथा बंगाल की खाड़ी में 'साइक्लोन' इस प्रकार के तूफानों को उष्ण कटिबंधीय परिभ्रामी तूफान की भी संज्ञा दी जाती है।

tropic of cancer कर्क रेखा :
पृथ्वी पर 23°32′ **उत्तरी अक्षांश**, जो उत्तरी गोलार्द्ध में उन स्थितियों को इंगित करता है, जिन पर सूर्य दोपहर के समय शीर्ष पर प्रतीत होता है। यह स्थिति 21 जून को होता है।

tropic of capricorn मकर रेखा :
पृथ्वी पर 23°32′ दक्षिणी अक्षांश, जो **दक्षिणी गोलार्द्ध** में उन स्थितियों को इंगित करता है जिन पर सूर्य दोपहर के समय शीर्ष पर प्रतीत होता है। यह स्थिति 21 दिसम्बर को होती है।

tropics अयनमंडल, उष्ण कटिबंध :
कर्क और मकर रेखाओं के बीच का वह कटिबंध जहाँ सूर्य वर्ष में दो बार शीर्ष पर चमकता है, तथा मौसम सदैव गर्म रहता है।

troposphere क्षोभमंडल, ट्रोपोस्फियर :
वायुमंडल का सबसे निचला स्तर जो भू–पृष्ठ से करीब 10 से 16 किलोमीटर की ऊँचाई तक है। यह समताप मंडल के नीचे है। इन दोनों के मध्य क्षोभसीमा पाई जाती है। वायुमंडल की लगभग सम्पूर्ण जलवाष्प एवं मेघ इस क्षोभमंडल में ही पाए जाते हैं।

typhoon टाइफून :
पश्चिमी प्रशान्त महासागर के तटों तथा चीन सागर में आने वाला एक लघु प्रबल एवं भ्रमिल उष्ण कटिबंधीय तूफान, जो बहुत ही विनाशकारी होता है और जिसके साथ भारी वर्षा होती है। यह बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में आने वाले चक्रवात का समानार्थी है।

V

valley घाटी :
भूपृष्ठ पर दोनों ओर पर्वतों या उच्चभूमि से घिरी निम्नभूमि, जिसमें होकर वह हिमनदी या नदी बहती है, जिसने उसकी रचना की है। तरुण घाटियाँ परिपक्व घाटियों की अपेक्षा अधिक गहरी एवं संकीर्ण होती हैं। नदी–घाटियों के ढाल प्रायः समुद्र की ओर होते हैं।

visibility दृश्यता :
वह दूरी जहाँ तक कोई **प्रेक्षक** (observer) देख सकता है। यह निम्न बातों पर निर्भर रहती है :
(क) प्रेक्षक की समुद्र तल से ऊँचाई, जिसमें पृथ्वी पृष्ठ की वक्रता भी शामिल है।
(ख) अदृश्य भूमि की राशि।
(ग) वायुमंडलीय स्वच्छता की मात्रा।
(घ) दिन अथवा रात्रि का समय।

vulcanology ज्वालामुखी विज्ञान :
वह विज्ञान जिसके अन्तर्गत ज्वालामुखी घटना (phenomenon) का अध्ययन किया जाता है।

vulcanism ज्वालामुखी उद्भव :
वह प्रक्रम जिसके द्वारा पृथ्वी के अन्दर से पिघली हुई चट्टान या मैग्मा भूपर्पटी में अथवा भूपृष्ठ पर आ जाता है।

W

water fall जलप्रपात :
किसी नदी–मार्ग में मृदु शैल के **अपरदान** (erosion) तथा कठोर शैल के अवरोध के कारण जल का तीव्र गति से गिरना।

weather मौसम :
वे वायुमंडलीय दशाएँ जो एक निश्चित लघु अवधि में किसी क्षेत्र विशेष में पाई जाती हैं। इन दशाओं को प्रभावित करने वाले तत्व, जैसे वायु, मंडलीय दाब, ताप, आर्द्रता, मेघ, वर्षा तथा पवन प्रवाह आदि हैं।

weathering अपक्षयण, अपक्षय :
शैल का स्वस्थाने विघटन एवं क्षय, जिसके कारण अपरद (waste) के प्रावार (मैंटल) की रचना होती है।

westerlies पश्चिमी पवनें, पश्चिमी हवाएँ :
पैंतीस से पैंसठ डिग्री उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों के मध्य उपोष्ण उच्चदाब पेटी से शीतोष्ण निम्न दाब कटिबंध की ओर चलने वाली हवाएँ जो उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण–पश्चिम दिशा में तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर–पश्चिम दिशा में चलती है।

wind पवन :
धरातल के समानान्तर गतिशील वाय जिसकी गति एवं दिशा निश्चित नहीं होती।

windward पवनाभिमुख :
पवन के सम्मुख पड़ने वाला पार्श्व अथवा दिशा। प्रतिपवन (leeward) इससे विपरित होता है।

Y

year वर्ष :
समय की वह अवधि जिसके दौरान पृथ्वी अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर एक पूरा चक्कर लगा लेती है, या ऋतुओं के एक पूर्ण चक्र की अवधि, जो एक **महाविषुव** से दूसरे तक मापी जाती है और 365 दिन, 5 घण्टे, 48 मिनट तथा 46 सैंकिडों के बराबर होती है। सामान्य उद्देश्यों के लिए वर्ष की यह अवधि 365 कदन की मानी जाती है जबकि प्रत्येक चौथा वर्ष 366 दिन का लीप वर्ष के नाम से जाना जाता है।

young mountain तरुण पर्वत :
भूपर्पटी में बने वे वलित पर्वत जिनकी रचना अति नूतन वलन–काल में हुई है, जैसे आल्पूस तथा हिमालय पर्वत।

Z

zone कटिबंध :
समान विशेषताओं वाले क्षेत्र के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला एक सामान्य शब्द। विशेष अर्थ में पृथ्वी की तीन पट्टियाँ जिनकी रचना दोनों गोलार्द्धों में अक्षांश के आधार पर की जाती है, जैसे शीत कटिबंध, शीतोष्ण कटिबंध तथा उष्ण कटिबंध।